पण्डितप्रवर ब्र. रायमल्ल विरचित

ज्ञानानन्द श्रावकाचार

●

सम्पादक :

डॉ. देवेन्द्रकुमार शास्त्री,

प्राध्यापक व अध्यक्ष,

हिन्दी-विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,

जावरा (रतलाम) म. प्र.

●

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल,

भोपाल (मध्यप्रदेश)

समर्पण

जिनके अन्तर में
अध्यात्म समाहित था,
जिसकी आवृत्ति स्वरूप
बाह्य प्रवृत्ति में भी
सदाचार प्रवर्तमान था,
उन महामना, उदारचेता
पण्डित बाबूभाई मेहता की
पुण्य स्मृति में—
उनकी आस्था तथा निस्पृहता
के अनुरूप,
श्रावक व गृहस्थ के
आचार का वर्णन करके वाली
यह प्रामाणिक रचना
सादर समर्पित है।

—देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्रकाशकीय

आचार्यकल्प पं. टोडरमलजी के सहयोगी मित्र ब्र. पं. रायमल्लजी द्वारा रचित "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" सरल, सुबोध शैली में निबद्ध एक आचार प्रधान ग्रन्थ है। इसमें जैन गृहस्थों के आचार का विशद वर्णन किया गया है। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ इस शास्त्र की कम-से-कम एक प्रति अवश्य होना चाहिये इस धारणा के कारण हमारे मन में वर्षों से इस शास्त्र को प्रकाशित कराने की भावना थी। किन्तु सुयोग न मिलने से यह कार्य नहीं हो सका। लगभग दो-ढाई वर्ष पूर्व श्रावकाचार-वर्ष के शुभ प्रसंग पर आदरणीय डॉ. देवेन्द्रकुमारजी, नीमच ने अपनी उदारता का सहज परिचय देकर इसके सम्पादन का कार्य निःशुल्क करने की स्वीकृति प्रदान कर अपने वचन अनुरूप इसे प्रकाशन योग्य बनाने में विशेष श्रम किया है। यही नहीं, मुद्रण-व्यवस्था, प्रूफ आदि देखने में भी पण्डित जी ने अथक स्तुत्य परिश्रम किया है। इसके लिए हम उनके कृतज्ञ हैं।

भोपाल का दि. जैन मुमुक्षु मण्डल कई वर्षों से सत्साहित्य को प्रकाशित करने तथा इसके प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय अपना महत्त्वपूर्ण योग-दान कर रहा है। फलस्वरूप पं. राजमल पवैया रचित जैन पूजांजलि, अपूर्व अवसर लघु पूजन-संग्रह, परमात्म पूजन, पूजन पुष्प, पूजन दीपिका, पूजन किरण एवं अन्य संकलित जिनार्चना, वैराग्य पाठमाला, आदि अनेक पुस्तकों के प्रकाशन, का मण्डल को सौभाग्य मिला है। जैन पूजांजलि, और जिनार्चना के तो कई संस्करण निकल चुके हैं। हमारी यह पवित्र भावना है कि आगम ग्रन्थों के प्रकाशन की यह कड़ी सतत साकार रूप ग्रहण करती रहे।

जिन सज्जनों ने अग्रिम प्रतियाँ लेने हेतु तथा ग्रन्थ का मूल्य कम करने के लिए आर्थिक सहयोग दिया है उनके प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन में मुद्रण सम्बन्धी जो अप्रत्याशित विलम्ब हुआ है उसके लिए हम क्षमा चाहते हैं।

आशा है स्वाध्यायी बन्धु इस ग्रन्थ का उचित पठन-पाठन कर इसका स्वागत-सत्कार अवश्य करेंगे।

—पण्डित राजमल जैन,
संरक्षक,
10, ललवानी गली, सर्राफा चौक, भोपाल

विषयानुक्रम

1	मंगलाचरण	1
2	वन्दनाधिकार	2
3	अर्हन्तदेव की स्तुति	3–4
4	सिद्धदेव की स्तुति	4–7
5	जिनवाणी की स्तुति	7–8
6	निर्ग्रन्थ गुरु की स्तुति	9–10
7	देव-पूजा	10–11
8	मुनि-वन्दना	11–19
9	मुनि का विहार-स्वरूप	20–27
10	नवधा भक्ति	27
11	दातार के सात गुण	28–30
12	श्रावक-वर्णनाधिकार	31–32
13	नैष्ठिक श्रावक के भेद	32-33
14	ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन (सामान्य)	33
15	दर्शन प्रतिमा	34-41
16	व्रत प्रतिमा	41–42
17	सत्य व्रत, अचौर्य व्रत	43
18	ब्रह्मचर्य व्रत, परिग्रहत्याग व्रत	44
19	दिग्व्रत, देशव्रत	45
20	अनर्थदण्डत्याग व्रत	46-48
21	सामायिक व्रत	48–49
22	अतिथि-संविभाग व्रत	49-57
23	दान-स्वरूप	57–60
24	सम्यक्त्व के अतिचार	60
25	अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार	61
26	परिग्रहपरिमाण- दिग्व्रत के अतिचार	62
27	देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत, सामायिक शिक्षाव्रत के अतिचार	63
28	प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत के अतिचार,	64
29	अतिथि-संविभाग, सल्लेखनातिचार, सामायिक के दोष	65-66

30	सामायिक-शुद्धि, कायोत्सर्ग के दोष	67-68
31	श्रावक के अन्तराय	68-71
32	सामायिक प्रतिमा, प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप	71
33	सचित्तत्याग, रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा का स्वरूप	72
34	ब्रह्मचर्य, आरम्भ, परिग्रह, अनुमति त्याग प्रतिमा का स्वरूप	73
35	उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का स्वरूप	73-80
36	रात्रिभोजन का स्वरूप	80-82
37	रात्रि में चूल्हा जलाने के दोष	82-84
38	अनछना पानी के दोष	84-85
39	जैनी की पहचान	85
40	जुआ के दोष	85-86
41	खेती के दोष	86-88
42	रसोई बनाने की तैयारी	88-90
43	पानी की शुद्धता	90-94
44	रसोई करने की विधि	94-96
45	बाजार के भोजन में दोष	96-98
46	शहद भक्षण के दोष	99-100
47	कांजी भक्षण के दोष	100-101
48	अचार-मुरब्बा के दोष	101
49	जलेबी के दोष	101-102
50	एक थाली में एक साथ जीमन के दोष	102-103
51	रजस्वला स्त्री के दोष	103
52	गोरस की शुद्धता की क्रिया	103-105
53	वस्त्र-धुलाने-रंगाने के दोष	106-107
54	वस्त्र रंगने के दोष	107-108
55	शहद खाने के दोष	108
56	पंच स्थावर जीव के प्रमाण	108-109
57	द्वाति के दोष	109
58	धर्मात्मा पुरुष के रहने का क्षेत्र	110
59	आसादन दोष	110-115
60	मन्दिर-निर्माण का स्वरूप तथा फल	115-117
61	प्रतिमा-निर्माण का स्वरूप	117-121
62	छह काल का वर्णन	121-128

63	चौरासी अछेरा	129–139
64	स्त्री-स्वभाव का वर्णन	139–141
65	स्त्री की शर्म-बेशर्म का वर्णन	141–144
66	दश प्रकार की विद्याओं के सीखने के कारण	144
67	वक्ता के गुण	144–147
68	श्रोता के लक्षण	147–149
69	उनचास का भंग	150–151
70	सोलहकारण भावना	151–152
71	दशलक्षण धर्म	152–153
72	रत्नत्रय धर्म	153–155
73	सात तत्त्व	155–156
74	सम्यक्दर्शन	155–159
75	सम्यग्ज्ञान	159–161
76	सम्यक्चारित्र	161–163
77	द्वादशानुप्रेक्षा	163–171
78	बारह तप	171–176
79	बारह प्रकार का संयम	177
80	जिनबिम्ब-दर्शन	177–206
81	सामायिक का स्वरूप	207–216
82	स्वर्ग का वर्णन	216–246
83	समाधिमरण का स्वरूप	246–269
84	मोक्ष-सुख का वर्णन	269–287
85	कुदेवादि का स्वरूप-वर्णन	287–289
86	अर्हंतादि का स्वरूप-वर्णन	289–290
87	निर्ग्रन्थ गुरु का स्वरूप	290–322
88	शुद्धाशुद्धि-पत्रक	
89	परिशिष्ट	

चरणानुयोग और उसका प्रयोजन

चरणानुयोग में जिस प्रकार जीवों के अपनी बुद्धिगोचर धर्म का आचरण हो वैसा उपदेश दिया है। वहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है, उसके साधनादिक उपचार से धर्म हैं। इसलिये व्यवहारनय की प्रधानता से नाना प्रकार उपचार धर्म के भेदादिकों का इसमें निरूपण किया जाता है। क्योंकि निश्चयधर्म में तो कुछ ग्रहण–त्याग का विकल्प नहीं है और इसके निचली अवस्था में विकल्प छूटता नहीं है, इसलिये इस जीव को धर्मविरोधी कार्यों को छुड़ाने का और धर्म-साधनादि कार्यों को ग्रहण कराने का उपदेश इसमें है। वह उपदेश दो प्रकार से दिया जाता है—एक तो व्यवहार ही का उपदेश देते हैं, एक निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते हैं।

वहाँ जिन जीवों के निश्चय का ज्ञान नहीं है व उपदेश देने पर भी नहीं होता दिखाई देता ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव को कुछ धर्म–सन्मुख होने पर उन्हें व्यवहार ही का उपदेश देते हैं। तथा जिन जीवों को निश्चय-व्यवहार का ज्ञान है व उपदेश देने पर उनको ज्ञान होता दिखाई देता है, ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव व सम्यक्त्व-सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव उनको निश्चय सहित व्यवहार का उपदेश देते हैं।

अब चरणानुयोग का प्रयोजन कहते हैं। चरणानुयोग में नाना प्रकार धर्म के साधन निरूपित करके जीवों को धर्म में लगाते हैं। जो जीव हित–अहित को नहीं जानते, हिंसादिक पाप कार्यों में तत्पर ही रहते हैं, उन्हें जिस प्रकार पाप कार्यों को छोड़ कर धर्म कार्यों में लगें उस प्रकार उपदेश दिया है। उसे जान कर जो धर्म आचरण करने को सन्मुख हुए, वे जीव गृहस्थधर्म व मुनि-धर्म का विधान सुनकर आप से जैसे सधे वैसे धर्म-साधन में लगते हैं। ऐसे साधन से कषाय मन्द होती हैं और उसके फल में इतना तो होता है कि कुगति में दुःख नहीं पाते, किन्तु सुगति में सुख प्राप्त करते हैं। तथा ऐसे साधन से जिनमत का निमित्त बना रहता है, वहाँ तत्वज्ञान की प्राप्ति होना हो तो हो जाती है। तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर चरणानुयोग का अभ्यास करते हैं उन्हें यह सर्व आचरण अपने वीतराग भाव के अनुसार भासित होते हैं। एक देश व सर्वदेश वीतरागता होने पर ऐसी श्रावकदशा-मुनिदशा होती है, क्योंकि इनके निमित्त-नैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जान कर श्रावक-मुनिधर्म के विशेष पहचान कर जैसा अपना वीतराग भाव हुआ हो वैसा अपने योग्य धर्म को साधते हैं। वहाँ जितने अंश में वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते हैं, जितने अंश में राग रहता है उसे हेय जानते हैं; सम्पूर्ण वीतरागता को परम धर्म मानते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक, आठवां अधिकार पृ. 278, 270)

प्रस्तावना

आचार्यकल्प पण्डितप्रवर टोडरमलजी से उनकी रचनाओं के माध्यम से लोगों का परिचय है, किन्तु ब्र. पं. रायमल्ल का नाम तक अधिकतर जैन भाई नहीं जानते। इसका एक कारण यह है कि वे पं. टोडरमलजी के समकालीन ही नहीं, उनके अनन्य सहयोगी थे। दूसरे, वर्तमान में उनकी एक भी रचना प्रकाशित रूप में हमारे सामने नहीं है। वे ऐसे लेखक व साहित्यकार हुए जो अपनी प्रशंसा से कोसों दूर थे। पण्डितप्रवर टोडरमलजी और रायमल्लजी ने किसी भी अपनी रचना में अपने नाम का उल्लेख नहीं किया। अपने परिचय में भी इन विद्वानों ने अन्य विवरण तो सामान्य रूप से दिया है, किन्तु अपने संबंध में अधिकतर दोनों विद्वान मौन हैं। वे केवल विद्वान् ही नहीं समाज-सुधारक, युग-प्रवर्तक और सच्चे अर्थों में पण्डित थे। उन्होंने किसी सन्त से कम काम नहीं किया। यदि पण्डित टोडरमलजी ने दीर्घकाल से अप्रचलित, विस्मृतप्राय करणानुयोगों के शास्त्रों का तथा चारों अनुयोगों का दोहन कर "सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका" टीका एवं 'मोक्षमार्गप्रकाशक" जैसे, ग्रन्थ प्रमेय रूप में प्रदान किये। तो पण्डित रायमल्लजी ने सम्पूर्ण श्रावकाचारों का अध्ययन-मनन कर ज्ञानानन्द-पूरित-निजरसनिर्भर (सम्यक् प्रवृत्ति हेतु इस) श्रावकाचार का प्रणयन किया। विद्वत्-जगत में दोनों ही मल्ल अध्यात्म के अखाड़े में निजानुभूति की मस्ती को लेकर उतरे थे। दोनों ही विद्वान् अध्यात्म के मर्मज्ञ, सर्वज्ञ के वचनों का अनुसरण करने वाले थे। चारों ही अनुयोगों के ज्ञाता तथा धर्म के मर्मी वे एक ही मार्ग व पद्धति पर चलने वाले हुए। यद्यपि वे परम्परा के पोषक थे; किन्तु लोक-रूढ़ियों, मूढ़ता एवं अन्धविश्वासों का दोनों ही सत्यनिष्ठ विद्वानों ने घोर विरोध किया। दोनों ही परीक्षा-प्रधानी पंडित थे। धर्म की वास्तविकता को उन्होंने अपनी जीवन-साधना, साहित्य-रचना और आत्मज्ञान के प्रकाश से निर्मल दर्पण की भाँति प्रतिबिम्बित की। यथार्थ में उनका जीवन धन्य है! उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने आगम और तर्क की कसौटी पर कस कर एवं प्रमाण द्वारा निर्णय करने के उपरान्त ही वस्तु-व्यवस्था को स्वीकार किया था।

परिचय—

हिन्दी-साहित्य में "रायमल्ल" नाम के तीन साहित्यकारों का उल्लेख मिलता है। प्रथम ब्रह्म रायमल्ल हुए जो सतरहवीं शताब्दी के विद्वान् थे। वे

हुंबड वंशीय गुजराती विद्वान् थे। उनकी रची हुई अधिकतर रचनाएँ रासो संज्ञक तथा पद्यबद्ध कथाएँ हैं। दूसरे विद्वान् कविवर राजमल्लजी 'पाण्डे' नाम से सतरहवीं शताब्दी में प्रख्यात हो चुके थे। उनकी रचनाएँ अधिकतर टीका ग्रन्थ हैं जो इस प्रकार हैं—समयसार कलश बालबोध टीका, तत्त्वार्थसूत्र टीका एवं जम्बूस्वामीचरित, अध्यात्मकमल मार्तण्ड, इत्यादि। तीसरे साहित्यकार प्रस्तुत श्रावकाचार के लेखक ब्रह्मचारी रायमल्ल हैं। इन्द्रध्वज विधान-महोत्सव पत्रिका के साथ ही प्रकाशित अपनी जीवन-पत्रिका में उन्होंने अपना नाम "रायमल्ल" दिया है।[1] पण्डितप्रवर टोडरमल, पं. दौलतराम कासलीवाल और पं. जयचंद छाबड़ा, आदि विद्वानों ने अत्यन्त सम्मान के साथ उनके "रायमल्ल" नाम का उल्लेख अपनी रचनाओं की प्रशस्तियों में किया है।[2] पं. दौलतराम कासलीवाल के उल्लेख से स्पष्ट है कि वे जयपुर निवासी थे। दौलतरामजी ने अपने आप को उनका मित्र लिखा है। उनके ही शब्दो में—

रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व - पर - विवेक ।।
दयावन्त गुणवन्त सुजान, पर - उपकारी परम निधान ।
दौलतराम सु ताको मित्र, तासों भाख्यो वचन पवित्र ।।5।।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मित्र की साक्ष्य के अनुसार रायमल्ल विवेकी पुरुष थे। दया, परोपकार, निरभिमानता आदि अनेक गुणों से विभूषित थे।

---

1. *"अथ मार्ग केताइक समाचार एकदेशी जघन्य संयम के धारक रायमल्ल ता करि कहिए है।"*

—इन्द्रध्वज-विधान-महोत्सव पत्रिका की प्रारंभिक पंक्ति

2. *यह बरणत भये परम्पराग, तिहि मार्ग रची टीका बनाय।*
भाषा रचि टोडरमल्ल शुद्ध, सुनि रायमल्ल जैनी विशुद्ध ।।

—*गोम्मटसारपूजा की जयमाल*, 10

बसें महाजन नाना जाति, सेवें निज मारग बहु ख्याति।
रायमल्ल साधर्मी एक, जाके घट में स्व-पर-विवेक ।।

—*पं. दौलतराम कृत पद्मपुराण वचनिका की अन्त्य प्रशस्ति*, 4

रायमल्ल त्यागी गृहवास, महाराम व्रत शील निवास।
मैं हूं इनकी संगति ठानि, बुद्धि सारु जिनवाणी जानि।
शैली तेरापंथ सुपंथ, तामें बड़े गुणी गुन-ग्रन्थ।
तिन की संगति में कछु बोध, पायो मैं अध्यातम सोध ।।

—*सर्वार्थसिद्धिवचनिका प्रशस्ति*

उन्हें एक दार्शनिक का मस्तिष्क, श्रद्धालु का हृदय, साधुता से व्याप्त सम्यक्त्व की सैनिक दृढ़ता और उदारता पूर्ण दयालु के कर-कमल सहज ही प्राप्त थे। वे गृहस्थ होकर भी गृहस्थपने से विरक्त थे; एकदेश व्रतों को धारण करने वाले उदासीन श्रावक थे। वे जीवन भर अविवाहित रहे। तेईस वर्ष की अवस्था में उन्हें तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो गई थी। वे आत्मज्ञानी, सम्यग्दृष्टि, त्यागी-व्रती थे। उन्होंने वस्तु-स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने में अथक पुरुषार्थ किया था। क्योंकि घर-परिवार में कोई ज्ञानी नहीं था। शास्त्रों का साधारण ज्ञान रखने वाले मनुष्य जीव और जगत् की सृष्टि का कारण या तो परमेश्वर को समझते हैं या कर्म को। जैनधर्म के मर्म से अनभिज्ञ जैनी भी कर्म को कर्ता मानते हैं। पण्डितप्रवर रायमल्लजी ने लिखा है—"बहुरि कुटुंबादि बड़े पुरुष तानैं याका स्वरूप कदे पूछें, तौ कोई तौ कहै—परमेश्वर कर्ता है, कोई कहै कर्म कर्ता है कोई कहैं हम तौ क्यौं जानैं नाहीं। बहुरि कोई आन मत के गुरु वा ब्राह्मण ताकूं महासिद्ध वा विशेष पण्डित जानि वाकूं पूछै, तब कोई तौ कहै ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीन देव इस सृष्टि के कर्ता हैं....ऐसा जुदा-जुदा वस्तु का स्वरूप बतावै अर उनमानसूं प्रत्यक्ष विरुद्ध; तातैं हमारे सदैव या बात की आकुलता रहे, संदेह भाजै नाहीं।....ऐसे ही विचार होते-होते बाईस वर्ष की अवस्था भई ता समै साहिपुरा नग्र, विषै नीलापति साहूकार का संजोग भया। सो वाकै शुद्ध दिगंबर धर्म का श्रद्धान, देव-गुरु-धर्म की प्रतीति, आगम-अध्यात्म शास्त्रां का पाठी, षट् द्रव्य, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, सप्त तत्त्व, गुणस्थान-मार्गणा, बंध-उदय-सत्त्व आदि चर्चा का पारगामी, धर्म की मूर्ति, ज्ञान का सागर, ताके तीन पुत्र भी विशेष धर्मबुद्धि और पाँच-सात-दस जने धर्मबुद्धि ता सहित सदैव चर्चा होइ, नाना प्रकार के शास्त्रां का अवलोकन होइ। सो हम वाके निमित्त करि सर्वज्ञ-वीतराग का मत सत्य जान्या अर वाके वचनां के अनुसारि सर्व तत्त्वां का स्वरूप यथार्थ जान्या।"[1]

राजस्थान में शताब्दियों से शाहपुरा धर्म का एक केन्द्र रहा है। लगभग तीन शताब्दियों से यह जैनधर्म, रामसनेही तथा अन्य धर्मावलम्बियों का मुख्य धार्मिक स्थान है। भीलवाड़ा से लगभग बारह कोस की दूरी पर स्थित शाहपुरा सरावगियों का प्रमुख गढ़ रहा है, जहाँ धार्मिक प्रवृत्तियाँ सदा गतिशील रही हैं। स्वाध्याय की रुचि सदा से इस नगर में बनी रही है। जैन शास्त्रों का जितना बड़ा शास्त्र-भण्डार यहाँ है, उतना बड़ा सौ-दो सौ मील के क्षेत्र में भी

1. इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका के प्रारम्भ में संलग्न जीवन-पत्रिका, पाना 2

नहीं है। रायमल्लजी का धार्मिक जीवन इसी नगर से प्रारम्भ हुआ, कहा गया है। वे यहाँ सात वर्ष रहे। यहीं पर उनको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी। उनके ही शब्दों में—

"थोरे ही दिनों मैं स्व-पर का भेद-विज्ञान भया। जैसे सूता आदमी जागि उठै है, तैसैं हम अनादि काल के मोह निद्रा करि सोय रहे थे, सो जिनवानी के प्रसाद तै वा नीलापति आदि साधर्मी के निमित्त तैं सम्यग्ज्ञान-दिवस विषैं जागि उठे। साक्षात् ज्ञानानंद स्वरूप, सिद्ध साइस्य आपणा जाण्या और सब चरित्र पुद्गल द्रव्य का जाण्या। रागादिक भावां की निज स्वरूप सूं भिन्नता वा अभिन्नता नीकी जाणी। सो हम विशेष तत्त्वज्ञान का जानपणा सहित आत्मा हुवा प्रवर्ते। विराग परिणामां के बल करि तीन प्रकार के सौगंद-सर्व हरितकाय, रात्रि का पाणी, विवाह करने का आयु पर्यंत त्याग किया। ऐसे होते संते सात वर्ष पर्यंत उहां ही रहे।"[1]

भेद-विज्ञान क्या है? यह समझाते हुए पण्डितप्रवर राजमल्लजी लिखते है-"अर जाको मोह गलि गयो सो भेद-विज्ञानी पुरुष छै। ते ई पर्याय सौ कैसे आपो मानै? अर कैसे याको सत्य जानै। अर कौन को चलायो चलै; कदाचि न चलै। तीसूं मेरे ज्ञान भाव यथार्थ भया है अर आपा-पर की ठीकता भई है।"

इससे स्पष्ट है कि वे सम्यग्दृष्टि, आत्मज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने किसी को उपदेश देने के लिए नहीं, किन्तु आत्म-कल्याण के लिए शुद्ध ज्ञान को ज्ञान रूप समझा था और पर्याय-बुद्धि को छोड़कर अपने शुद्धोपयोग से तन्मय होने का मूल मन्त्र प्राप्त कर लिया था।

स्थितिकाल—

जयपुर निवासी पं. रायमल्लजी उस युग के प्रसिद्ध विद्वान् पं. टोडरमलजी, पं. दौलतराम कासलीवाल और कवि द्यानतराय के समकालीन थे। अपनी पत्रिका में उन्होंने पं. दौलतराम का और भूधरदास का उल्लेख किया है। पं. जयचंद छाबड़ा, पं. सेवाराम, पं. सदासुख आदि इनके पश्चात्वर्ती विद्वान् हैं। पं. जयचन्द छाबड़ा ने यह उल्लेख किया है कि ग्यारह वर्ष के पश्चात् मैंने जिन-मार्ग की सुध की। वि. सं. 1821 में जयपुर में इन्द्रध्वज-विधान का महोत्सव हुआ था। उसमें सम्मिलित होकर आचार्यकल्प पं. टोडरमल्लजी के आध्यात्मिक

1. इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका, पाना 2
2. ज्ञानानन्द श्रावकाचार

प्रवचनों से प्रभावित होकर उनका झुकाव जैनधर्म की ओर हुआ था। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि पं. रायमल्लजी की लिखी हुई पत्रिका उस युग का सबसे बड़ा दस्तावेज है जो जयपुर में तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में जैनधर्म की वास्तविक स्थिति पर सम्यक् प्रकाश डालने वाला है। उनके साहित्यिक कर्तृत्व का उल्लेख करते हुए पं. सेवाराम कहते हैं—

वासी श्री जयपुर तनी, टोडरमल्ल क्रिपाल।
ता प्रसंग को पाय कै, गह्यौ सुपंथ विसाल॥
गोम्मटसारादिक तनै, सिद्धान्तन में सार।
प्रवर बोध जिनके उदै, महाकवि निरधार॥
फुनि ताके तट दूसरो, रायमल्ल बुधराज।
जुगल मल्ल जब ये जुरे, और मल्ल किह काज॥

(शान्तिनाथपुराणवचनिका-प्रशस्ति)

पं. रायमल्लजी ने पत्रिका में अपने जीवन के विषय में जो उल्लेख किया है, उससे यह निश्चित हो जाता है कि 22 वर्ष तक उनको धार्मिक ज्ञान नहीं था। शाहपुरा में उनको यथार्थ धर्म-बोध प्राप्त हुआ। वहाँ वे 7 वर्ष रहे। 29 वर्ष की अवस्था में वे उदयपुर गये और वहाँ पर पं. दौलतराम कासलीवाल से मिले। पं. दौलतराम जयपुर के राजा जयसिंह के वकील थे। राजस्थान के इतिहास में सवाई जयसिंह नाम के तीन भिन्न-भिन्न महाराजा विभिन्न कालों में हुए। अतः वे जयसिंह कौन थे? मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम का शासन-काल वि. सं. 1678-1724 था। अतः वे भिन्न थे। सवाई जयसिंह द्वितीय का समय वि. सं. 1757-1800 था। जयपुर नगर की नींव महाराजा सवाई जयसिंह द्वितीय ने ही वि. सं. 1784 में डाली थी।[1] पं. दौलतरामजी को इनका ही वकील कहा गया है। उदयपुर से लौट कर आने पर ब्र. रायमल कुछ दिनों तक शाहपुरा में रहे। फिर, पं. टोडरमलजी से मिलने के लिए पहले जयपुर, आगरा, फिर सिंघाणा गये। कहा जाता है कि 'गोम्मटसार' की टीका प्रारम्भ होने के पूर्व (क्योंकि ब्र. रायमल्ल के अनुसार उक्त टीकाओं के बनाने में तीन वर्ष का समय लगा और उनकी प्रेरणा से ही टीका लिखी गई तथा वे तीन वर्ष तक वहाँ रहे) 3-4 वर्ष पूर्व अर्थात् वि. सं. 1808-9 में वे पं. टोडरमलजी से मिलने के लिए अत्यन्त उत्सुक व प्रयत्नशील थे।[2] इन्द्रध्वज-

---

1. हितैषी, 1941 ई., वर्ष 1-2, अंक 12-13, पृ. 92-93, जयपुर
2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृ. 49

विधान-महोत्सव-पत्रिका से यह स्पष्ट है कि माह शुक्ल 10 वि. सं. 1821 में इन्द्रध्वज पूजा की स्थापना हुई थी। उसके लगभग तीन वर्ष पूर्व निश्चित रूप से वि. सं. 1818 में टीकाओं की रचना हो चुकी थी। टीकाओं की रचना में लगभग तीन वर्ष का समय लगा था। अतः यदि तीन वर्ष पूर्व पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने ब्र. पं. रायमल्लजी की प्रेरणा से टीका-रचना का प्रारम्भ किया हो, तो वि. सं. 1815 के लगभग समय ठहरता है। इससे यह भी निश्चित है कि ब्र. पं. रायमल्ल यदि दो-तीन वर्ष उदयपुर-शाहपुरा-जयपुर-आगरा-जयपुर घूम-फिर कर बत्तीस वर्ष की अवस्था में शेखावाटी के सिंघाणा नगर में पं. टोडरमलजी से मिले हों, तो वह वि. सं. 1812 का वर्ष था और इस प्रकार उनका जन्म वि. सं. 1780 सम्भावित है। पं. दौलतरामजी और पं. टोडरमलजी ब्र. रायमल्लजी से अवस्था में बड़े थे। पं. टोडरमलजी को उन्होंने कई स्थानों पर भाईजी, टोडरमलजी लिखा है। उनकी ज्ञान-गरिमा और रचनात्मक शक्ति से वे अत्यन्त प्रभावित थे। उनके ही शब्दों में "सारां ही विषै भाईजी टोडरमलजी के ज्ञान का क्षयोपशम अलौकिक है।" पण्डित टोडरमलजी का जन्म वि. सं. 1776-77 कहा गया है।[1] पं. दौलतराम कासलीवाल का समय निर्णीत है। उनका जन्म वि. सं. 1745 में बसवा ग्राम में हुआ था।[2] संक्षेप में, ब्र. पं. रायमल्लजी के जन्म की निम्नतम सीमा वि. स. 1775 और अधिकतर सीमा वि. स. 1782 कही जा सकती है। क्योंकि यह सुनिश्चित है कि पं. दौलतरामजी से वे अवस्था में छोटे थे और तीस वर्ष की अवस्था के पश्चात् ही वे पण्डितप्रवर टोडरमलजी से मिले थे। उन्होंने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है कि टीकाएँ सिंघाणा नगर में रची गईं। उन्होंने रचने का कार्य किया और हमने वांचने का। उनके ही शब्दों में[3]—"तब शुभ दिन मुहूर्त विषैं टीका करने का प्रारंभ सिंघाणा नग्र विषै भया। सो वे तौ टीका बणावते गये, हम बांचते गये। बरस तीन मैं गोम्मटसार ग्रंथ की अड़तीस हजार, लब्धिसार-क्षपणासार ग्रंथ की तेरह हजार, त्रिलोकसार ग्रंथ की चौदह हजार, सब मिलि च्यारि ग्रंथा की पैंसिठ हजार टीका भई। पीछै सवाई जैपुर आए।" इसी के साथ उन्होंने यह भी उल्लेख किया है कि इस बीच वि. सं. 1817 में एक उपद्रव हो गया। यह सुनिश्चित है कि पण्डितप्रवर

---

1. *डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व पृ. 53*
2. *डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा, खण्ड 4, पृ. 281*
3. *इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका का प्रारम्भिक*

टोडरमलजी वि. सं. 1811 में मुलतान वालों को रहस्यपूर्ण चिट्ठी लिख चुके थे। उसमें कहीं भी किसी रूप में ब्र. रायमल्ल के नाम का उल्लेख नहीं है। यह भी एक अद्भुत सादृश्य है कि दोनों विद्वानों का साहित्यिक जीवन पत्रिका से प्रारम्भ होता है। यह भी सम्भावना है कि पण्डितप्रवर के इस कृतित्व और व्यक्तित्व से प्रभावित होकर ब्र. रायमल्लजी ने उनसे ग्रन्थ रचना के लिए अनुरोध किया हो।[1] अतः सभी प्रकार से विचार करने पर यही मत स्थिर होता है कि ब्र. रायमल्ल का जन्म वि. सं. 1780 में हुआ था।

रचनाएँ

अभी तक ब्र. पं. रायमल्ल की तीन रचनाएं मिली हैं। रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

(1) इन्द्रध्वजविधान-महोत्सव-पत्रिका (वि. सं. 1821)

(2) ज्ञानानन्द श्रावकाचार

(3) चर्चा-संग्रह

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पण्डितप्रवर टोडरमलजी के निमित्त से ही ब्रह्मचारी रायमल्लजी साहित्यिक रचना में प्रवृत्त हुए। उनके विचार और इनका जीवन अत्यन्त सन्तुलित था, यह झलक हमें इनकी रचनाओं में व्याप्त मिलती है। "चर्चा-संग्रह" के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्व-विचार तथा तत्त्व-चर्चा करना ही इनका मुख्य ध्येय था। डॉ. भारिल्ल के शब्दों में "पण्डित टोडरमल के अद्वितीय सहयोगी थे—साधर्मी भाई ब्र. रायमल, जिन्होंने अपना जीवन तत्त्वाभ्यास और तत्त्वप्रचार के लिए ही समर्पित कर दिया था।[2]

"इन्द्रध्वजविधान महोत्सव-पत्रिका" की रचना माघ शुक्ल 10, वि. सं. 1821 में हुई थी। ब्र. पं. रायमल्लजी के शब्दों में "आगै माह सुदि 10 संवत् 1821 अठारा से इकबीस के सालि इन्द्रध्वज पूजा का स्थापन हुवा। सो देस-

---

1 *रायमल्ल साधर्मी एक, धरम सधैया सहित विवेक।*
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यहु उत्तम कारज थयो॥
दे. लब्धिसार, द्वि. सं पृ. 637 तथा

—सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका प्रशस्ति

2. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल : पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व, पृ. 66 से उद्धृत

देस के साधर्मी मुलतानके को चीठी लिखी, ताकी नकल यहाँ लिखिये है।"

"चर्चा-संग्रह" में विविध धार्मिक प्रश्नोत्तरों का सुन्दर संग्रह किया गया है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वैद्य गम्भीरचन्द जैन को अलीगंज (एटा) के शास्त्र-भण्डार से वर्षों पूर्व मिली थी। इस प्रति के लिपिकार श्री उजागरदास ने इसे वि. सं. 1854 में लिपिबद्ध किया था। उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में यह सबसे प्राचीन प्रति है। अतः इसकी रचना वि. सं. 1850 के लगभग अनुमानित है। इस ग्रन्थ की रचना ग्यारह हजार दो सौ श्लोक प्रमाण है।[1] इसमें अत्यन्त उपयोगी चुने हुए प्रश्नों के युक्तियुक्त संक्षिप्त उत्तर हैं। उदाहरण के लिए एक प्रश्न है[2]—चारों अनुयोगों में किसकी मुख्यता से किस प्रकार कथन है? उत्तर इस प्रकार है—प्रथमानुयोग में अलंकार की मुख्यता है, करणानुयोग में गणित की, चरणानुयोग में नीति (सुभाषित) की तथा द्रव्यानुयोग में तर्क (न्याय) की मुख्यता है। तथा छठे गुणस्थान में मुनि के सर्व कषायों का त्याग कहा सो वह चरणानुयोग की अपेक्षा से कहा है तथा ग्यारहवें आदि गुणस्थानों में कषायों का और हिंसा का त्यागी कहा सो वह करणानुयोग की अपेक्षा से कहा है। करणानुयोग मे तो केवलज्ञान के जानपने की मुख्यता तारतम्य को लिए हुए है और चरणानुयोग मे अपने आचरण की मुख्यता को लिए हुए है। इसी प्रकार अन्य सभी स्थानों में जिस विवक्षा से शास्त्र मे कथन किया हो, उसे उसी विवक्षा से समझे।

इन प्रश्नोत्तरो की विशेषता यह है कि इनमे अनेक आगम ग्रन्थो के स्वाध्याय तत्त्वचर्चा आदि से किसी एक बात या प्रश्न को इतनी अधिक स्पष्टता विशदता और विषय के प्रतिपादन की सारगर्भित सरल शैली में कम से कम शब्दो मे इनको प्रकट किया गया है। सरल-से-सरल विषय के प्रतिपादन में भी नवीनता लक्षित होती है। सभी प्रश्नों के उत्तर न तो अत्यन्त विस्तृत हैं और न अत्यन्त संक्षिप्त। विषय की विशदता के साथ ही भाषा का सहज प्रवाह इनमे चमत्कारोत्पादक है। उदाहरण के लिए[3]—

प्रश्न—मूढ़ कितने प्रकार के होते हैं?

---

1. चरचा संग्रह ग्रन्थ की संख्या करी सुजान।
   एकादश हजार है द्वै सै ऊपर मान॥ चर्चा संग्रह
2. जैनपथ-प्रदर्शक, वर्ष 5, अंक 9, 1 सितम्बर, 1981, पृ. 2 से उद्धृत
3. वही

व्याख्या—मूढ़ तीन प्रकार के होते हैं—1. देवमूढ़, 2. गुरुमूढ़, 3. धर्ममूढ़। और इनमें से प्रत्येक के सात-सात प्रकार हैं—

(1) भावदेवमूढ़—सर्व देव वन्दनीय हैं ऐसे जिनके परिणाम हों, वे भावदेवमूढ़ हैं।

(2) द्रव्यदेवमूढ़—सभी देवों को पूजे, माने सो द्रव्यदेवमूढ़ है।

(3) परोक्षदेवमूढ़—जिनके परिणाम कुदेवताओं को पूजने, मानने, नमस्कार करने के होते हैं।

(4) प्रत्यक्ष देवमूढ़—हरि-हरादिक देवों को पूजे, माने।

(5) लोकदेवमूढ़—चण्डी-मुण्डी-क्षेत्रपाल आदि देवों को पूजे, मनौती बोले, स्त्री-पुत्र-धन-पुत्रादि के निमित्त स्वयं पूजे और लोगों से पुजावे।

(6) क्षेत्रदेवमूढ़—गृह-चैत्यालय, देव अरहन्त साक्षात् अथवा अपने घर में प्रतिष्ठित की पूजा-सुश्रूषा न करे और अपर तीर्थादिक की पूजा-वन्दना को जाय, घर का चैत्यालय अपूज्य रहे।

(7) कालमूढ़—सुकाल की वेला (समय) छोड़ कर पूजा करे, वह कालमूढ़ है। इति देवमूढ़ समाप्त। अब गुरुमूढ़ को कहते हैं—

(1) भावगुरुमूढ़—साक्षात् व्रत धारी, परन्तु मिथ्यादृष्टि हो उसे गुरु माने।

(2) द्रव्यगुरुमूढ़—जो व्रत, सम्यक्त्व से रहित हो, उसे गुरुबुद्धि से गुरु माने।

(3) परोक्षगुरुमूढ़—जो कोई हमारे पूर्वज मानते आये हैं, उन्हें हम क्यों न माने? ऐसा कहे।

(4) प्रत्यक्षगुरुमूढ़—श्वेत-पीत-लाल वस्त्र सहित, जो प्रत्यक्ष धन-संग्रह करे और महाचारित्र से रहित को गुरुबुद्धि से माने।

(5) लोकगुरुमूढ़—लोगों की देखा-देखी जो कुगुरु को माने और लोगों से कहे कि ये औरों से कैसे अच्छे नहीं हैं? औरों से तो अच्छे ही हैं—ऐसे भाव करना।

(6) क्षेत्रगुरुमूढ़—चैत्यालय-देहुरा में विराजे वीतराग, निर्ग्रन्थ गुरु की पूजा-वन्दना न करे, औरान गुरु को पूजे, माने सो क्षेत्रगुरुमूढ़ है।

(7) कालगुरुमूढ़—जो गुरु नियत वेला छांड़ि षडावश्यक-क्रिया, आहार-व्यवहार में वर्ते और उसे जो माने सो कालगुरुमूढ़ है।

अब शास्त्रमूढ़ को कहते हैं—

(1) भावशास्त्रमूढ़—भावशास्त्र बारहवें गुणस्थान में होता है। सो भावशास्त्र कौन? शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया एकत्ववितर्क-अविचार भावशास्त्रमूढ़ कहिये। श्रुत-शास्त्र बहुतेरे पढ़े, परन्तु शुद्धात्मा विषै दृष्टि नाहीं। षष्ठम गुणस्थानादि एकादश पर्यंत सो भावशास्त्रमूढ़ कहिये।

(2) द्रव्यशास्त्रमूढ़—ग्यारह अंग का पाठी मिथ्यादृष्टि; यद्यपि सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट् द्रव्य, पंचास्तिकाय, भेदाभेद, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-द्रव्य, गुण-पर्याय, हेय-उपादेय किसी को भी न जाने सो द्रव्यशास्त्रमूढ़ कहिये।

(3) परोक्षशास्त्रमूढ़—सूक्ष्म अध्यवसाय कैसे हैं-जो तीनों योग ते अगोचर होय, तिनका वेत्ता नाहीं। शुभाशुभ वेत्ता सो परोक्षशास्त्रमूढ़ कहिये।

(4) प्रत्यक्षशास्त्रमूढ़—पूजिज्जे अरिहंतो पालिज्जे हिंसा विवज्जए धम्मो ॥
वंदिज्जे णिग्गंथो संसारे एतियं सारं ॥

ऐसा पढ़े, कहे; प्रतीति न माने, पुरुष कछु नाहीं जाने सो प्रत्यक्षसूत्रमूढ़ है।

(5) लोकमूढ़—वंश के हेतु, धन के हेतु शास्त्र सुने। लोगों से कहे, पढ़े कि हरिवंश सुनने ते वंश होता है; इत्यादि बहुत काज माने सो लोकमूढ़ है।

(6) क्षेत्रमूढ़—जिस क्षेत्र में सप्तधातु, बत्तीस अन्तराय के उपद्रव हों, वहाँ सिद्धान्त-सूत्र पढ़े और स्त्री, नपुंसक, मनुष्यों को सुनावे सो क्षेत्रमूढ़ है।

(7) कालमूढ़—जो सिद्धान्त-सूत्र आदि वेला (समय) माँहि न पढ़े, कालविरुद्ध पढ़े सो कालमूढ़ है।

इस प्रकार देवमूढ़, गुरुमूढ़ और शास्त्रमूढ़ की व्याख्या समाप्त हुई।

"चर्चा-संग्रह" में इस प्रकार की अनेक धार्मिक विषयों की युक्तियुक्त, स्पष्ट व्याख्या की गई है। इन चर्चाओं में अनेक ग्रन्थों का सार गर्भित है। इसलिये पढ़ने पर नवीनता प्रतीत होती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यही है कि किसी एक विषय पर सभी शास्त्रों का सार एक ही स्थान पर मिल जाता है।

श्रावकाचार का रचना-काल—

"ज्ञानानन्दश्रावकाचार" के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक को प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। चारों अनुयोगों पर उनका समान अधिकार प्रतीत होता है। छन्द, अलंकार, व्याकरण आदि का ज्ञान हुए बिना वे इस शास्त्र की रचना नहीं कर सकते थे। ग्रन्थ के प्रारम्भ में तथा अन्य स्थलों पर उन्होंने अपनी पद्य-रचना के निदर्शन प्रस्तुत किए हैं। यथार्थ में उनकी शैली सरल होने पर भी गरिमा युक्त है। उदाहरण के लिए, हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत है—

"सो यह कार्य तो बड़ा है और हम योग्य नहीं, ऐसा हम भी जानते हैं, परन्तु "अर्थी दोषं न पश्यति"। अर्थी पुरुष है वह शुभाशुभ कार्य का विचार नहीं करता; अपना हित ही चाहता है। इसलिए मैं निज स्वरूप-अनुभवन का अत्यन्त लोभी हूँ। इस कारण मुझे और कुछ सूझता नहीं है। मुझे तो एक ज्ञान ही ज्ञान सूझता है। ज्ञान के भोग के बिना और से क्या है? इसलिये मैं अन्य सभी कार्य छोड़कर ज्ञान ही की आराधना करता हूँ, ज्ञान ही की सेवा करता हूँ तथा ज्ञान ही का अर्चन करता हूँ और ज्ञान ही की शरण में रहना चाहता हूँ।"

यह पहले ही कहा जा चुका है कि "इन्द्रध्वजाविधान-महोत्सव पत्रिका" वि. सं. 1821 में लिखी गई थी। यह पत्रिका लेखक की सर्वप्रथम रचना कही जा सकती है। पं. जयचन्द छावड़ा उनके शिष्य थे। जिनका रचना-काल वि. संवत् 1861 से लेकर विक्रम संवत् 1875 तक कहा गया है।[2] श्रावकाचार की हस्तलिखित प्रतियों में सबसे प्राचीन प्रति जैन सिद्धान्त भवन, आरा में उपलब्ध होती है जो विक्रम संवत् 1858 की लिपिबद्ध है।[3] अतः यह स्पष्ट है कि इससे पूर्व इस "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" की रचना हो चुकी थी। विक्रम संवत् 1818 में पण्डितप्रवर टोडरमलजी की "सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका" टीका सम्पूर्ण हुई थी। तब तक ब्र. रायमल्लजी लेखन के क्षेत्र में नहीं आए थे। "श्रावकाचार" में जहाँ वे लिखते हैं—"जीव का ज्ञानानन्द तो असली स्वभाव है", वहाँ हमारे ध्यान में पण्डितप्रवर टोडरमलजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ घूम जाती हैं—

---

1. ज्ञानानन्द-श्रावकाचार, पृ. 29-30
2. डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य-परम्परा, खण्ड 4, पृ. 292
3. मिलापचन्द, रतनलाल कटारिया : जैन निबन्ध रत्नावली, प्रथम संस्करण, पृ. 159

वीतराग हुई ध्यावैं जबै, होय शुद्ध उपयोग स्वभावै ।
रमैं ज्ञानानंद स्वरूप, पावैं सिद्ध पद अमल अनूप ॥

सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका टीका

इसी प्रकार "मोक्षमार्गप्रकाशक" की रचना के उपरान्त ही "श्रावकाचार" की रचना हुई होगी । क्योंकि पण्डितप्रवर टोडरमलजी और ब्र. रायमल्लजी की विचारधारा एक थी । जिन बातों का संकेत "मोक्षमार्गप्रकाशक" में किया गया है, किन्तु प्रकरणवश विस्तार से विवेचन नहीं हो सका, उनका स्पष्टीकरण इस ग्रन्थ में किया गया है । उदाहरण के लिए, "मोक्षमार्गप्रकाशक" में लिखा है—"तथा पूजनादि कार्यों में उपदेश तो यह था कि—"सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ दोषायनालं" बहुत पुण्य समूह में पाप का अंश दोष के अर्थ नहीं है । इस छल द्वारा पूजा-प्रभावनादि कार्यों में—रात्रि में दीपक से व अनन्तकायादिक के संग्रह द्वारा व अयत्नाचार-प्रवृत्ति से हिंसा रूप पाप तो बहुत उत्पन्न करते हैं और स्तुति, भक्ति आदि शुभ परिणामों में नहीं प्रवर्तते व थोड़े प्रवर्तते हैं । सो वहाँ नुकसान बहुत, नफा थोड़ा या कुछ नहीं । ऐसे कार्य करने में तो बुरा ही दिखना होता है । तथा जिन-मन्दिर तो धर्म का ठिकाना है । वहां नाना कुकथा करना, सोना, इत्यादि प्रमाद रूप प्रवर्तते हैं तथा वहाँ बाग-बाड़ी इत्यादि बना कर विषय-कषाय का पोषण करते हैं ।" इसका ही विशदीकरण "श्रावकाचार" में इस प्रकार किया गया है—

"आगे जिन मंदिर में अज्ञानता तथा कषाय से चौरासी आसादन दोष लगते हैं । किन्तु जो विचक्षण हैं और जिनके धर्म बुद्धि है उनके नहीं लगते हैं । उसका स्वरूप कहते हैं—थूकना-खखारना नहीं, हास्य-कुतूहल नहीं करना.... कलह नहीं करना धर्मशास्त्र के सिवाय अन्य कुछ लिखना या बांचना नहीं.... प्रतिमाजी के अंग में केसर आदि नहीं लगाना....रात्रि में पूजन नहीं करना.... जिन मंदिर में जितने भी सावद्य योग वाले कार्य हैं उन सब का त्याग करना । अन्य स्थान में किया हुआ या उपार्जित पाप को उपशान्त करने में जिन मन्दिर कारण है किन्तु जिन मन्दिर में उपार्जित पाप को उपशान्त करने के लिए अन्य कोई समर्थ नहीं है भोगने के पश्चात् ही उससे छूटना होता है । जैसे कोई पुरुष किसी से लड़ता है तो राजा के पास अपना अपराध माफ करा लेता है, किन्तु राजा से ही उसकी लड़ाई हो तो फिर माफ कराने का ठिकाना कौन है उसका फल बंदीखाना ही है । ऐसा समझ कर अपना हित मान कर जिस-तिस प्रकार विनय से रहना । विनय गुण धर्म का मूल है । मूल के बिना धर्म रूपी वृक्ष के स्वर्ग मोक्ष रूपी फल कभी भी नहीं लगते । इसलिये हे भाई ! आलस-प्रमाद छोड़ कर तथा खोटे उपदेश का वमन कर भगवान की आज्ञा के अनुसार प्रवर्तन

करो । अधिक कहने से क्या ? यह तो आगे होने की बात है । जिसमें अपना भला होय, सो क्यों नहीं करना ? देखो, अर्हन्तदेव का उपदेश तो ऐसा है कि इन चौरासी दोषों में से कोई एक भी दोष भी लगे तो महापाप होता है ।[1]" इतना ही नहीं, इसके पहले रसोई के प्रकरण में यह भी कहते हैं —"अपने विषयों के पोषण के लिए धर्म का आश्रय लेकर अष्टाह्निका, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि पर्व के दिनों में उत्तमोत्तम मनमाना अनेक प्रकार का अत्यन्त गरिष्ठ जो अन्य दिनों में खाने को नहीं मिलता, ऐसा भोजन करता है और सुन्दर वस्त्राभूषण पहनता है, शरीर का शृंगार करता है । सावन-भादों में, पर्व के दिनों में विषय-कषायों को छोड़ कर संयम का पालन करना, जिन-पूजन, शास्त्राभ्यास, जागरण करना, दान देना, वैराग्य की वृद्धि करना, संसार का स्वरूप अनित्य जानना, इसका नाम धर्म है । किन्तु विषय-कषाय के पोषण का नाम धर्म कदापि नहीं है । यदि झूठा ही मानो तो अपने को क्या ? उसका फल खोटा ही लगेगा ।[2]"

इस प्रकार अनेक स्थलों पर इस बात को समझाया है । जिन बातों का पण्डितप्रवर टोडरमलजी "मोक्षमार्गप्रकाशक" में विस्तार से वर्णन कर चुके थे, उनका ब्र. रायमल्लजी ने संक्षेप में ही वर्णन किया है । उदाहरण के लिए, सम्यक्त्व के भेद, देव, गुरु, धर्म का अन्यथा स्वरूप, सात तत्त्व आदि का स्वरूप तथा अन्य मतों से जैन मत की तुलना । इसी प्रकार पं. दौलतरामजी ने "जैन-क्रियाकोष मे" जिन बातो का विस्तार से वर्णन किया है, उनका या तो वर्णन नही किया है अथवा अपने शब्दो में संक्षेप मे कहा है । "जैनक्रिया-कोष" मे जिन बातो का संक्षेप में वर्णन किया गया, उनका "ज्ञानानन्दश्रावकाचार" में विस्तार से वर्णन मिलता है । उदाहरण के लिए "जलगालन-विधि" द्रष्टव्य है—

इह तौ जल की क्रिया बताई, अब सुनि जलगालन-विधि भाई ।
रंगे वस्त्र नहिं छानौ नीरा, पहरे वस्त्र न गालो धीरा ।।
नाहिं पातरे कपड़े गालौ, गाढ़े वस्त्र छाणि अघ टालौ ।
रेजा दृढ़ आंगुल छत्तीसा – लंबा, अर चौड़ा चौबीसा ।।
ताको दो पुड़ता करि छानो, यही नातणा की विधि जानो ।
जल छाणत इक बूँदहु धरती मति डारहु भाखे महाव्रती ।।
एक बूँद में अगणित प्राणी, इह आज्ञा भाखै जिनवाणी ।
गलना चिउंटी धरि मति डारो, जीवदया को जतन उचारो ।।
छाणे पाणि बहुते भाई, जल सकणा धोवैं चितलाई ।
जीवाणी को जतन करौ तुम, सावधान हूँ विनवे क्या हम ।।

1. ज्ञानानन्द श्रावकाचार, पृ. 110-115
2. वही, पृ. 96

राखहु जल की किरिया शुद्धा, तब श्रावक व्रत लही प्रबुद्धा ॥

यहाँ पर यह संकेत किया गया है कि जलगालन की क्रिया शुद्ध होनी चाहिए। शुद्ध क्रिया कैसी है? इसका वर्णन केवल दो पंक्तियों में किया गया है—

ऊपर सूं डारौ मति भाई, दया धर्म धारौ अधिकाई ।
भंवरकली को डोल मंगावो, ऊपर नीचे डोर लगावो ॥
ई गुण डोल जतन करि वीरा, जीवाणी पधरावो धीरा ।
छाण्यां जल को इह निरधारा, थावरकाय कहें गणधारा ॥
(जैन-क्रिया कोष, 74, 75)

ब्र. पं. रायमल्लजी जल की शुद्धता के विषय में लिखते हैं—

"तालाब, कुण्ड, अल्प पानी वाली बहती हुई नदी, अकड कुँआ, बावड़ी का पानी तो छाना हुआ होने पर भी अयोग्य है। इस पानी में त्रस जीवों की राशि इन्द्रियगोचर होती है। इसलिए जिस कुए का पानी चरस से या पनघट से छंटता होय, उस जल में जीव दृष्टिगोचर नहीं होते। अत: उस जल को आप स्वयं कुए के ऊपर जा कर या आपके विश्वासपात्र आदमी को भेज कर दुहरे, सपाट, गुंडी या गुडी से रहित गलने में पानी औंधा कर धीरे-धीरे छानें। पानी गलने (छन्ने) मे औंधा करते ही तत्काल छनेगा नहीं, इसलिए थोड़ा ठहर कर ऐसे गलने से छानें, जिससे अनुक्रम से पानी छने। उस गलने (छन्ने) का प्रमाण यह है कि जिस बर्तन मे छानना हो, उससे तिगुना लम्बा-चौड़ा दुहरा करने पर समचौकोर हो—ऐसा जानना अथवा कुँआ से बिना छना जल भर कर अपने डेरे पर ले जाय और वहाँ सावधानी से भली-भाँति छानें। छानते समय अनछने पानी की बूँद भी आँगन में नहीं गिरे अथवा अनछने पानी की बूँद अंश मात्र भी छने पानी मे नहीं आवे, ऐसे पानी छानिये। पहले अनछने पानी के बर्तन में अनछने पानी के हाथ को धो लीजिये, फिर छने पानी के बर्तन को पकड़िये। सो उसे तीन बार धोइये, पश्चात् उसके मुख पर गलना लगाइये। बांयें हाथ में डोल, भगौना या तमेला पकड़ कर रखें और जीमने (सीधे) हाथ से पानी भर कर डोल के ऊपर लिया, लिया बर्तन के ऊपर उँडेल दें। इस प्रकार अनुक्रम से थोड़ा-थोड़ा छाने और घना छाने, तो बर्तन उठा कर गलने के ऊपर धीरे-धीरे उंडेले। इसके बाद अनछने पानी के हाथ को धोकर अगल-बगल में सूखे गलने को पकड़ कर उलटा कीजिये। पश्चात् छने हुए पानी से बचे हुए अनछने पानी में जीवानी कीजिये। जिस बर्तन में जीवानी करें, उसे

बीच में जीवानी की तरफ से तथा चारों तरफ से मलना को नहीं पकड़ें। पीछे चार पहर दिन के आये हुए जल को भी उसी कुए में पहुँचा दे। किसी भी लोटे में पाँच-सात अंगुल की लकड़ी बाँध कर भीतर आड़ी लगा देने से वह लोटा सीधा चला जाता है। उसकी डोरी में उल्टा फंदा बाँध कर कुए के पेंदे तक लोटा पहुँचा दें, तभी ऊपर से डोरी हिला देने से उस लोटे में से लकड़ी निकल जाती है और वह औंधा हो जाता है, तब ऊपर से लोटा खींच लेना चाहिए—इस प्रकार जीवानी पहुँचाना। यदि इस प्रकार जीवानी न पहुँचा सको, तो प्रभात काल में सारा पानी छान कर जीवानी एकत्र कर पानी भरने के बर्तन में डाल दीजिये और पनिहारिन को सौंप दीजिये। पनिहारिन को महीने के अतिरिक्त टका-दो टका और बढ़ा दीजिये तथा उससे कहिये कि यह जीवाणी सीधी कुवा में उरासना, रास्ते में एवं ऊपर से कुआ में नहीं डालना। यदि कदाचित् डाल दोगी, तो पानी भरने से हटा दूँगा। इतना कहने के पश्चात् भी दो-चार बार गुप्त रीति से उसके पीछे गली तक जाकर ठीक से देखिये कि जीवानी सीधी उरासी जाती है या नहीं। यदि कहे अनुसार ठीक से उरासी गई हो, तो विशेष रूप बड़ाई कीजिये। टका-दो-टका की मम खाइये, पाप का भय दिखाइये—इस प्रकार जीवानी पहुँचाना। इसको छाना हुआ पानी पिया कहते है। यदि ऊपर कहे अनुसार जीवानी न पहुँचे, तो उसे अनछना पानी पिया कहिये या शूद्र सादृश्य कहिये। जिनधर्म मे तो दया ही का नाम क्रिया है। दया बिना धर्म नाम नही पाता है। जिसके घट मे दया है, वही पुरुष भव-समुद्र को पार करता है। ऐसा पानी की शुद्धता का स्वरूप जानना।" (पृ. 90-92)

अन्तिम दो पंक्तियाँ बहुत ही मार्मिक हैं। वास्तव में जीवानी डालने की जैसी शुद्धता पूर्ण क्रिया का वर्णन ब्र. पं. रायमल्लजी ने किया है, वैसा अन्य किसी शास्त्र में पढ़ने को नही मिला। उपर्युक्त तथ्यो पर ध्यान देने से यही निश्चय होता है कि "ज्ञानानन्दश्रावकाचार" की रचना वि. स. 1824 से लेकर 1848 के मध्य किसी समय हुई थी।

ज्ञानानन्द का अभिप्राय—

इस ग्रन्थ का पूरा नाम है—ज्ञानानन्दनिर्भरनिजरस श्रावकाचार। स्वरस का ही दूसरा नाम ज्ञानानन्द है। स्व माने अपना और अपना माने आत्मा का। आत्मा का रस ज्ञानानन्द या शान्तिक है। उसमें किसी प्रकार की आकुलता नहीं है, वह निराकुल सुख है। उसकी प्राप्ति स्व-संवेदनगम्य ज्ञानानुभव से ही हो सकती है; अन्य कोई उपाय नहीं है। ज्ञान का अनुभव कहिये या निज

स्वरूप की अनुभूति कहिये एक ही बात है। निज स्वरूप का ध्यान करने से विशेष आनन्द होता है। ज्ञानानन्द से अभिप्राय अतीन्द्रिय आनन्द से है। शुद्धोपयोगी मुनि का उदाहरण देते हुए ब्र. पं. रायमल्लजी कहते हैं—"जैसे ग्रीष्मकाल में भूख-प्यास से पीड़ित कोई पुरुष शीतल जल में घुले हुए मिश्री के डेले को अत्यन्त रुचि के साथ गटक-गटक कर पीता है और तृप्त होता है, वैसे ही शुद्धोपयोगी महामुनि स्वरूपाचरण होने से अत्यन्त तृप्त हैं और बार-बार उसी रस को चाहते हैं। यदि किसी समय में पूर्व वासना के निमित्त से शुभ उपयोग मे लग जाते हैं तो ऐसा जानते हैं कि मेरे ऊपर आफत आई है हलाहल जहर के समान यह आकुलता मुझसे कैसे भोगी जायेगी ? अभी हमारा आनन्द रस निकल गया है। फिर, हमे ज्ञानानन्द रस की प्राप्ति होगी या नहीं ? हाय ! हाय ! अब मैं क्या करूँ ? यह मेरा स्वभाव है। मेरा स्वभाव तो एक निराकुल, बाधा रहित, अतीन्द्रिय अनुपम स्वरस पीने का है सो मुझे प्राप्त होवे। कैसे प्राप्त हो ? जैसे समुद्र में मग्न हुआ मच्छ बाहर निकलना नहीं चाहता है और बाहर निकलने में असमर्थ होता है, वैसे ही मैं ज्ञान-समुद्र मे डूब कर फिर निकलना नहीं चाहता हूँ। एक ज्ञान-रस को ही पिया करूँ। आत्मिक रस के बिना अन्य किसी में रस नहीं है। सारे जग की सामग्री चेतन रस के बिना उसी प्रकार फीकी है; जैसे नमक के बिना अलोनी रोटी फीकी होती है।

(पृ. 20-21)

ग्रन्थ-निर्माण का प्रयोजन—

ग्रन्थकार के लिए रचना तो निमित्त मात्र है। यथार्थ में वे अपने से जुड़े हैं, अपने चित्त को एकाग्र कर अपने उपयोग को अपने मे लगाने का पुरुषार्थ किया है। परमात्मा का स्मरण करते हुए वे अपनी पहचान करते हैं। परमात्म देव कैसे हैं ? जिनके स्वभाव से ज्ञान-अमृत झर रहा है और स्व-संवेदन से जिस में आनन्द-रस की धारा उछल रही है। वह रस-धार उछल कर अपने स्वभाव में ऐसी मग्न हो जाती है; जैसे शक्कर की डली जल में गल जाती है। इसलिए रचनाकार ज्ञानानन्द की प्राप्ति के लिए ही इस श्रावकाचार की रचना करता है। उनके ही शब्दों में—"ज्ञानानंद की प्राप्ति के अर्थ और प्रयोजन नाहीं। आगै करता (कर्त्ता) आपणा स्वरूप को प्रगट करे है वा आपणा अभिप्राय जणावै है। सो कैसा हूं मैं ? ज्ञानज्योति करि प्रगट भया हूं, तातै ज्ञान ही नै चाहूं हूं। ज्ञान छै सो म्हारा निज स्वरूप छै। सोई ज्ञान-अनुभव-करि मेरे ज्ञान ही की प्राप्ति हो हु। मैं तो एक चैतन्य स्वभाव ता करि उत्पन्न भया, ऐसा जो शांतिक रस ताकै पीवा कूं उद्यम किया है। ग्रन्थ बनावा का अभिप्राय नाहीं। ग्रन्थ तो बडा-बडा पंडिता नै घना ही बनाया है, मेरी बुद्धि काई ? पुन उन विषै बुद्धि की मंदता करि अर्थ विशेष भासता नाहीं अर्थ विशेष

भास्या बिना चित्त एकाग्र होता नाहीं । अर चित्त की एकाग्रता । बिना कषाय गलै नाही । अर कषाय गल्या बिना आत्मीक रस उपजै नाहीं आत्मीक रस उपज्या बिना निराकुलित सुख ताको भोग कैसे होय ?' तातैं ग्रन्थ कौमिस चित्त एकाग्र करिवा का उद्यम किया ।" इस प्रकार मुख्य प्रयोजन निज आत्मा का अनुभव करना ही है । यथार्थ मे स्व-स्वरूप के सम्मुख व्यक्ति को ज्ञान के सिवाय कुछ नहीं सूझता है अतः आत्म-विनय के साथ ही ब्रह्मचारी रायमलजी ने वास्तविकता को ही प्रकट किया है । जैसे भोगी को भोग के सिवाय खाना-पीना आदि कुछ अच्छा नही लगता वैसे ही ज्ञान की ओर झुकने वाले को ज्ञान के भोग के बिना सब फीका लगता है ।

विशेषताएँ—

लगभग एक सौ से अधिक श्रावकाचार उपलब्ध होते है । किन्तु इन सभी श्रावकाचारो से इसमे कई बाते विशेष मिलती है । इसमें कोई सन्देह नही है कि जैसा "ज्ञानानन्द श्रावकाचार" इसका नाम है, वैसे ही मधुर भावो से भरपूर है । इसकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) प्राय सभी श्रावकाचार पद्य मे रचे गये मिलते है, किन्तु यह गद्य मे रची गई प्रथम रचना है । सम्पूर्ण ग्रन्थ गद्य मे है ।

(2) पानी छानने, रसोई आदि बनाने से लेकर समाधिमरण पर्यंत तक की सभी क्रियाओं का इसमे विधिवत् वर्णन है । श्रावकाचार की सभी मुख्य बाते इस मे पढने को मिलती हैं ।

(3) द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का इतना सुन्दर सामंजस्य इसमे है कि "मोक्षमार्गप्रकाशक" के सिवाय अन्य ग्रन्थो मे उपलब्ध नही होता ।

(4) पण्डितप्रवर टोडरमलजी, प. दौलतरामजी कासलीवाल आदि ने जिस विषय का प्रतिपादन किया है, उसके समर्थन मे स्थान-स्थान पर आचार्यों के उद्धरण दिए है । परन्तु ब्र. रायमलजी ने एक भी श्लोक या गाथा उद्धृत नही की । केवल नाथूराम कृत "विनय पाठ" की दो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं ।

(5) जलगालन-विधि के अन्तर्गत पानी छान कर जीवानी डालने की जैसी सुन्दर, स्पष्ट, विशद विधि इस श्रावकाचार में बताई गई है, वैसी अन्य शास्त्र मे विस्तार से पढने मे नही आई ।

(6) भाषा और भावो मे बहुत ही सरलता है ।

(7) निश्चय और व्यवहार दोनों का सुन्दर समन्वय इसमें है।

(8) जिन-मन्दिर के चौरासी आसादन दोषों का वर्णन इसमें विशेष रूप से है।

(9) जिस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने आगम को सामने रख कर सुप्रसिद्ध अध्यात्म ग्रन्थ "समयसार" की रचना की थी, वैसे ही अध्यात्म को सामने रख कर ब्र रायमलजी ने "श्रावकाचार" की रचना की। वास्तव में चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग का सुमेल है।

(10) किसी एक ग्रन्थ के आधार पर नही, किन्तु उपलब्ध सभी श्रावकाचारों का सार लेकर इस ग्रन्थ की रचना की गई।

(11) सामान्य जन भी समझ सकें, इस बात को ध्यान मे रख कर स्थान-स्थान पर दृष्टात दिये गए है।

(12) प्रतिदिन की सामान्य क्रियाओं की भी विधि और उनके गूढ़ अर्थ को स्पष्ट किया गया है।

(13) हेतु, न्याय, दृष्टान्त, आगम, प्रमाण आदि के उपयोग के साथ ही शास्त्रीयता की लीक से हटकर सरल, सुबोध शैली मे इस श्रावकाचार की रचना की गई।

(14) विषय को स्पष्ट करने के लिए अनेक स्थानो पर प्रश्न प्रस्तुत कर उनका समाधान किया गया है।

उक्त विशेषताओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ग्रन्थ की कुछ विशेषताएँ विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है।

युग-प्रवर्तक— इसमें कोई सन्देह नही है कि पण्डितप्रवर टोडरमलजी, पं. दौलतरामजी कासलीवाल, पं. बखतराम साह और पं. जयचन्दजी छाबड़ा आदि के सहयोग से उस युग में ब्र. प. रायमलजी ने आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की थी। यथार्थ में सामाजिक क्रान्ति का सूत्रपात सोलहवीं शताब्दी मे ही हो गया था। तारण-पंथ का जन्म इसी क्रान्ति का महत्वपूर्ण चरण था। वस्तुतः आचार्य कुन्दकुन्द से लेकर आचार्य अमृतचन्द्र तक और आचार्य अमितगति से लेकर पं. बनारसीदास तक एवं पं. वंशीधर से लेकर पं. भागचन्द तक लगभग दो सहस्र वर्षों तक अनवरत संक्रान्त होने वाली परम्परा विद्यमान रही है। इस

परम्परा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति तथा समाज में व्याप्त होने वाले शिथिलाचार को दूर करना तथा आत्म-कल्याण करना रहा है। शिथिलाचार की प्रवृत्ति आचार्य कुन्दकुन्द के युग में प्रारम्भ हो चुकी थी। इसलिये गृहस्थ और मुनि के भेद से दो प्रकार का संयमचारित्र का विधान "चारित्रपाहुड" में किया और "भावपाहुड" मे स्पष्ट किया कि चौरासी लाख योनियों में से एक भी ऐसा प्रदेश बाकी नहीं बचा है जहाँ भावरहित द्रव्यलिंगी साधु ने भव-भ्रमण न किया हो। इसलिये बाह्य वेष धारण करने मात्र से कोई निर्ग्रन्थ साधु नहीं हो जाता; जिनलिंगी साधु भाव से होता है। इसलिये भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?[1] आगम के प्रमाण से इसका समर्थन करते हुए "द्वादशानुप्रेक्षा" में कहते हैं—"शुभ-अशुभ भावों की क्रिया परम्परा से भी मोक्ष का कारण नहीं है। आस्रव मात्र संसार-भ्रमण का कारण है, इसलिये निन्दनीय है।[2] "इतना ही नही, धर्मध्यान के होने में शुद्धोपयोग को कारण कहते है। "शुद्धोपयोग से जीव के धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान होते है। इसलिये ध्यान संवर का कारण है—ऐसा निरन्तर चिन्तवन करना चाहिए।"[3] "प्रवचनसार" मे भी इसके संकेत मिलते हैं, इसलिये आ. कुन्दकुन्द ने सहजलिंग से सच्चे सुख की प्राप्ति बताई है। इतना ही नही, उनका कथन अत्यन्त स्पष्ट है कि इस लोक में जिसकी आगमपूर्वक दृष्टि (सम्यग्दर्शन) नही है; भले ही उसने मुनि वेष धारण किया हो, किन्तु उसके संयम नही है— ऐसा सूत्र कहता है। वास्तव में वह असंयत है, वह श्रमण कैसे हो सकता है? इसका खुलासा करते हुए आचार्य अमृतचन्द्र कहते हैं— प्रथम तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण वाली दृष्टि से शून्य होने के कारण उन सभी के

---

1. *सो णत्थि तं पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि ।*
भावविरओ वि सवणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥
भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण ।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण ॥
भावपाहुड, गा. 47-48

2. *पारंपज्जाएण दु आसवकिरियाए णत्थि णिव्वाणं ।*
संसारगमणकारणमिदि णिंद आसवो जाण ॥
द्वादशानुप्रेक्षा, गा. 59

3. *सुद्धुवजोगेण पुणो धम्मं सुक्कं च होदि जीवस्स ।*
तम्हा संवरहेदू झाणो त्ति विचिंतए णिच्चं ॥
वही, गा. 64

संयम सिद्ध नहीं होता। क्योंकि भेद-विज्ञान न होने से तथा कषायों के साथ एकत्व का अध्यवसाय होने से विषयों की अभिलाषा का निरोध नहीं हो पाता है। अतः परिणामतः छह जीव-निकाय के घाती होकर सब ओर से प्रवृत्ति करते हैं, इसलिये निवृत्ति का अभाव है। दूसरे, उनके परमात्म-ज्ञान का अभाव होने से सम्पूर्ण ज्ञेयों को क्रमशः जानने वाली स्वच्छन्द ज्ञप्ति होने से ज्ञान रूप आत्मतत्त्व में एकाग्रता की प्रवृत्ति का अभाव है। इस प्रकार उनके संयम नहीं होने से मोक्षमार्ग भी सिद्ध नहीं होता।[1] आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने दर्शन की शुद्धता, ज्ञान की शुद्धता और प्रवृत्ति की शुद्धता पर विशेष बल दिया और तीनों की शुद्धता का विश्लेषण कर अध्यात्म और आगम की अपेक्षा उनका विशद वर्णन किया। यही कारण है कि उनको मूल आम्नाय या शुद्ध आम्नाय का कहा गया है। उनके संघ को मूलसंघ कहा गया है। मूल संघ में अन्य संघों से प्रथम भेद पंचामृताभिषेक का अभाव देखा गया है। इसका प्रमाण यह है कि मूलसंघ के आचार्यों ने पंचामृताभिषेक का वर्णन नहीं किया। पूजा-पाठ का प्रसंग होने पर भी आचार्य जिनसेन ने पंचामृताभिषेक करने का किसी भी स्थल पर उल्लेख नहीं किया।[2] इसी भेद के कारण कालान्तर मे केशर-पुष्पादि से अर्चन-चर्चन आदि अनेक भेद प्रचलित हो गये। पं. दीपचन्दजी वर्णी के शब्दों में "तेरापंथी खड़े होकर विनय से पूजा करते है, पानी से ही प्रतिमा का प्रक्षाल करते हैं तथा प्रतिमा के किसी भी अंग पर कोई गंध, लेप या पुष्पादि नहीं चढ़ाते हैं; निर्ग्रन्थ गुरुओं को ही गुरु मानते है।" जो यथाजात निर्ग्रन्थ, सर्वज्ञ, वीतराग देव-गुरु-धर्म को अनादि काल से मानते चले आ रहे हैं वे शुद्ध आम्नाय वाले है, परवर्ती काल में उनको ही तेरापंथी कहा गया। "जिन प्रतिमा जिन सारिखी" मानने वाले तेरापंथी हैं, यह संकेत पं. बनारसीदास लगभग चार सौ वर्ष पूर्व कर चुके थे। पन्थ का सम्बन्ध संख्यावाचक शब्द से जोड़ कर मन-माने अर्थ करना उचित नहीं है। इसी प्रकार बीस पन्थ को "विषम पन्थ" कहना और तेरापंथ को "सम पन्थ" कहना उचित प्रतीत नहीं होता।[3] ब्र. रायमलजी ने स्पष्ट रूप से लिखा है—"हे

---

1. *आगमपुव्वा दिट्ठी ण भवदि जस्सेह संजमो तस्स ।*
   णत्थीदि भणदि सुत्तं असंजदो होदि किध समणो ॥
   प्रवचनसार, गा. 236

   —*तत्त्वप्रदीपिका एवं तात्पर्यवृत्ति टीका*

2. द्रष्टव्य है, *जैन निबन्ध-रत्नावली*, पृ. 393-434

3. वही, पृ. 344

भगवान् ! मैं तो आपके वचनों के अनुसार चलता हूं, इसलिये तेरा पन्थी हूं। आपके सिवाय अन्य कुदेवादि का हम सेवन नहीं करते हैं।...तेरह प्रकार के चारित्र के धारक निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु को ही मानते हैं, अन्य परिग्रही को नहीं मानते हैं, इसलिये गुरु की अपेक्षा भी तेरापंथी सम्भव है।...सो तेरा पन्थ तो अनादिनिधन, जिनभाषित शास्त्र के अनुसार प्रचलित रहा है। और जितने भी कुमत प्रचलित हैं वे ऋषभनाथ तीर्थंकर की आदि से लेकर आज तक तेरापन्थी की पंक्ति से निकले हुए हैं और अन्य मत में मिल गए हैं; जैसे दूध बिल्कुल शुद्ध था, किन्तु मदिरा के पात्र में जा पड़ा सो ग्रहण करने योग्य नहीं रहा। "यथार्थ में शुद्ध आम्नाय होने के लिए शुद्ध पन्थ अनादि से प्रचलित है, जिसमें तत्त्वज्ञान की प्रधानता है और जो बिना परीक्षा किए सुगुरु, सुदेव, सुधर्म तथा जिनागम को नहीं मानता[1]।

यथार्थ में शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है, भगवान है। वह स्वभाव से वीतराग है। अतः वीतराग देव, वीतराग निर्ग्रन्थ गुरु, वीतराग धर्म और वीतरागता की प्रतिपादक जिनवाणी को मानने वाला तेरापन्थी है अर्थात् जिनदेव के मार्ग का पथिक है। श्री जोधराज गोदीका ने ठीक ही कहा है—

कहे जोध अहो जिन ! तेरापन्थ तेरा है।

शुद्ध आत्मा वीतराग परमात्मा को मानने वाला शुद्ध आम्नाय या मूल आम्नाय का है जिसे परवर्ती काल में तेरापंथी कहा गया। वास्तव में आचार्य कुन्दकुन्द मूल आम्नाय में किसी प्रकार के शिथिलाचार का पोषण नहीं करते। उन्होंने अपने ग्रन्थों में दिगम्बर मुनियों के शिथिलाचार का स्थान-स्थान पर प्रबल शब्दों में विरोध कर यथार्थ प्रवृत्ति का वर्णन किया। इसमें कोई सन्देह

---

1. कविवर माणिकलाल : तेरापंथदीपिका छन्द 1

तेरापंथ सम्यक् दर्शवर ज्ञान चरण,
यही मोक्ष हेतु यही परम सुखकारी है।
याही के रमैया जगमाहि सूरि उवझाय,
साधु शिव साधि भवविपति विदारी है॥
याही तें समयसार होत भ्रमतम निवार
भनि भवि जीव जिन याकी रुचि धारी है।
याही पंथ रूप अर्हन्त, सिद्ध चिद्रूप,
पूरण स्वरूप तिन्हें वन्दना हमारी है॥1॥

नहीं है कि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बर साधु में रंच मात्र भी शिथिलता को स्वीकार नहीं करते। नव स्थापित श्वेताम्बर संघ के साधुओं में जो विकृतियाँ आई थीं, उनसे दिगम्बर साधु को दूर रखने का उस युग में बहुत प्रयत्न किया गया था। विकृत आचरण करने वाले को "नष्टश्रमण" नाम से अभिहित किया गया है।[1] इसी प्रकार "मूल" का अर्थ "प्रधान" या "मूलसंघ" किया गया है।[2] अतः मूलसंघ की परम्परा का अनुगमन करने वाले को शुद्ध आम्नायी या तेरापंथी कहना उचित है। मूल आम्नाय की यह विशेषता है कि बिना मूल गुण के न तो कोई जैन हो सकता है, न कोई श्रावक हो सकता है और न कोई साधु हो सकता है। सभी की कसौटी मूल गुण है। जैन के आठ मूल गुण हैं, श्रावक के बारह हैं और साधु के अट्ठाईस मूल गुण हैं, उपाध्याय के पच्चीस हैं और आचार्य के छत्तीस मूल गुण हैं। मूल गुणो का पालन करने वाला ही व्यवहार से मूलाचार का पालक कहा जाता है। मूलभूत गुण को मूल गुण कहा जाता है। "मूलाचार" मे सर्वप्रथम मूलगुण-अधिकार का वर्णन किया गया है।[3] मूल जड़ को भी कहते हैं। मूल के बिना शाखा व वृक्ष कैसे हो सकता है? इससे स्पष्ट है कि मूल आम्नाय ही जिन-मार्ग की वास्तविक परम्परा है। तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के पश्चात् आचार्य अर्हद्बली पर्यन्त मूलसंघ अविच्छिन्न रूप से प्रचलित रहा। तदनन्तर वह अनेक भेदो मे विभक्त हो गया। किन्तु सभी दिगम्बर संघों का मूल मूलसंघ ही था। धीरे-धीरे कई संघों में शिथिलाचार बढ़ता गया।[4] तेरापंथ का इतिहास ही यह रहा है कि यह सदा शिथिलाचार का विरोध करता रहा और आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का प्रबलता से प्रतिपादन करता रहा। आज भी उसकी यही मुद्रा तथा छवि है।

यद्यपि दिगम्बर-परम्परा में विभिन्न युग-युगों मे अनेक संघ-भेद प्रचलित हुए, किन्तु उनमे दो ही प्रमुख रहे है - मूलसंघ और काष्ठासंघ। सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्र शास्त्री के शब्दों मे "श्रुतकेवली भद्रबाहु के काल में श्रीसंघ के दो भागों मे विभक्त हो जाने के बाद ही यह नाम प्रचलन में आया है। इससे सिद्ध

---

1 आचार्य वट्टकेर कृत मूलाचार, सम्पादकीय, पृ. 8, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 1984

2 वही, पृ. 9

3. मूलगुणेसु विसुद्धे वंदित्ता सव्वसंजदे सिरसा।
इहपरलोगहिदत्थे मूलगुणे कित्तइस्सामि॥ मूलाचार गा. 1

4. द्रष्टव्य है—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भा. 1 पृ. 340

है कि पूरे श्रीसंघ में इसके पहले जो आम्नाय प्रचलित थी उसे ही उत्तर काल में "मूलसंघ" इस नाम से अभिहित किया जाने लगा। शिलापट्ट और मूर्ति-लेख आदि में इस नाम का कब से उल्लेख किया जाने लगा, यह कहना तो थोड़ा कठिन है। किन्तु हमारे पास जो मूर्तिलेख आदि का संकलन शेष बचा है उसमें एक ऐसा भी लेख है जिससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि 7 वीं शताब्दी के पूर्व ही मूर्तिलेखों आदि में "मूलसंघ" का उल्लेख किया जाने लगा था।[1] दक्षिण भारत से प्राप्त ताम्रपत्रों तथा शिलालेखों में सातवीं शताब्दी से बहुत पहले "मूलसंघ" का उल्लेख होने लगा था। इसमें सन्देह नहीं है कि तीर्थंकर महावीर की अविच्छिन्न संघ-परम्परा विक्रम की प्रथम शताब्दी के लगभग तक प्रचलित रही पहली-दूसरी शती में शिथिलाचार उत्पन्न होने पर शुद्धाम्नाय तथा मूलसंघ जैसे नाम प्रचलित हुए। आचार्य कुन्दकुन्द के "अष्टपाहुड" तथा "प्रवचनसार" आदि परमागम ग्रन्थों में शिथिलाचार के विरोध में स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ते हैं। लगभग दो सौ-ढाई सौ वर्षों में "मूलसंघ" शब्द परम्परा विशेष के लिए रूढ़ हो गया था। अतः पाँचवीं शताब्दी और उससे पूर्व ही निरन्तर इसका उल्लेख किया जाता रहा। दक्षिण भारत में द्वितीय शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक गंगवंशीय राजाओं ने जिन-शासन की बहुत उन्नति की। गंगवंश के राजा कोंगणि वर्मा के नोण के मंगल दानपत्र में उल्लेख मिलता है कि उसने अपने राज्य के प्रथम वर्ष में अपने परम गुरु अर्हत् विजयकीर्ति के उपदेश से मूलसंघ के चन्द्रनन्दि आदि द्वारा प्रतिष्ठापित उरणूर जिनालय को बाहरी चुँगी का एक चौथाई कार्षापण दिया। श्री लुईस राइस ने इस ताम्रपत्र का समय 425 ई. निश्चित किया है।[2]" शक सं. 347 के कोंगणि वर्मा के 'नोण मंगल" दान-पत्र के अतिरिक्त पं. परमानन्द शास्त्री ने आल्तम (कोल्हापुर) मे मिले शक सं. 411 (वि. सं. 516) के दान-पत्र का उल्लेख किया है जिसमे मूलसंघ काकोपल आम्नाय के सिंहनन्दि मुनि को अलक्तक नगर के जैन मन्दिर के लिए कुछ ग्राम दान मे दिये गये हैं।[3]

तीर्थंकर महावीर के शासन-संघ का उल्लेख निर्ग्रन्थ श्रमण के नाम से

---

1 *सिद्धान्ताचार्य पण्डित फूलचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन-ग्रन्थ, पृ. 555 से उद्धृत*

2. *डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री : भारतीय संस्कृति के विकास में जैन वाङ्मय का अवदान, द्वितीय खण्ड, पृ. 109 से उद्धृत।*
तथा – जैन शिलालेख संग्रह, भा. 2, पृ. 60-61

3. *पं. परमानन्द शास्त्री : जैनधर्म का प्राचीन इतिहास, द्वितीय भाग, पृ. 55*

मिलता है। पं. परमानन्द शास्त्री की यह मान्यता है कि भगवान महावीर का निर्ग्रन्थ महाश्रमण संघ ही बाद में मूलसंघ के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ। इसी महाश्रमण का दूसरा भेद श्वेताम्बर महाश्रमण संघ के नाम से ख्यात हुआ।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि भगवान महावीर का श्रमण संघ मूल संघ ही था। आचार्य अर्हद्बली ने सिंह, नन्दी, सेन और देव संघ आदि जिन संघों की स्थापना की थी, वे वास्तव में मूलसंघ के ही अन्तर्गत थे। भट्टारक इन्द्रनन्दि ने "नीतिसार" में आचार्य अर्हद्बली द्वारा संघ-निर्माण का उल्लेख किया है।[2] तीर्थंकर महावीर के निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य का जन्म हुआ। विक्रमादित्य के दो वर्ष पूर्व सुभद्राचार्य और उनके चार वर्ष पश्चात् भद्रबाहु स्वामी पट्ट पर बैठे। भद्रबाहु स्वामी के शिष्य गुप्तिगुप्त हुए। उनके तीन नाम थे—गुप्तिगुप्त, अर्हद्बली और विशाखाचार्य। उन्होंने चार संघों की स्थापना की थी।[3] "नीतिसार" के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सभी संघों में आदि मूलसंघ था। क्योंकि कहा गया है—पहले मूलसंघ में श्वेतपट्ट गच्छ हुआ, पीछे काष्ठासंघ हुआ। तदनन्तर यापनीय संघ हुआ। उसी मूल संघ में सेनसंघ, नन्दीसंघ, सिंहसंघ और देवसंघ हुआ।[4] अतः स्पष्ट है कि मूलसंघ सभी संघों का संस्थापक है और इसीलिये उसका नाम मूल या आदि संघ है। इसे ही "शुद्धाम्नाय" कहा गया है।

यथार्थ में द्रव्य, गुण पर्याय की शुद्धता के साथ चारों अनुयोगों की तथा सर्वनयों की कथंचित् सत्यता को स्वीकार करने वाला शुद्धाम्नाय ही है। वस्तु के सहज स्वभाव किंवा सत्यता का, अनुयोगों के अभिप्राय का, नयों की विवक्षाओं का, साधना विषयक क्रियाओं के प्रयोजन का पक्षपात रहित स्वीकार करना शुद्धाम्नाय का मूलभूत प्रयोजन है। इस मूल पद्धति या "शुद्धाम्नाय" का प्रयोग तीन अर्थों में रूढ़ है—

---

1. *पं परमानन्द शास्त्री : जैनधर्म का प्राचीन इतिहास भाग 2, पृ. 55 से उद्धृत*
2. *नीतिसार, श्लो. 6-7, तत्त्वानुशासनादि संग्रह, पृ. 58*
3. *सरस्वतीगच्छ की प्राकृत पट्टावली के लेख के अनुसार*
4. *पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनु सितपटः काष्ठसंघस्ततो हि*
   तावाभूद्भाविगच्छा. पुनरजनि ततो यापनीयसंघ एकः ॥
   तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेन-नन्दी च संघौ
   स्यातां सिंहाख्यसंघोऽभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥

(1) सच्चे (परमार्थस्वरूप) देव, गुरु, धर्म, जिनवाणी का अनुसरण करने वाली पद्धति।

(2) भूमिका के अनुसार यथासम्भव सावद्य रहित (निर्दोष) प्रवृत्ति करने वाली।

(3) शुद्धनय के विषयभूत शुद्धात्मा का अनुभव करने वाली। वस्तुतः दृष्टि में द्रव्यानुयोग, साधना में चरणानुयोग, परिणाम में करणानुयोग, कथन में प्रथमानुयोग का प्रतिफलित होना शुद्धाम्नाय का मूल है।

श्रावक तथा साधु ही नहीं, सद्गृहस्थ भी शुद्धाम्नाय के धारक देखे जाते हैं। जिनके जीवन में मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य की मुख्यता है और जो परिग्रह तथा राग में धर्म मानते हैं, वे इस आम्नाय के विपरीत हैं। श्रद्धान, परिणाम की निर्मलता तथा प्रवृत्ति की शुद्धता वीतरागता से ही जिनागम में कही गई है। इसलिये वीतरागता का श्रद्धान, ज्ञान एवं आचरण ही उपादेय है। जिस प्रकार द्रव्य के बिना परिणाम नहीं है और परिणाम के बिना कोई द्रव्य नहीं है; फिर भी द्रव्य पलटता नहीं है, अपने में ध्रुव सदा काल बना रहता है, उसी प्रकार शुद्धाम्नाय आज भी अपने मूल रूप में अखण्ड, एक, अप्रभावी अक्षुण्ण विद्यमान है।

जिनशासन में निर्लेप मूर्ति ही पूज्य है। इसलिये तेरापन्थी जिनमूर्ति के चरणों पर केशर नहीं लगाते, किसी प्रकार का लेप नहीं चढ़ाते। दिक्पाल और शासनदेव की पूजा नहीं करते, क्योंकि वे संसारी हैं; मोक्षमार्गी नहीं हैं। जिनधर्म के शासनदेव यथार्थ में जिनदेव ही हैं जो संसार से तारने वाले हैं; संसार में रुलाने वाले नहीं हैं। अतः क्षेत्रपाल, पद्मावती की पूजा मिथ्यात्व की पोषक होने से जिनमत में मान्य नहीं है। जिन-प्रतिमा अर्हन्त-सिद्ध पद की प्रतीक है जो निरावरण, निर्लेप, शुद्ध है। जैसे निर्ग्रन्थ, दिगम्बर, वीतराग, परम शान्त जिनदेव होते हैं उनकी उस मुद्रा के अनुसार ही जिनबिम्ब की स्थापना-प्रतिष्ठा होती है। ऐसी निर्ग्रन्थ, वीतराग प्रतिमा पर चन्दन-केशर आदि लगाने से तथा पुष्प चढ़ाने से वह सग्रन्थ हो जाती है, वीतरागता का आदर्श खण्डित हो जाता है। जिनमत में वीतरागता की पूजा है; सरागता की नहीं। जिनपूजन-विधान आदि के रचयिता पं. जौहरीलालजी लिखते हैं—[1] "पहले गुरु अवस्था होय है पीछे देव पदवी मिले है। जहाँ पहली अवस्था जो

1. पं. जौहरीलाल शाह : केशर-पुष्प-विधान, जयपुर, पृ 2 से उद्धृत

गुरु पदवी माही में तिल के तुष मात्र परिग्रह का त्याग भया, तहाँ पिछली अवस्था रूप जो देव पदवी सो तो गुरु पद सूँ भी बड़ा पद है। क्योंकि गुरु पद में तो क्षयोपशम ज्ञान था; अब क्षायिक ज्ञान भया। बहुरि गुरु पद में तो जीव के गुण के घातक घातिया कर्म बैठे थे अर देव पद में तिनका अभाव भया। बहुरि गुरुनि कूँ तो देव पदवी नाहीं। अर देवनि कूँ गुरु पदवी सम्भवै है। ऐसे बड़े पद में परिग्रह का लेश हू कैसे संभवै? कदापि नाहिं संभवै। उदाहरण—जैसे काहू मनुष्य ने कन्द-मूल का त्याग किया तब वाके अणुव्रतादि भये पीछे ते कन्द-मूल कैसे ग्रहण होय? तहाँ तो अधिक-अधिक विशुद्धता चाहिये, तैसे ही जानना।" इस प्रकार केशर-चन्दन लगाना निर्ग्रन्थ प्रतिमा को परिग्रही बनाना है।

जाति की अपेक्षा निर्ग्रन्थ साधुओं के पाँच भेद कहे गये हैं—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। जैसे इन पाँचों प्रकार के साधुओं को सचित्त वस्तु का स्पर्श नहीं कराया जा सकता है, वैसे ही जिनमूर्ति को भी सचित्त वस्तु का स्पर्श कराना उचित नहीं है। इसी प्रकार से कोई भी स्त्री-पुरुष गुरु का स्पर्श नहीं कर सकती। जब वह गुरु का स्पर्श नहीं कर सकती, तो फिर प्रतिमा का अभिषेक कैसे कर सकती है? सभी जैन पुराणों में यह लिखा हुआ मिलता है कि प्रभु का जन्माभिषेक क्षीरसागर के प्रासुक जल से इन्द्र ने किया; इन्द्राणी ने नहीं किया। स्त्रियाँ देखा-देखी अज्ञानता के कारण अभिषेक करने लगीं जो अनुचित है। फिर, अर्हन्त सिद्ध पदों का अभिषेक नहीं होता। अभिषेक या तो जन्म के समय किया जाता है या राज्यारोहण के समय होता है। अतः जन्माभिषेक तथा राज्याभिषेक नाम तो सुने हैं, किन्तु निर्वाणाभिषेक या कैवल्याभिषेक पढ़ने-सुनने में नहीं आया है। फिर, जैनमूर्ति का अभिषेक कहाँ से आ गया?

यथार्थ में जैनमूर्ति का अभिषेक करना कोई प्राचीन परम्परा नहीं है। बिम्ब की स्वच्छता की दृष्टि से प्रक्षाल करते थे; अभिषेक नहीं। बौद्धों के यहाँ भी मूर्ति का अभिषेक नहीं होता। भारतीय शिलालेखों तथा अभिलेखों में सर्वप्रथम सातवीं शताब्दी में अभिषेक का उल्लेख मिलता है।[1] यह वही समय था जब काष्ठासंघ की स्थापना हो रही थी। आचार्य देवसेन ने "दर्शनसार" में काष्ठासंघ की उत्पत्ति का विवरण दिया है।

---

1. डॉ. वासुदेव उपाध्याय : प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, पटना, पृ. 144-45

प्राचीन काल में अर्चना-विधि में प्रासुक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि का उल्लेख मिलता है[1] अभिषेक उसमें नहीं है। सम्पूर्ण जिनागम के अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम शताब्दी से लेकर पाँचवीं शताब्दी तक रचे गये ग्रन्थों मे जिनाभिषेक नहीं मिलता है। छठी शताब्दी के आचार्य पूज्यपाद के नाम पर जो "अभिषेक पाठ" चढा दिया गया है, वह वास्तव में चौदहवी शती के देवनन्दि का रचा हुआ है। इस सम्बन्ध मे "देवनन्दि और गुणभद्र के अभिषेक पाठ" पर अच्छा ऊहापोह कर विशद विवेचन किया गया है।[2] यथार्थ में जैनधर्म मे पूजा-विधि मे प्राचीनकाल मे अभिषेक की परम्परा नही थी। गन्ध, अक्षतादि प्रतिमा के अग्रभाग मे चढाने की परम्परा तो रही है, किन्तु मूलसघ की आम्नाय मे न तो पचामृताभिषेक है और न जलाभिषेक है। प. कटारियाजी ने इसका प्रामाणिक विवेचन किया है कि मूलसंघ मे पचामृताभिषेक का अभाव है।[3] किन्तु जलाभिषेक कब और कैसे प्रचलित हो गया, यह विचारणीय है?

कृति-कर्म पूजा-विधि

जैनधर्म मे गृहस्थ, मुनि दोनो के लिए वन्दना, पूजा करना कहा गया है। यह एक प्रकार की विनय है। इसका वर्णन "मूलाचार" के षडावश्यकाधिकार मे कृतिकर्म के अन्तर्गत कि या गया है। कृतिकर्म, चितिकर्म, पूजाकर्म, विनयकर्म ये सभी वन्दना के पर्यायवाची नाम है।[4] अक्षरो के उच्चारण रूप वचन की क्रिया से, परिणामो की विशुद्धि रूप मन की क्रिया से तथा नमस्कार आदि रूप शरीर की क्रिया से कर्मों का छेद जिससे किया जाता है वह कृतिकर्म है। पुण्य के सचय व निमित्त होने से इसे चितिकर्म भी कहते है। इस कार्य मे चौबीस तीर्थंकरों तथा पाँच परमेष्ठियो की पूजा-विनय होने से इसे विनयकर्म भी कहते है। विनय पाँच प्रकार की कही गई है। यह विनय अर्थात् पूजा के समय की विनय दिव्य गन्ध, पुष्प, धूप, दीप आदि निर्दोष तथा प्रासुक द्रव्यों

---

1. मूलाचार, गा. 24 की टीका
2. मिलापचन्द्र, रतनलाल कटारिया जैन निबन्ध-रत्नावली, श्री वीरशासन संघ, कलकत्ता, 1966 पृ 5-24
3. वही. पृ. 393-434
4. किदियम्मं चिदियम्मं पूयाकम्मं च विणयकम्मं च।
   कादव्वं केण कस्स व कधे व कहिं व कदि खुत्तो ॥ मूलाचार, गा 578

की पढ़ा कर वाणी समर्पण कर करनी चाहिए।[1] इसमें अभिषेक करने का कोई उल्लेख नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों में कृतिकर्म की जिस विधि का वर्णन है, वह मूल रूप में वर्तमान में परिलक्षित नहीं होती। सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचन्द्रजी के शब्दों में "वर्तमान में जो दर्शन-विधि और पूजा-विधि प्रचलित है उसमें वे सब गुण नहीं रहने पाये हैं जो षट्खण्डागम आदि में प्रतिपादित क्रिया-कर्म में निर्दिष्ट किये गये हैं। अधिकतर श्रावक और त्यागीगण जिन्हें जितना अवकाश मिलता है उनके अनुसार इस विधि को सम्पन्न करते हैं। व्रती श्रावकों में और साधुओं में त्रिकाल देव-गुरु में त्रिकाल देव-वन्दना का नियम तो एक प्रकार से उठ ही गया है। प्रतिक्रमण और आलोचना करने की विधि भी समाप्त प्राय ही है। यह कृतिकर्म का आवश्यक अंग है। फिर भी समग्र पूजाविधि को देखने से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि उसमें पूर्वोक्त देव-वन्दना (कृति कर्म) का समावेश अवश्य किया गया है। इतना अवश्य है कि कुछ आवश्यक क्रियाएँ छूट गई हैं और कुछ नहीं आ मिली हैं।[2] "जिस प्रकार छठी शताब्दी के पश्चात् कृतिकर्म में परिवर्तन आ गया, उसी प्रकार पूजा की विधि में भी कई प्रकार के परिवर्तन होते गये। भट्टारकीय युग में इनमें जमीन-आसमान का अन्तर आ गया। जो विधान केवल प्रतिष्ठा-विधि तक सीमित था, वह भी धीरे-धीरे पूजा-विधि से जुड़ गया। अभिषेक जन्म के समय; विवाह के समय और राज्यारोहण के समय किए जाने का उल्लेख मिलता है। भगवान के जन्माभिषेक की क्रिया जिनबिंब प्रतिष्ठा-विधि (पंचकल्याणक) के समय तो हो सकती है, किन्तु प्रतिदिन की पूजा में अभिषेक कैसा है?

यह भी विचारणीय है कि जब अपने यहाँ गुरु का स्नान वर्जित है, उनका अभिषेक नहीं कर सकते, तो देव का अभिषेक कैसे करते हैं? फिर, किसी भी आगम ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख नहीं है कि साक्षात् भगवान का किसी ने अभिषेक किया हो। प्राचीन ग्रन्थों में "षट्खण्डागम" से लेकर "रयणसार" तक किसी भी शास्त्र में अभिषेक का उल्लेख नहीं मिलता है। सोमदेव से पूर्व का

---

1. "पश्चिमपूर्वं च-अर्चयित्वा च गन्धपुष्पधूपदीपादिभिः प्रासुकैरानीतैर्दिव्य-रूपैश्च दिव्यैर्निराकृतमलपटलसुगन्धैश्चतुर्विंशतितीर्थंकरपादयुगलानामर्चनं कृत्वान्यस्याश्रुतस्यात्तेषामेव ग्रहणम्।"

—मूलाचार, गा. 24 की टीका

2. ज्ञानपीठ-पूजाञ्जलि, तृतीय संस्करण, 1977, पृ. 25 से उद्धृत

कोई श्रावकाचार या पूजा-प्रतिष्ठा-पाठ ऐसा उपलब्ध नहीं है जिसमें अभिषेक का विधान हो।[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पंचामृताभिषेक वैदिक पूजा-पद्धति से ही हमारे यहाँ ग्रहण किया गया है, क्योंकि प्रतिमा का स्नान दूध, दही, घी, शहद और शक्कर से पंचामृत होता है।[2] वैदिक पूजा-पद्धति में पूजा के सोलह उपचार कहे गये हैं। जो सोलह उपचार नहीं कर सके तो दशोपचारी पूजा करे और उतना भी न कर सके तो कम-से-कम पंचोपचारी पूजा अवश्य करे। मल्लिषेणसूरि ने देवी के आह्वान, स्थापन, सन्निधीकरण, पूजन और विसर्जन को पंचोपचार कहा है। सोमदेवसूरि ने विघ्नों की शान्ति के लिए दिक्पालों एवं ग्रहों का स्थापन, सन्निधापन तो किया है, किन्तु उनका विसर्जन नहीं किया है।[3] वास्तव में मुक्त आत्माओं को बुलाना और फिर भगाना कितना हास्यास्पद है। किन्तु हम बड़े गर्व के साथ पढ़ते हैं—

आये जो जो देवगण पूजे भक्ति प्रमान।
ते सब जावहु कृपा कर अपने - अपने थान॥

अतएव यह पढ़ना उचित नहीं है।

सोमदेवसूरि ने देवपूजन के छह प्रकार बतलाये हैं[4]—प्रस्तावना, पुराकर्म, स्थापना, सन्निधापन, पूजा और पूजा का फल। इसमें अभिषेक पूर्वक पूजन को पूजा कहा गया है। न तो इसमें आह्वान, स्थापना और सन्निधीकरण का कोई विधान है और न विसर्जन का ही निर्देश है। सन्निधापन क्रिया के अन्तर्गत ही अभिषेक का विधान किया गया है। कहा है[5]—यह जिनबिम्ब ही साक्षात् जिनेन्द्रदेव है, यह सिंहासन सुमेरु पर्वत है, घटों में भरा हुआ जल साक्षात् क्षीर समुद्र का जल है और आपके अभिषेक के लिए इन्द्र का रूप धारण करने के

---

1. *सिद्धान्ताचार्य पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : उपासकाध्ययन की प्रस्तावना,* पृ. 54
2. *द्रष्टव्य है—वही, 56, तथा* 3. *पूजाप्रकाश* पृ. 34
3. *उपासकाध्ययन, श्लोक, सं.* 538, पृ. 235,
4. *प्रस्तावना पुराकर्म स्थापना सन्निधापनम्।*
   पूजा पूजाफलं चेति षड्विधं देवसेवनम्॥
   उपासकाध्ययन, श्लोक 529
5. *उपासकाध्ययन, श्लोक* 537

कारण में साक्षात् इन्द्र हूँ। तब इस अभिषेक-महोत्सव की शोभा पूर्ण क्यों नहीं होगी?

प्रश्न यह है कि जिनेन्द्र भगवान को अभिषेक से क्या प्रयोजन है? विचार किया जाए तो अभिषेक के तीन ही प्रयोजन हो सकते हैं—शरीर के मल को दूर करना, पूजा के द्वारा पूज्यता को प्राप्त करना और कामादि विकारों की शुद्धि। सोमदेवसूरि कहते हैं—हे जिनेन्द्र। शारीरिक मैल से रहित होने के कारण आपका मैल से कोई सम्बन्ध नहीं है। आपके चरण तीनों लोकों के द्वारा पूज्य हैं, इसलिए उससे कोई उत्कृष्ट पूज्य कैसे हो सकता है? आपका मन मुक्ति रूपी अमृत-पान में निमग्न है, इसलिये आप काम से भी दूर हैं। अतएव यह स्नान आपका क्या उपकार कर सकता है?[1] श्री वादिराज मुनि कहते हैं[2]—जो स्वभाव से सुन्दर नहीं है उसे अलंकरण की आवश्यकता होती है, जिसके शत्रु हो वह शस्त्र धारण करता है। किन्तु आप तो सर्वांग सुन्दर हैं अतः आपको भूषण, वस्त्र, कुसुम आदि की क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार समझ लेना चाहिए कि स्नान, अभिषेक की भी आवश्यकता नहीं है।

इसमें दो मत नहीं हैं कि अभिषेक जन्मकल्याणक का प्रतीक माना गया है। किन्तु प्रतिष्ठित मूर्ति की पंचकल्याण प्रतिष्ठा हो जाने पर फिर प्रतिदिन अभिषेक करने का क्या प्रसग है? रत्नत्रय में लीन रहने वाले ज्ञानियों के चित्त में परमात्मा तिष्ठता है। कहा भी है[3]—विकल्प रूप मन भगवान आत्मा से मिल गया अर्थात् तन्मय हो गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया—ऐसी स्थिति में दोनों के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ? यथार्थ भक्ति में भक्त और भगवान का भेद नहीं रहता। परमात्मा की भक्ति में वह इतना तन्मय, तल्लीन हो जाता है कि स्वयं परमात्मरूप अनुभव करता है। अर्हन्त के गुणों में वह इतना एकाग्र चित्त हो जाता है कि समस्त विकल्प-जाल उस

---

1. *वीतोपलेपवपुषो न मलानुषङ्गः पत्यैलोक्यपूज्यचरणस्य कुतः परो र्च्यः।*
मोक्षामृते धृतधियस्तव नैव कामः स्नानं ततः कमुपकारमिह करोतु॥
वही, श्लोक 531

2. एकीभावस्तोत्र, श्लोक 19

3. *मणु मिलियउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स।*
बीहि वि समरसि हूवाहं पुज्ज चडावउं कस्स॥
परमात्मप्रकाश, 123। 2

समय छूट जाता है। भक्ति की महिमा ही अपूर्व है। पं. सदासुखजी कहते हैं[1]—"यद्यपि भगवान के अभिषेक का प्रयोजन नाहीं, तथापि पूजक के ऐसा अभिप्राय उत्साह का भाव है जो अरहंत कूं साक्षात् स्पर्श ही करूं हूं. अभिषेक ही करूं हूं। ऐसी भक्ति की महिमा है।" वर्तमान में जो पूजा-विधि प्रचलित है उसी के अनुसार पं. सदासुखजी और ब्र. पं. रायमल्लजी ने दर्शन-अभिषेक-पूजन करने का उल्लेख किया है। यद्यपि "अभिषेक" और "प्रक्षाल" शब्द का प्रयोग अधिकतर समान अर्थ में हुआ है, किन्तु मूलसंघ की आम्नाय में परम्परा से प्रक्षाल (पखाल) प्रचलित रहा है। जिनबिम्ब को साक्षात् जिनेन्द्रदेव की प्रतिकृति "जिन प्रतिमा जिन सारखी" मानने वाले ब्र. पं. रायमल्लजी प्रतिमाजी का अविनय देखकर कहते हैं—"अर मालीन में अणछाण्या पाणी मंगाय मैला चीरड़ा सौं प्रतिमाजी की पखाल करै। अर जैता पुरुष-स्त्री आवै तैता सर्व विषय-कषाय की वार्ता करै; धर्म का लवलेश भी नाहीं। इत्यादि अविनय का वर्णन कहाँ तक करिये?" अतएव जिन-प्रतिमा की प्रक्षाल करनी चाहिए। प्रक्षाल मूर्ति की स्वच्छता की दृष्टि से किया जाता है।

जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति की विनय—

इस ग्रन्थ में कई स्थानों पर जिन-मन्दिर, जिन-मूर्ति, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरु के प्रति विनय पालन का उपदेश दिया गया है। सभी सावद्य योग के कार्य जिनसे पाप का बन्ध होता है उनको जिन-मन्दिर में नहीं करना चाहिए। घर-गृहस्थी में तेल-साबुन लगा सकते हैं, कंघी कर सकते हैं, जिन-मन्दिर की अविनय की दृष्टि से ये सभी कार्य वर्जित हैं। इनको आसादन दोष कहते हैं। ब्र. पं. रायमल्लजी के अनुसार जिन-मन्दिर में अज्ञान तथा कषाय से चौरासी प्रकार के आसादन दोष लगते हैं जो इस प्रकार हैं—

थूकना-खखारना, हास्य-कुतूहल करना, कलह करना, कला-चतुराई सीखना, उगलना-कुल्ला करना, मल-मूत्र विसर्जन करना, स्नान करना, गाली देना, केश मुंडाना, रक्त निकलवाना, नाखून कटवाना, फोड़े-फुन्सी की पीप निकालना, नीला-पीला पित्त डालना, उल्टी करना, भोजन-पान करना, औषधी-चूरन खाना, पान चबाना, दांत-आंख-नख-नाक-कान आदि का मल निकालना, गले, का मैल, मस्तक का मैल, शरीर का मैल, पैरों का मैल उतारना, घर-गृहस्थी की बातें करना, माता-पिता, कुटुम्बी-भाई आदि की सेवा करना, सास-जिठानी-नन्द आदि के पग लगन, धर्मशास्त्र से भिन्न अन्य का लेखन-वाचन करना,

---

1. रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका

किसी वस्तु को बाँटना, उँगली चटकाना, आलस्य से शरीर मोड़ना, मूँछों के ऊपर हाथ फेरना, दीवाल का सहारा, लेना, गादी-तकिया लगाना, पाँव फैला कर या मोड़ कर बैठना, कंडे थापना, कपड़े धोना, दाल दलना, धान्य आदि का छिलका उतारना, पापड़-मंगोड़ी आदि सुखाना, गाय-भैंस आदि को बाँधना, राजा आदि के भय से मन्दिर में छुपना, रुदन करना, स्त्री-राज-चोर-भोजन आदि विकथा करना, गहना-आभूषण, शस्त्र आदि गढ़ाना, सिगड़ी-अँगीठी जला-कर तापना, रुपया-मोहर परखना. प्रतिष्ठित प्रतिमाजी के टाँकी लगाना, प्रतिमाजी के अंग पर केशर-चन्दन आदि का चर्चन करना, प्रतिमाजी के नीचे सिंहासन के ऊपर वस्त्र बिछाना, काँच में मुख देखना, पगड़ी बाँधना नखचूँटी आदि से केश उखाड़ना, घर से शस्त्र बाँध कर मन्दिर में आना, पावड़ी पहिन कर मन्दिर में चलना. निर्माल्य द्रव्य को खाना बेचना या मोल लेना अथवा उधार लेना, अपने ऊपर चंवर ढुराना, हवा करना या कराना, तेलादि का लेप, मर्दन करना या कराना, काम विकार भाव से नर-नारी का रूप देखना, मन्दिर की वस्तुओं को विवाहादिकामों में उपयोग में लेना देव-गुरु-शास्त्र को देख कर उठना नहीं, हाथ नहीं जोड़ना, स्त्रियों का एक साड़ी ओढ़ कर मन्दिर में आना, ऊपर ओढ़नी ओढ़ कर आना, पगड़ी बाँधे बिना पूजा करना त्यागी को छोड़ कर स्नान-शृंगार करना, चन्दन का तिलक किये बिना पूजा करनी, पूजा के बिना केशर-चन्दन का तिलक करना, पाद (बाव) सरना आदि अशुचि क्रिया करना, चौपड़, सतरंज, गंजफा आदि खेल खेलना, भांड-क्रिया करना, कठोर, मर्मछेदी, हास-परिहास, ईर्ष्या आदि के वचन बोलना, कुलाट खाना. पैरों को दबवाना, हाड़, चाम, ऊन, केश आदि लेकर मन्दिर में जाना, बिना प्रयोजन मन्दिर मे आमने-सामने घूमना, तीन दिन के भीतर राजस्वला और डेढ़ महीने के भीतर प्रसूति हुई स्त्री का मन्दिर में जाना, गुप्त अंगों को दिखाना, खाट आदि बिछाना, ज्योतिष-वैद्यक, यन्त्र-मन्त्र की वृत्ति करना, जल-क्रीड़ा आदि क्रीड़ा करना, लूला, लंगड़ा, अन्धा-काना-बहरा-गूँगा, शूद्र आदि का स्नान कर अभिषेक-पूजन करना, घर के कपड़े पहन कर द्रव्य पूजा करना, रात में पूजन करना, अनछने पानी से मन्दिर का काम करना और भी जिन कामों में जिन पूजन आदि में बहुत त्रस जीवों का घात हो, उन सभी को छोड़ना योग्य है। ऐसे चौरासी आसादन दोष का स्वरूप जानना।

रात्रि-पूजन का निषेध—

किसी भी श्रावकाचार में रात्रि-पूजन का उल्लेख नहीं किया गया है। यह विधान अवश्य पाया जाता है कि प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल तीन बार

आवश्यक करे, पूजा करे ।[1] "रत्नकरण्डश्रावकाचार" की वचनिका में पं. सदासुखजी ने रात्रि-पूजन का निषेध किया है ।[2] स्व. दरयावसिंह सोधिया के शब्दों में "किसी-किसी ग्रन्थ में प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या तीनों काल देव-वन्दना कही है सो सन्ध्यावन्दन से कोई रात्रि-पूजन न समझ लें; क्योंकि रात्रि-पूजन का निषेध धर्मसंग्रहश्रावकाचार, वसुनन्दि-श्रावकाचारादि ग्रन्थों में स्पष्ट रूप से किया गया है तथा प्रत्यक्ष हिंसा का कारण भी है, इसलिये सन्ध्या के पूर्वकाल में यथाशक्य पूजन करना ही सन्ध्यावन्दन है । रात्रि को पूजन का आरंभ करना अयोग्य और अहिंसामयी जिनधर्म के सर्वथा विरुद्ध है, अतएव रात्रि को केवल दर्शन करना ही योग्य है[3] । श्रावकाचारों में रात्रि-भोजन के साथ ही सभी प्रकार के सावद्य योगों का त्याग बताया गया है । पर्व के दिनों में विशेष रूप से इनका त्याग करना चाहिए । अतः रात्रि को पूजा करने का भी निषेध किया गया है । कहा है[4]— आधी रात के समय जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए । क्योंकि रात मे त्रस जीवों का संचार विशेष होने से हिंसा अधिक होती है । पं. आशाधरजी का कथन अत्यन्त स्पष्ट है कि उपवास के दिन उपवास करने वाला भाव पूजन करे अथवा प्रासुक द्रव्य से द्रव्य पूजन करे । किन्तु इन्द्रिय और मन की लालसा बढ़ाने वाली नृत्य-गीतादि रागवर्द्धक क्रियाओं का त्याग करे[5] । "विद्वज्जनबोधक" प्रथम काण्ड के दशमोल्लास में (पृ. 388-392) सप्रमाण रात्रि-पूजन का निषेध किया गया है ।

जिनपूजा : क्यों और कैसे ?

पूजा का सम्बन्ध पूज्य आदर्श से है । जैन धर्म में पाँच परम इष्ट, पूज्य है—अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, निर्ग्रन्थ साधु । इनके सिवाय अन्य आराध्य, पूज्य नहीं है । पूजा या आराधना का एक मात्र प्रतिमान है—वीतरागता । जिनके श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र की एक निष्ठ, सहज शुद्ध परिणति प्रतिफलित हो अर्थात् जो एक देश भी वीतराग हों, वे ही पूज्य है । इससे स्पष्ट है कि दश दिग्पाल, क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि देवी-देवता पूज्य नही है । क्योंकि मत या तो देव के नाम से होता है या गुरु के नाम से । जैन धर्म मे

---

1. *सागारधर्मामृत 2, 225, प्रश्नोत्तरश्रावकाचार 20, 210*
   किशनसिंह कृत "क्रियाकोष" इत्यादि ।
2. *रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका*
3. *दरयावसिंह सोधिया : श्रावक धर्म-संहिता, पृ. 55 से उद्धृत*
4. *तत्त्वार्थसार 6, 187*
5. *सागारधर्मामृत 5, 39*

प्रश्न यह है कि पूजा क्या है ? वस्तुतः जिन शुद्धात्मा या प्रभु के सन्मुख झुकने का नाम पूजा है। जब श्रद्धा वीतराग के गुणों का आलम्बन ग्रहण करती है, तब पूजा कही जाती है। व्यवहार में वीतरागी के गुणों पर श्रद्धान कर उनकी वन्दना करते हुए गुणों का सम्मान करने हेतु पवित्र भावों से प्रासुक द्रव्य चढ़ाना पूजा है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दों में —"पूजा नाम भेद का है—सो प्रासुक द्रव्य प्रभु को चढ़ावे।" (पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, वचनिका)

पूजा भावप्रधान है। पवित्र भावना तथा निर्मल श्रद्धान के साथ आदर्श के गुणों से जुड़ना भक्ति या पूजा कहलाती है। प्रभु से जुड़ना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक परिचय प्राप्त न हो। अतः जिन-मन्दिर में हम अपना परिचय पाने के लिए आदर्श के पास जाते है। जिस प्रकार दर्पण मे हम काँच को नही, अपने चेहरे को देखते है, वैसे ही जिन-दर्शन "निज-दर्शन" है। परमात्मा प्रभु का जो वास्तविक स्वरूप है, वही अपना रूप है। अतएव पूजा के माध्यम से अपनी पहचान करना ही मुख्य लक्ष्य है। वर्तमान पर्याय का तो परिचय है। इसलिए स्तवन करते हुए कहते है—हे भगवन् ! मै पापी हूँ, अनादि काल से रोगी हूँ, मायावी, लोभी, रागी-द्वेषी हूँ। विषय-कषाय के धंधे मे अपने आपको भूल गया हूँ। इसलिये अब आपके पास मे आया हूँ। किंतु अपने शुद्ध स्वरूप को नही जानता।

मूल में पूजा दो प्रकार की है—द्रव्यपूजा और भावपूजा। वचनों के द्वारा जिनदेव का स्तवन करना, नमस्कार करना, तीन प्रदक्षिणा देना, अंजुलि बाँध कर मस्तक पर चढ़ाना तथा जल-चन्दनादिक अष्ट द्रव्य चढ़ाना द्रव्यपूजा है। आचार्य अमितगति कहते है वचन और मन की क्रियाओं को रोककर जिनेन्द्रदेव के सन्मुख भाव प्रकट करना द्रव्यपूजा है[1] और विकल्प से रहित होना भाव पूजा है। प. सदासुखजी के शब्दों मे[2] "अर अरहंत के गुणनि में एकाग्र चित्त होय, अन्य समस्त विकल्प-जाल छांडि गुणनि में अनुरागी होना पदार्थ से पूजा के भाव प्रकट किए जाते हैं। उसे सर्वथा वही मान लेना बड़ी भारी भूल होगी वास्तविकता तो यह है कि जिस प्रकार पूजा के भगवान् कल्पित, (रचित, स्थापित) हैं; केवल अपने भावों को अपने में लगाने के लिए

---

1. *वचोविग्रहसंकोचो द्रव्यपूजा निगद्यते ।*
   तत्र मानससंकोचो भावपूजा पुरातनैः ॥ श्रावकाचार, 12, 12

2. रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम शिक्षाव्रत अधिकार, श्लोक 119 की वचनिका

तथा अरहंत प्रतिबिंब का ध्यान करना सो भाव-पूजा है । अथवा अरहंत प्रतिबिंब का पूजन के अर्थि शुद्ध भूमि में प्रमाणिक जल तैं स्नान करि उज्ज्वल वस्त्र पहरि महाविनय संयुक्त अंगुलि जोड़ि भक्ति सहित उज्ज्वल निर्दोष जल करि अरहंत के प्रतिबिंब का अभिषेक करना सो पूजन है ।" यथार्थ में सर्वज्ञानी, वीतराग, सहजानन्द रूप परमात्म तत्त्व का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप अभेद रत्नत्रय मे लीन रहने वाले ज्ञानियों के चित्त में परमात्मा तिष्ठता है । कहा भी है[1] विकल्प रूप मन भगवान् आत्मा से मिल गया अर्थात् तन्मय हो गया और परमेश्वर भी मन से मिल गया—ऐसी स्थिति में दोनों के समरस होने पर मैं अब किसकी पूजा करूँ ? यथार्थ भक्ति में भक्त और भगवान् का भेद नहीं रहता । परमात्मा की भक्ति में वह इतना तन्मय, तल्लीन हो जाता है कि स्वयं परमात्मा रूप अनुभव करता है । अर्हन्त के गुणों मे अनुरक्त हो वह इतना एकाग्र चित्त हो जाता है कि समस्त विकल्प-जाल उस समय छूट जाता है । भक्ति की महिमा ही अपूर्व है । जिन-मत में अवतार ग्रहण कर तीर्थंकर उतर कर नहीं आते । इसलिए मूर्ति में अर्हन्त, सिद्ध भगवान की स्थापना की जाती है । अर्हन्त प्रतिमा में चिन्ह होता है, लेकिन सिद्ध प्रतिमा में कोई चिह्न नही होता । एक बार जिनबिम्ब की स्थापना हो जाने पर, प्रतिष्ठा के उपरान्त पूजा करते समय पीले चावलों मे स्थापना का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है । इतना अवश्य है कि पूजा का एक अंग आह्वानन भी है । जिसे हम स्थापना कहते है वास्तव मे वह आह्वानन ही है । पं. सदासुखदासजी के शब्दों मे "अर प्रतिबिम्ब तदाकार होते किसी ग्रन्थ में हू स्थापना का वर्णन नाहीं अर अब इस कलिकाल मे प्रतिमा विराजमान होते हू स्थापना ही कूं प्रधान कहैं है ."[2] हाँ, भावो मे स्थापना अवश्य की जाती है । पूजा-स्तुति भी स्थापना निक्षेप से प्रचलित हुई है । वास्तव मे पूजा की सामग्री में अष्ट द्रव्य भी स्थापना निक्षेप से माने जाते हैं । क्योंकि न तो पूजन करते समय क्षीरसागर का जल उपलब्ध होता है और न चन्दन; चरु या नैवेद्य का तो पता ही नहीं चलता; दीप-धूप भी सर्वथा वही नही होते; फिर सभी ऋतुओं के फल एक साथ कैसे प्राप्त हो सकते हैं ? वास्तव में उत्तम दोनों वीतराग माने गये हैं । आत्मा की पूर्ण वीत-राग अवस्था का ही नाम देव है । पूर्ण वीतरागता के बिना अर्हन्त अवस्था प्रकट नही होती ।

---

1. *मणु मिलियउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स ।*
   बीहि वि समरसि हूवाहं पुज्ज चडावउं कस्स परमात्मप्रकाश, 123, 2

2. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, पृ. 212

हैं; इसी प्रकार पूजा के द्रव्य भी कल्पित हैं। अतः शुद्ध, प्रासुक द्रव्य ही पूजा करने योग्य हो सकते हैं; अन्य सामग्री योग्य नहीं है।

यह कहा जाता है कि पूजा का प्रारम्भ आह्वानन, स्थापन और सन्निधिकरण से किया जाता है, किन्तु ये सब पंचकल्याणक के प्रतीक रूप माने गये हैं।[1] यथार्थ में अपना उपयोग शुद्ध परमात्मा से जोड़ना आह्वानन है, अपने अन्तर में आदर्श का चित्र खींचना स्थापन है और परमात्मा के स्वरूप में भावों का लगा रहना सन्निधिकरण है। प्रतिष्ठाचार्य पण्डित सदासुखदासजी के शब्दों में[2]— "व्यवहार में पूजन के पाँच अंगनि की प्रवृत्ति देखिए हैं—(1) आह्वानन, (2) स्थापना, (3) संनिधापन या सन्निधिकरण, (4) पूजन, (5) विसर्जन। सो भावनि के जोड़वा वास्तै आह्वाननादिकनि में पुष्प क्षेपण करिये है। पुष्पनि कूँ प्रतिमा नाहीं जानै हैं। ये तो आह्वाननादिकनि का सकल्प तैं पुष्पांजलि क्षेपण है। पूजन में पाठ रच्या होय तो स्थापना कर ले, नाहीं होय तो नाही करै।"

यथार्थ में, शुद्ध आम्नाय की पद्धति में कल्पित पुष्प-क्षेपण का निषेध नहीं है, किन्तु ठोने में या मूर्ति के ऊपर पुष्पक्षेपण का प्रबल विरोध है। क्योंकि परमात्मा की स्थापना हम अन्तरग में करते है।[3] किसी भी जैन शास्त्र मे मूर्ति के ऊपर द्रव्य या सामग्री चढ़ाने का विधान नही है। जिन-मूर्ति के अग्रभाग मे स्थाली (थाली) में प्रासुक सामग्री चढ़ा कर पूजा करने का उल्लेख मिलता है। लौकिक व्यवहार में भी राजा-महाराजा के यहाँ जो भेंट लेकर जाते है, वे उनके सामने ही प्रस्तुत करते हैं। फिर, चैतन्य राजधानी के चैतन्य भूप के समक्ष जो अविवेक के कारण चन्दन का लेप करते हैं, शृंगार करते हैं अथवा उनके चरणों के ऊपर कुछ भी चढ़ाते है, वे अपनी अज्ञानता और मोह का ही परिचय देते हैं। भले ही हम अपनी अशक्तता से लोक में शुद्ध क्रिया रूप आचरण न कर पाते हों, किन्तु त्रिलोकीनाथ के समक्ष तो हीन आचरण नहीं करना चाहिए। श्री अर्हन्तदेव की ध्यान-मुद्रा ही पूज्य है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दों में[1] — "बहुरि श्री अरहंतदेव बिना उपाय ही स्वयमेव नासाग्र दृष्टि धरैं हैं, ध्यान-मुद्रा धरे हैं। तिस करि दर्शन करने वाले भव्य जन

---

1. *रतनलाल कटारिया : अष्ट द्रव्य पूजा-रहस्य, पृ. 1*
2. *पं सदासुखदास : रत्नकरण्डश्रावकाचार, पंचम अधिकार, पृ. 214*
3. *मम हृदय विराजो तिष्ठ-तिष्ठ सन्निकट होहु मेरे भगवन्। निज आत्म-तत्त्व की प्राप्ति हेतु ले, अष्ट द्रव्य करता पूजन ॥ —पंचपरमेष्ठी पूजा*

के ध्यान-अवस्था का स्मरण करि आत्मजनित आनन्द का अनुभव है। अन्य मुद्रा होती, तो ताकौ देखें जीवन का बुरा होता; तातैं जिनते औरनि का भला होय, ऐसी ध्यान-मुद्रा ही पाइये है।" इससे स्पष्ट है कि जिनमत में ध्यान-मुद्रा ही पूज्य है। यथार्थ में परमात्मा परम ज्योतिस्वरूप स्वानुभव व स्वसंवेदनगम्य है।[2] ऐसे पूज्य की पूजा करने वाला अपनी भावमयी वेदी पर उनको स्थापित कर शुद्धात्मोपलब्धि हेतु शुद्ध द्रव्य से पूजा करता है, किन्तु उनके अंग पर किसी प्रकार की अर्चन-चर्चन की क्रिया नहीं करता है।

पूजन-विधान में इन्द्र-इन्द्राणी का बनना भी स्थापना निक्षेप से है। यहाँ पर न तो वे द्वीप हैं और न वे प्रतिमाएँ हैं जिनकी हम पूजा करते हैं। वास्तव में स्थापना के बिना जिन-पूजा सम्भव नहीं है।[3] पूजा करते समय पीले चावलों से जिसे स्थापना करना कहते हैं; वास्तव में वह स्थापन न होकर आह्वानन है। क्योंकि स्थापना तो पंचकल्याणक-क्रिया में मूर्ति में उस मूर्तिमान स्थापना की करते ही हैं जब से वह पूज्य प्रतिमा कहलाती है। भावों में स्थापन की दृष्टि से स्थापना कही जाती है।

"ज्ञानानन्द श्रावकाचार" मे उल्लेख है—अंगहीन प्रतिमा पूज्य नही है; उपांगहीन पूज्य है। अत. अंगहीन प्रतिमा को गहरे सरोवर या नदी में पधरा देना चाहिये। यथार्थ में देव तो चैतन्यदेव हैं। उनका प्रक्षालन स्वभाव-सन्मुख होकर सम्यक् ज्ञान की धारा से हो सकता है। निज स्वभाव रूप होना ही चन्दन चढ़ाना है। इसी प्रकार अनन्त गुणों का चिन्तवन करना ही अक्षत क्षेपण है। भले मन को प्रभु के चरणों में लगाना पुष्प चढ़ाना है। अपने ध्यान को अपने मे लगानाही नैवेद्य चढ़ाना है। अपने आत्मज्ञान को प्रकाशित करना या आत्मावलोकन करना ही दीप से पूजा करना है। ध्यान रूपी अग्नि मे कर्मो का क्षेपण करनाही धूप खेना है। निजानन्द को उपलब्ध होना ही फल चढ़ाना है। इसी प्रकार गुणों का विकास करना अर्घ्य है। इन आठ द्रव्यों से मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिए पूजा की जाती है।[1] पूजा रात्रि मे नही करना चाहिये।[2] उपवास के दिन भावपूजा करनी चाहिये।[3]

---

1. *समवसरण-वर्णन, अप्रकाशित, हस्तलिखित प्रति से उद्धृत*
2. *सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।*
   यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः॥ –समाधिशतक, श्लोक 30
3. *हमें शक्ति सो नाहीं, इहां करि थापना।*
   पूजों जिनगृह प्रतिमा, है हित आपना॥ —नन्दीश्वरद्वीप पूजा

अष्ट मूलगुण—

श्रावकाचारों की संख्या एक सौ से भी अधिक कही जाती है। इन सभी आचारप्रधान ग्रन्थों में आचार्य समन्तभद्र के "रत्नकरण्डश्रावकाचार" में निर्दिष्ट एवं प्रतिपादित क्रम उपलब्ध होता है। अतः सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन के स्वरूप और माहात्म्य का वर्णन उसमें किया गया है। "कार्तिकेयानुप्रेक्षा" में सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करने योग्य जीव का वर्णन किया गया है। "पद्मनन्दिपंचविंशतिका" में भी यही परिलक्षित होता है। जिन श्रावकाचारों में सीधे सम्यग्दर्शन का वर्णन नहीं किया गया है उनमें दर्शन प्रतिमा या दार्शनिक श्रावक के अन्तर्गत सम्यग्दर्शन का उल्लेख किया गया है। यह सुनिश्चित है कि बिना सम्यग्दर्शन के धर्म प्रारम्भ नहीं होता। अतः धर्म की परीक्षा कर उसे स्वीकार करना चाहिए। आचार्य सकलकीर्ति ने मिथ्यात्व को विष के तुल्य कहा है और सम्यग्दर्शन को सम्पूर्ण तत्त्वों का सारभूत कहा है।[4]

"रत्नकरण्डश्रावकाचार" में ही श्रावकों के आठ मूलगुणों का सर्वप्रथम वर्णन मिलता है। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, इन पांच पापों के स्थूल रूप से त्याग और मद्य, मांस, मधु के सर्वथा त्याग को अष्ट मूलगुण कहा गया है।[5] वास्तव में उनका यह वर्णन पंचम गुणस्थानवर्ती श्रावक को ध्यान में रखकर किया गया प्रतीत होता है। क्योंकि व्रती ही पांच प्रकार के पापों का त्यागी होता है। मूलगुण तो मूल ही है, जड़ हैं। चरणानुयोग में गृहस्थ, श्रावक तथा साधु की पहचान मूलगुण से ही है। यदि जिसके आठ मूलगुण का पालन नहीं वह सद्गृहस्थ नहीं है और जिसके व्रत नहीं है वह श्रावक नहीं है। इसी प्रकार अट्ठाईस मूलगुणों के बिना कोई साधु नहीं हो सकता। उत्तर गुणों में कमी हो सकती है, किन्तु मूलगुण तो पूरे होना चाहिए। मूल का अर्थ मुख्य है और गुण का अर्थ क्रिया है।

---

1 ज्ञानानन्दश्रावकाचार, पृ 10-11

2. तस्माद्रागके पूजां न कुर्यादर्हतामपि।
हिंसाहेतोरवश्यं स्याद्रागी पूजाविवर्जनम्॥ तत्त्वार्थसार, 6/187

3. पूजयोपवसन्पूज्यान् भावमय्यैव पूजयेत्।
प्रासुकद्रव्यमय्या वा रागाङ्गं दूरमुत्सृजेत्॥ सागारधर्मामृत, 5/39

4. प्रश्नोत्तरश्रावकाचार, 4/15 तथा 2/44 3/2

5. मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम्।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रमणोत्तमाः॥ तृतीय अधिकार, श्लोक 66

श्रावकाचारों में श्रावक की विशेष क्रियाओं का वर्णन मिलता है। आठ मूलगुण, बारह व्रत, बारह तप, एक समता (कषाय की मन्दता), ग्यारह प्रतिमा, चार दान, एक जलगालन, एक रात्रिभोजन-त्याग, दर्शन-ज्ञान और चारित्र ये श्रावक की विशेष क्रियाएँ हैं[1]। ठीक ही कहा है कि मद्य, मांस और मधु अर्थात् मद्य तथा पाँच प्रकार के उदुम्बर फल इनका त्याग तो श्रावक को प्रथम ही होता है—ऐसा पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में अमृतचन्द्राचार्य ने कहा है। जिन्हें इनका त्याग नहीं उन्हें व्यवहार से भी श्रावकपना नहीं होता और वे धर्म-श्रवण के भी योग्य नहीं। समन्तभद्रस्वामी ने भी "रत्नकरण्डश्रावकाचार" में त्रस हिंसादि के त्याग रूप पाँच अणुव्रत का पालन तथा मद्य, मांस, मधु का त्याग इस प्रकार आठ मूलगुण कहे हैं। मुख्यतः तो दोनों में त्रसहिंसा सम्बन्धी तीव्र पाप-परिणामों के त्याग की बात है। जिस गृहस्थ को सम्यग्दर्शन पूर्वक पाँच पाप और तीन मकार के त्याग की दृढ़ता हुई उसने समस्त गुण रूपी महल की नींव डाली। अनादि से संसार-भ्रमण का कारण जो मिथ्यात्व और तीव्र पाप उसका अभाव होते ही जीव अनेक गुण-ग्रहण का पात्र हुआ। इसलिए इन आठ त्यागों को अष्ट मूलगुण कहा है। बहुत से लोग दवा आदि में मधुसेवन करते हैं, परन्तु मांस की तरह ही मधु को भी अभक्ष्य में गिनाया गया है। रात्रि-भोजन में भी त्रस-हिंसा का बड़ा दोष है। श्रावक को ऐसे परिणाम नहीं होते।[2] 'ब्रह्म नेमिदत्त का कथन है कि शुद्ध सम्यक्त्व से शोभित उस श्रावकधर्म में भव्यों को सुखदायक आठ मूलगुण सर्वप्रथम होना चाहिए।[3] आचार्य सकलकीर्ति कहते हैं कि अष्ट मूल गुण का धारक और सप्त व्यसन का त्यागी सम्यग्दृष्टि ही दार्शनिक श्रावक है।[1] प्राकृत के "भाव संग्रह", "सावयधम्मदोहा", पं. आशाधर कृत "सागारधर्मामृत" पं. गोविन्द रचित "पुरुषार्थानुशासन" और पं. राजमल्ल विरचित "लाटी संहिता" आदि में प्रथम दर्शनप्रतिमा के अन्तर्गत दार्शनिक श्रावक का वर्णन किया गया है। ब्र. पं. रायमल्लजी ने "सागारधर्मामृत" के अनुसार श्रावक के पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक ये तीन भेद करके उनका विशद विवेचन किया है।[2] ग्रन्थकार सभी प्रकार के पाप के आरम्भ को

---

1. *गुण-वय-तव-सम-पडिमा, दाणं-जलगालणं च अणत्थमियं।*
   दंसण-णाण-चरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया॥

   —रयणसार, गा. 137

2. ब्र. हरिलाल जैन : श्रावकधर्म-प्रकाश, पृ. 43-44 से उद्धृत

3. *तत्र श्रावकधर्मेऽत्र शुद्धसम्यक्त्वशोभिते, आदौ मूलगुणाः सेव्या भव्यानां शर्मदायकाः*

   —धर्मोपदेशपीयूषवर्षश्रावकाचार ॥ 3,8

मिटाने के लिए श्रावकाचार ग्रन्थ का प्रारम्भ करते हुए कहते हैं—अब अपने इष्टदेव को नमस्कार कर सामान्य अर्थ से श्रावकाचार कहते हैं। सो हे भव्य ! तू सुन। श्रावक तीन प्रकार हैं—एक पाक्षिक, एक नैष्ठिक, एक साधक। सो पाक्षिक के देव, गुरु धर्म की प्रतीति तो यथार्थ होती है, किन्तु आठ मूलगुणों और सात व्यसनों में अतिचार लगता है। परन्तु नैष्ठिक श्रावक के मूलगुणों और सात व्यसनों में अतिचार नहीं लगता है। उसके ग्यारह भेद हैं जिनका वर्णन आगे होगा। साधक श्रावक अन्त समय में संन्यासमरण करता है। ऐसे ये तीनों श्रावक देव, गुरु, धर्म की प्रतीति से सहित हैं और सम्यक्त्व के आठ अंगों से सहित हैं।....पाक्षिक और साधक श्रावक के ग्यारह भेद नहीं हैं; नैष्ठिक के ही होते हैं। पाक्षिक के तो पांच उदुम्बर, पीपल, बड़, ऊमर, कठूमर, पाकर इन पांच फलों का और मद्य, मधु, मांस सहित इन तीन मकारों का प्रत्यक्ष त्याग है। किन्तु आठ मूलगुणों में अतिचार लगते हैं सो कहते हैं। मास में सम्बन्धी में चमड़े के संयोग का, घी, तेल, हींग, जल, रात का भोजन, द्विदल और दो घड़ी से अधिक का छना हुआ जल, और बिंधे हुए अन्न, इत्यादि मर्यादा रहित वस्तु में त्रस जीवों की व निगोद की उत्पत्ति है, उसके भक्षण का दोष लगता है। किन्तु प्रत्यक्ष पांच उदुम्बर, तीन मकार का भक्षण नहीं करता है और सात व्यसनों का भी सेवन नहीं करता है। और अनेक प्रकार के नियम-संयम का पालन करता है। धर्म का विशेष पक्ष होने से इसे पाक्षिक जघन्य संयमी जानो। यह प्रथम प्रतिमा का धारक भी नहीं है।.... पाक्षिक तो संयम के लिए उद्यमी हुआ है, करना प्रारम्भ नहीं किया है। किन्तु साधक सम्पूर्ण रूप से कर चुका है—ऐसा प्रयोजन जानना।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि साधारण श्रावक भी आठ मूलगुणों का पालन करने वाला सात व्यसनों का त्यागी होता है। पं. बनारसीदासजी कहते हैं[1]—*अन्तर्मुख शुद्ध परिणति पूर्वक कषाय की मन्दता से अष्ट मूलगुणों का धारण और सात व्यसनों का त्याग सहज रूप से होना दर्शन प्रतिमा है।* इसमें निश्चय-व्यवहार दर्शन प्रतिमा का एक साथ वर्णन है। पं. जयचन्दजी छाबड़ा का कथन

---

1 *प्रश्नोत्तरश्रावकाचार*, 12.60

2. *श्रावक के तीन भेद हैं— पाक्षिक (एक देश पाँच पापों का त्याग, अभ्यास से श्रावक धर्म, प्रारब्ध देशसंयमी), नैष्ठिक (निरतिचार व्रत का पालन, घटमान देश संयमी), साधक (देश संयम पूर्ण होने पर निष्पन्न देशसंयमी)*
—*सागारधर्मामृत*, अ. 2-3

है कि पांच अणुव्रत या पांच उदुम्बरफल तथा तीन मकार का आठ मूलगुण में कोई विरोध नहीं है। जिन वस्तुओं में साक्षात् त्रस दिखलाई पड़ते हैं उन सभी वस्तुओं का भक्षण नहीं करता है, देवादिक के निमित्त तथा औषधादिक के निमित्त दिखलाई पड़ने वाले त्रस जीवों का घात नहीं करता है—यह अभिप्राय है। सो इसमें अहिंसाणुव्रत आ गया और सात व्यसनों के त्याग में झूठ का और चोरी का और परस्त्री का ग्रहण नहीं है। इसमें अति लोभ के त्याग से परिग्रह का घटाना आ गया—ऐसे पांचों अणुव्रत आ जाते हैं। इनके अतिचार टलते नहीं हैं, इसलिये अणुव्रती नाम नहीं पाता है। ऐसे दर्शन प्रतिमा का धारक भी अणुव्रती है, इसलिये देशविरत सागार संयमाचरण चारित्र में इसको भी गिना है।[2] ब्र. पं. रायमल्लजी ने श्रावक का वर्णन "सागारधर्मामृत" को देख कर किया है। क्योंकि वे कहते हैं—पाक्षिक जघन्य संयमी प्रथम प्रतिमा आदि संयम का धारक का उद्यमी हुआ है। इसलिये इसका दूसरा नाम प्रारब्ध है। इसी प्रकार नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह भेदों में असंयम का हीनपना जानना। इसलिये इसका दूसरा नाम घटमान है। तीसरे साधक का दूसरा नाम निष्पन्न है। पं. आशाधरजी ने देशसंयमी के प्रारब्ध, घटमान और निष्पन्न इन तीन भेदों का उल्लेख किया है।[3] पाक्षिक श्रावक व्रतों का अभ्यास करता है, इसलिये वह प्रारब्ध देशसंयमी कहा जाता है। पाक्षिक सम्बन्धी आचार के संस्कार से निश्चल और निर्दोष सम्यक्त्व वाला, संसार, शरीर और भोगों से विरक्त अथवा संसार के कारणभूत भोगों से विरक्त, पंचपरमेष्ठी का उपासक, निरतिचार अष्ट मूलगुणों का पालक आगे की प्रतिमा के धारण को उत्सुक और आजीविका के लिए अपने वर्ण, कुल और व्रत के अनुकूल कृषि आदि आजीविका करने वाला दर्शनप्रतिमाधारी दार्शनिक श्रावक कहलाता है। 'परमेष्ठिपदैकधी' पद में आये हुए 'एक' शब्द से यह सूचित होता है कि दार्शनिक श्रावक आपत्ति के समय में भी शासनदेवता की पूजा नहीं करता। 'भवांगभोगनिर्विण्णः' पदका यह अभिप्राय है कि दार्शनिक श्रावक के मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी तथा अप्रत्याख्यानावरण सम्बन्धी आठ कषायों का उदय न होने से संसार, शरीर और भोगों के भोगने पर भी उनमें उसकी आसक्ति नहीं पाई जाती।[1] ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन करते हुए पं. रायमल्लजी एक ही

---

1 *बनारसीदास : नाटक समयसार, चतुर्दश गुणस्थानाधिकार, छन्द 59*

2, *पं जयचंद छाबड़ा : चारित्रपाहुड टीका, गाथा 23 वचनिका*

3 *प्रारब्धो घटमानो निष्पन्नश्चार्हतस्य देशयमः।*
योग इव भवति यस्य त्रिधा स योगीव देशयमी ॥ सागारधर्मामृत, 3।6

पंक्ति में कहते हैं—प्रथम दर्शनप्रतिमा का धारक श्री सात व्यसनों को अतिचार सहित छोड़ता है और आठ मूलगुण अतिचार रहित ग्रहण करता है।

आठ मूलगुणों के सम्बन्ध में ग्रन्थकार ने कई आचार्यों के मत भेद का भी उल्लेख किया है—पांच उदुम्बरफल का एक, तीन मकार के तीन, नवकार मन्त्र का स्मरण, जलगालित, रात्रि-भोजन का त्याग, और दो घड़ी के उपरान्त का अनछने जल का त्याग—ऐसे आठ मूलगुण जानना। वास्तव में आठ मूलगुणों के इन विभिन्न वर्णनों में मूल में त्रस-हिंसा का ही त्याग है। अतः नाम में भेद है; भाव में भेद नहीं है।

अपनी आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, कोमलता के साथ नैष्ठिक श्रावक आठ मूलगुणों का अतिचार रहित पालन करता है। सर्वप्रथम मदिरा के अतिचार हैं—आठ पहर (24 घंटे) के बाद का अचार खाना, चलितरस तथा फूलन (फफूंद, फुई) वाली वस्तु खाना, इत्यादि। मुरब्बा, बिगड़ा हुआ दही, छाछ, (मट्ठा), घी, तेल, रस आदि एवं गांजा, अफीम, तम्बाकू, भांग, कोकोकोला जैसे अल्कोहल वाले पेय पदार्थ, कोकीन, आसव-अरिष्ट, अर्क आदि मद्य के अतिचारों में गिने जाते हैं। बहुत दिनों के बने हुए अवलेह, स्वेश (फलपाक), शर्बत आदि भी इनमें सम्मिलित हैं।

वास्तव में भोजन और मन का गहरा सम्बन्ध है। शराब पीते ही मनुष्य मदहोश हो जाता है। बन्दर को शराब पिला दो, फिर देखो वह क्या उत्पात करता है? नशे वाली वस्तुएं मन और शरीर दोनों को दूषित करने वाली हैं। इसलिये जो मनुष्य शान्ति चाहता है, उसे इस तरह की वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिए। आगम में जीवराशि दो भागों में विभाजित की गई है—असंख्यात (बहुत अधिक) सूक्ष्म जीव-राशि और संख्यात जीवराशि। सूक्ष्म से अभिप्राय उन जीवों से है जो आंखों से तो नहीं दिखलाई पड़ते, किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण यन्त्र (माइक्रोस्कोप) से भी स्पष्ट नहीं दिखाई देते हैं।

जिनागम में विभिन्न प्रकार के जीवों का अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया गया है। संसारी जीवों का ज्ञान तथा इन्द्रियों के आधार पर वर्गीकरण उनकी अपनी विशेषता कही जाती है। इसलिये जो शरीर के चिह्न आत्मा का ज्ञान कराने में सहायक होते हैं उनको इन्द्रियां कहा गया है। इन्द्रियां पांच होती

---

1. श्रावकाचार संग्रह, भाग 2, पृ 23 से उद्धृत

हैं—स्पर्शन, रसना (जीभ), घ्राण (नाक), चक्षु (आंख) और कर्ण (कान)। एक इन्द्रिय वाले जीव को स्थावर और दो इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय वाले जीव को त्रस कहते हैं। स्थावर जीवों के पांच भेद हैं—पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक। वनस्पतियों का वर्गीकरण साधारण (अनन्तकाय) और प्रत्येक के रूप में किया गया है। इस प्रकार वनस्पति के दो भेद होते हैं—सूक्ष्म और बादर। बादर के भी दो भेद कहे गये हैं—प्रत्येकशरीर बादर और साधारणशरीर बादर। जिस एक शरीर का एक ही स्वामी (मालिक) हो उसे प्रत्येक शरीर कहते हैं और जिसके एक शरीर में अनन्त जीव स्वामी पाये जाते हैं उसे साधारण कहते हैं; जैसे—कन्द। प्रत्येकशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के होते हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त। साधारणशरीर वनस्पतिकायिक जीव दो प्रकार के हैं—बादर और सूक्ष्म एवं बादर भी दो प्रकार के पर्याप्त और अपर्याप्त कहे गये हैं।

यथार्थ में जैनधर्म में वनस्पतियों का विवेचन पूर्णतः वैज्ञानिक है। डॉ. जगदीशचन्द्रबोस अपनी प्रयोग-शाला में अपने शोध-कार्यों से यह तो सिद्ध कर ही चुके थे कि प्रत्येक वनस्पति में जीव है, वह प्राणवान है; किन्तु अपने ही जीवन-काल में उन्होंने यन्त्रों की सहायता से यह भी दिखला दिया था कि झाड़ के पत्तों में, फूल आदि में अलग-अलग जीव है। अतः वनस्पति के मूल भेद प्रत्येक और साधारण प्रामाणिक हैं।[1] प्रत्येक वनस्पति के भी दो भेद कहे गये हैं—सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित। निगोद सहित प्रत्येक वनस्पति को सप्रतिष्ठित कहते हैं। साधारण जीव को ही निगोद जीव कहते हैं। वनस्पति में ही साधारण जीव होते हैं; पृथ्वी-पवन आदि में नहीं होते हैं। कन्द-मूल आदि सभी वनस्पतियां प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित दोनों प्रकार की होती हैं। दूब, बेल, छोटे वृक्ष आदि अथवा ऐसी वनस्पतियां जिनमें नसें या लम्बी-लम्बी रेखाएं बन्धन तथा गांठें दिखलाई नहीं पड़तीं, जिनके टुकड़े समान हो जाते हैं, जिनमें तोड़ने पर तन्तु न लगा रहे तथा काटने पर भी जिनकी पुनः वृद्धि हो जाय उसे सप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं। इसके विपरीत जिनमें रेखा, गांठें, सन्धियां स्पष्ट नजर आती हैं, जो काटने के बाद फिर न उग सकें, जिनमें तन्तु हों और तोड़ने पर भी जिनमें तन्तु लगे रहें उनको अप्रतिष्ठित कहते हैं।[1]

---

1. "वणप्फइकाइया दुविहा, पत्तेयसरीरा साधारणसरीरा। पत्तेयसरीरा दुविहा, पज्जत्ता अपज्जत्ता। साधारणसरीरा दुविहा, बादर सुहुमा।"
—षट्खण्डागम, 1, 1, 1

तथा—अनगार धर्मामृत टीका अ. 1, श्लोक 22

साधारण वनस्पतिकायिक निगोदजीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि किसी भी परिस्थिति में वे दिखलाई नहीं पड़ते। अमरीका की अन्तरिक्ष प्रयोगशाला में यह प्रयोग सिद्ध हो गया है कि प्लैवोबेक्टिन जीवाणु अतिसूक्ष्म है। इसका जन्म-मरण नहीं होता। यह अति शीत और अति उष्णता से भी प्रभावित नहीं होता। इसे हम लिपोरिया के समकक्ष मान सकते हैं। किन्तु बादर निगोद अनन्त जीवों का पिंड है जो सूक्ष्मदर्शी यन्त्रों की सहायता से भी वस्तुतः नहीं देखा जासकता है। सूक्ष्म साधारण जीव गोलाकार, अदृश्य होते हैं और वे साधारण जीवों में उत्परिवर्तित हो सकते हैं। ये अलिंगी होते हैं। इनको आधुनिक बैक्टैरिया के समकक्ष माना जा सकता है। प्रत्येक वनस्पति बादर ही होते हैं। बादर साधारण जीवों मे अनेक सूक्ष्म साधारण जीव होते हैं। इनमे फंफूदी, काई, शैवाल, किण्व आदि समाहित है, जिनको आजकल एल्गे, फंगस, वायरस आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यदि सूक्ष्म साधारण जीव को एक कोशिकीय के समकक्ष माना जाय तो बादर साधारण और प्रत्येक जीव बहु कोशिकीय वनस्पति ठहरते हैं। प्रत्येक शरीर बादर के बारह भेद कहे गये है—वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता, वल्ली, पर्व तृण, वलय, हरित, औषधि, जलरुह, कुहुरू। भूमि में बोने के अन्तर्मुहूर्त पर्यन्त सभी वनस्पति सप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है। कचिया अवस्था में सभी वनस्पतिया सप्रतिष्ठित प्रत्येक होती है।

सप्रतिष्ठित वनस्पति को साधारण भी कहते हैं। एक साधारण शरीर मे अनन्त जीवों का निवास-स्थान होने से साधारण वनस्पति मे अनन्त जीव पाये जाते हैं। इस कारण इसको अनन्तकाय कहते हैं। उदाहरण के लिए आलू,मूली अदरक, आदि साधारण वनस्पतियो मे लोक के जितने प्रदेश हैं उनसे असख्यात गुणे जीव तो प्रत्येकशरीर में पाये जाते हैं जिनको स्कन्ध कहते हैं; जैसे मनुष्य का शरीर। इन स्कन्धों मे असंख्यात लोकप्रमाण अन्डर पाये जाते हैं; जैसे शरीर में हाथ-पांव आदि। एक अन्डर में असंख्यात लोकप्रमाण पुलवी पाये जाते हैं जैसे हाथ-पांव में अंगुली आदि। एक पुलवी में असंख्यात लोकप्रमाण आवास पाये जाते हैं; जैसे अंगुली में तीन पोरी। एक आवास में असख्यात लोकप्रमाण निगोद पाये जाते हैं; जैसे अगुली के एक भाग मे अनेक रेखाएं पाई जाती हैं। एक निगोद शरीर में सिद्ध समूह से अनन्त गुणे जीव पाये जाते हैं; जैसे अगुली के एक भाग में अनेक रेखाएं पाई जाती हैं। एक निगोद शरीर मे सिद्ध समूह से अनन्त गुणे जीव पाये जाते हैं; जैसे एक रेखा में अनेक प्रदेश। इस प्रकार एक सप्रतिष्ठित वनस्पति के टुकड़े में अनन्त जीवों का अस्तित्व पाया जाता

1 द्रष्टव्य है—मूलाचार, गा. 216-217 तथा गोम्मटसार जीवकाण्ड, गा. 188-190 एवं कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गा. 128 की टीका

है। एक हरितकाय में अप्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर असंख्यात या संख्यात पाये जाते है, उनमें जितने शरीर होते हैं उतने ही जीव पाये जाते हैं। इस प्रकार जीव-हिंसा की दृष्टि से अचार, मुरब्बे, कांजी बड़े, दही बड़े, खमीरे, अमर्यादित चटनी, पापड़, बड़ी, आदि अनेक वस्तुएं शामिल हैं। कई वनस्पतियों में जो भूमि के भीतर फलित होती हैं; जैसे आलू, अरबी, गाजर, मूली, अदरक आदि, बहुत कच्ची सब्जी, कोंपल आदि और जमीन को फोड़कर निकलने वाली वनस्पति जैसे खुम्भी, सांप की छत्री आदि इसी मे सम्मिलित है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी इन साग सब्जियों को नहीं खाना चाहिए। आयुर्वेद के वर्णन के अनुसार दो प्रकार के पदार्थ कहे गये है—स्वभाव से हितकारी अर्थात् मनुष्य शरीर की प्रकृति के अनुकूल और विपरीत पदार्थ। अहितकारी पदार्थों मे बासा भोजन, गुड़ की राब, तांबे के बर्तन मे रखा हुआ दूध-दही, दस दिन तक रखा हुआ कांसे के बर्तन का घी, गुड़ के साथ दही, दही के साथ ताड़ का फल, दूध और सुरा मिला कर लेना, इत्यादि प्रकृति-विरुद्ध है। इस प्रकार के विरुद्ध आहार को विष के समान मारक कहा गया है।[1] तीसरी दृष्टि सात्विक और तामसिक है। तामसिक भोजन मे प्याज, लहसुन आदि की गिनती की जाती है। सभी प्रकार की नशीली चीजें तामसिक कही जाती हैं। इस तरह की वस्तुएं मनुष्य के अन्तर मे तामसिक वृत्ति उत्पन्न करने में कारण बनती है। उदाहरण के लिए, शराब मनुष्य की बुद्धि मोहित कर देती है हित-अहित का विवेक नही होने देती और वह अनेक जीवों की योनि (उत्पत्ति-स्थान) है जिनका नियम से घात होता है। अतः मद्य की भांति उसके दोषों से भी बचना चाहिए। जीभ के रसास्वाद के लिए अनन्त जीवों का घात करना सर्वथा अनुचित है।

जिसने मांस न खाने का नियम लिया है उसे चमड़े के बर्तन में रखी हुई हींग, घी, तेल, पानी आदि का सेवन नही करना चाहिए। इसी प्रकार चमड़े की चलनी तथा सूपे से स्पर्शित आटे का भक्षण न करे। चर्बी मिला कर बनाया हुआ घी, साबुन, काडलीवर आइल (मछली का तेल) जैसी औषधियों का सेवन न करे। रात्रिभोजन, द्विदल, छाने हुए जल का दो घड़ी बाद सेवन, घुना हुआ अन्न भक्षण करने से मांसत्याग-व्रत में दूषण लगता है, क्योंकि इनमें त्रसजीवों व निगोदिया जीवों की उत्पत्ति होती है।

---

1. *विरुद्धमपि चाहारं विद्याद्विषगरोपमम्। अष्टांगहृदय सूत्रस्थान, अ 7, श्लोक 29*

मधु (शहद) की एक बूंद में असंख्यात त्रस जीवों का वास होता है। इसलिये मधु का त्याग करने वाले को फूल का भक्षण नहीं करना चाहिए। आंख में आंजने के लिए औषधि रूप में भी शहद का सेवन नहीं करना चाहिए।

पांच उदुम्बर फल के अतिचार हैं—अज्ञान फल का भक्षण नहीं करे और बिना शोधन किए हुए किसी भी फल का सेवन नहीं करे।

संक्षेप में, जैनधर्म में अभक्ष्य का विचार पांच दृष्टियों से किया गया है। उनके नाम हैं—त्रसघातक, बहुघातक, अनुपसेव्य, नशाकारक, अनिष्टकारक। प. आशाधरजी कहते हैं कि त्रसघात, बहुस्थावरघात, प्रमादजनक, अनिष्ट और अनुपसेव्य पदार्थों के खाने का मांस, मधु और मदिरा के समान त्याग किया जाना आवश्यक है।[1] जिन पर बहुत से सम्मूर्छन जीव उड़कर बैठते हैं, जिनमें जीवों के रहने के लिए बहुत जगह होती है, ऐसे कमलनाल आदि त्रसघातविषयक पदार्थ हैं। जिन कन्दमूल आदि के भक्षण से अनन्त स्थावरो की हिंसा होती है वे सभी पदार्थ (जैसे—अदरक, आलू, गाजर, शकरकन्द, मूली आदि) बहुस्थावर हिंसाकारक है। कुछ विद्वान् कन्दमूल के सम्बन्ध में यह विचार करते हैं कि 'सचित्तविरत" का उल्लेख किया है आचार्य समन्तभद्र ने, जिसमें अप्रासुक वनस्पति का त्याग किया गया है; किन्तु प्रासुक वनस्पति के भक्षण का निषेध नही है। "प्रासुकस्य भक्षणे नो पापः" अर्थात् अचित्त के भक्षण में कोई पाप नही होता।[2] "योगसार प्राभृत" के भाष्य में (पृ. 182-83 में भी व्याख्याकार ने यही विचार प्रकट किया है। उसके ही शब्दों मे—"जो फल, कन्दमूल तथा बीज अग्नि से पके हुए नहीं हैं और भी जो कुछ कच्चे पदार्थ हैं उन सबको अनशनीय (अभक्ष्य) समझ कर वे धीर मुनि भोजन के लिए ग्रहण नहीं करते हैं।" मूलाचार" की 9,95 गाथा में आगत" अनग्निपक्व' विशेषण से स्पष्ट है कि जैन मुनि कच्चे कन्दमूल नहीं खाते, परन्तु अग्नि मे पका कर शाकभाजी आदि के रूप में प्रस्तुत किए कन्दमूल वे अवश्य खा सकते है। जब मुनि प्रासुक कन्दमूल खा सकते है तो श्रावक क्यों नहीं खा सकता?" किन्तु यह कथन आगम के विरुद्ध है।

---

1. *पलमधुमद्यवदखिलस्त्रसबहुघातप्रमादविषयोऽर्थः ।*
त्याज्योऽन्यथाप्यनिष्टोऽनुपसेव्यश्च व्रतादि फलमिष्टम् ॥

—*सागारधर्मामृत*, 5।15

2. पं. जुगलकिशोर मुख्तार : समीचीन-धर्मशास्त्र, अ. 7,
कारिका 141 की व्याख्या, पृ. 184

सम्बन्ध में, समझ की कठिनाई है । इस सम्बन्ध में पं. रतनलाल कटारिया के विचार सुनिश्चित तथा मान्य हैं । उनके ही शब्दों में[1] "अनन्तकायिक कन्दमूल में कन्द की जड़ें पृथ्वी में झाड़ की तरह जाल रूप में फैलती हैं और मूल की जड़ें जमीन में प्रायः सीधी चली जाती हैं । यह दोनों में अन्तर है । जो सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है, उसमें साधारण अनन्त कायिक निगोद पाये जाते हैं । अतः इनका किसी भी तरह उपयोग करें तो अनन्त जीवों का निश्चित विघात होता है । इस कारण इनका सर्वथा त्याग श्रावक के लिये बताया है । अग्नि-पक्व करना तो दूर, इनके छूने का भी शास्त्रकारों ने निषेध किया है । जो श्रावक के लिए ही सर्वथा और समग्र रूप से अभक्ष्य है, अग्राह्य है वह मुनि के लिए कैसे ग्राह्य हो सकता है ?" इससे स्पष्ट है कि न गीले और न सूखे कन्द-मूल का सेवन श्रावक कर सकता है । अतएव आलुओं को सुखा कर या प्रासुक कर खाना उचित नहीं है ।

सात व्यसनों के त्याग के अतिचार इस प्रकार है—प्रथम जुआत्याग का अतिचार है—शर्त लगा कर खेलना आदि । मांस और मदिरात्याग के अतिचार पहले कह चुके है । परस्त्रीत्याग के अतिचार— क्वारी लड़की से क्रीड़ा करना तथा अकेली स्त्री से एकान्त में वार्तालाप करना । वेश्यात्याग के अतिचार-नृत्य-गान आदि में आसक्ति पूर्वक प्रवृत्ति, वेश्या के घर आना-जाना, रमना, गोठ करना आदि । शिकारत्याग के अतिचार – लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, धातु के बने तथा चित्रों में अंकित घोड़ा, हाथी, मनुष्य आदि जीवों के आकार का छेदन-भेदन आदि करना । चोरीत्याग के अतिचार—पराये धन को बलपूर्वक ले लेना या बहुमूल्य वस्तु को थोड़े मूल्य में ले लेना, तोल में कम तोलना, किसी की धरोहर रख कर रखने वाला भूल जाये तो रकम मार देना, तोल में अधिक लेना, भोले मनुष्य का माल चुराना, इत्यादि । इन अतिचारों का त्याग करे तो प्रथम प्रतिमा का धारक श्रावक है और कदाचित् अतिचारों का त्याग न कर सके या हो सके तो पाक्षिक श्रावक जानना चाहिए । आगे और भी कितनी ही वस्तुओं का त्याग करता है सो कहते हैं— विधा (घुना) हुआ अन्न अभक्ष्य है । लोनी (मक्खन) तथा द्विदल अर्थात् दुफाड़ (दो टुकड़े वाले) अनाज के संयोग से या चिरौंजी आदि के साथ कच्चे या गर्म किए हुए दूध से जमाये गये दही-

---

1. सन्मति-सन्देश, वर्ष 30, अंक 10, अक्तूबर, 1985 पृ 26 से उद्धृत

छाछ (मट्ठा) का खाना[1]। चातुर्मास के दिनों में तीन दिन, सर्दी के दिनों में सात दिन और ग्रीष्मकाल में पांच दिन के बाद का पिसा हुआ आटा नहीं खाना। दो दिन से अधिक का दही नहीं खाना। आज का जमाया हुआ दही कल खाना। जामन देने के पश्चात् आठ पहर की मर्यादा है। घुनी हुई वस्तु के भक्षण में, दही-गुड मिला कर खाने में, जलेबी तथा मक्खन आदि खाने में त्रस व निगोद जीव उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनका त्याग करना। इनके खाने में मांस जैसा दोष है। इनमें राग भाव बहुत आता है। बैंगन, साधारण वनस्पति,[2] घोलबड़ा, बर्फ, ओला (करका), मिट्टी, जहर तथा रात्रि-भोजन का त्याग करें। इनके खाने मे बहुत रोग उत्पन्न होते हैं। चलितरस में बासी रसोई, अमर्यादित, आटा, घी व तेल, मिठाई का त्याग करे और जिसका रस बिगड़ गया हो ऐसे आम आदि का भक्षण नहीं करें। और बड़े-बड़े झाऊ बेर जो कोमल बहुत होते हैं, हाथ से फोड़े तो दया नहीं पले, लट मरे इसलिये उसका भी त्याग कर दे। में काना बहुत होता है। इसमे लट होती है। अपने

---

1 *आमगोरससम्पृक्तं द्विदलं प्रायशोऽनवम्।*
वर्षास्वदलितं चात्र पत्रशाकं च नाहरेत्॥

—सागारधर्मामृत, अ. 5, श्लोक 18

तथा —किशनसिंह कृत क्रियाकोष द्रष्टव्य है।
पं. आशाधरजी ने 'द्विदल' में चना-मूंग आदि दूध, दही, छाछ (मट्ठा) और लार से मिलने पर—अन्न मात्र ग्रहण किया है। किन्तु पं. किशनसिंहजी ने चारोली (चिरोंजी), बादाम आदि काष्ठ द्विदल तथा तरोई, भिंडी, आदि हरित् द्विदल भी ग्रहण किया है।

2. *साधारण वनस्पति को अनन्तकाय कहते हैं। अनन्तकाय वनस्पति के सात भेद हैं—मूलज, अग्रज, पर्वज, कन्दज, स्कन्धज, बीजज और सम्मूर्छनज। अदरक, हल्दी आदि मूलज हैं। आर्यिका ककड़ी आदि अग्रज हैं। ईख, बेंत, आदि गांठो से उत्पन्न होने वाली पर्वज है। प्याज, सूरण, आदि कन्दज हैं। कटेरी, पलाश (ढाकरा) आदि स्कन्धज हैं। धान और गेहूं आदि बीजज हैं। इधर-उधर के पुद्गलों के सम्मिश्रण से होने वाली वनस्पति सम्मूर्छनज हैं। इनमें से विशेषकर कन्द और मूल का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। नाली (पोली भाजी), सूरण, तरबूज, द्रोण पुष्प, मूली, अदरख, नीम के फूल, केतकी के फूल आदि के खाने में जिह्वा-स्वाद का सुख तो थोड़ा है पर एकेन्द्रिय प्राणियों का घात बहुत है।*

—सागारधर्मामृत, 5।16

आग लगे हुए ग्राम में भी कूप के सार समान कष्ट होते हैं सो बिना देखे चूसना नहीं चाहिए। और काला सांटा (गन्ना), काची ककड़ी आदि काने फल में कष्ट उत्पन्न होते हैं, उनका भक्षण छोड़ देना चाहिए। वर्षा के दिनों में साग-भाजी आदि हरितकाय में त्रसजीवों के निमित्त से बहुत कष्ट उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनको भी नहीं खाना चाहिए। कोला (कद्दू, काशीफल), तरबूज आदि बड़ा फल इनके खाने तथा काटने में निर्दयपना उत्पन्न होय है, चित्त मलिन हो जाता है—जब हाथ में छुरी लेकर इनको चीरते हैं तब त्रस जीवों के घात जैसे परिणाम होते महसूस होते हैं। इसलिये बड़े फल का दोष विशेष है। इसी प्रकार सभी तरह के फूल, कोमल हरितकाय या कच्चिया वनस्पति जो अपरिपक्व हो, गन्ना आदि की पोर, बहुत नरम ककड़ी, नीबू आदि की फाकी जो गूढ़ होय उन सबका भक्षण त्याग देना चाहिए। ऐसी वनस्पति में निगोदिया जीव होवे है। जिसमें त्रस जीव हों, वह सभी वनस्पति छोड़ देना उचित है। इतना ही नहीं, जिस व्यापार-धन्धा में त्रस जीवों का बहुत घात होता है, वह भी नहीं करे। अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु को चढ़ाये हुए द्रव्य को निर्माल्य कहते हैं। उसका एक अंश भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। उसका फल नरक-निगोद है। यद्यपि भगवान को चढ़ाया हुआ द्रव्य परम पवित्र है, विनय करने योग्य है; किन्तु उसे लेना अत्यन्त अनुचित है।

षट् आवश्यक—

यथार्थ मे प्राणी मात्र के लिए धर्म एक है। धर्म एक है और एक ही रहेगा। फिर, सागार (गृहस्थ), अनगार (साधु) धर्म जैसे भेद क्यों हैं? प्रतिपादन करने के लिए गृहस्थधर्म और मुनिधर्म भिन्न-भिन्न कहा जाता है; किन्तु दोनों मे अन्तर केवल इतना है कि श्रावक धर्म का एकदेश पालन करता है और यति-मुनि सर्वदेश पालन करते हैं।[1] प्राचीन काल मे साधु और श्रावक दोनों के छह आवश्यक समान थे। इतना अवश्य है कि साधु के आत्म-लीनता व स्थिरता विशेष होने से प्रचुर सुख होता है, किन्तु श्रावक तथा सद्गृहस्थ को अपनी भूमिका के अनुसार आंशिक सुख की प्राप्ति होती है। पण्डितप्रवर टोडरमलजी के शब्दों में—"ये षट् आवश्यक साधु को तौ अवश्य कर्तव्य हैं; मुनि के तौ ये पूर्ण हैं। अर श्रावक के अपनी शक्ति परमाण मुनि तै कछु एक न्यून हैं। मुनि कै परिग्रह के त्याग तै थिरता विशेष है अर श्रावक के गृहस्थ

---

1. *दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं।*
सायारं सग्गंथं परिग्गहरहियं खलु णिरायारं॥ चारित्रपाहुड, गा. 21

परिग्रह के योग से विरता अल्प है। श्रद्धा बोऊंगि के समान है।[1]" छह आवश्यकों का सर्वप्रथम उल्लेख "मूलाचार" में मिलता है। कहा है—

> समदा थवो य वंदण पाडिक्कमणं तहेव णादव्वं।
> पच्चक्खाण विसग्गो करणीयावासया छप्पि॥ मूलाचार, गा. 22

अर्थात्—सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान तथा व्युत्सर्ग ये करने योग्य आवश्यक छह जानना चाहिए।

आचार्य कुन्दकुन्द ने पाहुड—रचनाओं में, रयणसार आदि ग्रन्थों में कहीं भी छह आवश्यकों का उल्लेख नहीं किया है। केवल "नियमसार" में यह वर्णन किया है— निर्मल स्वभाव आत्मा के ध्यान से आत्मवश होना आवश्यक है।[2] साधु प्रतिक्रमणादिक क्रियाओं को करता हुआ निश्चयचारित्र का निरन्तर पालन करे।[3] अनुयोगद्वारसूत्र में कहा गया है कि श्रमण और श्रावक जिस विधि को अहर्निशि अवश्य करणीय समझते है उसे आवश्यक कहते है।[4] आचार्य अमितगति ने अपने "श्रावकाचार' मे सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यकों का छह-छह प्रकार से पालन करने का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, द्रव्यसामायिक, क्षेत्रसामायिक, कालसामायिक, भावसामायिक, स्थापनासामायिक—ऐसे ही स्तवन आदि मे भी लगा लेना चाहिए। इनको उत्कृष्ट श्रावक उत्तम रीति से (भली प्रकार) पालता है, किन्तु संसार के पार जाने की इच्छा रखने वाले साधारण श्रावक अपनी शक्ति के अनुसार यथायोग्य पालन करते है।[5]

मूल मे जिनागम में पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह व्रतों मे सम्पूर्ण श्रावकाचार समाहित था। आचार्य कुन्दकुन्द, आ. समन्तभद्र, आ. उमास्वामी, आ. अकलंक, आ. अमितगति आदि इसी आम्नाय का अनुसरण करते हुए परिलक्षित होते हैं। यहाँ इतना और समझ लेना चाहिए कि अष्ट मूलगुणों का वर्णन अहिंसा के अन्तर्गत किया गया है। सिद्धान्ताचार्य पं.

---

1. *पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, श्लोक सं. 201 की वचनिका*
2. *नियमसार, गा. 146*
3. वही, *गा. 152*
4. *अनुयोगद्वारसूत्र 28, गाथा 2*
5. *उत्कृष्टश्रावकेणैते विधातव्याः प्रयत्नतः।*
   अन्यैरेते यथाशक्ति संसारान्ते यियासुभिः॥—अमितगतिश्रावकाचार, 8, 71

कैलाशचन्द्र शास्त्री के शब्दों में "आचार्य जिनसेन (नौवीं शताब्दी) के 'महापुराण' की रचना से श्रावकधर्म का विस्तार होना प्रारम्भ हुआ। पाक्षिक, नैष्ठिक, साधक उसके भेद हुए; पूजा के विविध प्रकार हुए। प्राचीन षट्कर्म थे— सामायिक, स्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग। मुनि और गृहस्थ दोनों इनका पालन करते थे। उनके स्थान में देवपूजा, गुरूपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कर्म हो गये और इनमें भी पूजन को विशेष महत्त्व मिलता गया।"[1] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि उत्तरकाल में श्रावकों के कर्तव्यों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। क्योंकि "रयणसार" (गा. 10) में दान और पूजा को मुख्य बताया गया है। उसके बिना कोई श्रावक नहीं हो सकता। आचार्य कुन्दकुन्द के पाहुड ग्रन्थों में, वरांगचरित, हरिवंशपुराण, आचार्य अमितगति के श्रावकाचार में दान, पूजा, शील और तप को श्रावक का कर्तव्य कहा गया है। किन्तु उत्तरकाल में शील का स्थान वार्ता, स्वाध्याय और संयम ने ले लिया[2]। तब देवपूजा के साथ-साथ गुरुपूजा का प्रचार बढ़ता गया। और फिर, इन दोनों के लिए दान देना भी आवश्यक हो गया। वर्तमान मे श्रावक के जो षट् आवश्यककर्म प्रचलित है उनका उल्लेख "पद्मनन्दिपंचविंशतिका" मे इन शब्दो में हुआ है—

देवपूजा गुरूपास्ति स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने ॥ 6, 7

निश्चय आवश्यक तो शुद्ध धर्म-परिणति है। ज्ञानी श्रावक के योग्य आंशिक शुद्धि निश्चय से भाव, देव-गुरु-पूजा है। शास्त्रों का अध्ययन-मनन, पापों से विरति, इन्द्रिय-निग्रह, इच्छाओं का निरोध और स्व-पर के अनुग्रह के लिए धनादि देना व्यवहार आवश्यक है। जो पूजा नहीं करता, दान नहीं देता उस गृहस्थ का घर तो श्मसान के समान है। निश्चयधर्म का प्रतिपादन करने वाले भी इस व्यवहार को आवश्यक मानते हैं। अध्यात्म-युग के प्रवर्तक श्रीमद् कानजीस्वामी के शब्दों में "[3] जो जीव निर्ग्रन्थ गुरुओं को नहीं मानता, उनकी पहचान और उपासना नहीं करता, उसको तो सूर्य उगे हुए भी अन्धकार है। इसी प्रकार वीतरागी गुरुओं के द्वारा प्रकाशित सत् शास्त्रों का जो अभ्यास

1. जैन निबन्ध रत्नावली के प्राक्कथन, पृ 23 से उद्धृत
2. द्रष्टव्य है—उपासकाध्ययन की प्रस्तावना, पृ. 66
3. पद्मनन्दिपंचविंशतिका-प्रवचन से उद्धृत

नहीं करता, उसके नेत्र होते हुए भी विद्वान् लोग उसको अन्धा कहते हैं। जिनका पढ़ा करै और शास्त्र स्वाध्याय न करे— उनके नेत्र किस काम के? श्रीगुरु के पास रहकर जो शास्त्र नहीं सुनता और हृदय में धारण नहीं करता उस मनुष्य के कान तथा मन नहीं हैं, ऐसा कहा है। इस प्रकार देव-पूजा, गुरु-सेवा और शास्त्र-स्वाध्याय, ये श्रावक के हमेशा के कर्तव्य हैं। जिस घर में देव-गुरु-शास्त्र की उपासना नहीं होती, वह तो घर नहीं; परन्तु जेलखाना है।"

अन्य मुख्य प्रतिपाद्य विषय—

अन्य प्रतिपादित विषयों में रसोई करने की विधि, रजस्वला की अशुचिता, दान, सामायिक, समाधिमरण आदि मुख्य हैं। रसोई बनाने मे तीन प्रकार से विशेष पाप होता है–बिना बिना-छना, अशोधित अन्न, अनछने पानी और बिना देखे एवं अशुद्ध ईंधन के प्रयोग से निरन्तर पाप होता रहता है। वास्तव मे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता की मर्यादा के पालन का नाम चौका है। चौके मे रसोई बनाते समय स्वच्छता तथा शुद्धता का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है। प्रासुक जल का उपयोग रसोई में करना चाहिये। बिना प्रयोजन चौका देना उचित नहीं है। क्योंकि चौका देने से जीवों की हिंसा विशेष रूप से होती है। लकड़ी व कोयला शुद्ध ईंधन हैं, गोबर (छाणा) अशुद्ध है। ग्रन्थकार के शब्दों मे—"जिन धर्म विषैं तौ जहां निश्चय एक रागादिक भाव नैं छुडाया है अर याही के वास्तै जीवा की हिंसा छुडाई है। सोई नि:पापी राग भावां कैं हिंसा की उत्पत्ति टरै सोई रसोई पवित्र है। जा विषैं ए दोनू बधै सोई रसोई अपवित्र है—ऐसे जानना।" (पृ. 96) बाजार के भोजन में बहुत ही दोष बताया गया है। बाजार की बनी वस्तुएँ, सभी खाद्य पदार्थ असंख्यात त्रस जीवों की हिंसा से उत्पन्न होने के कारण मांस सादृश्य हैं। हलवाई की बनी हुई कोई भी वस्तु खाने योग्य नही है। इसी प्रकार अचार, मुरब्बा, लौंजी आदि अभक्ष्य हैं। इनका सेवन करना उचित नहीं है।

सामान्य रूप से मासिक धर्म के समय अशुद्ध रुधिर के स्राव से तीन-चार दिन स्त्री की स्थिति भंगी या चाण्डाल के सामान अस्पृश्य रहती है। गृहस्थों को ऐसे समय में स्त्री को किसी भी तरह से हाथ नहीं लगाने देना चाहिये। शास्त्र में तो यहाँ तक कहा है कि किसी बर्तन से भी उसका स्पर्श होना योग्य नहीं है। उसकी छाया मात्र से पापड़, मंगोड़ी (बड़ी) लाल रंग की हो जाती है। कई तिर्यंच उसे देखकर अन्धे हो जाते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह विवेक आवश्यक है। आज के नवयुवकों को इन दिनो में अपनी पत्नी को

मासिक धर्म के समय तीन दिनों तक न तो रसोई बनाने के लिये कहना चाहिये और न रसोई के तथा अन्य किसी काम के लिये दबाव डालकर मजबूर करना चाहिये। जो महीने के समय स्त्री की छूत नहीं मानता है उसे भी शास्त्र में चाण्डाल के समान कहा गया है।

अतिथि-संविभाग-व्रत या दान का प्रकरण ग्रन्थकार ने आचार्य अमितगति के श्रावकाचार के आधार पर लिखा है। पात्र-कुपात्र तथा अपात्र का विचार करते हुए लिखते हैं – सम्यक्त्व सहित पात्र है[1]। लेकिन सम्यक्त्व से रहित चारित्र वाला कुपात्र है[2]। जिसके सम्यक्त्व और व्रतादिक दोनों नहीं हैं वह अपात्र है[3]। अपात्र का फल नरकादिक अनन्त संसार है।

सामायिक

समता भाव का नाम सामायिक है। इसे ही साम्य भाव, शुद्धोपयोग, वीतराग तथा निःकषाय भी कहते हैं। वास्तव में ध्यान की सिद्धि होने पर ही सामायिक होती है। जिसका चित्त शुद्ध हो, परिणाम दृढ़ हो, किसी तरह की शंका न हो तब ध्यान हो सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि स्त्री के ध्यान की सिद्धि नहीं है[4]। सभी प्राणियों के प्रति समता होने पर सामायिक होती है[5]। वीतराग जिनवाणी के प्रवचन का सार यही है कि जो वस्तुएँ इष्ट हैं उनमें राग नहीं करना और जो अनिष्ट प्रतीत होती हैं उनमें द्वेष नहीं करना। इस साम्य भाव के होने पर निज स्वरूप में मग्न होना ही सामायिक है। सामायिक में निज स्वरूप का भेद रूप या अभेद रूप का अनुभव होता है। अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव हुए बिना वीतराग भावों की वृद्धि नहीं होती और यह हुए बिना मोह नहीं गलता। इसलिये सामायिक के काल में स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में शुद्धता धारण कर, आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़कर वस्तु-स्वभाव का चिन्तवन करें। वास्तव में सामायिक में शुद्धोप

1 अमितगति–श्रावकाचार, अ 10, श्लोक 33

2 वही, अ 10 श्लोक 34-35

3 पं भागचन्द कृत अमितगति–श्रावकाचार, टीका अ. 10 श्लोक 36-38
द्रष्टव्य है—ज्ञानानन्द श्रावकाचार, पृ. 59

4 *चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।*
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं॥ सुत्तपाहुड गा. 26

5 *जो समो सव्वभूदेसु थावरेसु तसेसु वा।*
तस्स सामाइगं ठाइ इदि केवलिसासणे॥ नियमसार, गा. 126

को छोड़कर सुशील (स्वभाव) को प्राप्त होता है। सर्व सावद्य योगों से निवृत्ति होने पर ही सामायिक होती है।

समाधिमरण—

किसी प्रकार का विकल्प न होना समाधि है। समाधि में ममत्व परिणाम छूट जाता है। किसी भी प्रकार का राग-द्वेष परिणाम नहीं होता। पण्डित-प्रवर रायमल्लजी के शब्दों में—"तो अब भी मेरे ईं शरीर के जाते काहे का विकल्प उपजै ? कदाच न उपजै। विकल्प उपजाने वाला मोह ताका नाश किया, तासूं मैं निर्विकल्प आनन्दमय जिन-स्वरूप नै वारंवार संभालता वा आदि करता स्वभाव मैं तिष्टूं हूं।" शुद्धोपयोग की भावना वाला ही समाधि-मरण के लिये उद्यत होता है। वह शरीर से ममत्व कैसे छोड़ता है ? इसका वर्णन करता हुआ ग्रन्थकार कहता है—"हमारे दोनों ही तरह आनन्द है। अब जो शरीर रहसी तो फेर शुद्धोपयोग ने आराधसी। सो हमारे कोई प्रकार से शुद्धोपयोग का सेवन में कमी नाहीं तो हमारे परिणामां मैं सक्लेशता कोई की न उपजै....कोई तरह की आकुलता उपजावे नाहीं। आकुलता है सोई संसार का बीज है। निश्चय एक स्वरूप ही का बारबार विचार करना, वाही कू वारंवार देखना वाही के गुण कूं चितवन करना, वाही की पर्याय का विचार करना अर वाही का सुमरन करना, वाहीं विषै थिर रहना। कदाच शुद्ध स्वरूप सूं उपयोग चलै तो ऐसा विचार करै यह संसार अनित्य है।" इस प्रकार समाधिमरण का बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त स्वर्गों की महिमा, गोरस की शुद्धता की क्रिया, श्रावक के अन्तराय तथा ग्यारह प्रतिमाओं का भी विस्तृत वर्णन किया गया है। खेती करने के दोष, वस्त्र धुलाने-रंगाने, जुआ खेलने आदि दोषों का भी सटीक वर्णन मिलता है। सद्गृहस्थ तथा श्रावक की लगभग सभी आवश्यक क्रियाओं का वर्णन इस शास्त्र मे किया गया है।

रचना-शैली—

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना-शैली सरल है। प्रसाद गुण से युक्त होने पर भी स्थान-स्थान पर काव्यात्मक छटा तथा अलंकारों का समुचित प्रयोग लक्षित होता है। कल्पना के यथोचित समावेश से, नई-नई उपमाओं तथा दृष्टान्तों से यह रचना भरपूर है। कही बालक-माता का दृष्टान्त है तो कहीं गाय-बछड़े का और कही गुरु-शिष्य का दृष्टान्त है। कई स्थलों पर वर्णन ऐसे हैं जैसे कि साक्षात् चित्र चित्रित कर दिये गये हों। एक चित्र है—"बहुरि मुनि तो ध्यान विषै गरक हुवा सौम्य दृष्टि नै धर्‌या है। अर वहां नगरादिक सूं राजादिक वंदवानै आवै है। सो अबै वे मुनि कहां तिष्ठै है ? कै तो मसानभूमि के विषै,

के निरजन पुराना वन विषै अर के पर्वतनि की कंदिरा कोहिये गुफा विषै अर के नदी के तीर विषै अर के उजाड़ भयानक अटवी विषै के एकांत वृक्ष तले अथवा वाटिका विषै अथवा नगर बाह्य चैत्यालय विषै, इत्यादि स्थानीक मन के ल्यावानै कारन अर उदासीनता के कारन ऐसा स्थानक विषै तिष्ठै हैं। जैसे कोई अपनी निधि नै छिपावता फिरै अर एकांत जायगा का अनुभव करै, तैसे ही महामुनि आपनी ज्ञान-ध्यान रूपी निधि को छिपावते फिरै हैं अर एकान्त ही में वाका अनुभव किया चाहै हैं। (पृ. 12) रचना में अनावश्यक वर्णन या विस्तार का अभाव है। कहीं-कहीं तो परिभाषा मात्र देकर छोड़ दिया गया है। संक्षेप में, रचना सहज, स्फीत तथा यथोचित विशेषताओं से समन्वित है।

भाषा—

ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें अपने समय की बोली जाने वाली ठेठ ढूँढारी भाषा का प्रयोग है। भाषा में प्रवाह तथा मधुरता है। लेखक ने संस्कृत की शब्दावली का कम से कम प्रयोग किया है। इसलिये इसकी भाषा ठेठ है। ठेठ भाषा में वह भी गद्य में लगभग तीन सौ पृष्ठों की एक बड़ी रचना करना एक सच्चे लेखक का ही कार्य हो सकता है। ग्रन्थ का सम्पादन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि लेखक की भाषा के साथ ही वर्तनी भी ज्यों की त्यों रहे। इसमें श्रम भी अधिक करना पड़ा है। क्योंकि आदि से अन्त तक वर्तनी की एकरूपता का बराबर ध्यान रखा गया है।

ग्रन्थ-सम्पादन-विधि—

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पद्यबद्ध ग्रन्थों की अपेक्षा गद्य रचना का और वह भी ठेठ बोली जाने वाली रचना का सम्पादन करना क्लिष्ट कार्य है। क्योंकि प्रतिलिपिकारों ने प्रतिलिपि करते समय बहुत असावधानियाँ बरती है। विशेषकर मात्राओं के प्रयोग में विभिन्न प्रतिलिपिकारों ने अपने-अपने उच्चारण के साथ उनको लिपिबद्ध किया है। उपलब्ध प्रतिलिपियों के आधार पर ही भाषा का वैज्ञानिक दृष्टि से सम्पादन किया गया है, किन्तु कहीं भी पाठ-भेद नहीं दिये गये हैं। प्रकरण तथा भावों के अनुसार प्रथम तो पाठ-भेद का अवकाश मिला नहीं है, फिर एक से अधिक प्रतियों में प्राप्त पाठ को ही तर्क-संगत व उचित होने से उसे ही मूल स्वीकार कर लिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का सम्पादन छह हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया गया है। इनमें से तीन हस्तलिखित प्रतियों का उपयोग आदि से अन्त तक किया गया है। उनमें से प्रथम प्रति सिरोंज की लिखी हुई है जो श्री दि. जैन मन्दिर सरस्वती भण्डार, भोपाल से प्राप्त हुई है। इसकी क्रम सं. 115 है। इसके प्रतिलिपिकार मोहनलाल हैं। इसमें कुल पाना सं. 209 है। यह

आश्विन शु. 2 बुधवार, वि. सं. 1905 की प्रतिलिपि है। दूसरी हस्तलिखित प्रति दिल्ली की है। यह क्र सं. ऊ. 8 की दि. जैन सरस्वती भण्डार, धर्मपुरा, नया मन्दिरजी, दिल्ली से प्राप्त हुई है। इसमें पत्र संख्या 131 है। इसकी प्रतिलिपि कार्तिक शु 11 सोमवार, वि. सं 1929 में हुई थी। तीसरी प्रति अजमेर की है। इसकी पत्र संख्या 146 है। यह बड़धड़ा पंचायती मन्दिर में क्र. सं. क-67 पर सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि पौष शु 14 वि. सं 1953 में हुई थी। चौथी प्रति नीमच के दि. जैन मन्दिर की है। इसमें लिपिकार ने संवत् नहीं दिया है। इसकी सबसे प्राचीन प्रतिलिपि आरा में है। वहाँ के सरस्वती भण्डार में झ-5 (क) क्रम संख्या से यह कुछ दिनों के लिये प्राप्त हुई थी। इस प्रति के ऊपर गुमानीलाल कृत श्रावकाचार लिखा हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति भी दि. जैन मन्दिर, बुरैया (झांसी) से प्राप्त हुई थी। किन्तु दुर्भाग्यवश सामान के साथ वह प्रति चोरी चली गई, जिससे बराबर उपयोग नहीं हो सका। इनके अतिरिक्त एक मुद्रित प्रति का भी आदि से अन्त तक उपयोग किया गया है। यह वि. सं 1975 में सद्बोध रत्नाकर कार्यालय, बड़ा बाजार, सागर से प्रकाशित हुई थी। इसकी पृ. संख्या 292 है। इसके संशोधक श्री मूलचन्द मैनेजर ने उस समय यह लिखा था कि इस ग्रन्थ की एक-एक प्रति वर्तमान समय में प्रत्येक जैनी के हाथ में होना आवश्यक है। उनका यह कथन आज भी सत्य है। अन्त में यही ज्ञातव्य है कि मूल लेखक की रचना को ज्यों की त्यों पाठकों तक पहुँचाने में आह्लाद का विशेष अनुभव हो रहा है।

आगम व अनुयोगों की पद्धति के ज्ञाता, स्वाध्यायी पण्डित श्री राजमलजी भोपाल वालों का विशेष आभार है जिनकी सतत प्रेरणा से ग्रन्थ का सम्पादन व प्रकाशन सम्भव हो सका। मित्रवर पं. रतनलालजी इन्दौर का भी आभारी हूँ जो इस रचना के प्रकाशन हेतु मेरा उत्साह वृद्धिगत करते रहे। प्रोफेसर जमनालाल जैन यदि मुझे न लिखते तो यह कार्य एक बार हाथ में लेकर भी छूट जाता। इन सभी की प्रेरणाओं के फलस्वरूप यह "श्रावकाचार" आज इस स्थिति में प्रकट हो सका है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में पं. राजमलजी पवैया, श्री नन्दूलालजी कठनेरा, श्री विमलचन्दजी झांझरी तथा झांझरी-परिवार, श्री सत्यधरकुमार सेठी तथा खण्डवा के मुमुक्षु बन्धुओं का भी आभार है जिनके सहयोग से यह ग्रन्थ मूल रूप में प्रकाशित हो रहा है। यद्यपि ग्रन्थ की मुद्रण प्रक्रिया में कल्पनातीत विलम्ब हुआ है; लगभग डेढ़ वर्ष का समय लग गया। किन्तु यही होनहार थी। इसे कोई टाल नहीं सका। ग्रन्थ के स्वच्छ मुद्रण के लिए कोठारी प्रिन्टर्स, उज्जैन का आभारी हूँ जिनके सतत प्रयास से इसका सुन्दर प्रकाशन हो सका।

रक्षाबन्धन, —देवेन्द्रकुमार शास्त्री,
वीर निर्वाण सं. 2514 243, शिक्षक कॉलोनी, नीमच (म. प्र.)

* ॐ नमः सिद्धेभ्यः *

ज्ञानानन्द श्रावकाचार

मंगलाचरण

दोहा

राजत[1] केवलज्ञान जुत,[2] परम औदारिक काय ।
निरखि छबि भवि छकत[3] हैं, पी रस सहज सुभाय ॥१॥
अरहंत हरिकै[4] अरिन कौं, पायो सहज निवास ।
ज्ञान ज्योति परगट भई, ज्ञेय किये परकास ॥२॥
सकल सिद्ध वंदों सुविधि, समयसार[5] अविकार ।
स्वच्छ सुछंद उद्योत नित, लह्यो ज्ञान विस्तार ॥३॥
ज्ञान स्वच्छ जसु भाव में, लोकालोक समाय ।
ज्ञेयाकार न परनमें,[6] सहज ज्ञान रस पाय ॥४॥
अंत आंचि[7] के पाँचतें,[8] शुद्ध भये शिव-राय ।
अभेद रूप जे परनमें, सहजानंद सुख पाय ॥५॥
जिनमुखतें उतपति भई, ज्ञानामृत रस धार ।
स्वच्छ प्रवाह बहे ललित, जग पवित्र करतार ॥६॥
जिनमुखतें उतपति भई, सुरति सिन्धुमय सोइ ।
मैं नमत अघ हरनतैं, सब कारज सिध होइ ॥७॥
निर्विकार निर्ग्रन्थ जे, ज्ञान-ध्यान रसलीन ।
नासा-अग्र जु दृष्टि धरि, करे कर्म-मल छीन ॥८॥
इह विधि मंगल करनतैं, सब विधि मंगल होत ।
होत उदंगल[9] दूरि सब, तम ज्यौं भानु उद्योत ॥९॥

---

१ शोभायमान २ युक्त, सहित ३ तृप्त ४ नष्ट कर ५ शुद्धात्मा
६ परिणमन ७ आंच, अग्नि ८ पाक से (द्वारा) ९ विघ्न-बाधा, द्वन्द्व

वन्दनाधिकार

इहि विधि मंगलाचरन पूर्वक अपने इष्टदेव कौं नमस्कार करि **ज्ञानानन्द पूरित-निर्भर निजरस नामा शास्त्र** ताका अनुभवन मैं करोंगा। सो हे भव्य! तू सुणि कैसा है इष्टदेव अर कैसा है यह शास्त्र अर कैसा हूं मैं सो ही कहिये है। सो इष्टदेव तीन प्रकार हैं—देव, गुरु, धर्म। देव दोय प्रकार है—अरहंत, सिद्ध। गुरु तीन प्रकार है—आचार्य, उपाध्याय, साधु। धर्म एक ही प्रकार हैं। सो विशेषपने भिन्न-भिन्न निरूपण करिये है। सो कैसा है **अरहंत देव**? परम औदारिक शरीर ता विषै पुरुषाकार आत्मद्रव्य है। बहुरि घातिक कहिये घात किया है घातिया कर्म-मल जानै,[१] धोया है मल जानै। अर अनंतचतुष्टय कौ प्राप्त भया है। अर निराकुलिता, अनुपम, बाधारहित, ज्ञान सुरस करि पूर्ण भरया है। अर लोकालोक कौ प्रकाशि ज्ञेयरूप नाहीं परनमैं है। **एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक स्वभाव का धरै है। अर शान्तिक रस करि अत्यन्त तृप्त है।** क्षुधादि अठारह दोषनसौ रहित है। निर्मल (स्वच्छ) ज्ञान का पिंड है। जाका निर्मल स्वभाव विषैं लोकालोक के चराचर पदार्थ स्वयमेव आन प्रतिबिंबित हुए हैं। मानू[२] भगवान का स्वभाव विषैं पहले ही ये पदार्थ तिष्ठै था। ताका निर्मल स्वभाव की महिमा वचन अगोचर है।

---

१ जिसने २ मानो

अर्हन्तदेव की स्तुति

बहुरि कैसे हैं अरहंतदेव ? जैसे सांचा विषें रूपा[1] धातु का पिंड निरमापिये[2] हैं, तैसे अरहंतदेव चैतन्य धातु का पिंड परम औदारिक शरीर विषें तिष्ठैं है। शरीर न्यारा है, अरहंत आतमा द्रव्य न्यारा है। ताकूं मैं अंजुली जोरि नमस्कार करूं हूं। बहुरि कैसे हैं अरहंत परमवीतरागदेव ? अतीन्द्रिय आनंदरस को पीवे हैं वा आस्वादे हैं। ताके सुख की महिमा हम कहवा समर्थ नाहीं। पणि[3] छद्मस्थ का जानवाने ऐसी उपमा संभवे है। तीन काल संबंधी बारह गुणस्थान के धारी शुद्धोपयोगी महामुनि ताको आत्मीक सुख सौ अनंतगुना केवली भगवान के एक समय विषैं सुख उपजैं है। परंतु केवली भगवान का सुख की जुदी जाति है। सो ए तो अतीन्द्रिय क्षायिक सम्पूर्ण स्वाधीन सुख है। अर छद्मस्थ के इन्द्रियजनित पराधीन किंचित् सुख है—ऐसा निःसंदेह है। बहुरि कैसे हैं केवलज्ञानी ? केवल एक निज स्वच्छ ज्ञान का पुंज हैं। ता विषें और भी अनंत गुण भरे हैं। बहुरि कैसे हैं तीर्थंकरदेव ? अपना उपयोग कूं अपने स्वभाव विषें गाल दिया है। जैसे लून[4] की डली पानी विषैं गल जाय, त्यों ही केवली भगवान का उपयोग स्वभाव विषैं गल गया है। फेरि बाह्य निकसवाने असमर्थ है नियम करि। बहुरि आत्मीक सुख सो अत्यंत रत भया है। ताका रस पीवा करि तृप्ति नाहीं होय है वा अत्यंत तृप्ति है और वाका शरीर की ऐसी सौम्य दृष्टि ध्यानमय अकंप आत्मीक प्रभाव करि सोभे हैं, मानूं भव्य जीवाने उपदेश ही देय है। कांई[5] उप देश देय है ? रे

१ चांदी २ बनाइये ३ परन्तु ४ नमक ५ क्या

भव्य जीवो ! अपना स्वरूप विषैं वेगि लागो, विलम्ब मत करो, ऐसा शांतिक रस पीवो, ऐसे सैन[1] करि भव्य जीवन कूं अपना स्वरूप विषैं लगावे है। इहं निमित्तनै पाय अनेक जीव संसार समुद्र सूं तिरे। अनेक जीव आगै तिरैंगे वर्तमान विषैं तिरते देखिये हैं। सो ऐसा परम औदारिक शरीर को भी हमारा नमस्कार होहु। जिनेंद्रदेव हैं सो तौ आत्मद्रव्य ही हैं, परन्तु आत्मद्रव्य के निमित्त तैं शरीर की भी स्तुति उचित है। अर भव्य जीवनै मुख्यपनै शरीर का ही उपकार है, तातैं स्तुति वा नमस्कार करवौ उचित है। अर जैसे कुलाचलन[2] के मध्य मेरू सोभै है, तैसे गणधरान के विषैं वा इन्द्रों के विषैं श्री भगवान सोभै हैं। ऐसा श्री अरहंत देवाधिदेव ई ग्रन्थ को पूरन[3] करो।

सिद्धदेव की स्तुति

आगै श्री सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति-महिमा वरनन[4] करि अष्ट कर्म को हरूं हूं। सो कैसे हैं श्री सिद्ध परमदेव? जानै धोया हैं घातिया-अघातिया कर्ममल, निष्पन्न भया है जैसे सोला बानी[5] का शुद्ध कंचन अंत की आंच कर पचाया हुआ निष्पन्न होय है, तैसे अपनी स्वच्छ शक्ति करि दैदीप्यमान प्रगट भया है स्वरूप जाका सो प्रगट होते मानूं समस्त ज्ञेय को निगल गया है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध? एक-एक सिद्ध की अवगाहना विषैं अनंत-अनंत सिद्ध न्यारे-न्यारे अपनी सत्ता सहित तिष्ठें हैं। कोऊ सिद्ध महाराज काहू सिद्ध सौं मिलैं नाहीं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध? परम पवित्र हैं। अर स्वयं सुद्ध हैं, अर आत्मीक स्वभाव

---

1 संकेत, इशारा 2 कुलाचलों, पर्वतविशेष 3 पूर्ण 4 वर्णन 5 ताव

विषै लीन है। परम अतेंद्री,[1] अनुपम, बाधारहित, निरा-
कुलित सुखकूं निरंतर अखंड पीवै हैं। तामैं अंतर नाहीं पड़े है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? असंख्यात प्रदेश चैतन्य धातु के पिंड निबड[2] घनरूप धरै हैं अर अमूर्तिक चरम शरीर तैं किंचित् ऊन[3] हैं। सर्वज्ञ देव नै प्रत्यक्ष त्रिकाल न्यारे-न्यारे दीसै हैं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? अपना ज्ञायक स्वभाव नै प्रगट किया है। अर समय-समय षट् प्रकार हानि-वृद्धि रूप अनंत अगुरुलघुगुण रूप परनमै हैं। अनंतानंत आत्मीक सुख कों आचरैं हैं वा आस्वादैं हैं अर तृप्ति नाहीं होय है वा अत्यंत तृप्त होय है। अब कुछ भी चाह रही नाहीं, कृत्य-कृत्य हुआ कार्य करनो छौ[4] सो करि चुक्या।

बहुरि कैसे हैं परमात्मा देव ? ज्ञानामृत कर भर्या है स्वभाव जाका अर स्व संवेदन करि उछलै है आनंदरस की धारा जा विषैं, उछल कर अपने ही स्वभाव विषैं गड़क[5] होय है अथवा जैसे सक्कर की डली जल विषैं गल जाय, तैसे स्वभाव विषैं उपयोग गल गया है। फेरि बाहर निक-सने को असमर्थ हैं। अर निज परिणति (अपने स्वभाव) विषैं रमै है। एक समय विषैं उपजै हैं अर विनसे हैं अर ध्रुव रहे हैं। पर परिणति से भिन्न अपने ज्ञान स्वभाव विषैं प्रवेश कियाअर ज्ञान परिणति विषैं प्रवेश किया है। ऐसे एकमेक होय अभिन्न परिणमै है। ज्ञान में अर परिणति में दोय भायका[6] रहे नाहीं, ऐसा अद्भुत कौतूहल सिद्ध स्वभाव विषैं होय है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ?

---

१ अतीन्द्रिय, इन्द्रियों से रहित २ निविड ३ न्यून, कम ४ था ५ लीन
६ ध्यान

अत्यंत गंभीर है अर उदार हैं अर उत्कृष्ट है स्वभाव जाका। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? निराकुलित, अनुपम, बाधा रहित, स्वरस करि पूर्ण भर्‌या है वा ज्ञानानंद करि अहलाद[1] है वा सुख स्वभाव विषैं मगन है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? अखंड हैं, अजर हैं, अविनाशी हैं, निर्मल हैं अर चेतना स्वरूप है, सुद्ध ज्ञान मूर्तिहैं। ज्ञायक हैं, वीतराम हैं, सर्वज्ञ हैं–त्रिकाल सम्बन्धी चराचर पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय संयुक्त ताकौ एक समय बिषैं युगपत् जानै हैं। अर सहजानंद हैं, सर्व कल्याण के पुंज हैं, त्रैलोक्य करि पूज्य हैं, सेवत सर्व बिघन विलय जाय हैं। श्री तीर्थंकरदेव भी ताकौ नमस्कार करैं हैं। सौ मैं भी बारम्बार हस्त जुगल मस्तक कौं लगाय नमस्कार करूँ हूं ? सो का वास्ते नमस्कार करूं हूं ? वाही के गुण की प्राप्ति के अर्थ। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? देवाधिदेव हैं। सो देवसंज्ञा सिद्ध भगवान विषैं ही शोभै है। अर चार परमेष्ठिन की गुरु संज्ञा है।

बहुरि कैसे हैं सिद्ध परमेष्ठी ? सर्व तत्त्व कौं प्रकाश ज्ञेय रूप नाहीं परिणमै हैं, अपना स्वभाव रूप ही रहे हैं। अर ज्ञेय को जानै ही है। सो कैसे जाने हैं ? जो ये समस्त ज्ञेय पदार्थ मानूं शुद्ध ज्ञान में डूब गया है कि मानूं प्रतिबिंबित हुआ है कै मानूं ज्ञान में उकीर[2] काढ्यो[3] है बहुरि कैसे हैं सिद्ध महाराज ? शांतिक रस करि असंख्यात प्रदेश भरे हैं। अर ज्ञानरस करि अहुलादित हैं। शुद्धामृत सोई भया परम रस ताकौ ज्ञानांजुलि करि पीवै हैं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध ? जैसे चंद्रमा का विमान विषैं अमृत श्रवै है।

---

1 आह्लाद, हर्ष 2 उत्कीर्ण 3 बनाया, निर्माण किया

अर औरा कूं अहलाद आनंद उपजावै है। अर आताप कूं दूर करै; त्यों ही श्री सिद्ध महाराज आप तौ ज्ञानामृत पीवै हैं वा आचरैं हैं। अर औरा कूं अहलाद आनंद उपजावै है। ताकौ, नाम, स्तुति वा ध्यान करता जो भव्य जीव ताका आताप विलै जाय है परनाम शांत होय है, अर आपा-पर की सुद्धता होय है अर ज्ञानामृत नै पीवै हैं। अर निज स्वरूप की परतीति आवै है, ऐसे सिद्ध भगवान कौ फेर भी नमस्कार होहु, ऐसे सिद्ध भगवान जैवंता प्रवर्तो। अर मोने[1] संसार समुद्र माहीं सूं काढौ[2], अर संसार समुद्र विषें पडनै तै राखो[3]। म्हारा[4] अष्टकर्म का नाश करी मोने कल्याण के कर्ता होउ, मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति देहु, म्हारा हृदे विषै निरंतर बसो अर मोने आप सरीखा करो। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? जाकै जन्म-मरण नाहीं, जाकै शरीर नाहीं है, जाकै विनास नाहीं है, संसार विषैं गमन नाहीं है। जाकै असंख्यात प्रदेश ज्ञान का आधार है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? अनंत गुणा की खान हैं, अनंत गुणा करि पूर्ण भरया है। तातैं औगुण आवनै जागां[5] नाहीं। ऐसे सिद्ध परमेष्ठी की महिमा वर्णन करि स्तुति करी।

जिनवाणी की स्तुति

आगै सरस्वती कहिये जिनवानी ताकी महिमा स्तुति करियें हैं। सो हे भव्य ! तूं सुणि। सो कैसी है जिनवानी? जिनेंद्र का हृदय सोई भया द्रह[6] तहां थकी[7] उत्पन्न भई है। वहां थकी आगै चली सो चल करि जिनेंद्र मुखार

---

१ मुझे २ निकालो ३ बचाओ ४ मेरा, हमारा ५ जगह, स्थान
६ सरोवर ७ जिनवाणी

विंद तैं[1] निकसी, सौं निकस करि गणधरदेवां का कान विषैं आय पडी । अर पडि करि वा थकी आगै चलि गणधरदेवां का मुखारविंद तैं निकसी । निकसि करि आगा ने चाल या धार श्रुति[2]-सिंधु में जाय प्राप्त भई ।

भावार्थ—या जिनवानी गंगा नदी की उपमानै धारया है। बहुरि कैसी है जिनेंद्रदेव की बानी ? स्याद्वादलक्षण करि अंकित है वा दया अमृत करि भरी है। अर चन्द्रमा समान उज्वल है वा निर्मल है । जैसे-जैसे चन्द्रमा की चांदनी चंद्रवंसी कमला नै[3] प्रफुल्लित करै है अर सर्व जीवों के आताप नै हरै है, तैसे ही जिनवानी भव्य जीव सोई भया कमल त्यानै प्रफुल्लित करै है वा आनन्द उपजावै है अर भव आताप नै दूर करै है । बहुरि कैसी है सरस्वती ? जगत की माता है, सर्व जीवा नै हितकारी है, परम पवित्र है । पणि[4] कुवादी रूप हस्ती ताका विदारवाणै वा परिहार करवा नै वादित्त रिद्धि का धारी महामुनि सोई भया शार्दूल सिंह ताकी माता है । बहुरि कैसी है जिन-प्रणीत बानी ? अज्ञान-अंधकार विध्वंस करवा नै जिनेंद्रदेव सूर्य ताकी किरन ही है । या ज्ञानामृत की धार बरषावने को मेघमाला है । इत्यादि अनेक महिमा नै धरया है । ऐसी जिनवानी ताकै अर्थं म्हारा नमस्कार होहु । इहां सरूपानुभवन का विचार मैंने किया है । सो इस कार्य की सिद्धता ही है । ऐसी जिनवानी की स्तुति वा महिमा बरनन करी ।

१ से २ जिनवाणी ३ कमलों को ४ पुनः, फिर

निर्ग्रन्थ गुरु की स्तुति

आगे निरग्रन्थ गुरु तिनकी महिमा स्तुति करे हैं। सो हे भव्य ! तूं सावधान होय नीकै सुनि। कैसे हैं निरग्रन्थ गुरु ? दयाल है चित्त जाका, अर वीतराग है स्वभाव जाका अरे प्रभुत्वशक्ति करि आभूषित हैं। अर हेय-ज्ञेय-उपादेय ऐसा विचार करि संयुक्त हैं। अर निर्विकार महिमा नै प्राप्त भये हैं; जैसे राजपुत्र बालक नग्न निर्विकार शोभै हैं अर सर्व मनुष्य जन वा स्त्री जन कूं प्रिय लागै हैं। मनुष्य वा स्त्री वाका रूप कूं देख्या चाहे हैं अर स्त्री वाका आलिंगन करै है। परन्तु स्त्री का परनाम निर्विकार हो रहे हैं, सरागतादिक कौ नहीं प्राप्त होय है, तैसे ही जिनलिंग का धारक महामुनि बालवत् निर्विकार शोभै है। सर्व जन कौ प्रिय लागै है, सर्व स्त्री वा पुरुष मुन्या का रूप नै देख-देख तृप्त नाहीं होय है अथवा वह मुनि निर्ग्रन्थ नाहीं हुआ है, अपना निर्विकारादि गुणा नै ही प्रगट किया है। बहुरि कैसे हैं शुद्धोपयोगी मुनि ? ध्यानारूढ़ हैं। अर आत्मा-स्वाभाव विषैं स्थिति है। ध्यान बिना क्षण मात्र गमावै नाहीं। कैसी स्थिति है ? नासाग्र दृष्टि धरि अपनै स्वरूप नै देखै हैं। जैसे गाय बच्छा नै देख-देख तृप्ति नाहीं होय है, निरंतर गाय के हृदय विषैं बच्छा बसै है; तैसे ही शुद्धोपयोगी मुनि अपना स्वरूप नै छिन मात्र भी बिसरै नाहीं है। गौ-बच्छावत् निज स्वभाव सौं वात्सल्य किये हैं। अथवा अनादि काल का अपना स्वरूप गुम[1] गया है ताको हेरे[2] हैं अथवा ध्यान अग्नि करि कर्म-ईंधन

---

१ खो गया २ ढूंढे

कूं आभ्यंतर सुखी होवै है। अथवा [illegible] तै छोडि वन के विषें जाय नासाग्र दृष्टि धारि ज्ञान-सरोवर विषै पैठि सुधा अमृत नैं पीवै है। वा सुध अमृत विषें केलि करै है वा ज्ञान-समुद्र में डूबि मगन भया है। अथवा संसार का भय थकी डरपि आभ्यंतर विषें अमूर्तिक पुरुषाकार ज्ञान-मय मूरति ऐसा चैतन्यदेव ताकूं सेवै है वा सब असरण जानि चैतन्यदेव की शरण कूं प्राप्त हुआ है। या विचारै है, भाई! म्हानैं[1] तो एक चैतन्य धातुमय पुरुष ज्ञायक महिमा ने धरचा ऐसा परमदेव सो ही शरण है। अन्य शरण नाहीं, ऐसा म्हाकै[2] निःसन्देह अवगाढ[3] है।

देव-पूजा

बहुरि सुधामृत करि चैतन्यदेव का कर्म-कलंक नै धोय स्नपन कहिये प्रक्षालन करिये है, पाछै मगन होय ताकै सन्मुख ज्ञान-धारा को क्षेपै है। पाछै निज स्वभाव सो ही भया चंदन ताकी अर्चा कहिये ताकौ पूजै हैं। अर अनंत गुण सोई भया अक्षत ताकौ तिन विषें क्षेपै हैं। पाछै सुमन कहिये भला मन सोई भया आठ पांखुडी संयुक्त पदम पहुप[4] ताकौ वा विषें चढ़ोडै[5] हैं। अर ध्यान सो ही भया नैवेद्य ता विषैं सन्मुख करै हैं। अर ज्ञान सो ही भया दीप ताकूं ता विषैं प्रकाशित करै हैं। मानूं ज्ञान-दीप करि चैतन्य-देव का स्वरूप ही अवलोकन करै हैं। पाछै ध्यान रूपी अगनि विषैं कर्म सो ही भया धूप ताकूं उदार मन करि मोकला-मोकला[6] शीघ्रपनै आछे-आछे[7] क्षेपै हैं। पाछै निजानंद सो ही भया फल ताकूं भलीभांति ता विषैं प्राप्त

---

१ मुझे २ मेरा ३ श्रद्धान ४ पुष्प ५ चढ़ाता ६ बहुत-बहुत ७ अच्छे-अच्छे

करैं हैं ऐसे अष्ट द्रव्य करि पूजन करे हैं। क्या वास्ते पूजन करे हैं ?

मोक्ष सुख की प्राप्ति के अर्थं। बहुरि कैसे हैं। शुद्धोपयोगी मुनि ? आप तौ शुद्ध स्वरूप विषैं लग गया हैं। अर मारग के केई भोला जनावर काष्ठ का ठूंठ जानि वाके शरीर सों खाज खुजावै हैं। तोहू परि[1] मुन्या का उपयोग ध्यान सौ चले नाहीं है। ऐसा निज स्वभाव सौं रत हुवा है। बहुरि हस्ति, सिंघ, शूकर, व्याघ्र, मृग, गाय इत्यादि बैर भाव छोडि सन्मुख खडा होय नमस्कार करै है। अर अपना हित कै अर्थि[2] मुन्या के उपदेश नै चाहै है। बहुरि ज्ञानामृत का आचरन करि नेत्र विषे अश्रुपात चाले सो अंजुली विषैं पडै है, पडता-पडता अंजुलि भरि आवै है। सो चिडी, कबूतर आदि भोला पक्षी जल जान रुचि सो पीवे है। सो ये अश्रुपात नाहीं चालै है, मानूं यह आत्मीक रस ही श्रवै है। सो आत्मीक रस समाया नाहीं है, तातै बाह्य निकस्या है अथवा मानूं कर्म रूपी बैरी कौ ज्ञान रूपी खड्ग करि संघार किया है। तातै रुधिर उछलि करि बाह्य निकसै है। बहुरि कैसे हैं शुद्धोपयोगी मुनि ? अपना ज्ञान रस करि छकि रह्या है। तातै बाह्य निकसवानै असमर्थ है। कदाचित् पूर्वली वासना करि निकसै है तो वानै जगत् इन्द्रजाल वत् भासै है फेरि तत्क्षण ही स्वरूप मैं लागि जाय है। फेरि स्वरूप का लागवा करि आनंद उपजै है। ता करि शरीर की ऐसी दशा होय है रोमांच ही होय है अर गद-गद शब्द होय हैं। अर

---

[1] किन्तु, लेकिन [2] लिए, वास्ते

कदी[1] तो जगत के जीवानै[2] उदासीन मुद्रा प्रतिभासी है अर कदी मानूं मुन्या निधि पाई ऐसी हंसमुख मुद्रा प्रतिभासी है। ये दोऊ दशा मुन्या की अत्यन्त शोभै है। बहुरि मुनि तो ध्यान विषैं गरक[3] हुवा सौम्य दृष्टि नै धरया है। अर वहां नगरादिक सूं राजादिक बंदवानै आवै हैं। सो अबै वे मुनि कहां तिष्ठै हैं? कै तो मसानभूमि कै विषैं कै निरजन[4] पुराना वन विषैं अर कै पर्वतादिक की कंदरा कहिये गुफा विषैं अरु कै पर्वत के सिखर विषैं, अरु कै नदी के तीर विषैं अर कै उजाड भयानक अटवी विषैं, कै एकांत वृक्ष तले अथवा वस्तिका विषैं अथवा नगर बाह्य चैत्यालय विषैं इत्यादि रमनीक मन के लगावानै कारन अर उदासीनता के कारन ऐसा स्थान विषैं तिष्ठै हैं। जैसे कोई अपनी निधि नै छिपावता फिरै अर एकांत जायगा का अनुभव करै, तैसे ही महामुनि आपनी ज्ञान-ध्यान रुपी निधि कौं छिपावते फिरै हैं अर एकांत ही में वाका अनुभव किया चाहै हैं। अर ऐसा विचारै है कि म्हां की ज्ञान–ध्यान निधि जाती न रहै अर म्हां का ज्ञान–भोग में अंतर न परै। तिहि वास्तै महामुनि कठिन–कठिन स्थान विषैं वसै हैं। जेठे[5] मनुष्य का संचार नाहीं तेठे[6] वसे हैं। अर मुनि नै पर्वत, गुफा, नदी मसान, वन ऐसा लागे है मानो ध्यान-ध्यान ही पुकारै है? कहा कहि पुकारै है? कहै आवो–आवो, यहाँ ध्यान करो, ध्यान, करो, निजानंद स्वरूप नै विलसो विलसो। थाकौ[7] उपयोग स्वरूप विषैं बहुत लागसी तीसू और मति विचारो-ऐसे कहै हैं।

---

१ कभी २ जीवों का ३ लीन ४ निर्जन ५ जहाँ ६ वहाँ ७ तुम्हारा

बहुरि शुद्धोपयोगी मुनि घनी पवन चालै तेठै अर घना घाम[1] होय तेठै वा घना मनुष्यां का संचार होई तेठै जोरावरी[2] तें नहीं बसै है। क्यों नाहीं बसै है ? मुन्या का अभिप्राय एक ध्यानाध्ययन करिबा को ही छै[3]। जेठे ध्यानाध्ययन घनी बधै[4] तेठै ही बसै। कोई या जानैगा कि मुनि सर्व प्रकार ऐसा कठिन–कठिन स्थानक विषैं ही बसै अर सासता चाहि–चाहि परीसह को ही सहैं। अर एता दुद्धर तपश्चरन करै है। अर सासता ध्यानमई ही रहै सो यूं तौ नाहीं। कारण कि मुन्या कै बाह्य क्रिया सूं तो प्रयोजन है नाहीं अरु अठाईस मूलगण ग्रहण किया है ता विषै अतीचार नाहीं लगावैं है। येता उपरांत क्रिया सहन करै है सो उपयोग लगावो के अनुसार करै है सोई कहिये है—जे भोजन करि सरीरने प्रबल हुआ जानै तो ऐसा विचारै यह सरीर प्रबल होसी तो प्रमादने उपजासी। तासों एक–दोय दिन भोजन का त्याग ही करना उचित है। अर भोजन का त्याग करि सरीरने छीन हुवा जाने तो ऐसा विचारै-जो ए सरीर छीन होसी तो परिनामने सिथिल करसी। अर परिनाम सिथिल होसी तो ध्यानाध्ययन नाहीं सधसी। अर कोई ई सरीर सूं म्हां कै बैर नाहीं जो होय सो होय याकूं छीन ही पाडिये। अर ई सरीर सूं म्हां के राग भी नाहीं जो याके पोषवो ही करिये। तीसूं मुन्यां कै सरीर सों राग–द्वेष का अभाव है, जा मे मुन्यां के ध्यानाध्ययन सधै सो करै। अर ऐसे ही मुनि महाराज पवन, गरमी, कोलाहल, शब्द वा मनुष्यादिक का गमन स्थानक विषै उपाय कर बैठे नाहीं। अर उठे बसे जहाँ ध्यानाध्ययन

---

१ धूप , २ जबर्दस्ती ३ है ४ बढ़ै

सूं परिनाम च्युत न होय । मुन्यां के एक कार्य ध्यानाध्ययन ही छै। आ विषै अंतराय पाडवा का जे कारन होय ता कारन कौ दूर ही ते तजै । अर आप तौ ध्यान में तिष्ठै है पाछै कोई ध्यान के अकारन आनि प्राप्त होय है तौ ध्यान को छोडि नाहीं उठि जाय है । अर स्याले जल के तीर ध्यान धरैं वा उन्हाले सिला ऊपर वा पर्वत के सिखर विषैं ध्यान धरैं वा चौमासे में वृक्ष्यां के तलै ध्यान कौ धरैं ही तौ अपने परिणामा की विशुद्धता कै अनुसार धरै है । परिणाम अत्यंत विरक्त होय तौ ऐसी जायगा जाय ध्यान धरै, नाहीं तौ और ठौर[1] मन लागै जेठै ध्यान धरै । अर साम्हा[2] आया उपसर्ग कौ छोडि नाहीं जाय है सो मुन्या[3] की सिंघवत् वृत्ति है और मुन्या का परिणाम ध्यान विषैं स्थिर रहै हैं । तब तौ ध्यान कौ छोडि और कार्य नाहीं विचारै हैं । अर ध्यान सूं परिणाम उतरै हैं, तब शास्त्राभ्यास करै हैं वा औरा कूं करावै हैं वा अपूर्व जिनवानी के अनुसार ग्रंथ जोये[4] हैं । अर शास्त्राभ्यास करता-करता परिणाम लग जाय तौ शास्त्राभ्यास कौ छोड ध्यान विषैं लागि जाय है सो शास्त्राभ्यास बीच ध्यान का फल बहुत है । तातै तलेके ओछा कार्य को छोडि ऊंचा कार्य कूं लागवो उचित ही है । तीसौं ध्यान विषैं उपयोग की थिरता थोडी रहैं है अर शास्त्राभ्यास विषैं उपयोग की थिरता बहुत रहै है । तीसौं मुनि महाराज ध्यान भी धरै है अर शास्त्र भी वांचै है अर उपदेश भी देय है अर आप गुरन पै पढै हैं औरा नै पढावै है वा चरचा

---

१ स्थान २ सामने ३ मुनियों, साधुओं ४ अवलोकन करते, देखते

करै हैं। मूल ग्रंथा के अनुसार अपूर्व ग्रंथ जोडै हैं वा नगर सूं नगरांतर, देश सूं देशांतर विहार करै हैं। अर भोजन के अर्थि नगरादिक विषैं जाय हैं। तेठै पडगाहया हुवा ऊंचा क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण कुल विषैं नवधा भक्ति संयुक्त छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय टालि खडा–खडा एक बार कर–पात्र में आहार लेय हैं। इत्यादिक शुभ कार्य विषै प्रवर्ते है और मुनि उत्सर्ग नै छोडि तौ परिणामों की निर्मलता के अर्थ अपवाद मार्ग नै आदरै है। अर अपवाद मार्ग नै छोडि उत्सर्ग नै आदरै है। सो उत्सर्ग मार्ग तौ कठिन है अर अपवाद मार्ग सुगम है। मुन्या कै ऐसा हठ नाहीं कि म्हा नै कठिन ही आचरण आचरणा वा सुगम ही आचरण का आचरण करणा।

भावार्थ—मुन्या कै तौ परिणामा की तौल है, बाह्य क्रिया ऊपर प्रयोजन नाहीं। जा प्रवर्ति विषै परिणामा की विशुद्धता वधै अर ज्ञान का क्षयोपशम वधै सोई आचरण आचरै। ज्ञान–वैराग आत्मा का निज लक्षण है ताही कौ चाहै है। और अबै मुनिराज कैसे ध्यान विषैं स्थित हैं अर कैसे विहार करै हैं अर कैसे राजादिक आय वंदै हैं? सोई कहिये हैं। मुनि तौ वन विषैं वा मसाण[2] विषैं वा पर्वत की गुफा विषैं वा पर्वत के सिखर विषै वा सिला विषै ध्यान दिया है। अर नगरादिक सौ राजा वा विद्याधर व देव वंदवानै आवै हैं। अर मुन्या की ध्यान अवस्था देखि दूर थकी नमस्कार करि उहां ही खडा रहै है। अर केई पुरुषां कै यह अभिलाषा वर्तै है कदि[1] मुन्या का ध्यान खुलै अर कदि मैं निकट जाय

१ निम्न, नीचे २ श्मसान ३ कब

प्रश्न करां अर गुरु का उपदेश नै सुन्यां अर प्रश्न का उत्तर जाणां–अर अतीत–अनागत की पर्यायिनताकूं जाणां इत्यादि अनेक प्रकार का स्वरूप ताको गुरां की मुख थकी जाण्यां चाहे छा अर केई पुरुष खडे–खडे विचार करै हैं अर केई पुरुष नमस्कार करि उठि जाय हैं। अर केई ऐसा विचारै हैं सो म्हैं[1] मुन्या का उपदेश सुन्या बिना घर जाइ कांई करां ? म्हैं तौ मुन्या का उपदेश विना अतृप्त छां[2] अर म्हां कै नाना तरह का संदेह छै[3] अर नाना तरह का प्रश्न छै। सो दयालु गुरु विना और कौन निवारण करै। तीसूं[4] हे भाई ! म्हे तौ जेतै[5] मुन्या का ध्यान खुलै तेतै[6] ऊभा[7] ही छां। अर मुनि छै सो परमदयालु छै। पणि आपणा हेत नै छोडि आपानै उपदेस कैसे दें ? तीसूं मुन्या नै आपणै आगमन जणावौ मति; आपणा आगमन करि कदाचित् ध्यान सूं चलसी तौ आपानै अपराध लागसी, तीसूं गोप्य[8] ही रहौ। अर केई परस्पर ऐसे कहै हैं-देखो, भाई। मुन्या की कांई दशा छै। काष्ठ, पाषाण की मूर्तिवत् अचल हैं। अर नासाग्र दृष्टि धरया है, अत्यन्त संसार सूं उदासीन हैं, आपणा स्वरूप सूं अत्यंत लीन है। इहां आत्मीक सुख कै वास्ते राजलक्ष्मी नै थोथा[9] तृण की नाईं छोडी छे। तौ आपणी याके कांई गिनती छै ? अर केई ऐसे कहता हुवा रे भाई ! आपणी गिनती तौ नाहीं सो सत्य, परन्तु यह परम दयालु छै, महा उपकारी छै, तारण–तरण समर्थ हैं, तीसूं ध्यान खुलै तौ आपणो भी कार्य सिद्ध करसी।

बहुरि केई ऐसा कहता हुवा देखा भाई ! मुन्या की

---

१ मैं २ था ३ है ४ इसलिये ५ जब तक ६ तब तक ७ खड़ा
८ चुपचाप ९ निःसार, तुच्छ

बहुरि केई ऐसा कहता हुवा देखो भाई ! मुन्या की क्रांति अर देखो भाई ! मुन्या का अतिशय अर मुन्या का साहस सो क्रांति करतो दशूं दिशा उद्योत कीन्ही हैं। अर अतिशय का प्रभाव करि मार्ग के सिंघ, हस्ती, व्याघ्र, रीछ, चीता, मृग इत्यादिक जानवर वैर भाव छोडि मुन्या नैं नमस्कार करि निकट बैठा छै। अर मुन्या को साहस ऐसो छै। सो ऐसा क्रूर जनावर[1] ताकी प्रापति का भय थकी निर्भे हुवा ई उद्यान मैं तिष्ठै है अर ध्यान सूं खिण मात्र भी नाहीं चालै है। अर क्रूर जनावर नै अपूठा[2] मोहि लिया है, सो यह बात न्याय ही है। जैसा निमित्त मिलै तैसा ही कार्य उपजै। सो मुन्या की शांतिता देखकर क्रूर जनावर भी शांतिता कूँ प्राप्त हुवा है। अर केई ऐसे कहता हुवा रे भाई ! या मुन्या कौ साहसपणौ अद्भुत है। कांई जाणां ध्यान खुलै कि न भी खुलै, तीसूं अैठा सूं[3] नमस्कार करि घरां चाल्यो फेर आवालां। अर केई ऐसी कहता हुवा रे भाई ! अबै कांई उतावलो होहु छौ। श्री गुरु की वानी सोई हुवो अमृत तींका पिया बिना ही घर जावा मैं कांई सिद्ध है। थानै[4] घर आछो लागै है, म्हानै तो लागै नाहीं। म्हानै तै मुन्या का दर्शन उत्कृष्ट प्रिय लागै है अर मुन्या का ध्यान अब खुलसी, घनीवार हुई छै, तीसूं कोई प्रकार कौ विकल्प मत करौ। और कोई ऐसी कहता हुवा रे भाई ! तैं या आच्छी कही याकै अत्यन्त अनुराग छै। श्रावक धन्य छै—ऐसैं परस्पर बतलावता हुवा अर मन मैं विचारता हुवा, तैसे ही मुनि का ध्यान खुल्या। अर बाह्य उपयोग करि शिष्यजनादि नै देखवा लागा, तब शिष्यजन

---

1 क्रूर जानवर 2 पूरा, पूर्ण 3 यहाँ से 4 तुम को

कहता हुवा रे भाई ! मुनि परमदयाल आपा नै दया करि सन्मुख अवलोकन करै है। मानूं आप नै बुलावे ही हैं, तीसूं अबै सावधान होइ अर सिताब[1] ही चालो, चालि कर अपना कारज सिद्ध करो। सो वे शिष्य मुन्या के निकट जाता हुवा अर श्री गुरां की तीन प्रदक्षिणा देता हुवा अर हस्त जुगल मस्तक कै लगाय नमस्कार करता हुवा अर मुन्या का चरन कमल विषै मस्तक धारता हुवा अर चरन की रज मस्तक कै लगावता हुवा अर आपनौ धन्य-पनौ मानता हुवा अर न घना दूर, न घना नजीक[2] ऐसैं विनय संजुक्त खडा रहता हुवा अर हाथ जोर स्तुति करता भया। कांई स्तुति करता हुवा—हे प्रभु ! हे दयाल ! हे करुणानिधि ! हे परम उपगारी ! संसार-समुद्र-तारक, भोगन सूं परान्मुख अर संसार सूं उदासीन अर सरीर सूं निस्पृह अर स्व-पर कार्य विषैं लीन-ऐसे ज्ञानामृत करि लिप्त थे जैवंता प्रवर्तो। अर म्हां ऊपर प्रसन्न होहु,प्रसन्न होहु बहुरि हे भगवान ! थां विना और म्हां को रक्षक नाहीं, थै अबै म्हानै संसार मांहि सूं काढौ अर संसार विषैं पडता जीवा नै थे ही आधार छो अर थे ही सरन छौं, तीसूं जी बात मैं म्हां को कल्याण होइ सोई करो। अर म्हां कै आपकी आज्ञा प्रमान है। अर म्हें निरबुद्धि छै अर विवेक रहित छै। तीसूं विनय-अविनय में समझा नाहीं छै। एक आपनै हेत नै चाहूं छूं। जैसे बालक माता नै लाड करि चाहै ज्यों बोलै अर लडुवा[3] आदि वस्तुनै मांगै सो माता-पिता बालक जान बासूं प्रीत ही करै अर लावानै मिष्टादिक चोखी[4] वस्तु काड[5] ही देय , तैसे ही प्रभु मैं बालक छूं, आप

---

१ शीघ्र २ निकट, पास ३ लड्डू, लाडू ४ अच्छी, भली ५ निकाल (कर)

माता-पिता छौ[1] सो बालक जान म्हां ऊपर क्षिमा करो। अर म्हां का प्रश्न का उत्तर करो अर संदेह का निबारन करो, त्यों म्हा को अज्ञान अंधकार विलै जाइ। अर तत्त्व का स्वरूप प्रतिभासै आपा-पर को पिछान[2] होइ सो उपदेस म्हाने द्यो[3]। ऐसे शिष्यजन खडा-खडा वचनालाप करता हुवा पाछै चुपका होय रहया, पाछै मुनि महाराज शिष्यजनां का अभिप्राय के अनुसार मिष्ट, मधुर, आत्म-हितकारी, कोमल ऐसा अमृतमई वचनन की पंकति[4] ता करि मेघ कैसी नाईं शिष्यजना नै पोषिता हुवा, अर कैसे वचन उच्चारता हुवा? राजा कौ हे राजन्! देव कौ देव, सामान्य पुरुष को हे पुत्र! हे भव्य! हे वत्स! थे निकट भव्य छो। अर अबै थाकै[5] पोतै[6] संसार थोरो[7] छै। तीसूं थाकै यह धर्मरुचि उपजी छै। अब थे म्हाका वचन अंगीकार करो सौ मैं थानै जिनवानी कै अनुसार कहौं छौं सो चित दै सुनो। यो संसार महाभयानक छै। धर्म बिना यो संसार कोई तरह सौ बन्धु सहाई नाहीं। तीसूं एक धर्म नै सेवो, पाछे ऐसौ मुन्या को उपदेश पाय जथाजोग्य जिनधर्म ग्रहण करता हुवा मुनि का वा श्रावक का व्रत ग्रहण करता हुवा अर केई जथाजोग्य आखडी[8] को ग्रहण करता हुवा अर केई प्रश्न का उत्तर सुनता हुवा, केई अपना-अपना संदेह का निवारन करता हुवा—ऐसे नाना प्रकार के पुन्य उपार्ज्य[9] ज्ञान को वधाइ मुन्यां नै फेरि नमस्कार करि मुन्या का गुणानै सुमिरता-सुमिरता आपनै ठिकाना जाता हुवा।

---

१ हो २ पहचान ३ दीजिए ४ पंक्ति ५ आपके, तुम्हारे ६ पास ७ थोड़ा ८ प्रतिज्ञा, नियम ९ कमा कर, अर्जन कर।

ऐठा[1] आगै मुन्या का विहार-स्वरूप कहिए है। जैसे निरबंध[2] स्वेच्छाचारी वन विषैं हस्ती गमन करै है, तैसे ही मुनि महाराज गमन करै हैं सो हस्ती भी धीरे-धीरे सूंड की चालन करिता अर सूडनै भूमिसूं सपर्स करावता थका अर सूंडनै ऐठी-उठी[3] फैलावता थका अर धरतीनै सूंडसूं सूंघता थको[4] निशंक निरभय गमन करै है। त्यों ही मुनि महाराज धीरे-धीरे ज्ञान-दृष्टि करि भूमिकूं सोधता निरभय, निशंक स्वेच्छा विहार-कर्म्म करै है। मुन्या कै भी नेत्रां के द्वार ज्ञान-दृष्टि धरती पर्यंत फैली है। सो याकै यही सूंड है, तीसूं हाथी की उपमा संभवै है। अर गमन करतां जीवांकूं विराध्या नाहीं चाहै है अथवा मुनि गमन नाहीं करै है, भूली निधिनै हेरता जाय है। अर गमन करतां-करतां ही स्वरूप मैं लग जाय है, तब खडा रहि जाइ है। फेर उपयोग-तला उतरै है तब फेर गमन करै है। पाछै एकांत तिष्ठ फेर आत्मीक ध्यान करै है अर आत्मीकरस पीवै है। जैसे कोई पुरुष क्षुधा करि पीडित तृषावान ग्रीषम समय शीतल जल करि गल्या मिश्री का डेला अत्यंत रुचिसूं गडक-गडक पीवै है अर अत्यंत तृप्त होय है, तैसे शुद्धोपयोगी महामुनि स्वरूपाचरन करि अत्यंत तृप्ति है, बार-बार वेई रसनै चाहै है। वाकूं छोडि कोई काल पूर्वली वासना करि शुभ उपयोग विषैं लागै हैं, तब या जानै हैं म्हानै ऊपर आफत आई। यह हलाहल विष सारसी आकुलता म्हासूं कैसो भोगो जाइ? अबार[5] म्हांकी आनंद रस

---

1 यहां से 2 बन्धनहीन, छुट्टा 3 यहां-वहां 4 हुआ 5 अभी

कढ़ि पाओ। फेर भी म्हांकै ज्ञानानंद रस की प्राप्ति होसी[1] कै नाहीं। हाय-हाय! अबै म्है कांई करां, यो म्हाको स्वभाव छै? म्हाको स्वभाव तो एक निराकुलित, बाधा रहित, अतींद्रिय, अनोपम सुरस पीवा को है सोई म्हांनै प्राप्ति होई। कैसे प्राप्ति होई? जैसे समुद्र विषैं मगन हुवा मच्छ बाह्य निकस्या न चाहै, अर बाह्य निकसवानै असमर्थ होय, त्यों ही मैं ज्ञान-समुद्र विषैं डूब, फेर नाहीं निकस्या चाहूं हूं। एक ज्ञानरस ही को पीवो करां, आत्मीकरस बिना और काहू मैं रस नाही। सर्व जग की सामग्री चेतन रस बिना और जडत्व स्वभाव नै धर्‌यां फीकी जैसे लून बिना अलूनी रोटी फीकी, तीसूं ऐसो ज्ञानी पुरुष कौन है जो ज्ञानामृत नै छोडि उपाधिक आकुलता सहित दुख आचरै, कदाच न आचरै। ऐसे शुद्धोपयोगी महामुनि ज्ञानरस के लोभी अर आत्मीकरस के स्वादी निज स्वभाव तैं छूटे हैं, तब ऐसे झूरै[2] हैं। बहुरि आगै और भी मुन्या को स्वरूप कहिए है। वे महामुनि ध्यान ही धरै हैं सो मानूं केवली की वा प्रतिमाजी की होड ही करै हैं। कैसे होड करै हैं? भगवानजी थाकै प्रसाद करि म्है भी निज स्वरूप नै पाया हैं। सो अबै म्है निज स्वरूप को ही ध्यान करता थाको ध्यान नहीं करा, थांका ध्यान बीच म्हां का निज स्वरूप को ध्यान करता आनन्द विशेष होय है। म्हांकै अनुभव करि प्रतीति है अर आगम में आप भी ऐसो ही उपदेश दियो छै।

रे भव्य जीवो! कुदेवानै पूजो तातैं अनंत संसार कै विषैं भ्रमोला[3] अर नरकादिक का दुख सहोला[4] अर म्हानै

[1] होगी [2] विलाप करना, खेद-खिन्न होना [3] भ्रमण करोगे [4] सहन करोगे

पूजो तातैं स्वर्गादिक मंद क्लेश सहोला। अर निज स्वरूप नै ध्यावोला[1] तो नियम करि मोक्ष सुख नै पावोला[2]। तीसूं भगवानजी मैं थानै ऐसा उपदेश करि सर्वज्ञ, वीतराग जान्यां अर जे सर्वज्ञ, वीतराग हैं ते ही सर्व प्रकार जगत विषैं पूज्य हैं—ऐसा सर्वज्ञ, वीतराग जान भगवानजी म्है थानै नमस्कार करूं छूं। सर्वज्ञ विना तौ सर्व पदार्थों का स्वरूप जान्या जाइ नाहीं अर वीतराग विना राग-द्वेष को वस करि यथार्थ उपदेश दिया जाइ नाहीं। कै[3] तौ अपनी सर्व प्रकार निंदा का ही उपदेश है कै अपनी सर्व प्रकार बडाई महंतता का उपदेश है। सो ए लक्षण भलीभांति कुदेवादिक विषैं संभवै हैं, तीसूं भगवानजी म्है भी वीतराग छां। तीसूं म्हाका स्वरूप की बडाई करा छां, तौ म्हानै दोष नाहीं। एक राग-द्वेष ही का दोष है। सो म्हाकै राग-द्वेष आपका प्रसाद करि विलै गया है। बहुरि कैसे हैं शुद्धोपयोगी महामुनि? जाकै राग अर द्वेष समान है। अर जाकै असत्कार-पुरस्कार समान है अर जाकै रतन और कौडी समान है अर जाकै उपसर्ग-अन-उपसर्ग समान है, जाकै मित्र-शत्रु समान हैं। कैसे समान हैं? सो कहिए हैं। पूर्व तौ तीर्थंकर, चक्रवर्ती वा बलभद्र वा कामदेव वा विद्याधर वा बडा मंडलेश्वर मुकुटबद्ध राजा इत्यादि बड़ा महंत पुरुष मोक्ष-लक्ष्मी के अर्थी संसार, देह, भोग सूं विरक्त होइ राज्यलक्ष्मीनै जीर्ण तृण की नाईं छोडि संसार-बंधन नै हस्ती की नाईं बंधन तोड वनके विषैं जाइ दीक्षा धरैं हैं, निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा आदरै हैं। पाछै परि-णामों का माहात्म्य करि नाना प्रकार की रिद्धि फुरै है।

---

1 दौड़ोगे, आओगे 2 प्राप्त करोगे, पाओगे 3 या

कैसी है रिद्धि ? कायबल रिद्धि का बल करि चाहे जैसा छोटा-बडा शरीर बना लेहैं, वा सारखी समर्थता होय है। अर वचनबल रिद्धि करि द्वादशांग शास्त्र अंतर्मुहूर्त मैं चितवन कर लेहैं अर आकाश विषैं गमन करै हैं। और जल विषैं ऊपर गमन करै हैं; पन[1] जल का जीव कौ विरोधै नाहीं है अर धरती विषैं डूबि जाइ है, पन पृथ्वीकाय के जीव कौ विरोधै नाहीं है और कहीं विष बहराया है अर शुभदृष्टि करि देखै तौ अमृत होइ जाय है पन ऐसे मुनिमहाराज करै नाहीं। और कहीं अमृत बहराया है अर मुनि महाराज क्रूरदृष्टि करि देखै तौ विष होइ जाइ, पन ऐसे भी करै नाहीं। और दया, शांति दृष्टि करि देखै तौ केतइक योजन पर्यंत का जीव सुखी होइ जाइ अर दुर्भिक्ष आदि ईति-भीति दुख मिटि जाइ। सो ऐसी शुभ रिद्धि दयालु बुद्धि करि फुरै है तौ दोष नाहीं। अर क्रूर दृष्टि करि देखै तौ केताइक[2] जोजन के जीव भस्म होइ जाइ, पन ऐसे करै नाहीं।

अर जाका शरीर का गंधोदक व नवों द्वारों को मल अर चरना-तरली धूल अर शरीर का स्पर्शा पवन शरीर कूं लगै, तब लागता ही कोढ आदि सर्व प्रकार के रोग नाश कूं प्राप्त होइ नियम करि। और मुनि महाराजजी गृहस्थ कै आहार किया छै। तिनके भोजन विषैं नाना प्रकार की अटूट रसोई होय जाइ। तिह दिन सर्व चक्रवर्ती का कटक[3] जीमै तौ भी टूटै नाहीं अर चार हाथ की रसोई के क्षेत्र मैं ऐसी अवगाहना शक्ति होय जाइ सो चक्रवर्ती का कटक सर्व समाय जाइ। अर जुदा-जुदा बैठि भोजन करैं, तब भी सकडाई होइ नाहीं। अर जेठै मुनि अहार

---

१ परन्तु २ कितने ३ सेना-समूह

करैं, तौके दुवारै[1] पंचाचार्य[2] होइ। पंचाचार्यं कै नाम हैं— रत्नवृष्टि, पहुपवृष्टि, गंधोदकवृष्टि, जय-जयकार शब्द अर देवदुंदुभि ये पंचाचार्य जाननै। अर सम्यक्दृष्टि श्रावक मुन्याने एक बार अहार देय तौ कल्पवासी देव ही होय। अर मिथ्यादृष्टि एक बार मुन्याने अहार देय तौ उत्तम भोगभूमिया मनुष्य ही होय पाछे परंपरा मुक्ति जावे। ऐसे शुद्धोपयोगी मुन्याने एक बार भोजन देवा का फल निपजै। और मुनि मति श्रुति, अवधि, मनपर्यय ज्ञान का धारी होय, इत्यादि अनेक प्रकार के गुण संयुक्त होते संतै भी कोई रंक पुरुष आइ महामुनि कूं गाली दै वा उपसर्ग करै तो वासूं कदाचित् भी क्रोध न करैं। परम दयालु बुद्धि करि वाका भला चाहै है और ऐसा विचारै ए भोला जीव हैं, याकौ आपना हित-अहित की खबर नाहीं। ये जीव या परिणामां करि बहुत दुख पावसी। म्हां को तौ कछु बिगार है नाहीं, परंतु ए जीव संसार-समुद्र मांही डूबसी। तीसूं जो होइ तौ याको समझाइये, ऐसा विचार करि हित-मित वचन दया अमृत करि झरता भव्य जीवन कूं आनंदकारी ऐसे वचन प्रकाशै—

हे पुत्र! हे भव्य! तूं आपा नै संसार-समुद्र विषैं मति डोबै, या परिणामों का फल तोनै[3] खोटा लागसी अर तूं निकट भव्य छै अर थारा आयु भी तुच्छ रह्या है। तीसूं अबै सावधान होइ जिनप्रणीत धर्म अंगीकार कर। ई धर्म बिना तू अनादिकाल कौ संसार विषैं रुल्यो अर नरक, निगोद आदि नाना प्रकार दुख सह्या सो तूं भूल गया।

---

१ द्वार पर २ पांच आश्चर्य ३ तुझे

ऐसा श्री गुरां का दयालु वचन सुन वह पुरुष संसार का भय थकी कंपायमान होता हुवा अर शीघ्र ही गुरां के चरना कूं नमस्कार करता हुवा अर आपना किया अपराध नै निंदता हुवा अर हाथ जोरि खडा होय ऐसा वचन कहता हुवा, हे प्रभु ! हे दयासागर ! मो ऊपर क्षिमा करौ, क्षिमा करो। हाय ! हाय ! अबै हूं कांई करूं, यौ म्हारो पाप निवृत्ति कैसे होइ ? म्हारे कौन पाप उदय आयौ सो म्हारे या खोटी बुद्धि उपजी, बिना अपराध म्हा मुन्या नै उपसर्ग कियो। अर जाका चरनां की सेवा इन्द्रादिक देवानै भी दुर्लभ है। अर मैं रंक, इहे परम उपगारी त्रैलोक्य करि पूज्य ताने मैं कांई जाणि उपसर्ग कियो। हाय ! हाय ! अब म्हारो कांई होसी ? अर हूँ किसी गति जासूं ? इत्यादि ऐसे वह पुरुष बहुत विलाप करतो हुवो अर हाथ मसलतो हुवो अर वारंवार मुन्या के चरननै नमस्कार करतो हुवो। जैसे कोई पुरुष दरयाव[1] विषैं डूबतो जिहाजनैं अवलंबे तैसे गुरां का चरन विषै अवलम्बतो हुवो अर यह निश्चो जानतो हुवो अबै तो म्हानै ऐही का चरन की सरन छै, अन्य सरन नाहीं। जो ई अपराध सूं बचौ तो याही के चरना का सेवनि करि बचूं छूं और उपाइ नाहीं, म्हारो, दुख काटवानै एही समर्थ छै। पाछै ई पुरुष की धरमबुद्धि देख श्री गुरु फेर बोल्या—हे पुत्र ! हे वत्स ! तूं मति डरपै, थारै संसार निकट आयो छै। तोसूं अबै थैं[2] धर्मामृत रसायननैं पी अर जरा-मरन दुःख का नाश कर। ऐसा अमृतमई वचन करि वे पुरुषनैं पोखता हुवा, जैसे ग्रीषम समय कर मुरझाई वनस्पतिकूं मेघ पोखै तैसे पोखता हुवा सो महन्त

---

१ समुद्र २ तुम

पुरुषां का यह स्वभाव ही है सो औगुण ऊपर गुण ही करै। अर दुर्जन पुरुषां को एह स्वभाव ही है सो गुण ऊपर भी औगुण ही करै। ऐसे गुरु तारवा समर्थ क्यों नाहीं होय ? होय ही होय। बहुरि शुद्धोपयोगी, वीतराग, संसार-भोग-सामग्री सूं उदासीन, शरीर सूं निस्पृह, शुद्धोपयोगी, थिरता के अर्थि शरीरनै आहार कैसे दे, ताकूं कहिए है।

मुन्या कै आहार के पांच अर्थ हैं--प्रथम तो गोचरी कहिए है। जैसे गऊनै रंक वा पुन्यवान कोई घासादि डारै सो चरवा[1] ही सौ प्रयोजन है और कोई पुरुष सौ प्रयोजन नाहीं। त्यौं ही मुन्यानै भावै तो रंक पडिगाह अहार द्यो, भावै राजादिक पडिगाहि अहार द्यो। सो अहार लेवास्यो तौ प्रयोजन है अर रंक वा पुन्यवान पुरुष सूं प्रयोजन नाहीं। बहुरि दूसरा अर्थ भ्रामरी कहिए, जैसे भौंरा उडता फूल की वासना लेय फूल नै विरोधै नाहीं, त्यौं ही मुनिराज गृहस्थ के आहार ले, परन्तु गृहस्थ ने अंसमात्र खेद उपजै नाहीं। बहुरि तीसरा अर्थ दाहश्रमण कहिए, जैसे लाय[2] लागी होय तीनै जीती[3] प्रकार बुझाय देना। त्यौं ही मुन्या कै उदराग्नि मोई भई लाय, तीनै जैसौ-तैसो अहार मिलै ताहि करि बुझावै है, आच्छा[4]-बुरा स्वाद का प्रयोजन नाहीं। बहुरि चौथा अक्षमृक्षण कहिए है, जैसे गाडी वाग्यां[5] विना चालै नाहीं, त्यौं ही मुनि या आनै यह शरीर आहार दिया विना चालै नाहीं, सिथिल होसी। अर म्हानै यासूं मोक्षस्थान विषैं पहुँचा, जेतो यासूं काम है। तातैं याकूं आहार देय, याकै आसरे संजमादि गुन एकठा[6] करि मोक्षस्थान विषैं पहुंचना। बहुरि पांचवा गर्तपूर्ण कहिए,

---

१ चरना, खाना २ अग्नि ३ जिस-तिस ४ अच्छा ५ औंगन, चिकनाई ६ एकत्र

जैसे कोई पुरुष कै खाई-खात आदि खाडा[1] खाली होय गया होय, तीनै वो पुरुष भाटा[2] ,माटी, ईंटा का जोडि करि पूरि दिया चाहै, त्यों ही मुन्या कै नीहारादिक करि खाडा कहिए, उदर खाली हो गया होय तौ जीती[3] आहार करि वाकौ भरिहै। ऐसा पांच प्रकार अभिप्राय जानि वीतरागी मुनि शरीर की थिरता कै अर्थि आहार लेय है। शरीर की थिरता करि परिणामां की थिरता होहै। अर मुन्या कै परिणाम बिगडवा-सुधरवा की ही निरन्तर उपाय रहै है। जो[4] बात मैं राग-द्वेष न उपजै तिहि क्रिया रूप प्रवर्तै और प्रयोजन नाहीं।

नवधा भक्ति

सो ऐसा शुद्धोपयोगी मुन्या नै गृहस्थ दातार का सात गुन संजुक्त नवधा भक्ति करि आहार देहैं सो ही कहिये है। **प्रतिग्रहण** कहिए, प्रथम तो मुन्या नै पडगाहे। पाछै **ऊँचा स्थान** कहिये, मुन्या नै ऊँचा अस्थान विषै अस्थापै। पाछै **पादोदक** कहिये, मुन्या का पद-कमल प्रक्षालन करै सो भया गंधोदक सो अपना मस्तकादि उत्तम अंग विषै कर्म के नाश के अर्थ लगावे अर आपनै धन्य मानै वा कृत-कृत्य मानै, पाछै **अर्चन** कहिये, मुन्या की पूजा करै। पाछै **प्रणमन** कहिये, मुन्या का चरणां नै नमस्कार करै। बहुरि **मनशुद्धि** कहिए, मन प्रफुल्लित, महाहर्षायमान होय। बहुरि **वचनशुद्धि** कहिये मीठा-मीठा वचन बोलै। बहुरि **कायशुद्धि** कहिये, विनयवान होय शरीर के अंगोपांग कूं नम्रीभूत करै। बहुरि **ऐषणाशुद्धि** कहिये, दोष रहित शुद्ध आहार देइ। ऐसै नवधा भक्ति का स्वरूप जानना।

---

१ गड्ढा २ पत्थर ३. जिस-तिस, ४. जिस

दातार के सात गुण

आगै दातार के सात गुण कहिये है। श्रद्धान होय, भक्तिवान होय, शक्तिवान, विज्ञानवान होय, शांति युक्त होय। मुन्यानै आहार देय लौकिक फल की वांछा न करै, क्षमावान होय, कपट रहित होय, अधिक सयानो न होइ अर विषाद रहित होइ, हरष संजुत्त होइ, अहंकार रहित होइ--ऐसै सात गुन सहित जानना। सोई दातार स्वर्गादिका सुख भोगि परंपराय मोक्ष-स्थानक पहुँचै है। ऐसा शुद्धोपयोगी मुनि तरण-तारण है। आचार्य, उपाध्याय, साधु ताके चरन-कमल कौ म्हारा नमस्कार होहु। अर मुने! कल्याण के कर्ता होहु। अर भवसागर विषैं पडता नै राखो। ऐसा मुन्या का स्वरूप-वर्णन किया। सो हे भव्य! जो तू आपणा हेतनै वांछै तौ सदैव ऐसा गुरां का चरणारविंद सेव, अन्य का सेवन दूर ही तै तजि। इति गुरु-स्वरूप-वर्णन सम्पूर्णम् ॥१॥

ऐसे आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन प्रकार के गुरां का वर्णन किया, तीनों ही शुद्धोपयोगी हैं। तातै समानता है, विशेषता नाहीं। ऐसै श्रीगुरां की अस्तुति करि वा नमस्कार करि वा ताके गुण-वर्णन कह्या। आगै ज्ञानानंदपूरित निर्भर-निजरस- श्रावकाचार नाम शास्त्र जिनवाणी कै अनुसार मेरा बुद्धि माफिक निरूपण करूंगा। सो कैसा है यह शास्त्र? क्षीर समुद्र की शोभानै धरै है। सो कैसा है समुद्र? अत्यंत गंभीर है अर निर्मल जल करि पूर्ण भर्या है। अर अनेक तरंगां का समूह ता करि व्याप्त है। ताका जल कूं श्रीतीर्थंकरदेव भी अंगीकार करै हैं, त्यों ही

बो शास्त्र अर्थ करि अत्यंत गंभीर है अर स्वरसं-रस करि पूर्ण भर्‍या है सोई जल है अर सर्व दोष रहित अत्यन्त निर्मल है अर ज्ञान-लहर करि व्याप्त है, ताकौ भी श्रीतीर्थंकरदेव सेवे हैं। ऐसे शास्त्र कौ म्हारा नमस्कार होहु। क्या वास्ते नमस्कार–होहु ? ज्ञानानंद की प्राप्ति के अर्थ और प्रयोजन नाहीं। आगै करता[1] आपणा[2] स्वरूप कौ प्रगट करै है वा आपणा अभिप्राय जणावै है। सो कैसा हूँ मैं ? ज्ञानज्योति करि प्रगट भया हूं, तातै ज्ञान ही नै चाहूँ हूं। ज्ञान छै सो म्हारा निज स्वरूप छै। सोई ज्ञान-अनुभवन करि मेरे ज्ञान ही की प्राप्ति होहु। मैं तौ एक चैतन्यस्वरूप ता करि उत्पन्न भया। ऐसा जो शांतिकरस ताकै पीबा कूं उद्यम किया है ग्रन्थ बनावा का अभिप्राय नाहीं। ग्रन्थ तौ बडा-बडा पंडितानै घना ही बनाया है, मेरी बुद्धि कांई ? पुन उस विषैं बुद्धि की मंदता करि अर्थ विशेष भासता नाहीं। अर्थ विशेष भास्या बिना चित्त एकाग्र होता नाहीं। अर चित्त की एकाग्रता बिना कषाय गलै नाहीं। अर कषाय गल्या बिना आत्मीकरस उपजै नाहीं। आत्मीकरस उपज्या बिना निराकुलित सुख ताको भोग कैसे होय ? तातै ग्रन्थ का मिस करि चित्त एकाग्र करिवा का उद्यम किया। सो इह कार्य तौ बडा है अर हम योग्य नाहीं, ऐसा हम भी जानै , परन्तु "अर्थी दोषं न पश्यति"। अर्थी पुरुष छै ते शुभाशुभ कार्य कूं विचारै नाहीं, आपना हेतनै ही चाहे है। तातै मैं निज स्वरूपानुभवन का अत्यन्त लोभी हौं। तातै मेरे ताईं और कछु सूझता नाहीं। मेरे ताईं एक ज्ञान ही ज्ञान सूझता है। ज्ञान भोग बिना और कांई ? तातै मैं

१ कर्ता, रचयिता २ अपना, निज आत्म द्रव्य

और सर्व कार्य छोडि ज्ञान ही कूं आराधूं छूं। अर ज्ञान ही की सेवा करूं छूं अर ज्ञान ही का अर्चन करूं छूं अर ज्ञान ही के सरणे रह्या चाहूं छूं।

बहुरि कैसा हूं मैं ? शुद्ध परिणति करि प्राप्त भया हूं अर ज्ञान-अनुभूति करि सयुक्त हूं अर ज्ञायक स्वभाव नै धर्‍या हूं। अर ज्ञानानंद सहज रस ताका अभिलाषी हूं वा भोक्ता हूं, ऐसा मेरा निज स्वभाव छै। ताके अनुभवन का मेरे ताईं[1] भय नाहीं। आपनी निज लक्ष्मी का भोक्ता पुरुष नै भय नाहीं, त्यौं ही मोनै स्वभाव विषैं गमन करता भय नाहीं। या बात न्याय ही है। आपना भाव का ग्रहण करता कोई दंड देवा समर्थ नाहीं, पर द्रव्य का ग्रहण करता दंड पावै है। तातै मैं (मौने) पर द्रव्य का ग्रहण छोडा है। तीसूं मैं निसंक स्वच्छंद हुआ प्रवर्तौं हौं, मेरे ताईं कोई भय नाहीं। जैसे शार्दूलसिंघ के ताईं कोई जीव-जंतु आदि बैरी का भय नाहीं, त्यों ही मेरे भी कर्म रूपी बैरी ताका भय नाहीं। तीसूं ऐसा जान अपनै इष्ट देवता कूं विनय पूर्वक नमस्कार करि आगै ज्ञानानन्दपूरित निर्भर-निजरस-श्रावकाचार नाम शास्त्र ताका प्रारंभ करिये है।

इति श्री स्वरूप-अनुभूति-लक्ष्मी करि आभूषित ऐसा मैं जु हौं सम्यक्दृष्टि-ज्ञानी आत्मा सोई भया ज्ञायक परम पुरुष ता करि चित्त ज्ञानानन्दपूरित-निर्भर-निजरस नाम शास्त्र ता विषैं बंदन ऐसा जो नामाधिकार ता विषैं अनु-भवन पूर्वक वर्णन भया।

---

१ लिए

२ श्रावक-वर्णनाधिकार

वंदित श्रीजिनदेव पद कहूं श्रावकाचार।
पापारंभ सबै मिटै, कटै कर्म अघ-छार ॥१॥

अथ अपने इष्टदेव कूं नमस्कार करि सामान्यपनै करि श्रावकाचार कहिये है। सो हे भव्य ! तूं सुन। श्रावक तीन प्रकार हैं—एक तो पाक्षिक, एक नैष्ठिक, एक साधक। सो पाक्षिक कै देव, गुरु, धर्म की प्रतीति तो यथार्थ होय। अर आठ मूलगुण ता विषैं अर सात विसन ता विषैं अतीचार लागैं। अर नैष्ठिक कै मूलगुण विषैं वा सात विसन ता विषैं अतीचार लागै नाहीं। ताका ग्यारा भेद हैं, ताका वर्णन आगै होयगा। अर साधक अंत विषैं संन्यासमरन करै है। ऐसे ये तीनूं श्रावक देव, गुरु, धर्म की प्रतीति सहित हैं अर आठ सम्यक्त्व के अंग सहित हैं, ताकै नाम कहिए हैं—निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य, प्रभावना। ये आठ अर आठ सम्यक्त्व के गुण सहित हैं, ताके नाम कहिए है—करुणा, वात्सल्य, सज्जनता, आपनिंदा, समता, भक्ति, विरागता, धर्मानुराग, ये आठ हैं। अर पचीस दोष ताके नाम कहिए हैं—जाति, लाभ, कुल, रूप, तप, बल, विद्या, अधिकार- इन आठ का गर्व तै आठ मद जानना। शंका, कांक्षा, जुगप्सा, मूढदृष्टि, परदोष-भाषण, अस्थिरता, वात्सल्यरहित, प्रभावनारहित—ए आठ मल सम्यक्त्व का आठ अंग त्यासूं उलटा जानना। कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, इन तीन का धारक, पाछै वाकी सराहना करनी—ए षट् अनायतन अर देव, गुरू, धर्म इन विषैं

मूढदृष्टि ऐसे पचीस दोष इन करि रहित ऐसे निर्मल दर्शन करि संयुक्त तीन प्रकार के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट संयमी जानने। पाक्षिक विषैं अर साधक विषैं ग्यारा भेद नाहीं हैं, नैष्ठिक विषैं ही हैं। सो पाक्षिक कौ तो पांच उदंबर पीपल, बड, ऊमर, कठूमर, पाकर इन पांचनि का फल अर मद्य, मधु, मांस सहित ये तीन मकार याका प्रत्यक्ष तौ त्याग है। अर आठ मूलगुण विषैं अतीचार सो कहिए है। मांस विषैं तौ चाम के संयोग का घृत, तेल, हींग, जल अर रात्रि का भोजन अर विदल[1] अर दोय घडी का छाण्या उपरांत जल अर बीधा अन्न इत्यादि मर्यादा करि रहित वस्तु ता विषैं त्रस जीवां की वा निगोद की उत्पति है, ताका भक्षण का दोष लागै है। अर प्रत्यक्ष पांच उदंबर अर तीन मकार का भक्षण नाहीं करै है अर सात विसन भी नाहीं सेवै है। अर अनेक प्रकार की आखड़ी संजम पालै है अर धर्म को जाकै विशेष पक्ष है–ऐसा पाक्षिक जघन्य संयमी जानना। सो यह प्रथम प्रतिमा का धारक भी नाहीं है। अर प्रथम प्रतिमा आदि संयम का धारक का उद्यमी भया है। तातै याका दूजा नाम प्रारब्ध है।

नैष्ठिक श्रावक के भेद

नैष्ठिक का ग्यारा भेद–१ दर्शन, २ व्रत, ३ सामायिक, ४ प्रोषध, ५ सचित्त-त्याग, ६ रात्रि-भुक्ति वा दिन विषैं कुशील का त्याग, ७ ब्रह्मचर्य, ८ आरंभ-त्याग, ९ परिग्रह-त्याग, १० अनुमति-त्याग, ११ उद्दिष्ट-त्याग। ऐसैई ग्यारा

---

१ द्विदल, धान्य आदि दुफाड़ वालों को दही-छांछ के साथ मिलाकर खाना।

भेद विषैं असंजम का हीनपना जानना । तातैं याका दूजा नाम घटमान है। अर तीजा साधक ताका दूसरा नाम निपुण है।

भावार्थ—पाक्षिक तौ संयम विषैं उद्यमी भया है, करवा नाहीं लागै है अर साधक सम्पूर्ण कर चुक्या । ऐसा प्रयोजन जानना । अबै पाक्षिक वा साधकनै छोडि नैष्ठिक तिनका सामान्यपनै वर्णन करिये है।

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन

प्रथम दर्शन प्रतिमा कौ धारक तौ सात व्यसन अतीचार सहित छोडै अर आठ मूलगुण अतीचार रहित ग्रहण करै। अर दूसरो व्रत प्रतिमा कौ धारक पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत इन वारौं व्रत का ग्रहण करै। अर तीसरो सामायिकव्रत धारक अथौन[1] सबारै[2] वा मध्यान्ह[3] विषै सामायिक करै। अर चौथो प्रोषधव्रतकौ धारक आठै, चौदस पर्वी[4] तिन विषैं आरंभ छोडि धर्मस्थान विषैं बसैं। अर पांचमो सचित्तत्यागव्रत कौ धारक सचित्त कौ त्याग करै। रात्रिभुक्तिव्रत कौ धारक रात्रि-भोजन छोडै अर दिन विषैं कुशील छोडै। अर सातमो ब्रह्मचर्यव्रत कौ धारक रात्रि वा दिन विषैं मैथुन सेवन तजै। अर आठमो आरंभव्रत कौ धारक आरंभ तजै। अर नवमो अपरिग्रहव्रत कौ धारक परिग्रह तजै अर दशमो अनुमतिव्रत कौ धारक पाप-कार्य का उपदेश वा अनुमोदना तजै। अर ग्यारमो उद्दिष्टव्रत कौ धारक उपदेश सौं भोजन तजै। ऐसे सामान्य लक्षण जानना। आगै इनका विशेष वर्णन करिये है।

---

१ सन्ध्या काल, सांझ २ प्रातः काल, सबेरे ३ दोपहर ४ पर्व के दिन

दर्शन प्रतिमा

सो दर्शन प्रतिमा कौ धारक आठ मूलगुण पूर्वे कह्या सो ग्रहण करै अर सात विसन तजै अर इनका अतीचार तजै। अथवा केई आचार्य आठ मूलगुण ऐसैं कह्या है–पांच उदंबर का एक अर तीन मकार का तीन, सो च्यार तौ पूर्वे ऐसैं आठ कह्या। ते ही भया अर च्यार और जानना सोई कहिये हैं–नवकार मंत्र का धारण अर दया-चित्त अर रात्रि-भोजन का त्याग अर दोय घडी उपरांत कौ अनछान्या जल का त्याग-ऐसे आठ मूलगुण जानना। आगै सात व्यसन के नाम कहिये हैं—१. जुवा, २. मांस, ३. दारू, ४. वेश्या, ५. परस्त्री-सेवन, ६. शिकार, ७. चोरी-ये सात व्यसन ज्यां सेया राजा दंड देइ अर लौकिक विषैं महानिंदा पावै ऐसा जानना। आगै मूलगुण वा सात व्यसन ताका अतीचार कहिये है। प्रथम दारू का अतीचार–आठ पहर उपरांत अथाणा अर चलितरस अर जो वस्तु फूलन कै आई, ता वस्तु का भक्षण न करै, इत्यादि। अर मांस का अतीचार–चाम के संग हींग, घृत, तेल, जल इत्यादि। शहद का अतीचार–फूल का भक्षण अर शहद का अंजन ओषधि अरथ लेना. इत्यादि। अर पांच उदंबर का अतिचार अजान फल का भक्षण न करै अर बिना शोध्या फल का भक्षण न करना, ऐसै जानना। ये आठ मूलगुण के अतीचार जानना।

आगै सात व्यसन के अतीचार कहिये हैं। प्रथम जुवा कौ अतीचार जानना-होड आदि। मांस-मदिरा के पूर्वे कहि आये। परस्त्री के अतीचार-कुंवारी लडकी सौं क्रीडा करबौ अर अकेली स्त्री सौं एकांत बतलाबौ, इत्यादि। अर

वेश्या के अतीचार—नृत्यादि वादित्र-गान ता विषैं आसक्ति होय देखै अर सुने अर वेश्या सौं रमै, त्यां पुरुषा सौं गोष्ठी राखै अर वेश्या के घर विषैं जाइ, इत्यादि। अर शिकार के अतीचार-काष्ठ, पाषाण, मृत्तिका, धातु, चित्राम-लेखन के घोडा, हाथी, मनुष्य आदि जीवन के आकार बनाया हुवा ताका घात करना, इत्यादि। चोरी के अतीचार-पराया धन कौ लेना वा जोरावरी खोस लेना वा थोडा मोल दे घणा मोल की वस्तु लेनी, तौल में घाट देना, बाड[1] लेना, धरोहर राख मेलनी, भोले मानुष का माल चुरावना, इत्यादि। ऐसे सात व्यसनके अतीचार जानना। ये अतीचार छौडै सो तौ प्रथम प्रतिमा का धारक श्रावक अर अतीचार न पालै सौ पाक्षिक श्रावक ऐसा जानना। आगै और भी केतीक[2] बातैं नीति पूर्वक प्रथम प्रतिमा कौ धारक पालै सो कहिये हैं। अनारंभ विषैं जीव का घात न करै।

भावार्थ—हवेली, महल आदि का करावा विषैं हिंसा होय छै। सो तौ होय ही छै, परन्तु बिना आरंभ जीवा नै मारै नाहीं अर उत्कृष्ट आरंभ न करै।

भावार्थ—खोटा व्यापार जिह मैं[3] घणी हिंसा होय, घणी झूठ होय वा जगत विषैं निंदा होय, हाड-चाम आदि अथवा ता विषैं घणी तृष्णा बढै, इत्यादि उत्कृष्ट का स्वरूप जानना। अर निज स्त्री कौ जिहि-तिहि[4] प्रकार धर्म विषैं लगावै। स्त्री की धर्म-बुद्धि सौं धर्म-साधन भला सधै है। अर आपना धर्म का अनुराग बहुत सूचै है। अर धर्माचार सहित लोकाचार उलंघै नाहीं।

---

१ बढ़ती २ कितनी ३ जिस में ४ जैसे-तैसे

भावार्थ—जा विषैं लोक निंदा करै, ऐसा कार्य कौन करै ? परन्तु जा विषैं अपना धर्म जाय अर लोक भला कहै है सौ ऐसा नाहीं कै धर्म छोडि लोक का कह्या कार्य को करै। तातै अपना धर्म कौ राखि लोकाचार उलंघै नाहीं। अर स्त्री नै पुरुष की आज्ञा माफिक रहवो उचित छै। पतिव्रता स्त्री की यह रीति छै। अर यह धर्मात्मा पुरुष है सो षडावश्यक करि भोजन करै सो कहिये है। सो प्रभात ही तौ श्री अरहंत देवता की पूजा करै। पाछै निर्ग्रंथ गुरां की सेवा करै, शक्ति अनुसार तप अर संयम करै। पाछै शास्त्र-श्रवण, पठन-पाठन करै, पाछै पात्र कै ताईं वा दुखित जीवां के ताईं च्यारि प्रकार दान दे। अर च्यार भावना निरन्तर भावे सो सर्व जीवा सूं मैत्री भाव राखै।

भावार्थ—सर्व जीवा नै आपणा मित्र जानै, आप सारिखो स्वरूप वाकौ भी जानै। तीसूं कांइनै विरोधै नाहीं। सर्व जीवां की रक्षा पालतौ होय। अर दूसरी प्रमोद भावना सो आपसूं अधिक गुणवान पुरुष त्यासूं तौ विनयवान प्रवर्तै। अर तीसरी कारुण्य भावना सो दुःखित जीवा कूं देखिवा की करुणा करै। अर जी प्रकार को दुख होय तीनै मेटै अर आपणी सामर्थ्य नहीं होय तौ दया रूप परिणाम ही करै। वानै दुखी देखि निर्दय रूप कठोर परिणाम नहीं राखै। कठोर परिणाम छै सो महाकषाय छै। अर कोमल परिणाम छै सो निःकषाय छै सोई धर्म छै। अर चौथी माध्यस्थ्य भावना सो विपरीत पुरुष तासूं मध्यस्थ रूप रहै। नहीं तौ वेसौ[1] राग करे, नहीं वेसौ द्वेष करै।

---

1 उनसे

भावार्थ—कोई हिंसक पुरुष छै अथवा मिथ्यात्वी पुरुष छै अथवा सप्तव्यसनी पुरुष छै सो वानै धर्मोपदेश समझै तो समझाय पाप कमाया छुडाय दीजे, नहीं समझै तौ आप माध्यस्थ्य रूप रहिजो । ऐसें च्यार भावना कास्वरूप जानना। आगै और भी केतीक वस्तु का त्याग करैं सो कहिये है। अर बीघा[1] अन्न अभक्ष्य कहिए। लूणी[2] अर द्विदल कहिए दुफाडा नाज का संयोग सहित अथवा काष्ठ चिरौंजी आदिक वृक्ष का फल वा दही, छाछ का खाणां। अर चौमासे तीन दिन, शीयालै[3] सात दिन, उन्हाले[4] पांच दिन उपरांत का आटा भक्षण नाहीं करणा। दोय दिन उपरांत का दही न खाना।

भावार्थ—आज का जमाया कालि खाना, जामन दिया पाछै अष्ट प्रहर की मर्यादा है। अर बीधी वस्तु का भक्षण अर दही गुड मिलाय खाने वा जलेबी इत्यादि विषैं माखण मैं त्रस जीव वा निगोद उपजै है। तातै याका त्याग करना। अर दोय घडी नैनू की मर्यादा है वा कोई आचार्य शास्त्र विषैं चार घडी की मर्यादा भी लिखे हैं। तातैं दोय घडी वा च्यार घडी पाछै जीव उपजै हैं, परन्तु ये अभक्ष्य हैं। तातैं तुरन्त का बिलोया भी खाना उचित है नाहीं। याका खावा विषैं मांस कैसा दोष है। या विषैं राग भाव बहुत आवै छै। अर बैंगन अर साधारण वनस्पति अर घोलबडा अर पाला[5] अर गडा[6] अर मृत्तिका अर विष अर रात्रि-भोजन का भक्षण तजै। अर सूखा पांच उदंबर अर बैंगन ताका भी भक्षण नाहीं करै, याका खाया सूं रोग भी

---

१ घुला हुआ, कीड़ा लगा हुआ २ नैनू, मक्खन ३ सर्दियों में ४ गर्मियों में
५ बर्फ ६ ओला

बहुत उपजी है। अर चलित रस विषैं तामें बासी रसोई, मर्यादा उपरांत आटा, घी व तेल, मिठाई का भक्षण तजै अर आम आदि मेवा ताका रस चलि गया होय ताका भक्षण नाहीं करै है। अर बडे-बडे झाऊ बेर कोमल बहुत है सो हाथ सूं फोड़ै तौ वाकी दया पलै नहीं, लट मरै तीसूं तज ही दे। ये काना बहुत होय है, ता विषैं लट होय है अर सहज का-सा लागा आम विषैं भी सूत का तार सरीखा लट होय है सो बिना देख्या चूसै नाहीं। और कानां साठा वा कानी काकडी इत्यादि काना फल ता विषैं लट उपजै छै, ताका भक्षण तजै। और सियालै साग आदि हरितकाय ता विषैं बादलां का निमित्त करि लटा बहुत उपजै छै, ताका भक्षण तजै। अर कोला,[1] तरबूज आदि बडा फल याका ल्यावा विषैं वा याका खावा विषैं निर्दईपणा विशेष उपजै है। मलिन चित होय है अर याको हस्त विषैं छुरी याकूं विदारै तब बडा त्रस जीवां की-सी हिंसा किये कै-सै परिणाम विषैं प्रतिभासै हैं। तातै बडा फल का दोष विशेष है। अरकेला ताका भक्षण तजै, या खाया राग बहुत उपजै है। अर फूल जाति वा नरम हरितकाय वा जाकी छालि कहिये, छोडा[2] जाडा होय वा वट के टूटै वा साठा[3] आदि की पेली[4] वा काकडी आदि ताकी लकीर अर निंबू, दाड्यौ[5] आदि ताकी जाली ये गूढ होय याका व्यक्तपना नाहीं भासै, ताका भक्षण तजै।

भावार्थ—ऐसी वनस्पति विषैं निगोद होय है। इत्यादि जीव हरितकाय विषैं निगोद होय है। जा विषैं त्रस जीव

---

१ कद्दू, काशीफल २ मोटा छिलका ३ गन्ना ४ पोर ५ इमली का बीज, चियां ६ कूप्पा, चर्मनिर्मित पात्र

होय तै वनस्पति सर्व ही तजनी उचित है और आगै ऐसा व्योपारादि नाहीं करै, ताका ब्यौरा—लोह, लकडा, हाड, चाम, केश, हींग-सीघडा[१] का घृत, तेल, तिल, लूण, हलद, साजी, लोद रांग, फिटकरी, कसूंम,[१] नील, सावन[२], लाख, विष, सहत इत्यादि पसारीपणा का सर्व ही व्यापार निषिद्ध है। अर हरितकाय का व्योपार अर वीघा अन्न आदि जीव विषैं त्रस जीव विषैं का घात बहुत होइ है। ऐसा सर्व ही व्योपार तजै और चांडाल, कसाई, धोबी, लुहार, ढेढ[३], डूम,[४] भील, थोरी,[५] वागरी,[६] साठ्या,[७] कूंजरा,[८] नीलगर[९] ठग, चोर, पासीगर[१०] इत्यादि याका वाणिज कहिए वाकूं वस्तु मोल बेचनी वा वाकी वस्तु मोल लैनी, ताका त्याग करै। वा हलवाईगर की वस्तु तजै वा धोबी पासि धुपाई वा छीपा, नीलगर पासि रंगाय कपडा का बेचना, ताकूं तजै वा खेती करावै नाहीं और भाड विषैं वस्तु सिकावै नाहीं वा भंडभूजा वा लुहार ताकूं द्रव्य उधार दे नाही वा कोयला की भट्टी करावै नाहीं वा दारू की भट्टी करावै नाहीं वा सुरा कहिए दारू ताकूं करावै नाहीं वा कोयला वा मदिरा वा सुरा के करावने वाले कूं बनजै नाहीं वा दरियाव का काम करावै नाहीं। बहुरि ऊंट, घोड़ा, भैंसा, बलध[११], गधा, गाडी, वहल[१२], हल, कुडी[१३], चडस[१४], लाव[१५] भाडै देनहीं वा आप भाडै देवावे नहीं वाताके वहानै पुरुषकूं उधार द्रव्य दे नहीं या विषैं महंत पाप हैं। जा कार्य करि

---

१ एक तरह का रंग, कुसुंभी २ साबुन ३ नीच, निकृष्ट ४ डोम ५ एदी, आलसी ६-७ नीच जाति ८ कूंजड़ा ९ रंगरेज १० उठाईगीरा ११ बैल १२ छोटा रथ १३ फाल, हल के संग लगने वाली लोहे की कुली १४ चरस १५ मोटा रस्सा

प्राणी दुखी होय वा विरोध्या जाय, ऐसा कार्य कूं धर्मात्मा पुरुष कैसे करै ? जीव-हिंसा उपरांत और संसार विषें पाप नाहीं, तातैं सर्व प्रकार तजना योग्य है। अर ताकूं द्रव्य भी उधार दै नाहीं। और शस्त्र का व्योपार तजै अर शस्त्र के व्योपारी कूं उधार भी दे नाहीं। इत्यादि खोटा जे किसब[1] है, ते सर्व कौ तजै, अर या कि सब वाला ताको देना-लेना तजै और पापन की वस्तु मोल ले नाहीं। और बिराने डील[2] का पहिर्‍या वस्त्र मोल ले आप पहिरै नाहीं, अपने डील का वस्त्र और कूं बेचै नाहीं। अर मंगता आदि दुखित, भिक्षुक जीव नाज आदि वस्तु मांग ल्यायो होय ताकौ भी मोल देनी-लेनी नाहीं। अर देव अरहंत, गुरु निर्ग्रंथ, धर्म जिनधर्म, ताके अर्थ द्रव्य चढाया ताकौ निर्माल्य कहिए, ताका अंश मात्र भी ग्रहण करै नाहीं। याका फल नरक, निगोद है।

यहां प्रश्न जो ऐसा निर्माल्य का दोष कैसे कहा ? भगवान कूं चढाया द्रव्य ऐसा निंद्य कैसे भया ? ताका समाधान--रे भाई ! ये सर्वोत्कृष्ट देव हैं। ताकी पूजा करिवे समर्थ इंद्रादिक देव भी नाहीं। अर ताके अर्थि कोई भक्त पुरुष अनुराग करि द्रव्य चढाया पाछै अपूठो[2] चढ़ोवि[3] बाकी जायगा वाके द्रव्य कौ बिना दिया ग्रहण करै तौ वो पुरुष देव, गुरु, धर्म का महा अविनय किया। बिना दिया का अर्थ यह है जो अरहंत देव तौ वीतराग हैं, तातैं ये तौ आप करि कोईनै दे नाहीं, तातैं बिना दिया ही कहिये है। जैसे राजादिक बडे पुरुष कोई वस्तु नजर करै, पाछै वाका बिना दिया ही मांग लेहै, तो वाकै राजा महादंड देहै—

१ पराये शरीर २ वापस ३ चढ़ाया हुआ

ऐसे ही निर्माल्य का दोष जानना। और भगवान के अर्थ चढ़्या सर्व द्रव्य परम पवित्र है, महाविनय करने योग्य है; परन्तु लेना महा अयोग्य है, या समान और अयोग्य नाहीं। तातैं निर्माल्य कौ तजना वा निर्माल्य वस्तु मोल देनी-लेनी नाहीं वा निर्माल्य वस्तु को लेने वाला ताको उधार देय नाहीं। बहन, पुत्री आदि सवासनी[1] ताकौ द्रव्य उधार देय नाहीं। इत्यादि अन्याय पूर्वक सब ही कार्य कौ धर्मात्मा छांडै जा कार्य विषैं अपजस होय, आपणा परिणाम संक्लेश रूप रहै वा शोक-भय रूप रहे ता कार्य को छोडै तब धर्मात्मा सहज ही होय, ऐसा भावार्थ जानना। ऐसे प्रथम प्रतिमा का धारक संयमी नीति-मार्ग चालै छै।

व्रत प्रतिमा

आगै घर का भार पुत्रनै सौंपि दूजी प्रतिमा ग्रहण करै सो कहै हैं। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, च्यारि शिक्षाव्रत, ये बारह व्रत अतिचार रहित पालै, ताकौ दूसरी प्रतिमा का धारक कहिये।

प्रतिमा नाम प्रतिज्ञा का है अथवा याका विशेष कहिये है। दोष बुद्धि करि च्यारि प्रकार त्रस जीव घात अर बिना प्रयोजन थावर जीवां का घात नाहीं करै, ताका रक्षक होय।

भावार्थ—कोई या कहै तोनै पृथ्वी को राज द्यौ छूं। तूं थारा हाथ सूं कीडानै मार अर नाहीं मारै तो थारा प्राणन को नाश करिस्यो अथवा थारो घर लूटि लेस्यो।

---

[1] सुवासिनी, सुहागन

ऐसा राजादिक का हठ जानै जो हूं याकूं कह्यौ न करिस्यौ तौ या विचारी छै सोई करसी। ऐसि जानि धर्मात्मा पुरुष ऐसा विचार करै सुमेरवत त्रस जीव ऊपर शस्त्र कैसे चलाया जाय? तीसूं शरीर, धनादिक, जाय छै तौ जावौ। याकी थिरता एती ही छै। म्हारो कांई चरौ? म्हारा राखा कैसे रहसी? अर-याकी थिति वधती छै तौ राजा वा देव करि हण्या [१] कैसे जासी? यह निःसंदेह है। तीसूं मौनै सर्वथा भयादि करि जीव-घात करिवो उचित नाहीं। अर कोई या कहै है अबार [२] तौ ये कहै छै सो ही करौ, पाछै थे दौरि रक्षा कर लीज्यो तौ धर्मात्मा पुरुष ईनै [३] या कहै—रे मूढ! जिनधर्म की आखडी ऐसी नाहीं जो शरीर वा धनादिक कै वास्तै मत नाखिजै [४]। अर पाछै फेरि पालजै सो यो उपदेश आन [५] मत मै छै, जिनमत मै नाहीं। सो ऐसा जानि वे धर्मात्मा पुरुष जीव कौ मारिवौ तौ दूरि ही रहौ, पन अंश मात्र भी परिणाम चलावै नाहीं। अर कायरपना का वचन भी उचारै नाहीं अरहलन-चलनादि क्रिया विषैं अर भोग-संयोगादि क्रिया विषैं संख्यात-असंख्यात जीवत्रस अर अनंत निगोद जीव की हिंसा होय है। परंतु याके जीव मारिवा का अभिप्राय नाहीं, हलन-चलनादि क्रिया का अभिप्राय है। अर वा क्रिया त्रस जीव की हिंसा बिना बनै नाहीं। तातै याकौ त्रस जीव का रक्षक ही कहिये। अर पांच थावर ताकी हिंसा का ताके त्याग है नाहीं, तौ भी प्रयोजन थावर जीवां का स्थूलपनै रक्षक ही है। तातै ताकूं अहिंसा व्रत का धारक कहिये, ऐसा जानना।

---

१ मारा, बध किया २ अभी ३ इसको ४ उल्लंघन करे ५ अन्य दूसरे

सत्य व्रत

आगे सत्यव्रत का विशेष कहैं हैं। झूठ बोल्या राज।
दंड दे वा जगत विषैं अपजस होय। ऐसी स्थूल झूठ बोलै
नाहीं। अर ऐसा सत्यवचन बोलै नाहीं जा सत्यवचन बोलै
पर-जीव का बुरा होय अर कठोरता नै लिया ऐसा भी सत्य
वचन बोलै नाहीं। कठोर वचन करिवा का प्राण पीड्या
जाय है अर आपना भी प्राण पीड्या जाय है। ऐसै सत्य-
वचन का स्वरूप जानना।

अचौर्य व्रत

आगे अचौर्यव्रत का स्वरूप कहिये। ऐठा[1] की चोरी
तौ सर्व प्रकार तजै। अर चोरी की वस्तु मोल ले नाहीं।
अर गैलै[2] पडी पाई होय तौ वस्तु ताका ग्रहण करै नाहीं।
अर भोले मारे नाहीं, अर वस्तु अदला-बदली करै नाहीं,
रकम चुरावै नाहीं, राजादिक का हासिल[3] चुरावै नाहीं,
चौरानै विनजै[4] नाहीं। तौल विषैं घाटि[5] दे नाहीं, वाधि[6]
लेवै नाहीं, वस्तु विषैं भेला[7] करै नाहीं। अर गुमास्ता-
गिरि विषैं वा घर का व्योपार विषैं किसब की चोरी भी
नाहीं करै। इत्यादि सर्व चोरी का त्याग करै है।

भावार्थ—**मारग की माटी वा दरियाव का जल आदि
का तौ याके बिना दिया ग्रहण है।** ए माल राजादिक का
है, याका नाहीं। एती चोरी याको लागै है। अर विशेष
चोरी नाहीं लागै है। तिहि वास्ते याको स्थूलपणे अचौर्य
व्रत का धारक कहिये।

---

१ प्रत्यक्ष २ मार्ग में, गली में ३ कर, टैक्स ४ लेन-देन ५ घटती ६ बढ़ती
७ मिलावट

ब्रह्मचर्य व्रत

आगैं ब्रह्मचर्य व्रत कहिये है। सो परस्त्री का तौ सर्व प्रकार त्याग करै। अर स्व स्त्री विषैं आठै,[1] चौदस, दोयज, पांचै, ग्यारस, अठाई, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, आदि जे धर्म पर्व ता विषैं शील पाले अर काम–विकार कौ घटावै। अर शील की नव बाड पालै ताको ब्यौरो–काम–उत्पादक भोजन करै नाहीं, उदर भर भोजन करै नाहीं, सिंगार करै नाहीं, परस्त्री की सेज्या[2] ऊपर बसै नाहीं, एकली स्त्री-संग रहै नाहीं। राग भाव करि स्त्री का वचन सुणै नाहीं। राग भाव करि स्त्री कौ रूप-लावण्य देखै नाहीं, मनमथ,[3] कथा करै नाहीं। ऐसे ब्रह्मचर्य व्रत जानना।

परिग्रहत्याग व्रत

आगै परिग्रह–त्याग व्रत कहै है। सो आपने पुण्य कै अनुसारि दस प्रकार के सचित्त-अचित्त बाह्य परिग्रह ताका परिमाण करै। ऐसा नाहीं कै पुन्य तौ थोड़ा अर प्रमाण बहुत राखै। ताकौ भी परिग्रहत्याग व्रत कहिये सो यो नहीं है। या विषैं तौ अपूठा[4] लोभ तीव्र होय है। इहां लोभ ही का त्याग करना है, ऐसे जानना। अब दस प्रकार के परिग्रह का नाम कहिये है—धरती, जान[5] कहिये पालकी आदि द्रव्य कहिये धन, धान्य कहिये नाज, हवेली, हंडवाई[6] बरतन, सेज्यासन, चौपद, दुपद ऐसे दस प्रकार के परिग्रह का परिमाण राखि अर विशेष का त्याग करना, ताकौ

---

१ अष्टमी, आठम २ शय्या, बिस्तर ३ काम ४ बहुत ५ यान, पालकी ६ झाड़-फानूस

परिग्रहत्याग व्रत कहिये है। ऐसै पांच अणुव्रत का स्वरूप जानना।

दिग्व्रत

आगै दिग्व्रत का स्वरूप कहिये है। सो दिग् नाम दिशा का है। सो दसों दिशा विषैं सावद्य योग अर्थि गमन करवा का प्रमाण राखि जावज्जीव विषैं मरजाद करि लेई, उपरांत क्षेत्र सौं वस्तु मंगावै नाहीं या भेजै नाहीं, चिट्ठी-पत्री भेजै नाहीं अर उठा[1] की पत्री-चिट्ठी आई वांचै नाहीं, ऐसे जाननी।

देशव्रत

आगै देशव्रत कहिये है। देश नाम एक देश का है। दिन-प्रति दिशा का परिमाण करि ले। आज मोनै दोय कोस वा चार कोस वा बीस कोस मोकला[2] है अर विशेष क्षेत्र विषैं गमन करने आदि कार्य का त्याग है। ता विषैं गमन न करै, सही क्षेत्र मैं प्रवर्तै।

भावार्थ—दिग्व्रती विषैं एता विशेष है। सो दिग्व्रत विषैं दिवा का जावज्जीव प्रमाण राखि त्याग करै। अर देशव्रत विषैं मरजादा मैं मरजादा राखि ता विषैं भी अल्प मरजाद राखि घटाय त्याग करैं। जैसे बरस, दिन का, छह महीने का वा महीना एक का वा पक्ष का वा दिन का वा पहर का व दोय घटिका पर्यन्त क्षेत्र का प्रमाण सावद्ययोग

---

१ वहाँ २ परिमाण सीमा

कै अर्थ करै, धर्म कै अर्थ नाहीं करै। धर्म कै अर्थ कोई प्रकार त्याग है ही नाहीं।

अनर्थदण्ड-त्याग व्रत

आगै अनर्थदण्ड–त्याग व्रत कहिये है। बिना प्रयोजन पाप लागै अथवा प्रयोजन विषैं महापाप लागै, ताका नाम अनर्थदण्ड है। ताका पाँच भेद हैं—१. अपध्यान, २. हिंसादान, ३. प्रमादचर्या, ४. पापोपदेश, ५. दुःश्रुतश्रवण। याका विशेष कहैं हैं।

अपध्यान कहिये जा बात करि अन्य जीव का बुरा होय वा राग-द्वेष उपजै, कलह उपजै अरअविश्वास उपजै, मार्‌या जाय, धन लूटा जाय, शोक-भय उपजै ताकौ उपाय का चिन्तवन करै। मूवा मनुष्य कूं वाके इष्टकूं सुनाय देना, परस्पर बैर याद करावना, राजादिक का भय बतावना, अवगुण प्रकट करना, मर्मछेद वचन कहना, ताका ध्यान रहै, इत्यादि अपध्यान का स्वरूप जानना।

बहुरि हिंसादान कहिये हैं—छुरी, कटारी, तरवार, बरछी, आदि शस्त्र का मांग्या देना व कढाव-कडाही, चरी-चरवा आदि का मांग्या देना, ईंधन, अग्नि, दीपक का मांग्या देना, कुश्शी[1] –कुदाल-फावडे का मांग्या देना, चूला-मूसल घरटी[2] का मांग्या देना, इत्यादि हिंसानै कारण जो वस्तु ताका व्योपार भी करै नाहीं। अर बैठा-बैठा ही बिना प्रयोजन भूमि खोदि नाखै। अर पाणी ढोल दे अर अग्नि प्रजाल दे अर बीजनी[3] सूं पवन करवो करै। अर बनस्पतिनै

---

१ सब्बल २ घट्टी, चक्की ३ पंखा

शस्त्र करि छेदि नाखै वा हाथ सौं तोड नाखै,[१] ऐसा हिंसादान का स्वरूप जानना।

आगे प्रमादचर्या का स्वरूप कहिये है। प्रमाद लिये धरती ऊपर बिना प्रयोजन आम्हा-साम्हा[२] फिरबो करै वा हालै वा बिना देख्या ही बैठि जाय, बिना देख्या वस्तु उठाय ले वा मेलि दै, इत्यादि प्रमादचर्या का स्वरूप जानना।

आगे पापोपदेश का रूप कहिये है। ऐसा उपदेश दे नाहीं फलाणा तूं हवेली कराय वाकूं बावडी,तलाब खिणाय[३] वा खेत, बाग वा थारे खेत निदानी[४] आयौ है। तीको निदाउ वा थारो खेत सूखै छै, जाकूं जल करि सींच। वा थारी बेटी कुवारी है, तीको ब्याह कर वा थारो बेटा कुवारा छै ताको ब्याह कर वा बजार विषैं नीबू, आम, काकडी, खरबूजा, आदि जे फल बिकै छै सो तूं मोल ल्याव वा मैंथी, बथुवौ, गांदल[५] इत्यादि बजार मैं बिकै छै सो तू मोल ल्याव। तोरई, करेला, टीडसा,[६] आदि हरितकाय मोल मंगावा को उपदेश दे अर अग्नि, ईंधन, जल, घृत, तेल, लूण मंगावा को उपदेश दे वा चूला बालिवा का, आंगण लीपवा का, गोबर करिवा कौ उपदेश दे वा कपडा धुपावा[७] का, स्नान करावा का, स्त्री का मस्तक का केश संवारिवा का, खाट तावडे[८] नाखिवा[९] का, कपड़ा मांहि सूं जुवा काढिवा का, दीवो जोवा का उपदेश देवा बीध्यो-गल्यो नाज मंगावा का वा घृत, तैल, गुड-खांड, नाज आदि वस्तु भंडशाल[१०] राखिवा का उपदेश दे। बैल, भैंस, ऊंट लादिवा का, देशांतर सूं वस्तु मंगावा, खिनावा[११] का उपदेश दे। वा

---

१ डाले २ इधर-उधर ३ खिनवाना, निर्माण करना ४ नींदना ५ मूली की कांदर, पत्तों के बीच में रहने वाली जड, ६ टैंडसी, टिंडे ७ धुलाने ८ धूप में १० भण्डार-गृह ११ भेजना

दान, तप, शील, संयम, पौसे,[१] आखडी आदि धर्म का कार्य विषें कोई पुरुष लागै, ताको मनै[२] करे । ऐसा उपदेश दे अथवा पूर्वं कही जे वस्तु सर्व का सौदा करा दे अर नाना प्रकार की खोटी चतुराई वाअ क्कल और कौ सिखावै अथवा राजकथा, चोरकथा, स्त्रीकथा, देशकथा इत्यादि नानाप्रकार की कथा ताका उपदेश दे, ऐसे पापोपदेश का स्वरूपजानना ।

आगे दुःश्रुत का स्वरूप कहिये है । दुःश्रुत कहिये खोटी कथा का सुनना, कामोत्पादन—कथा, भोजन, चोर, देश, राज्य, स्त्री, वेश्या, नृत्यकारिणी की कथा वा रार,[३] संग्राम, युद्ध, भोग की कथा, स्त्री का रूप-हाव-भाव-कटाक्ष की कथा, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र-तंत्र-यंत्र, स्वरोदय की कथा, ख्याल-तमाशा इत्यादि पापनै कारण ताकी कथा का सुनना, ताकौ दुःश्रुतश्रवण कहिये है, इत्यादि बिना प्रयोजन महा-पाप ताकौ अनर्थदंड कहिये, ताका त्याग करै ताको अनर्थ—दंडत्याग व्रत कहिये । ऐसै तीन गुणव्रत का स्वरूप जानना ।

सामायिक व्रत

आगै सामायिक व्रत कौ स्वरूप कहिए है । सो आंथोन,[४] सवारे, मध्याह्न विषें त्रिकाल समै तीन बेर[५] सामयिक करै आठें, चौदस प्रोषध-उपवास करै, ताका स्वरूप आगै कहेंगे ।

आगै भोगोपभोगव्रत का स्वरूप कहिये है । सो एक बार भोगवा मैं आवै सो तो भोग, जैसे—भोजनादि । अर वे ही वस्तु कौ बार-बार भोगिये, जैसे—स्त्री वा कपडा वा गहणा[६] आदि कौ उपभोग कहिए । नित च्यारि-च्यारि

१ प्रोषध, उपवास २ निषेध ३ कलह-झगड़ा ४ सांझ, शाम ५ बार
६ आभूषण, गहना

पहर का प्रमाण करि लेय। प्रभात प्रमाण करै सो तौ आथण्यादि[1] करि लेय अर आथण को प्रमाण कीनी प्रभाति यादि करि लेइ। या ही का विशेष भेद ताका नाम नेम[2] कहिये। ताका ब्यौरा—भोजन, षट्रस, जलपान, कुंकुमादि, विलेपन, पुष्प, तांबूल, गीत, नृत्य, ब्रह्मचर्य, स्नान, भूषण, वस्त्रादि, वाहन, शयन, आसन, सचित्त आदि वस्तु संख्या ऐसा जानना।

अतिथि-संविभाग-व्रत

आगे अतिथि-संविभागव्रत का स्वरूप कहिये है। बिना बुलाया तीन प्रकार के पात्र व दुखित आपनै वारनै[3] आवै तो त्यानै अनुराग करि दान देय, सुपात्र नै तौ भक्ति करि देय अर दुखित जीवा नै अनुकम्पा करि देय। सो दातार का सात गुण सहित दे अर मुन्या नै नवधा भक्ति करि दे। ताको ब्यौरो—नवधा भक्ति नाम १. प्रतिग्रहण, २. उच्च स्थापन, ३. पादोदक, ४. अर्चन, ५. प्रणाम, ६. मनःशुद्धि, ७. वचन-शुद्धि, ८. काय-शुद्धि, ९. एषणा-शुद्धि ऐसा जानना। और भी दान देय मुन्या नै कमंडल-पीछी, पुस्तक वा ओषधि, वस्तिका देई अर अर्जिका, श्राविकानै पांच तौं वे ही अर वस्त्र देई अर दुखित जीवा नै वस्त्र वा औषधि वा आहार वा अभयदान भी देई और जिनमंदिर विषें नाना प्रकार के उपकरण चढावै, पूजा करावै वा ताकी मरम्मत करावै वा प्रतिष्ठा करावै। वा शास्त्र लिखाइ धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष नै देई अर वन्दना-पूजा करावै, तीर्थयात्रा विषै द्रव्य खरच करै अर न्यायपूर्वक द्रव्य पैदा करै। ताका तीन भाग करै। तामैं

---

१ शाम तक का २ नियम ३ द्वार पर

एक भाग तौ धर्म निमित्त खरचै अर एक भाग भोजन के अर्थ कुटुम्ब-परिवार नै सौंपे अर एक भाग संचै[1] करै सो तौ उत्कृष्ट दातार जानना। अर एक भाग तौ दान अर्थ अर तीन भाग भोजन अर्थ अर दोय भाग संचै करै सो मध्य दातार अर एक भाग दान अर्थ अर छह भाग भोजन अर्थ अर तीन भाग संचै करै सो जघन्य दातार है। अर दसमा भाग दान अर्थ न खरचै तौ वाका घर मसान समान है। मसान विषैं भी अनेक प्रकार के जीव होमे जाय हैं अर गृहस्थ के चूला विषैं नाना प्रकार के जीव दग्ध होय हैं। अथवा कैसा है वह पुरुष ? सो सर्व सौं हलकी तौ रुई है अर तासौं[2] भी हलका आक के फूल हैं; तासूं भी हलका परमाणु है अर तासूं भी हलको जाचक है, तासूं भी हलको दान रहित कृपण है। सो वानै तौ आपणे सर्वस्व खोय हाथ मांड्यो[3] अर जाचना कौ दीन वचन मुख सेती[4]। भाष्यो। अर चलाय आपणै घर आयो तौ भी वाकौं दान नाहीं दीनौ, तीसौं जाचक पुरुष सौ भी हीनदान करि रहित पुरुष है। अर धर्मात्मा पुरुष कै मुख्य धर्म देवपूजा अर दान छै। षट् आवश्यक विषैं भी ये दोय मुख्य धर्म देवपूजा अर दान छै, बाकी च्यारि गौण छै— गुरुभक्ति, तप, संयम स्वाध्याय। तातैं सात ठिकाने विषैं द्रव्य खरचवो उचित है। मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, जिनमन्दिर-प्रतिष्ठा, तीर्थयात्रा, शास्त्र लिखावे, ये सात स्थानक जानना।

सो दान देने का च्यारि भेद हैं—प्रथम तौ दुखित-भुखित जीव की खबर पाइ वाके घर देवा जोग्य वस्तु पहुंचावै हैं

---

१ संचय २ उससे ३ फैलाया ४ से

सो तौ उत्कृष्ट दान है। बहुरि बाकौ बुलाय अपने घर दान देना सो मध्यम दान है। बहुरि आपना काम-चाकरी कराय दान देना सो अधम दान है। अर कोई प्रकार धर्म विषैं द्रव्य नाहीं खरचै है अर तृष्णा के वशीभूत हुवा द्रव्य कमाय-कमाय एकठा[१] ही किया चाहै है। तौ वह पुरुष मरकै सर्प होय है, पाछै परंपराय नरक जाय है, निगोद जाय है। ता विषैं नाना प्रकार के छेदन, भेदन, मारन, ताडन, शूला-रोपण आदि तौ नरक के दुख अर मन, कान, आंख, नाक जिह्वा को तौ अभाव है अर सपरस इंद्री के द्वार एक अक्षर के अनंतवें भाग ज्ञान बाकी रहै है, ता विषै भी आकुलता पावजे है, ऐसा एकेंद्रिय पर्याय है। नरक विषैं विशेष दुख जानना। सो वह लोभी पुरुष ऐसी नरक-निगोद पर्याय विषैं अनंत काल पर्यंत भ्रमण करै है। अर वासौ बेइंद्री आदि पर्याय पावना महादुर्लभ होय है। तातैं लोभ परिणति कूं अवश्य तजना योग्य है। जो जीव नरक, तिर्यंच पर्याय नै छोडि मनुष्य भव विषैं प्राप्त होय हैं अर नरक, तिर्यंच गति ही कूं पाछै[२] जाने योग्य है, ताका तौ यह स्वभाव होय है, ताकौ द्रव्य बहुत प्रिय लागै है। अर धन के वास्ते निज प्राण का त्याग करै, पण[३] द्रव्य का ममत्व छांडै नाहीं तौ वह रंक बापुरा[४] गरीब, कृपण, हीनबुद्धि, महामोही परमार्थी के अर्थी दान कैसे करै? वाके बूतै[५] रूपे[६] का रुपया कैसे दिया जाय? बहुरि कैसा है वह कृपण? मोह की मक्षिका[७] समान है स्वभाव जाका वा कीडी समान है परिणति जाकी। बहुरि दातार पुरुष हैं देवगति मांहि सूं तौ आये हैं अर देवगति वा मोक्षगति नै जाने योग्य हैं सो न्याय ही है।

---

१ इकट्ठा २ पीछे, वापस ३ किन्तु ४ बेचारा ५ बल पर ६ चाँदी ७ मक्खी

तिर्यंच गति के आये जीव कै उदार चित्त कैसे होय ? ज्यां बापुरा असंख्यात, अनंत काल पर्यंत क्यों भी भोग-सामग्री देखी नाहीं अर अब मिलने की आशा नाहीं, तौ वाके तृष्णा रूपी अग्नि किंचित् विषय-सुख करि कैसे बुझे ? अर असंख्यात वर्ष पर्यंत अहमिंद्र आदि देव-पुनीत आनंद सुख के भोगी ऐसा जीव मनुष्य पर्याय हाड, मांस, चाम के पिंड मल-मूत्र करि पूरित ऐसा शरीर ताके पोषने विषै आसक्त कैसे होय ? अर कंकर-पत्थरादिक द्रव्य विषें अनुरागी कैसे होय ? अर भेद-विज्ञान करि स्व-पर विचार भया है जाकै अर आपनै तौ परद्रव्य सूं भिन्न सासता,[1] अविनाशी सिद्ध सादृश्य लोक देखनहारे आनंदमय जान्या है। ताहि के प्रसाद करि सर्वप्रकार द्रव्यसूं निवृ`नि हुआ चाहै है। ताका सहज ही त्याग-वैराग्य रूप भाव वर्ते है। एक मोक्ष ही चाहै है। ताकै परद्रव्यसूं ममत्व कैसे होय ? ये धन महा पाप क्लेश करि तौ उत्पन्न हो है अर अनेक उपाय कष्ट करि याकौ अपने आधीन राखिये है, ता विषै भी महापाप उपजै है। अर याको मान-बढाई के अर्थ वा विषय—भोग सेवनेकै अर्थ अपने हाथा करि खरचिये है। ता विषै ब्याहादिक को, हिंसा करि वा द्रव्य के छीजने[2] करि महापाप कष्ट उपजै है' अर बिना दिया राजा वा चोर दौडि खासि[3], लूटि लेहै। वा अग्नि सौं जलि जाय है वा वितरादि हरि लेहै वा स्वयमेव गुमि जाय है वा विनसि जाय है, ताके दुख की वा पापबंध की कहा पूछणी ? सो ये परद्रव्य का ममत्व करना सत्पुरुषा नै हेय कह्या है, कोई प्रकार उपादेय नाहीं। परंतु आपणी इच्छा करि परमार्थ के अर्थ दान विषै द्रव्य खरचै तौ

---

१ शाश्वत, नित्य २ नष्ट होने ३ छीन कर

ई लोक विषै वा परलोक विषै महासुख भोगवै अर देवा-दिक करि पूज्य होय। ताके दान के प्रभाव करि त्रिलोक करि पूज्य है चरण-कमल जाका, ऐसा जो मुनिराज ताका वृंद कहिए समूह सो दान के प्रभाव करि प्रे‍र्या हुवा बिना बुलाया दातार कै घरि चल्या आवै है।

पाछै दान कै समै वे दातार ऐसा फल सुख कौ प्राप्त होय है। अर ऐसा सोभै है सो कहिये है मानूं आज मेरे आंगण कल्पतरु आयो कै कामधेनु आई कै मानूं चिंतामणि पाई मानूं घर मांही नवनिधि पाई, इत्यादि सुख के फल उपजै हैं। अर त्रिलोक करि पूज्य है चरण-कमल जाके, ऐसा महामुनि ताका हस्तकमल तौ तलै[1] अर दातार का हस्त ऊपरै सो वा दातार की शोभा उत्कृष्ट पात्र के दान बिना और कौन कार्य विषैं होइ ? अर जो वे मुनि रिद्धिधारी होय तौ पंचाश्चर्य होय ताको ब्यौरो--१ रत्नवृष्टि, २ पहुपवृष्टि, ३ गंधोदकवृष्टि, ४ देव-दुंदुभी आदि वादित्र अर ५ देवां के जय-जयकार शब्द। ये पांच बात आश्चर्यकारी होय, तातै याका नाम पंचाश्चर्य है। बहुरि तिहि दिन च्यारि हाथ की रसोई विषै नाना प्रकार की तरकारी वा पकवान सहित अमृतमयी अटूट होय जाय। अर वा रसोईशाला विषैं सर्व चक्रवर्ती का कटक जुदा-जुदा बैठि जीमै तौ सकडाई होय नाहीं अर रसोई टूटै नाहीं, ऐसा अतिशय वर्तै। पाछै बडा-बडा राजा नगर के लोग सहित अर इन्द्रादिक देव त्यां[2] करि पूज्य होय अर बढाई योग्य होय अर वाका दिया दान की अनुमोदना करि घणा जीव महापुण्य कूं उपार्जै, परंपराय मोक्ष नै पावै ही पावै। सो सम्यक्दृष्टि दातार तीन प्रकार

---

१ नीचे २ उन

के पात्र नै दान दे तौ स्वर्ग ही जाय। अर मिथ्यादृष्टि दान देय तौ जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भोगभूमि जाइ, पाछै मोक्ष पाइ, ऐसा पात्र-दान ई लोक वा परलोक विषै फलै है। अर दुखित–भुखित जीवा नै दान करुणा कर दीजै तौ वाका भी महापुण्य होय है। सर्व सौं बडा सुमेर है, तासूं बडा जंबूदीप है, तासौ[1] भी बडा तीन लोक है। अर तासौ भी बडा लोकालोक आकाशद्रव्य है; पण ये तौ कछु देय नहीं, तातै याकी शोभा नाहीं, तासूं भी बडा दातार है। ता सूंभी बडा अयाची त्यागी पुरुष है, तातै कोई अज्ञानी, मूर्ख, कुबुद्धि, अपघाती ऐसा फल जान करि भी दान नहीं करै है, तो वाकी लोभी की वा अज्ञानी की कांई पूछनी ? अर कदाचित दान करै हैं, तो कुपात्र नै पोषै हैं अर पुण्य चाहै हैं। तो वे पुरुष कौन-सी नाई[2] ? जैसे कोई पुरुष सर्प नै दुग्ध प्यायवा का मुख सौं अमृतलियाचाहै है, जल बिलोय घृत कौ काढा चाहै है, पत्थर की नाव बैठि स्वयंभूरमण समुद्र तिरया चाहै है, वा वज्राग्नि विषैं कमल का बीज बाहिवा[3] के कमलिनी के पत्र की छाया विषै विश्राम लेने की हौंस[4] करै है वा कल्पवृक्ष काटि धतूरा बाहै है वा अमृतकूं तजि हलाहल विष का प्याला पीय अमर हुवा चाहै है तो कांई वा पुरुष का मनवांछित कारज सिद्ध हुवा ? कार्यसिद्धि तौ कार्य कै लगै[5] ही होसी। अर झूठ्या ही भरम बुद्धि करि मान्या तौ कांई गरज ? जैसे कोई कांच का खंड नै चिंतामणि रत्न जाणि घणा अनुरागसूं पल्ले बांधि राख्या, तौ कांई वह चिंतामणि रत्न हुवा ? अथवा जैसे बालक गारा, काष्ठ,पाषाण के आकारकूं हाथी, घोडा मानि

---

१ उससे २ समान ३ बो कर ४ उमंग ५ काम में लगने पर

संतुष्ट होय है, त्यौं ही कुपात्र-दान जानना। घणा[1] कहा कहिये ?

जिनवाणी विषै तौ ऐसा उपदेश है-रे भाई! धन-धान्यादिक सामग्री अनिष्ट हो लागै है तौ अंध-कूवा में नाखिदे। सो थारा द्रव्य ही जायला[2] और अपराध तौ नाहीं होयला[3]। अर कुपात्र नै दान दिया धन भी जाय अर परलोक विषै नरकादिक का भव विषै दुख सहना पडैगा। तीसौं प्राण जाय तौ जावो, पण कुपात्र नै दान देना उचित नाहीं, सो ये बात न्याय ही है। पात्र तौ आहारादिक लेय मोक्ष का साधन करै है। अर कुपात्र आहारादिक लेय अनंत संसार बधावने का कार्य करै है। सो कार्य के अनुसार कारण के कर्ता दातारकूं फल लागै है। सो वे पात्र नै दान दिया सो मानौ अपूठा मोक्ष का दान दिया अर वे कुपात्र नै दान दिया सो अनन्त संसार विषै वा नै डवोया, अन्य घणा[4] जीवा नै डुबोया। ऐसा जाणि[5] बुद्धिमान पुरुषनकूं सर्व-प्रकार कुपात्रकूं दान तजना। सुपात्र दान करना उचित है। गृहस्थ की घर की शोभा धनसूं है। अर धन की शोभा दानसूं है। अर धन पाइये है सो धर्म ही सूं पाइये है। धर्म बिना एक कौडी पायवो[6] दुर्लभ है। जो आपना पुरुषार्थ करि धन की प्राप्ति होय, तौ पुरुषार्थ तौ सर्वजीव करि रहै हैं। एक-एक जीव कै तृष्णा रूपी खाडा ऐसा दीर्घ[7] ऊँडा[8] है, ताकै विषै तीन लोक की संपदा क्षेपी[9] हुई पर-माणु मात्र-सी दिखाई देहै[10]। सो ऐसा तृष्णा रूपी खाडा कूं सर्व जीव पूर्या चाहै हैं, परन्तु आज पहली कहीं जीवा नें

---

१ अधिक २ जायगा ३ होगा ४ अनेक, बहुत ५ जान कर ६ पाना ७ बड़ा ८ गहरा ९ डाली हुई १० देती है.

नाहीं पूर्‌या गया। तातैं सतपुरुषों नै तृष्णा छोडि संतोष नैं प्राप्त भया है अर त्याग-वैराग्य नैं भजै है। ताही का प्रसाद करि ज्ञानानंदमय निराकुलित शांत रस करि पूर्ण सूक्ष्म, निर्मल, केवलज्ञान लक्ष्मी नैं पावै है। अविनाशी, अविकार, सर्व दोषरहित, परमसुख नै सदैव सासता अनंत काल पर्यन्त भोगवै है, ऐसा निर्लोभता का फल है। तातैं सर्व जीव निर्लोभता कौ सर्व प्रकार उपादेय जानि भजौ, कृपणता नै[1] दूरि ही तै तजौ।

आगै दुखित-भुखित के दान का विशेष कहिये है। अंधा, बहरा, गूंगा, लूला, पांगुला[2], बालक, वृद्ध, स्त्री, रोगी, घायल, क्षुधा करि पीडित, शीत की बाधा करि पीडित और बंदीवान और क्षुधा-तृषा-शीत करि पीडित तिर्यंच वा ब्याई स्त्री, कूकरी,[3] बिलाई,[4] गाय, भैंसी, घोडी आदि जाका कोई रक्षक, सहायक नाहीं वा खावंद[5] नाहीं अर पूर्वे कहे मनुष्य, तिर्यंच ते सर्व अनाथ, पराधीन है अर गरीब हैं, दुखित हैं। दुख करि महाकष्ट नै सहै हैं अर बिलबिलाट[6] करै हैं अर दीनपना का वचन उच्चारे हैं। दुख सहने कूं असमर्थ हैं, ताके दुख करि बिलखाया गया है मुख जाका अर शरीर करि क्षीण हैं, बल करि रहित हैं सो ऐसे दुःखी प्राणीनिकूं देख दयालु पुरुष हैं ते भयभीत होय हैं। अर वाका-सा दुःख आपकूं होय है। अर घबराया गया है चित्त जाका, ऐसा होता संता वह दयाल पुरुष जिहि-तिहि प्रकार करि अपनी शक्ति के अनुसार वाके दुख कौ निर्वृत करै है। अर प्राणी जीव कौ मारता होय बन्दी

---

१ कंजूसी को २ लंगड़ा ३ कुत्ती ४ बिल्ली ५ पति ६ विलाप

करता होय ताकूं जिहि-तिहिं प्रकार करि छुड़ावै है। दुखी जीव का अवलोकन करि निर्दयी हुवा आगै नाहीं चल्या जाय है। अर वज्र समान है हृदय जाका ऐसा निर्दयी पुरुष ऐसे प्राणीकूं भी अवलोकि जाके दया भाव नाहीं उपजै है अर या विचारै छै—ये पापी छै, पूर्वै पाप किया ताका फल कूं भोगवै, ही भोगवै। ऐसा नाहीं जानै है, मैं भी पूर्वे ऐसा दुख पाया होयगा अर फेर पाऊँगा। तातै आचार्य कहै हैं, धिक्कार होहु ऐसे निर्दयी परिणामनि कूं! जिनधर्म को मूल तौ एक दया ही है। जाकै घट दया नाहीं, ते जैनी नाहीं। जैनी बिना दया नाहीं, यह नियम है।

दान-स्वरूप

आगै दान देने का स्वरूप कहिये है। रोगी पुरुषनि कौ औषधि दान दीजै। सो नाना प्रकार की औषधि कराय राखिजै, पाछै कोई रोगी आय मांगै ताकौ दीजिए। अथवा वैद्य, चाकर[१] राखि वाका इलाज करवाइये, ताका फल देवादिक का निरोग शरीर पाइये है। आयु पर्यन्त ताकै रोग की उत्पत्ति नाहीं होय अथवा मनुष्य का शरीर पावै तौ ऐसा पावै अपने शरीर में तौ रोग कोई प्रकार उपजै नाहीं अर अपने शरीर का स्पर्श करि वा न्हवन का जल करि अन्य जीवनि का अनेक प्रकार छिन मात्र में रोग दूर होइ है। बहुरि क्षुधा, तृषा करि पीडित प्राणी कूं शुद्ध अन्न-जल दीजै।

भावार्थ—अन्न तौ ऐसा त्रस जीव अर हरितकाय कर रहित यथायोग्य अन्न, रोटी, छाण्या[२] जल करि पोषिये,

---

१ नौकर २ छने हुए

ताका फल क्षुधा करि रहित देव पद पावै। अर मनुष्य होय तौ जुगलिया, तीर्थंकर, चक्रवर्ति आदि पदवी धारक महाभोग सामग्री सहित होय। बहुरि मारते जीव कूं छुडाइयै वा आप मारना छोडिये, ताका फल करि महापराक्रमी वीर्य के धारी देव, मनुष्य होइ, ताकौ कोई आशंका नाही, ऐसा निर्भय पद पावै। बहुरि आप पढ्या होय तो औरनि कौ सिखाइये, तत्त्वोपदेश-जिन-मार्ग विषै लगाइये। आप शास्त्र लिखै वा सोधै[1] वा गूढ काव्य, शास्त्र की टीका बनाय अर्थ प्रगट करि टीका बनाइये अथवा धनादि खरचि नाना प्रकार के नवे[2] शास्त्र लिखाइये अर धर्मात्मा पुरुषनि कूं वाचने कूं दीजिए, यह ज्ञानदान सर्वोत्कृष्ट है। याका फल भी ज्ञान है। सो ज्ञानदान के प्रभाव करि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान बिना अभ्यास किये ही फुरि[3] जाय है। पाछे शीघ्र ही केवलज्ञान उपजै है। बहुरि पर नै सुखी किया आप नै जगत सुखदायी परिणमै। बहुरि गुरादिक का विनय किया। आप जगत करि विनय योग्य हैं। अर भगवान के चमर, छत्र, सिंहासन, वादित्र[4], चंदोवा, झारी, रकेबी आदि उपकरण चढ़ोडै,[5] तौ भी ऐसा पद पावै हैं। सो आपके ऊपर छत्र फिरै, चमर ढरै हैं वा सिंघासण ऊपरि बैठि देव, विद्याधरां[6] का अधिपति होय है। बहुरि जिनमन्दिर का करावा करि वा भगवान की पूजा करि आप भी त्रैलोक्य पूज्य पद पावै है।

भावार्थ—तीर्थंकर पद वा सिद्ध पद पावै हैं। सो ये न्याय हो है; जैसा बीज बोवे, तैसा फल लागै। ऐसा नाहीं,

---

१ संशोधन करे २ नये ३ प्रकट हो ४ बाजा (घंटा आदि) ५ चढ़ावै ६ विद्याधरों

जो बीज तौ और ही वस्तु का अर फल और ही वस्तु का लागै। सो ये त्रिकाल त्रिलोक विषै होय नाहीं, ये नियम है। सोई जगत विषै प्रवृत्ति देखिये है। जैसा-जैसा ही नाज बोवै, तैसा-तैसा ही निपजै है। सो जैसा-जैसा ही वृक्ष का बीज बोवै, तैसा-तैसा ही वृक्ष के फल उपजै हैं। सो जैसा-जैसा ही पुरुष वा स्त्री वा तिर्यंचनि का संयोग होय, ताकै तैसा ही पुत्रादिक उपजै। ऐसा बीज के अनुसार फल की उत्पत्ति जाननी। तीसूं श्रीगुरु कहै हैं–हे पुत्र ! हे भव्य ! तू अपात्र नै छोडि सुपात्र अर्थी दान करहु अथवा अनुकम्पा करि दुखित-भुखित जीवा नै पोषि ज्यौं वाकी बाधा निवृत्त होय। धाया-धिंगा,[1] लष्ट-पुष्ट[2] वा गुरु की ठसक धरावै, ताकौ दमडी मात्र भी देना उचित नाहीं। बहुरि कैसा है अपात्र का दान ? जैसे मुरदा का चकडोल[3] काढिये है। अर रुपैया, पैसा उछालिये हैं अर चांडालादिक चुन-चुन लैहैं। अर मुख सौं धन्य-धन्य करै हैं। परन्तु दान के करने वाला घर का धनी तौ ज्यूं-ज्यूं देखै है, त्यूं-त्यूं छाती ही कूटै है। तैसे ही कुपात्र नै दान दिया लोभी पुरुष जस गावै हैं। परन्तु दान के कारणे देने वालों कूं तो नरक ही जाना होसी। **सम्यक्त्त सहित होय सो तौ पात्र जानना अर सम्यक्त्त तौ नाहीं है अर चारित्र है, ते कुपात्र जानना। अर सम्यक्त्त वा चारित्र दोऊ ही नाहीं, ते अपात्र का फल नरकादिक अनंत संसार है। अर सर्व प्रकार ही दान नाहीं करै है, सो कैसा है ? मसाण के स्थूल मुरदा समान है।** अर धन है सो याका मांस है अर कुटुम्ब परिवार के हैं सो गृद्ध[4] पंछी हैं सो याका धन रूपी मांस खाय हैं। अर विषय-कषाय रूपी

---

१ हट्टा-कट्टा २ सुन्दर-पुष्ट ३ जनाजा, शव-यात्रा ४ गीध

अति है ता विषै ये जले हैं। तातै मसाण के मुरदा की उपमा भलीभांति संभवै है। तातै ऐसी सर्व प्रकार निंदित अवस्था जानि कृपणता मानि परलोक का भय ठानि पर-द्रव्य का ममत्व न करना। संसार ममत्व ही का बीज है। ऐसी हेय-उपादेय बुद्धि विचारि शीघ्र ही दान करना अर परलोक का फल लेना, नहीं तौ यह सर्व सामग्री काल रूपी दावाग्नि विषै भस्म होयगी। पाछै तुम बहुत पछितावोगे। सो कैसा है पछितावा ? जैसे कोई आय समुद्र की तीर बैठि काग उडावने अर्थ चिन्तामणि रत्न समुद्र विषै बहावै है। पाछै रत्न कूं झूरि-झूरि मरै है, परन्तु स्वप्न मात्र भी चिन्तामणि रत्न समुद्र विषै पावै नाहीं, ऐसा जानना। घणी कहा कहिये ? उदार पुरुष ही सराहवा योग्य है। अर वे पुरुष देव समान हैं, ताकी कीर्ति देव गावै हैं। इति अतिथि-संविभाग-व्रत संपूर्ण। ऐसे बारह व्रत का स्वरूप जानना।

सम्यक्त्व के अतिचार

आगै श्रावक के बारह व्रत तथा सम्यक्त्व के व अंत समाधिमरण के सत्तर अतिचार ताका स्वरूप कहिये है।

प्रथम सम्यक्त्व के अतिचार पांच[1]। ता विषै शंका कहिये जिनवचन विषै संदेह। कांक्षा कहिये भोगाभिलाष। विचिकित्सा कहिये दुर्गंछा[2]। अन्यदृष्टिप्रशंसा मिथ्यादृष्टि की प्रशंसा करना। अन्यदृष्टिसंस्तव मिथ्यादृष्टि के समीप जाय स्तुति करना।

---

१ देखिये, तत्त्वार्थ सूत्र अ. ७. सू. २३, २ ग्लानि

अहिंसाणुव्रत के अतिचार

ऐसै अहिंसाणुव्रत के अतिचार पाँच[१]। ता विषैं **बंध** कहिये बांधना, **बध** कहिये (जान से) मारना, **छेद** कहिये छेदना, **अतिभारारोपण** कहिये बहुत बोझ लादना, **अन्न-पाननिरोधन** कहिये खान-पानादिक का रोकना।

सत्याणुव्रत के अतिचार

ऐसै सत्याणुव्रत के अतिचार पाँच[२]। **मिथ्योपदेश** कहिये झूठ का उपदेश देना। **रहोभ्याख्यान** कहिये काहू की गुह्य बात प्रकाशना। **कूटलेखक्रिया** कहिये झूठे खातादिक लिखना। **न्यासापहार** कहिये काहू की धरी वस्तु अस्त-व्यस्त करनी। **साकार मंत्र-भेद** कहिये अन्य पुरुष का मुखादिक का चिन्ह देखि ताका अभिप्राय जानि प्रकाश देना।

अचौर्याणुव्रत के अतिचार

अचौर्य अणुव्रत के अतिचार पाँच[३]। **स्तेनप्रयोग** कहिये चोरी का उपाय बतावना। **तदाहृतादान** कहिये चोरनि का हर्‌या माल मोल लेना। अर **विरुद्धराज्यातिक्रम** कहिये हासिल का चुरावना। **हीनाधिकमानोन्मान** कहिये घाटि देना, बाध लेना। **प्रतिरूपकव्यवहार** कहिये बाध मोल वस्तु मैं घाट मोल वस्तु मिलावना।

ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार पाँच[४]। **परविवाहकरण**

---

१ तत्त्वार्थ सूत्र अ. ७, सू. २४ २ वही, अ. ७, सू. २६ ३ तत्त्वार्थ सूत्र अ. ७, सू. २७ ४ वही अ. ७, सू. २८

कहिये पराया बिवाह करावना। **इत्वरिकापरिगृहीतागमन** बिभचारिणी परायी स्त्री ताकै घर जाना। **परिगृहीतागमन** कहिए पतिरहित स्त्री कै घर गमन करना। **अनंगक्रीडा** कहिये शरीर-स्पर्शादि क्रीडा करनी। **कामतीव्राभिनिवेश** कहिये काम का तीव्र परिणाम करना।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत के अतिचार

परिग्रह-परिमाण अणुव्रत के अतिचार पाँच[1]। **इंद्रीनि के मनोज्ञ** तथा **अमनोज्ञ** जे विषय तिनि विषैं हरष-विषाद करना तथा और भी कहिये हैं। **अतिवाहन** कहिये मनुष्य तथा पशु कौ अधिक गमन करावना। **अतिसंग्रह** कहिये वस्तुनि का बहुत संग्रह करना। **अतिभारारोपण** कहिये लालच करि अति बोझ लादना। **अतिलोभ** कहिये अति लोभ का करना और प्रकार भी कहै हैं। **क्षेत्रवस्तु** कहिये गांव, खेट, हाट, हवेली आदि। **हिरण्यस्वर्ण** कहिये रोकडी[2] तथा गहणा। **धन-धान्य** कहिये चौपद वा धान्यादिक। **दासी-दास** कहिये दासी—दास। **कुप्यभांड** कहिये वस्त्र तथा सुगंधि भाजनादि। इनिका अतिक्रम कहिये प्रमाण किया था ताकौ उलंघना।

दिग्व्रत के अतिचार

दिग्व्रत के अतिचार पांच[3]। **ऊर्ध्वव्यतिक्रम** कहिये ऊर्ध्व दिशा का प्रमाण उलंघना। **अधोव्यतिक्रम** कहिये अधो दिशा का प्रमाण उलंघना। **तिर्यग्व्यतिक्रम** कहिये च्यारि दिशा, च्यारि विदिशा का प्रमाण उलंघना। **क्षेत्रवृद्धि**

---

१ वही, अ. ७, सू. २९, २ नकद, केरची ३ तत्त्वार्थसूत्र अ. ७, सू. ३०

कहिये क्षेत्र का जो प्रमाण किया था, ताहि बधाय देना। स्मृत्यंतराधान कहिये क्षेत्र का जो प्रमाण किया था, ताहि भूल जाना।

देशव्रत के अतिचार

देशव्रत के अतिचार पांच[1]। आनयन कहिये मर्यादा उपरांत क्षेत्र तैं वस्तु का मंगावना। प्रेष्यप्रयोग कहिये मर्यादा उपरांत क्षेत्र विषै वस्तु भेजनी। शब्दानुपात कहिये प्रमाण उपरांत क्षेत्र तैं शब्द करि काहू कूं बुलावना। रूपानुपात कहिये प्रमाण उपरांत क्षेत्र विषै आपणा रूप दिखाय अभिप्राय कौ जनाय देना। पुद्गलक्षेप कहिये प्रमाण उपरांत क्षेत्र विषै कांकरी इत्यादि बगावना[2]।

अनर्थदण्डव्रत के अतिचार

अनर्थदंडव्रत के अतिचार पाँच[3]। कंदर्प कहिये कामोद्दीपन आहारादिक का करना। कौत्कुच्य कहिये मुख मोडना, आँख चलावनी, भौंह नचावनी। मौखर्य कहिये वृथा बकना। असमीक्ष्याधिकरण कहिये बिना देखे वस्तु का उठावना, मेलना। भोगानर्थक्य कहिये निषिद्ध भोगोपभोग का सेवना।

सामायिक शिक्षा व्रत के अतिचार

सामायिक व्रत का अतिचार पांच[4]। मनोयोगदुःप्रणिधान कहिये मन की दुष्टता। वचनयोगदुःप्रणिधान

---

१ तत्वार्थ सूत्र अ. ७, सू. ३१ २ फेंकना ३ वही, अ. ७, सू. ३२ ४ वही, अ. ७, सू. ३३

कहिये वचन की दुष्टता। **कायबोगदुःप्रणिधान** कहिये शरीर की दुष्टता। **अनादर** कहिये सामायिक का निरादर। **स्मृत्यनुपस्थान** कहिये पाठ का भूल जाना।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत के अतिचार

प्रोषधोपवास के अतिचार पाँच[1]। **अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्ग** कहिये बिना देखे, बिना पूछे वस्तु का उठावना। **अप्रत्यावेक्षिताप्रमार्जितादान** कहिये बिना देखे, बिना शोधे उपकरण उठावना। **अप्रत्यावेक्षिताप्रमार्जित-संस्तरोपक्रमण** कहिये बिना देखे, बिन पूछे साथर[2] बिछावना। **अनादर** कहिये निरादर सौं पौसा[3] (प्रोषध) करना। **स्मृत्यनुपस्थान** कहिये पोसा का दिन आवै चौदस जे पर्वी के दिन तिनिकूं भूल जाना।

भोगोपभोगपरिमाण शिक्षाव्रत के अतिचार

भोगोपभोग परिमाण के अनिचार पाँच[4]। **सचित्ताहार** कहिये हरितकायादिक का आहार करना। **सचित्तसंबंधाहार** कहिये पातल,[5] दौना आदि सचित्त वस्तु विषै मेलि जीमना इत्यादि सचित्त संबंध का आहार करना। **सचित्तमिश्राहार** कहिये उष्ण जल विषै शीतल जल नाख्या होय, ताका अंगीकार करना। **अभिषवाहार** कहिये सीला वा विदुल (द्विदल) इत्यादि अयोग्य आहार करना। बहुरि भले प्रकार पक्या नाहीं सो **दुःपक्वाहार** कहिये। ऐसे पाँच भेद जानना।

---

१ वही, अ. ७, सू. ३४ २ बिस्तर बिछौना ३ उपवास ४ तत्वार्थ अ, ७, सू. ३५ ५ पत्तल

अतिथिसंविभाग व्रत के अतिचार

अतिथिसंविभागव्रत के अतिचार पांच[1]। **सचित्तनिक्षेप** कहिये सचित्त जे पातल, दोना ता विषै मेल्यौ जो आहार ताका देना। **सचित्तपिधान** कहिये सचित्त करि ढाक्यो जो आहार ताका पात्र कौ देना। **परव्यपदेश** कहिये पात्र-दान औरनि कौ बताय आप अन्य कार्य कौ जाय। **मात्सर्य** कहिये औरनि का दान दिया देखि न सकै। **कालातिक्रम** कहिए हीन-अधिक काल लगावना।

सल्लेखना के अतिचार

अंत सल्लेखना के अतिचार पांच[2]। **जीविताशंसा** कहिये जीवनै का अभिलाष। **मरणाशंसा** कहिए मरने की अभिलाष। **मित्रानुराग** कहिए मित्रन विषै अनुराग। **सुखानुबंध** कहिये इह भव का सुखन कौ चिंतवन। **निदान** कहिये परभव के भोगनि की अभिलाषा। ऐसे ये सब मिलकर सत्तर अति-चार भये तिनका त्याग करना।

सामायिक के दोष

आगै सामायिक का बत्तीस दोष कहै हैं। **अनादर** कहिये निरादर सौ सामायिक करै। **प्रतिष्ठा** कहिये मान-बड़ाई, महिमा के वास्ते सामायिक करै। **परपीड़ित** कहिये पर जीवनै पीड़ा उपजावै। **दोलायति** कहिये हींडै[3] वा बालक की-सी नाईं सामायिक विषै हालै। **अंकुश** कहिए आंकुश की-सी नाईं सामायिक वक्रता लिए करै। **कच्छपपरिग्रह**

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ७ सू. ३६. २. वही अ. ७ सू. ३७. ३. कांपे, ओर-ओर से हिले.

कहियो कछुवा की-सी नाईं शरीर संकोच करि सामायिक करै। **मत्स्योद्वर्तन** कहियो माछला की-सी नाईं नीचो-ऊँचो होय। **मनोदुष्ट** कहियो मन में दुष्टता राखै। **वेदिकाबंध** कहियो आम्नाय-बाह्य। **भय** कहियो भय संयुक्त सामायिक करै। **विभस्ति** कहियो गिलान सहित सामायिक करैं। **ऋद्धिगौरव** कहियो ऋद्धि-गौरव मन मैं राखै। **गौरव** कहियो जाति, कुल को गर्व राखै। **स्तेन** कहिये चोर की-सी नाईं सामायिक करै। **व्यतीत** कहियो व्यतीत काल। **प्रदुष्ट** कहिये अत्यन्त दुष्टता सौ करै। **तर्जित** कहियो पैलानै[1] भय उपजावै। **शब्द** कहियो सामायिक समै सावद्य कार्य लिया बोलै। **हीलनि** कहिए पर की निंदा करै। **त्रिवलित** कहिये मस्तक की त्रिवली भौंह चढ़ाये सामायिक करै। **संकुचित** कहिये मन के विषै सकुच्यौ थकौ सामायिक करै। **दिग्विलोकन** कहिये दशो दिशा माहूं अवलोकन करै। **आविष्ट** कहिये जायगा बिना देख्या, बिना पूछ्या करै। **संयम-मोचन** कहिये जैसे कोई को लहनो देनो होइ सो जिह-तिह प्रकार पूरौ पाड्यौ चाहै, त्यौं ही देने कैसी नाईं जिह–तिह प्रकार सामायिक कौ काल पूरौ चाहै। **लब्ध** कहिये सामायिक की सामग्री, लंगोट वा पीछी वा क्षेत्र की जोगाई[2] मिलै तौ करै, नाहीं तौ आधो काढ़ि जाय। **अलब्ध** कहिये न लब्ध। **हीन** कहिये सामायिक कौ पाठ है सौ ही न पढ़ै अथवा सामायिक को काल पूरो हुवा बिना ही उठि बैठा होय। **उच्चूलिका** कहिये खण्डित पाठ करिये। **मूक** कहिये गूंगे कैसी नाईं बोलै। **दादुर** कहिये मीडक की-सी नाईं ऊ[3] सुरनै लिया ढरउ–ढरउ बोलै। **चलुलित** कहिये चित्त कौ चलाइवौ। ऐसे सामायिक का बत्तीस दोष जानना।

---

१. पहले वाले को २. साधन, जुगाड़ ३. उस

सामायिक की शुद्धियाँ

आगैं सामायिक विषै सात शुद्धि राखि सामायिक करै, ताको ब्योरो कहै हैं। **क्षेत्रशुद्धि** कहिये जेठे[1] मनुष्यां को कल-कलाट शब्द न होय, घणा लोग न होय, डांस—माछर न होय अर घणो पौन वा घणी गरमी, घणो शीत न होय। **कालशुध्दि** कहिये प्रात वा मध्यान्ह वा सांझ ये सामायिक को काल छै सो उलंघै नाहीं। जघन्य दोय घड़ी, मध्यम च्यारि घड़ी उत्कृष्ट छह घड़ी सामायिक को काल छै। सो दोय घड़ी, करणो होय तौ घड़ी तड़कासूं[2] लगाय घडी दिन चढ़या पर्यन्त, च्यारि घड़ी करणो होय तौ दोय घड़ी तड़कासूं लगाय दोय घड़ी दिन चढया पर्यन्त, अर छह घडी करणो होय तौ तीन घड़ी तड़कासूं लगाय तीन घड़ी दिन चढ़या पर्यत, ई काल की आदि विषै सामायिक की प्रतिज्ञा करै। प्रतिज्ञा सिवाय काल लगावै नाहीं। ऐसे ही मध्यान्ह समै वा सांझ समै जानना। **आसनशुध्दि** कहिये पद्मासन वा खड्गासन सामायिक करना। **विनयशुद्धि** कहिये देव, गुरु, धर्म को वा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को विनय लिया करै। **मनःशुद्धि** कहिये राग—द्वेष रहित मन राखै। **वचनशुद्धि** कहिये सावद्य वचन बोलना नाहीं। **कायशुद्धि** कहिये बिना देख्या, बिना पूछ्या पग उठावै वा धरै नाहीं। ऐसे सात शुद्धि का स्वरूप जानना।

कायोत्सर्ग के दोष

आगैं कायोत्सर्ग के बाईस दोष कहिये हैं। **कुड्याश्रित** कहिये भीति[3] को आसिरो लेवो। **लतावक्र** कहिये बेलि

---

१. जहाँ, २. भुनसारा, सबेरे से, ३. दीवाल

की-सी नाईं हालता रहै। **स्तंभाश्रित** कहिये स्तंभ[1] का आसिरा लेना। **कुंचित** कहिये शरीर का संकोचना। **स्तनप्रेक्षा** कहिये कुच का देखना। **काकदृक्** कहिये काग की–सी नाईं[2] देखना। **शीर्षकंपित** कहिये मस्तक का कंपावना। **धुराकंधर** कहिये कांधा नीचा करना। **उन्मत्त** कहिये मतवाला की-सी नाईं चेष्टा करनी। **पिशाच** कहिये भूत की-सी नाईं चेष्टा करनी। **अष्टदिशेक्षण** कहिये आठों दिशा की तरफ चोधना[3]। **ग्रीवा-नमन** कहिये नाडि[4] कौ नमावै। **मूक-संज्ञा** कहिये गूंगा की नाईं सैन करना। **अंगुलि-चालन** कहिये अंगुली चलावना। **निष्ठीवन** कहिये खखारना। **खलितनं** कहिये खखार का नाखना। **सारी गुह्य गूहन** कहिये गुह्य अंग काढ़ना। **कपित्थमुष्टि** कहिये काथोडी[5] की-सी नाईं मूठी बांधना। **शृंखलिताप** कहिये सांकल की-सी नाईं पाद का होना। **मालिकोचलन** कहिये कोईं पीठ, माथा ऊपरि तीकौ आश्रय लेना। **अंगस्पर्शन** कहिये आपना अंग स्पर्शना। **घोटक** घोड़ा की-सी नाईं पांव करना। ऐसा बाईस दोष कायोत्सर्ग का जानना।

श्रावक के अंतराय

आगै श्रावक के च्यारि प्रकार अंतराय कहिये हैं— मदिरा, मांस, हाड़, काचा चर्म[6]। च्यारि अंगुल लोहू की धारा, बड़ा पचेंद्री मुवा जिनावर,[7] विष्टा मूत्र, चूहडा[8] इनि आठनि कौ तौ प्रत्यक्ष नेत्रां करि देखने ही का भोजन विषै

---

१. खम्भा २. तरह ३. देखना ४. गर्दन ५. कवीट, कैथ ६. कच्चा चमड़ा ७. जानवर ८. चूहा।

अंतराय है। बहुरि आठ ती पूर्वं देखने विषै कह्या सोई अर सूका[1] चर्म, नख, केस, ऊन, पांख, असंयमी स्त्री वा पुरुष, बड़ा पचेंद्री तिर्यंच, ऋतुवंती स्त्री, आखड़ी का भंग, मल-मूत्र करने की शंका, मुरदा का स्पर्शन, कांख विषै त्रसजीव मृतक निकसैं वा बाल निकसैं, कांख विषै वा हस्तादिक निज अंग सौं वेंद्री आदि छोटा-बडा त्रस जीवां का घात, इत्यादिक का भोजन समय स्पर्श होय तौ भोजन विषै अंत-राय होय है। बहुरि मरण आदिक का दुःख ताका विरह करि रोवता होय ताका सुणना, लाय[2] लागी होय ताके सुनिवा का, नगरादिक का मारवा का, धर्मात्मा पुरुष कौ उपसर्ग हुये का, मृतक मनुष्य का, कोई का नाक—कान छेदने का, कोई चोरादिक नै मारि वा ले गया होय ताका, चंडाल के बोलने का, जिनबिंब वा जिन धर्म का अविनय का, धर्मात्मा पुरुष के अविनय का, इत्यादि महापाप के वचन सत्यरूप आपनै भासै तो ऐसे शब्द सुनने विषै भोजन का अंतराय है। बहुरि भोजन करती बार ऐसी संका उपजै कै या तरकारी तौ मांस सारिखी है वा लोहू सारिखी है वा हाड़ सारिखी है वा चर्म सारिखी है वा विष्टा वा सहद इत्यादि निंदक वस्तु सारिखी भोजन समै कल्पना उपजै अर मन मै ग्लानि होय आवै अर मन वाके चाखने विषै ओठा[3] होय तौ भोजन विषै मन का अंतराय है। अर भोजन विषै निंदक वस्तु की कल्पना ही उपजै अर मन विषै वाका जाणपणा होय तौ वाका अंतराय नाहीं। ऐसे नेत्र करि देखवा का आठ, स्पर्श का बीस, सुनने का दश, मन का छह सब मिलि च्यारि प्रकार के अंतराय के चवालीस

[1]. सूखा [2]. आग [3]. खट्टा, फीका

जानना। अर कोई अज्ञ[1] राग भाव घटने के कारण अर अन्य जीव की दया हेतु तो ये अंतराय पालै नाहीं अर झूठा मृत, विषय के नाम मात्र सुनने करि अंतराय मानै। पाछै झालर, थाली बजाय अंधा-बहरा कैसी नाईं देख्या-अनदेख्या करै, सुन-अनसुन्या करै; पाछै नाना प्रकार के गरिष्ठ मेवा, पकवान, दही-दुग्ध, घृत, तरकारी खाद्य-अखाद्य के विचार बिना त्रस-स्थावर जीव की हिंसा-अहिंसा के विचार बिना कामोत्पादक वस्तु अघोरी की नाईं अनभावतो ठसाठस पेट भरै है। राजी होइ स्वाद लैहै अर भिखारी की नाईं सरावगां[2] की खुशामद करि मांग-मांग खाय। जैसे कोई पुरुष सूक्ष्म-स्थावरां की तो रक्षा करै अर बड़ा-बड़ा त्रसजीवां कौ आंख मीच आखा[3] ही निगलै है। अर पीछे कहै मै सूक्ष्म जीवा की भी दया पालौ हों, ऐसा काम करि वापरा गरीब भोला जीवन के धर्म अर लौकिक धनकूं ठगै हैं। पाछै आपुन साथि मोह मंत्र करि वश कर कुगति ले जाय, तैसे महाकालेश्वर देव अर पर्वत ब्राह्मण मायामयी इन्द्र-जाल सादृश्य चमत्कार दिखाय राजा सगर को वंश कौ जग्य[4] विषै होम नरक विषै प्राप्त किये। अर मुख सूं ऐसे कहै जग्य विषै होम्या प्राणी बैकुंठ जाय है। ऐसे ही आचरणकूं कुलिगां का जानना।

आगे सात जायगा मौन करने का स्वरूप कहिये—देवपूजा विषै, सामायिक विषै, स्नान विषै, भोजन विषै, कुशील विषै, लघु-दीर्घ बाधा विषै अथवा मल-मूत्र क्षेपण

---

१. अज्ञानी· अजान २. सरावगियो (श्रावकों) जैनियों ३. अखण्ड, साबुत
४. यज्ञ

विषै, वमन विषै। इन सप्त मौन के धारक पुरुष हाथ सूं वा मुख सूं सैन करै नाहीं वा हुंकारा करै नाहीं।

आगै ग्यारा स्थान विषै श्रावक के जीवदया अर्थ चंदोवा चाहिये सो कहैं हैं– पूजा-स्थान ऊपर, सामायिक स्थान ऊपर, चूलहे ऊपर, परंहडै[1] ऊपर, ऊखल ऊपर, चाकी ऊपर, भोजन स्थान ऊपर, सेज्या स्थान ऊपर, आटो छानै तैठै[2], व्यापारादिक करै तैठे अर धर्म-चर्चा के स्थान विषै ऐसा जानना।

सामायिक प्रतिमा का स्वरूप

आगै सामायिक प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। दूसरी प्रतिमा कै विषै आठै-चौदसि वा और पर्व विषै तौ सामायिक अवश्य करै ही करै। औरा दिना विषै मुख्यपनै तौ सामायिक करै ही करै,पन सर्व प्रकार नेम नाहीं करै वा नाहीं करै। अर तीसरी प्रतिमा का धारी कै सर्व प्रकार नेम है, ऐसा विशेष जानना।

प्रोषध प्रतिमा का स्वरूप

आगै प्रोषध प्रतिमा का स्वरुप कहिये है। ऐसे ही दूजी, तीजी प्रतिमा के धारी कै प्रोषध उपवास का नियम नाहीं है; मुख्यपणै तौ करै है अर गौणपनै नाहीं भी करै। अर चौथी प्रतिमाधारी के नियम है-यावज्जीव करै ही करै।

---

१ परंडा, पानी भरकर रखने का स्थान २. वहाँ

सचित्तत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगे सचित्तत्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। दोय घड़ी उपरांत का अनछान्या पानी अर हरितकाय मुख कर नाहीं विराधै है। अर मुख्यपणे हस्तादिक करि भी पांचूं स्थावरान कूं नाहीं, नाहीं विराधै है। याकै सचित्त भखने[1] का त्याग है। पांचूं[2] स्थावरान[3] का कायादि करि त्याग नाहीं, मुनि कै है। हस्तादिक अंग करि हिंसा का पाप अल्प है अर मुख में भखने का महापाप है। मुख का त्याग पांचमी प्रतिमा के धारी कै है। अर शरीरादि का त्याग मुनि के है। मुनि विशेष संयमकूं प्राप्त भया है।

रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै रात्रिभुक्ति का त्याग दिन विषै कुशील का त्याग प्रतिमा कहै हैं। रात्रिभोजन का त्याग तौ पहलो, दूसरी प्रतिमा सूं ही मुख्यपणै होय आया है। परन्तु क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण, शूद्र आदि जीव नाना प्रकार के हैं। स्पर्शशूद्र पर्यन्त श्रावक व्रत होय है। सो जाके कुल-कर्म विषै ही रात्रिभोजन का त्याग चला आया, ताके तौ रात्रिभोजन का त्याग सुगम है। परन्तु अन्य मती शूद्र जैनी होय अर श्रावकव्रत धारै, ताके कठिन है। ताते सर्व प्रकार छठो प्रतिमा विषै ही याका त्याग सम्भवै है। अथवा अपने खावा का त्याग तो पूर्व ही किया था। इहां औरां कूं भोजन करावने आदि का त्याग किया।

---

१. भक्षण, खाने २. पांचों ३. स्थावरों

ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप

आगै ब्रह्मचर्य प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहां घर को स्त्री का भी त्याग किया, नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया।

आरम्भत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै आरम्भ-त्याग कहै है। यहां व्योपार, रसोई आदि आरम्भ करने का त्याग किया। पैला के घर वा आपने घरि न्योता बुलाया जीमै है।

परिग्रह प्रतिमा का स्वरूप

आगै परिग्रह प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहां जो वाकै तुच्छ अपने पहरवा का धोवती[1] पछेवड़ी[2] पोत्या[3] आदि राखै हैं; अवशेष परिग्रह का त्याग करै।

अनुमति त्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै अनुमति-त्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहां सावद्य कार्य का उपदेश देना भी तज्या है। सावद्य कीया कारिज की अनुमोदना भी नाहीं करै है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा का स्वरूप

आगै उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा का स्वरूप कहिये है। यहां बुलाया नाहीं जीमै है। उदण्ड[4] ही उतरै है। ताका दोय भेद है। एक तो क्षुल्लक और एक ऐलक। क्षुल्लक तौ

---

१. धोती २. दुपट्टा ३. अंगोछा, तौलिया ४. सहमा

कमंडल-पीछी, आधा पछेवड़ा, लंगोट राखै है। स्पर्शशूद्र लोह का पात्र राखै है। ऊंच कुली[1] पीतल आदि धातु का पात्र राखै। अर पांच घरा सूं भोजन ले, अन्त के घर पाणी ले, वहां ही बैठि करि लोहे का पात्र में भोजन करै है अर ऊंच कुली एक ही घर भोजन करै है अर एकातरा भी करावै है। अर ऐलक पछेवड़ा बिना एक कमण्डल-पीछी, लंगोट ही राखै है अर कर-पात्र आहार करै है। अर लोच करावै है अर लंगोट लाल राखै है अर लंगोट चाहिये तौ भी लेय। अर आहार को जाय तब श्रावक के घर कै द्वारे ऐसा शब्द कहै है- अखै दान। अर नगर बाहरै मण्डप, मठ बाह्य विषै तिष्ठै हैं वा मुन्या कै समीप वनादिक विषै बसै हैं। अर मुन्या का चरणारविंद सेवै हैं अर मुन्या के साथ ही विचरै हैं। अर क्षुल्लक भी मुन्या के साथ ही विचरे है; अर संसार सूं उदासीन रहै अर अनेक शास्त्रां का पारगामी है। अर स्व-पर विचार का वेत्ता है, तातैं **आप चिन्मूर्ति हुवा शरीर सूं भिन्न स्वभाव विषै तिष्ठै है।**

अर ऐलक वा अर्जिकाजी तौ क्षत्री, वैश्य, ब्राह्मण ऊंच कुल के ही नियम करि उत्कृष्ट श्रावक के व्रत धारै है। अर क्षुल्लक के व्रत स्पर्श शूद्र भी ग्रहण करै है। अर अस्पर्श शूद्र नै प्रथम प्रतिमा का धारक जघन्य श्रावक का व्रत भी नाहीं सम्भवै है अर पोसे मौं आखड़ी पालै है नाहीं। अर बड़ा सैनी पंचेन्द्री तिर्यंच विषै ज्ञान का धारक तानै भी मध्यम श्रावक व्रत होय है। सो देखो श्रावक की तो यह वृत्ति है! अर महापापी, महाकषायी, महा मिथ्यात्वी, महा परिग्रही, महा विषयी, देव-गुरु-धर्म के अविनयी, महा-

---

[1]. कुलीन

तृष्णावान, महा लोभी, स्त्री के रागी, महा मानी, गृहस्थां कैसी विभव, महा विकल, सप्त विसन (व्यसन) करि पूर्ण अर मन्त्र-तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, कामनादि के डोरा-डांडा[1] करि मोहित किया है, बहकाया है वा वापरा भोला जीवानै अर जाके कोई प्रकार को संवर नाहीं, तृष्णा अग्नि करि दग्ध होय गया है आत्मा जाका, सो अपने लोभ करि गृहस्थां का भला मनवाने के अर्थ त्रैलोक्य करि पूज्यश्री तीर्थंकरदेव की शान्ति मूर्ति, जिन प्रतिबिंब वाके घर ले जाये वाको दर्शन करावै; पाछै अपने मतलब के अर्थ करै। सो आप तो घोरान घोर संसार के विषै बूडा[2] ही है। भोरा जीवानै संसार विषै डुबोवै है। दोय—चार गांव का ठाकुर भी सेवक का मतलब के वास्ते सेवक का ले (जाया) गया सेवक के घर जाय नाहीं, तो ये सर्वोत्कृष्ट देव याकूं कैसे ले जाइये ? इस समान पाप और हुवा न होसी। सो कैसी-कैसी विपर्यय की बात कहिये है। आजीविका के अर्थ गृहस्थन के घर जाय शास्त्र वांचे है। अर शास्त्र में अर्थ तो विषय-कषाय, राग-द्वेष, मोह छुड़ावा का अर वे पापी अपूठा विषय-कषाय, राग-द्वेष, मोह ताको पोषै हैं। अर या कहे हैं— अबार तो पंचम काल छै, न ऐसा गुरु न ऐसा श्रावक। आपा नै गुरु मनावा के वास्ते गृहस्था नै भी धर्म सूं विमुख करै। अर गृहस्था नै एक श्लोक भी प्रीति करि सिखावै नाहीं, मन में या विचारै कदाचि[3] याके ज्ञान होइ जासी तो म्हांको औगुण याने प्रतिभाससी तो पाछे म्हांकी आजीविका मनै होसी। ऐसा निर्दय आपणा मतलब के वास्ते जगतनै डुबोवे है अर धर्म पंचमकाल के अन्त

---

१. गंडा, ताबीज २. डूबा ३. कदाचित्

ताईं[1] रहना है। बहुरि ताके ल्याव देव याही वासना सदीव[2] बसै है। अर जिन धर्म के आसिरे[3] आजीविका को पूरी करै है। जैसे कोई पुरुष कोई प्रकार आजीविका पूरी करिवानै असमर्थ है, पाछै वह आपणी मातानै पीठे बैठारि[4] आजीविका पूरी करै है; त्यों ही जिन धर्म सेय सत्पुरुष तो एक मोक्ष ही नै चाहै है, स्वर्गादिक भी नाहीं चाहै है तो आजीविका की कहा बात है? सो हाय! हाय! हुंडावसर्पिणी काल दोष करि ई[5] पंचमकाल विषै कैसी विपरीतता फैली है! काल--दुकाल विषै गरीब का छोरा[6] भूखा मरता होय दोय-च्यार रुपया विषै चाकर गुलाम की नाईं मोल बिक्या पाछै निर्मायल[7] खाय-खाय- बड़ा हुआ अर जिन--मन्दिर नै आपना रहवा का घर किया अर शुद्ध देव, गुरु-धर्म के विनय का तो अभाव किया। अर कुगुरादिक के सेवने का अधिकारी हुवा- ऐसा ही औरा नै उपदेश दिया। जैसे अमृत नै छांडि हलाहल विष नै सेवै वा चिन्तामणि रत्न छांडि काच का खण्ड की चाहि करै वा कामदेव--सा भर्तार छोड़ि अस्पर्श शूद्री अन्धा, बहरा, गूंगा, लूला, पांगुला[8] कोढ़ी तासूं विषय सेय आपनै धन्य मानै। अर या कहै मैं शीलवंत पतिव्रता स्त्री हूं सो ऐसी रीति कुवेश्या विषै पाइयै है। अर ताही का अन्ध जीव आसिरा लेय धर्म-रसायण चाहै है अर आपकूं पुजाय महन्त मानने लगा।

अर आपने मुख सो कहै है-- म्है[9] भट्टारक दिगम्बर गुरु छा, म्हानै पूजो औरनै पूजसी तो दण्ड देस्या वा थाकै माथै भूखा रहस्या वा निन्दा करस्या अर स्त्री साथ

---

१. तक २. सदा ही ३. सहारे ४. बिठा कर ५. इस ६. लड़का
७. निर्माल्य; देव, धर्म गुरु को चढ़ाया हुआ द्रव्य ८. लंगड़ा ९. मैं

लिया फिरै। सो भट्टारक नाम तौ तीर्थंकर केवली का है अर दिगम्बर कहिये-दिग् नाम दिशा का है, अम्बर नाम वस्त्र का है। सो दशों दिशा के वस्त्र पहरे होय ताको दिगम्बर कहिये। निर्ग्रन्थ नाम परिग्रह रहित का है, ताके तिल-तुष मात्र परिग्रह तौ बाह्य अर चौदा प्रकार का परिग्रह अभ्यन्तर परिग्रह तासूं रहित ताकूं निर्ग्रन्थ कहिये। सो वस्तु का स्वभाव तौ अनादिनिधन ऐसा अर मानै कैसा सो यह कहावत कैसी ? म्हारी माँ अर बांझ सो जगत विषै परिग्रह ही सूं नर्क जाय है। अर परिग्रह ही जगत विषै निन्द है। ज्यौं-ज्यौं परिग्रह छोड़ै, त्यौं-त्यौं संयम नाम पावै सो या बात तौ ऐसै त्याज्य करणी अर हजारां-लाखां रुपया की दौलति अर घोड़ा, बैल, रथ, पालकी चढ़नै कौ अर चाकर, कूकर अर कड़ा-मोती पहरे, थुरमापावड़ी बोढ़ै, नरक-लक्ष्मी के पान ग्रहण करने कूं बींद सादृश्य है। बहुरि चेला-चांटी सोई भई फौज अर चेली सोई भई स्त्री-ऐसो विभूति सहित राजा सादृश्य होते संता भी आपकूं दिगम्बर मानै है। सो एह दिगम्बर कैसे जाना ? ह्यानै एक दिगम्बर नाहीं। हुंडावसर्पिणी के पंचम काल की विधाता ने ए मूर्ति ही घड़ी है कि मानू सात विसन की मूर्ति ही है कि मानू पाप का पहार ही है कि मानू जगत के डुबोवने कूं पत्थर की नाव ही है।

बहुरि कैसा है कलिकाल का गुरु? सो आहार कै अर्थि दिन प्रति नगन-वृत्ति आदरै अर भक्त बुलावै स्त्रीन का लक्षन देखै। इह मिसि स्त्रियां का स्पर्श करै। स्त्रियां का मुख कमल नै भ्रमर समान होय वाका अवलोकन करै। पाछै अत्यन्त मग्न होय आपनै कृत्यकृत्य मानै। सो या

बात न्याय ही है। सो ऐसा तौ गरिष्ठ नाना प्रकार का नित नवा भोजन मिल्या अर नित नई जोबनमयी स्त्री मिली तो याका सुख की कांई पूछनी ? सो ऐसा सुख राजा ने भी दुर्लभ सो ऐसा सुख पाय कौन पुरुष मगन नाहीं होय ? होय ही होय। सो कैसी हैं वे स्त्री अर कैसा है वाका खावंद ? सो स्त्री का तौ अन्तः करन परनाम कैसो बनो। अर पुरुष मोह मदिरा करि मूर्च्छित भया तातै ई अन्याय का मेटिवानै कौन समर्थ हैं ? तीसूं आचार्य कहै हे-म्हे ई विपर्यय नै देखि मौन करि तिष्ठां है। याका न्याय विधाता ही करने कूं समर्थ है, हम नाहीं। सो ऐसा गुरा नै सेय पर लोक विषै भला फल नै वांछै है। सो वे कांई करें हैं ! जैसे कोई पुरुष बांझ के पुत्र का आकाश के फूल सूं सेहरा गूंथि आप मुवा पाछै वाका अवलोकन किया चाहै है वा जस-कीर्तिकूं सुन्या चाहै है, तिहि सादृश्य वाका स्वरूप जानना। बहुरि परस्पर प्रशंसा करें हैं। वे तो कहै-थे[1] म्हाके सतगुरु हो। वे कहै- थे म्हाके पुण्यात्मा श्रावक हो। कौन दृष्टान्त, जैसे ऊंट का तौ ब्याह अर गन्धर्व गीत गावने वारे। वे तो कहै— बींद[2] का रूप कामदेव सादृश्य कैसा बना है अर कैसा सोभे है। अर वे कहै- कैसा किन्नर जाति के देव के कण्ठ सादृश्य कैसा राग गावै है। या सादृश्य श्रावक-गुरा की शोभा जाननी।

इहां कोई कहै- घर के गुरां[3] की दशा वरनई[4]। अर श्वेताम्बर आदि अन्य मतीनि की दशा क्यों न बरनई ? तो याके बीच भी खोटा है। ताकूं कहिये है- रे भाई ! यह तो न्याव थारे ही मुंहडे[5] होय चुका। ब्राह्मण के हाथ की

१ तुम २ दूल्हा, वर ३ गुरुओं ४ वर्णन किया ५ मुख से

रसोई अलीन[1] ठहरी तो चांडालादि के हाथ की रसोई कैसे लीन ठहरेगी। ऐसे जानना! इहां कोई प्रश्न करे—ऐसे नाना प्रकार के भेष कैसे भये? ताकूं कहिये है। जैसे राजा के सुभट सत्रु की फौज ऊपर लड़ने कूं चाले पाछे वैरां के सस्त्र प्रहार कर कायर होय भाजे, पाछै राजा याकूं भागा जान नगर आवना मने किया अर नगर बाहिर ही कही याको माथा मूड़ गधै चढाय नगर दोल्यूं फेर्या। काहू कौ लाल कपड़ा पहराये, काहू कौ काथ्या[2] कपड़ा पहराये, काहू[3] कौ चूडी पहराई, काहू का रांड[4] वैरि का स्वांग किया, काहू का सोहागिन स्त्री का स्वांग किया, काहू कनै[5] भीख मंगाई, इत्यादि नाना प्रकार के स्वांग कर नगर बाहिर काढ दिये। अर जे रन विषै वैरी को जीत आये, मुजरा[6] किया ताकूं राजा नाना प्रकार के पद दिये। अर मुख सो बहुत बड़ाई कीनी। त्यों ही दृष्टान्त के अनुसार दार्ष्टांत जानना। तीर्थंकर देव त्रिलोकीनाथ सोई भया सर्वोत्कृष्ट राजा ताके भक्त पुरुष भगवान के मस्तक ऊपर आग्या धारि मोह कर्म सूं लड़वानै ग्यान-वैराग्य की फौज को लुटाय आप कायर होय भागा ताकूं भगवान की आग्या अनुसारि विधाता—कर्म ग्रहस्थपना नगर में तै निकार बाहिज[7] ही राखा। अर रक्ताम्बर, टाटाम्बर[8], स्वेताम्बर, जटाधारी, कनफटा आदि नाना प्रकार के स्वांग बनाये। अर जो भक्त पुरुष मोह कर्म की फौज सौं जय ने प्राप्त भया अरहन्त देव नगर का राज दिया, ताकी आपने मुख करि बहुत बड़ाई कीनी अर अनागत[9] काल विषै तीर्थंकर होसो, ते भी बड़ाई करसी। ऐसा याका

---

१ अशुद्ध २ कत्थे के रंग के ३ किसी ४ विधवा ५ पास ६ भेंट
७ बाहर ८ टाट (फट्टी) बारदाना के बने हुए वस्त्र (धारी) ९ भविष्य

सरूप जानना । ऐसे ग्यारा प्रतिमा का स्वरूप विशेषपणे कह्या ।

रात्रि-भोजन का स्वरूप

आगै रात्रि-भोजन का स्वरूप वा दोष वा फल कहिये है। प्रथम तौ रात्रि विषै त्रस जीवां की उत्पत्ति बहुत है। सो बड़ा त्रस जीव तौ डांस--माछर--पतंगादि आंख्यां देखिये है। सो ही महा छोटा जीव दिन विषै भी नजरां नाहीं आवै। ऐसा संख्यात-असंख्यात उपजै है। अर वाका स्वभाव ऐसा होय सो अग्नि विषै तौ दूरि सेती आय झुकै है। ऐसे ही कोई वाके नेत्र इन्द्रिय का विषय पीडै है। बहुरि सरदी चिगटा ? सरदी विषै बैठा हुआ चिपटि ही जाय है। अर कीडी, मकोडी, कुंथिया, कसारी, माकडी, छोटा त्रिसमरा आदि त्रस जीवां का समूह क्षुधा करि पीडा हुवा वा नासिका वा नेत्र इन्द्रिय का पीडा हुवा भोजन--सामग्री विषै आय प्राप्त होय है। अथवा भोजन-सामग्री किया पाछै घणी बार हुई होय तौ वाही विषै मरजादा उलंघै, पाछै घणा त्रस जीवां का समूह उपजै है। पाछै वे ही भोजन कौ रात्रि विषै कांसा विषै धरै पाछै ऊपर सूं माखी, माछर, टाटा कीडी, मकौडी, जाला, बिसमरा का बच्चा आदि आय पडै है वा कनसला, सर्प का बच्चा आय पडै है अथवा ये सारा कांसा विषै तलासूं चढि आवै है। अथवा जेठी-तेठी सो ठण्डा कांसा विषै आय बैठे हैं अर निसाचर जीवन कूं रात्रि नै विशेष सूझै है। तातै रात्रि नै गमन घणा करै है। सो गमन करतै भोजन-सामग्री विषै भी आय-जाय है। पाछै ऐसी भोजन-सामग्री नै कोई निरदै पुरुष पशु सादृश्य हुवा खाय है तौ वह मनुष्य में अघौरी है। पाछै नाना प्रकार के

जीवनि के भखिवा करि नाना प्रकार का रोग उपजै है वा इन्द्री छीन होय है। जैसा-जैसा जीवन के मांस का जैसा-जैसा विपाक होय, तैसा-तैसा रोग उत्पन्न होय, कोढ उपजि आवै, फोडा होय, सूल रोग होय, सफोदर[1] होय, अतीसार होय, पेट में गंडारपडि चालै, वाला[2] नोसरै, वाय-पित्त-कफ उपजै, इत्यादि अनेक रोग की उत्पत्ति होय। अथवा आंधा होय, बहरा होय, बावला होय, बुद्धि करि रहित होय सो ऐसा दुख तौ इही पर्याय विषै उपजै। पाछै याके फल करि परलोक विषै अनन्त सर्पादिक खोटी पर्याय पावै है, परम्पराय नरकादिक जाय है। फेरि वहां सूं निकसि करि स्यंघ, व्याघ्र होय है। फेरि नर्क जाय है। ऐसै ही नर्क सूं तिर्यंच, तिर्यंच सूं नर्क केतायक काल पर्यायनि कौ धारि पाछै निगोद में जाय पडै है। वहां सूं दीर्घकाल पर्यंत भी नीसरिवो दुर्लभ होय है।

और भी दोष कहिये हैं— कीडी भक्षण तै बुद्धि को नास होय अर जलंधर रोग उपजै। माखी भक्षण तै वमन होइ। मकडी तै कोढ होइ, बाल तै सुरभंग होइ। अभक्ष्य वस्तु भोलै जीमि जाय। भमरी[3] तै शुनी[4] होइ, कसारी तै कफ, वाय होइ है, आखडी भंग होइ है। त्रस जीवां का भक्षण तैं मांस का दोष लागै, महा हिंसा होइ, अपच होइ, अपच तै अजीरन होइ, अजीरन तै रोग होइ, त्रषा लगै अर काम व्रधै, जहर तै मरण होइ। डाकिणी, भूत-पिसाच-वितरादि भोजन झूठौ करि जाय। ऐसा पाप करि नर्क विषै पतन होइ। ऐसा दोष नै धर्मात्मा पुरुष सर्व प्रकार करि जनम पर्यंत रात्रि का खान-पान कौ तजौ। एक मास रात्रि-भोजन-

---

१ शोथ, पेट में सूजन २ नारू, नाहरुवा ३ बरैं, ततैया ४ शून्यपना, सुन्न

त्याग का फल पन्द्रह उपवास का फल होय। ऐसे रात्रि-भोजन का स्वरूप जानना। अर दिन विषै तहखाना, गुफा विषै वा बादलां,आंधी व धूल्या के निमित्त करि चौडै[1] अंधारा होय, ता समै भोजन करिये, तौ रात्रि-सादृश्य दोष जानना।

भावार्थ– जीव-जन्तु नजरि आवै ऐसा दिन के प्रकास विषै भोजन करना उचित है। नजरि न आवै तो दिन विषै भी भोजन करणां उचित नाहीं। इति रात्रि-दोष।

रात्रि में चूल्हा जलाने के दोष

आगै रात्रि नै चूल्हा वालिये[2] है, ताका दोष कहिये है। प्रथम तो रात्रि नै कोई जीव-जन्तु सूझै नाहीं। अर छाणा[3] में तो त्रस जीवां का समूह है अर आला[4] -सूका की खबरि पडै नाहीं। सहज का सा आला होय, ता विषै पईसा-पईसा भर्या गिडोला[5] नै आदि दै बाल का अग्रभाग संख्यातवां भाग पर्यंत सैकडां, हजारां, लाखां, संख, असंख जीवां का समूह पावजे हैं। सो सर्व चूल्हा विषै भसम हो जाय है। अर लाकडी वालिये, तौ वा विषै भी अनेक प्रकार का लट वा कीडी, कनसला वा सपलेटा[6] आदि बहुत त्रस जीवां का समूह होय है।

भावार्थ–घणी तरह की लाकडी तौ वीधी होय है। ता विषै तो जीव अगणित हैं ही। अर केई लाकडी पोली होय

---

१ प्रत्यक्ष २ जलाइये ३ छैना, कंडा ४ गीला ५ केंचुआ
६ एक तरह का जानवर

है। ता विषै कीडा, मकोडा, कनसला,[1] सपलेटा पैसि[2] जाय है। अर जे चातुरमास के निमित्त आदि सरदी होय तौ कुंथिया, निगोद आदि जीवां की उत्पत्ति होय, पाछै वैसा ही वलीता[3] नै वालिये, तौ वाके जीव दग्ध होय, तौ पापकी कांई पूछनी ? बहुरि चूल्हा विषै उस्णता का निमित्त पाय कीडी, मकोडी आदि त्रस जीव डरि रहे हैं, सो भी चूल्हा विषै होम्या जाय है। बहुरि माखी, माकडी आदि जीव तौ रात्रि नै ऊपरि छति विषै विश्राम लेय, पाछै रात्रि नै चूल्हा का धुवां करौ होय, सारा घर में आताप फैले ताका निमित्त करि सारा जीव दंडक-दंडक चूल्हा विषै वा हांडी विषै वा आटा विषै वा पानी विषै आय पडै है, सो सर्व प्राणांत होय है। अर-अग्नि की लपट[4] दूरि थकी देखि पतंगा, डास माछर आय पडै चूल्हा में भसम होय है। और रात्रि नै आटा-सीधा विषै इलो,[5] सुलसुली,[6] कुंथिया[7] होय अर-कीडी-मकोडी, इलो आदि ऊपरि चडि आवै है। अर घी व तेल, दूध, मीठा विषै जीव आनि पडै है। सो वे छोटा जीव दिन विषै भी दीसै नाहीं, तौ रात्रि विषै वा जीव कांई गम्य ? तातैं आचार्य कहै हैं—ऐसा दोष संयुक्त अहार कैसे कीया जाय ? तातैं रात्रिकूं चूल्हा वालणा मसाण की पृथ्वी सूं भी अधिक कह्या है। मसाण विषै तो दिन में एक ही मुरदा होमिये है, अर चूल्हा विषै अगणित जीवता प्राणी होमिये है। तातैं रात्रि विषै चूल्हा वालिवा का महापाप है। तातैं चूल्हा वालै, तौ वाका पाप की मर्यादा हम नाहीं जानै, केवल-ज्ञान गम्य है। अर केई धर्मात्मा पुरुष तौ ऐसा है, रात्रि

१ कान खजूरा २ बैठ, प्रवेश (कर), ३ इंधन ४ झाल, ज्वाला
५ इल्ली ६-७ उड़ने वाले सूक्ष्म जीव

मै दोषा भी कोवै नाहीं। ऐसे रात्रि के चूल्हा बालबे का दोष कह्या।

अनछना पानी के दोष

आगै अणछाण्या पानी का दोष कहिये हैं। लाख-कोडि बेहडा[1] तुरत का छाण्या पानी काढो लिये, ता विषै भी एकेन्द्री जीव मारिवा का पाप घणा है। तासूं असंख्यात गुणा बेन्द्री के मारिवे का पाप है। तासूं असंख्यात गुणा तेइन्द्री को, तासूं असंख्यात गुणा चौइन्द्री का, तासूं असंख्यात गुणा असैनी पंचेन्द्री का, तासूं असंख्यात गुणा सैनी पंचेन्द्री का मारिवा का पाप है। सो अणछाण्या पाणी का एक चलू[2] विषै बेन्द्री, तेन्द्री, चौइन्द्री, पंचेन्द्री, सैनी, असैनी, लाखा-कोड्या तौ आकास का चिलका[3] विषै खेहरा की रेणु[4] आम्ही-साम्ही गमन करै है, ता सादृश्य पांच प्रकार के त्रस जीव पावजे है। सो नोका उजाला विषै दृष्टि करि देखिये तौ ज्यों का त्यों नजर आवै। बहुरि तासूं छोटा जीव, ताही के, असंख्यातवें भाग सूक्ष्म अवगाहना के धारक असंख्यात पांच प्रकार के त्रस और भी पावजे है। एक-एक नातणा[5] का छिद्र में असंख्यात त्रस जीव युगपत् पाणी छाणता परे नीसरि जाय है, इंद्रिय गोचर नाहीं आवै, अवधिज्ञान वा केवलज्ञान गम्य है। बहुरि केई पाणी छाणै भी है अर जिवाण्या[6] जहां का तहां नाहीं पहोचै है तौ वह पाणी अणछाण्या पीया ही कहिये। तीसूं भावै एक चलू वा अण-छाण्या पानी का आपनै हाथ सूं ढोलो वा वरतौ वा पीवौ

---

१ हांडी सहित पानी का घड़ा २ चुल्लू ३ प्रकाश ४ आकाश की धूल
५ छन्ना, गलना ६ जीवानी

औरा ने पावो ताका पाप एक गाँव माऱ्या का सा है। ऐसे हे भव्य ! तू अणछाण्या पानी पीवो भावै लोहू पीवो। अणछाण्या पानी सूं सापडो १ भावै, लोहू सूं सापडो। लोहू बीचि भी अणछाण्या पानी विषै बडा पाप कहैं हैं। लोहू तो निंदनीक ही है। अणछाण्या पानी का बरतबा विषै असंख्यात त्रस जीवां को घात होय है। अर जगत विषै निंद है। महानिर्दयी पुरूष याके पाप करि भव-भव विषै रुलै है, नर्क, तिर्यंच गति के क्लेश ने पावै है। संसार–समुद्र माही सूं निकसना दुर्लभ होय है। या समान पाप और नाहीं, घणी कहा कहिये ?

जैनी की पहचान

जैनी पुरूषनि का तीन चिन्ह है। एक तो जिन–प्रतिमा का दर्शन कीया बिना भोजन न करै अर रात्रि-भोजन न करै अणछाण्या जल न पीवे। यामें सूं एक में भी कसर होय तो जेनी नाहीं, अन्य मती सूद्र सादृश्य है। तातैं आपणा हित का वांछक पुरुष सीघ्र ही अगाल्या २ पाणी को तजो। इति अगालित पानी-दोष।]

जुआ के दोष

आगै सात विसना विषै छह विसना ने छोडि जूवा का दोष वर्णन करिये है। छह विसना को दोष तो प्रगट दीसै हैं। जूवा को दोष गूढ है। तासूं छह विसना सूं अधिक

---

१ नहाओ, सपरो २ अनछना

प्रगट दिखाइयै है। जूवा में हारि होय, तब चोरी करनी पड़ै। चोरी का धन आये ते परस्त्री चाहि होय। परस्त्री का संयोग न मिले, तब वेश्या के जावं। वेश्या के घर सुरापान करै। वाके अमल में मांस की चाह होय। मांस की चाह भये सिकार खेल्या चाहै। तातें सात विसन का मूल एक जूवा है। और भी घणा दोष उपजै है। जुवारी पुरूष की जायगा आकाश रहि जाय है। ई लोक विषे अप-जस होय है। पैठि बिगडै है, विसवास मिटै है, राजादिक करि दंड पावे है। अनेक प्रकार के कलह, कलेश वधे है। अर क्रोध, लोभ अत्यंत वधै है। जण–जण आगै दीनपना भाषै है, इत्यादि अनेक दोष जानना। पाछै ताकै पाप करि नर्क जाय है, जहां सागरा पर्यन्त तीव्र वेदना सहै है। तातै भव्यजीव हैं ते द्यूतकर्म सीघ्र ही छोड़ो। पांडव आदि द्यूत-कर्म के वसीभूत होय सर्व विभूति अर राज खोया।

खेती के दोष

आगै खेती का दोष कहिये है। असाढ़ के महिनै प्रथम वर्षा होय ताके निमित्त करि पृथ्वी सर्वजीवमयी होयजाय, सो जीव बिना आगल भी भूमिका न पाइये। ता भूमिका कूं हल करि फाडिये है। सो भूमि खुदेवा करि सर्वत्र त्रस-थावर जीव नासनै प्राप्त होय है। फेरि पूर्ववत् नवा जीव उपजै। पाछै दूजी वर्षा करि वे भी सर्व मरण कूं प्राप्त होय। फेरि जीवां की उत्पत्ति होय। फेरि हल करि हण्या जाय, ता भूमिका विषै बीज वाहै १। पाछै सर्व जायगा अन्न के अंकुरा अनन्त निगोद रासि सहित उत्पन्न होय।

---

१ बोते हैं

फेरि वर्षा होय, ता करि अगणित त्रस-थावर जीव उपजै। फेरि निनाणवा[1] करि सर्व जीव हण्या जाय। फेरि वर्षा करि ऐसैं ही और जीव उपजै। फेरि धूप वा निनाणी करि मरै। ऐसैं ही चातुरमास पूर्ण होय। पाछै सर्व क्षेत्र त्रस–स्थावर जीवां करि आश्रित ताकूं दातला[2] करि काटियो सो काटिवा करि सर्व जीव दलमल्या जाय। ऐसैं तो चातुर्मास की खेती का स्वरूप जानना।

आगे उन्हालू[3] की खेती का स्वरूप कहिये है। प्रथम सावण का महिना सूं लगाय कातिग माह पर्यन्त पांच–सात वार हल, कुसी, फावडा करि भूमिका नें आम्ही–साम्ही चूर्ण करै, पाछै वाके अर्थ दो–च्यार वरस पहली दोडी[4] का संचय कीया था अथवा दोय–च्यार वरस की एकठी हुई मोलि ले खेत विषै नाखै। सो वे रोडी की पाल की कांई पूछणी ? जेतो[5] वह रोडी[6] को बोझ होय, तेता ही लटादिक त्रस जीव जानना। एक–दोय दिन का विष्टा, गोबर चोडै पड्या रहि जाय है, ता विषै लाखा, कोड्या आदि अगणित लटादिक त्रस जीव किलबिल करते आंख्या देखिये है। दोय-च्यार वर्ष का संचय कीया सैंकडा मण गोबर, विष्टा आदि असुचि वस्तु ऊपरा–ऊपरि एकठी हुई सासती सरदी सहित ता विषै जीवा की उत्पत्ति का कौन वर्णन करै। अर वैसे जीवा को रासि कूं फावडा सूं काटि-काटि महानिर्दयी हुआ लोभ के अर्थि खेतादिक विषै जाय खैपै, तौ वाका निर्दयी-पणा की कहा बात ? पाछै वा खातकूं[7] सारा खेत विषै बखेरि[8] ता ऊपरि सोरचावरि[9] फेरे। ता पाछै बीज बोवै,

---

१ निदाई, खेत को नींद कर २ हंसिया ३ गर्मी ४ खाद (कूडा) ५ जितना ६ मिट्टी ७ खाद को ८ बिखराकर ९ लाट, लकड़ी का पाट (खेत मे फेरने का)

पाछे मगसिर का महीना ही सूं लगाय फागण पर्यंत अण–छाण्या कूं बावडी, तलाब का जल करि दिन प्रति सासता सींच्या करै। सो पूर्वै वा जल मांहि त्रस–स्थावर जीव तो प्रलय नै प्राप्त होय, तबै सरदी का निमित्त करि त्रस-थावर जीव फेरि निपजै। ऐसे ही दिन प्रति च्यार-पांच महीना ताईं पूर्व जीव मरते जाय, अपूर्व-अपूर्व जीव उपजते जाय। ऐसै होत संते अनेक उपद्रव करि निर्विघन पणै खेती घर में आवै वा न आवै। कदाचित् आवै तो राज की बीज की देणि चूकै वा न चुकै। सो नफा तो जाका ऐसा अर पापपूर्वक कह्या तैसा। असंख्यात त्रस जीव, अनन्तानन्त निगोदरासि आदि थावर-त्रस जीवां का घात करि एक नाज का कणकै बाटै[1] आवै है।

भावार्थ–एतो–एती हिंसा करि एक–एक नाज का कण पैदा होय है। बहुरि कोई या जानै खेती करता सुखी होयगा, ताकौ कहिये है। जहाँ पर्यन्त खेती करने का संसकार रहै है, तहाँ पर्यन्त राक्षस, दैत्य, दरिद्री, कलंदर[2] वत् ताका स्वरूप जानना। अर परभव विषै नरकादिक फल लागै है। तातै ज्ञानी विचक्षण पुरुष खेती का किसब छोडो। ऐसै ही खेती वत् अम्बार तीका दोष जानना। सो प्रत्यक्ष चौडे दीसै है, ताकौ कहा लिखिये ? अर, कुआ, बावडी, तलाब बनावे का, खेती–हवेली के पाप कूं असंख्यात, अनन्तगुणा पाप जानना। इति खेती दोष।

रसोई बनाने की तैयारी

आगै रसोई करने की विधि कहिये है। सो रसोई

---

१ हिस्से में २ कालबेल्या, सँपेरा

करिवा विषै तीन बात करि विशेष पाप होय है। एक तौ बिना सोध्या अन्न अर विवेक बिना गाल्या जल अर बिना देख्या वलीता। ये तीन पाप करि रसोई मांस सादृश्य जानना। अर तीनौ रहित रसोई निपजै[1] सो शुद्ध रसोई कहिये। ताका स्वरूप कहिये है। प्रथम तो नाज का अगाऊ संग्रह न करै, दस दिन वा पांच दिन का दस-पांच जायगा अवोध देखि मोलि ल्यावै। पाछे दिन विषै नीका सोधि-बीणि दिन विषै घरटो[2] मांहि सूके कपडा तै पूछि नाज पिसावै। पाछे लोह, पीतल, बांस आदि चाम बिना चालनी सूं छाणि लीजै। ऐसी तौ आटा की क्रिया जानना।

वलीता छाणा नै छोडि कर फाड जीव रहित प्रासुक लकडी वा कोयला सो वलीता सुद्धता है। अर छाणा गोबर रसोई विषै अलोन है। ता विषै जीवां की उत्पत्ति विशेष है। अन्तर्मुहूर्त सूं लगाय जहां पर्यन्त ता विषै सरदी रहै, तहां पर्यन्त अनेक त्रस जीव उपजै हैं। पाछै गोबर का सूकिवा करि सारा नासनै प्राप्त होय है। सूक्या पीछै बडा-बडा ताका[3] कलेवर पईसा-पईसा भरि गिडोला आदि आंख्या देखिये है। पीछै फेरि चातुर्मासादि विषै सरदी का निमित्त करि असंख्यात कुंथिया, लट आदि त्रस जीव उपजै है। ताते छाणा का वालिवा तौ हिंसा का दोष करि सर्व-प्रकार ही तजना। अर लकडी, कोयला ग्रहण योग्य है। सो कोयला तो सर्व प्रकार त्रस-थावर जीव रहित प्रासुक है। तातै मुख्यपनै वालना उचित है। अर लकडी घणी खरी तौ बीधी होय है। तातै बुद्धिवान पुरुष विशेष पणै बोधी, सुलो

---

१ उत्पन्न हो २ चक्की ३ उसका

पोली, कानी कपाडि को तजि अबीध निघोट [1]का ग्रहण करै, या विषै आलस्य, प्रमाद राखै नाहीं। या विषै पाप अगणित अपार है सो विवेक करि तुच्छ लागै है। तातैं धर्मात्मा पुरुषा नै वलीता को सावधानी विशेष राखणी। पोली लकडी विषै कीडी, मकोडी, उदेही[2], कानिखजूरा, सर्प आदि अनेक त्रस जीव पैसि जाय हैं। सो बिना देख्या वालिये तौ वे सर्व भस्म होय। सो पार्श्वनाथ तीर्थंकर के समय कमठ निर्दयी हुवा पंचाग्नि तपै था, तहां अधजल्या पोली लकडी विषै सर्प-सर्पिणी ताकूं आप अवधि (ज्ञान) करि जलना देखि ताकूं नवकार मन्त्र सुनाय देवलोक नै प्राप्त किया। ऐसे बिना देख्या वलीता विषै जीवां का दग्ध जानना। घणी कहा कहिये ?

पानी की शुद्धता

बहुरि तलाब, कुंड, तुच्छ जल करि बहती नदी, अकढा कुवा, वावडी का पानी तौ छाण्या हुवा भी अयोग्य है। या जल विषै त्रस जीवां की रासि इंद्रियगोचर आवै ऐसी है। तातैं जा कुवा का पानी चडस[3] करि वा पणघट करि छटता होई ताका जल विषै जीव नजर नहीं आवै है। सो वा जल कूं कूवा ऊपरि आप वा आपकी प्रतीति का आदमी जाय दोवड[4] सपीठ[5] गाढा गुंढो[6] करि रहित नातणा विषै पाणी औंधा हुवा एक वोट[7] थंभि[8] रहै, ततकाल एक ही काल छणि[9] न जाय, अनुक्रम सूं धीरै-धीरै छणै-ऐसा नातणा सूं जल छाणिये। ताका प्रमाण-जा

---

१ छेद रहित २ दीमक ३ चरस ४ दुहरा ५ सपाट ६ गाँठ,गठान
७ क्षण ८ ठहरा ९ छना

वासण[1] विषै छाणियै ताका मूढा[2] सूं तिगुणा लंबा-चौडा सो दोवडा[3] कीये समचौकोर होय जाय ऐसा जानना अथवा विना छाण्या कूवा सूं भरि डेरै[4] ले जाय यत्नपूर्वक नीका छाणना। छाणती वार अणछाण्या पानी की बूंद आंगणै गिरै नाहीं वा अणछाण्या पानी की बूंद छाण्या पानी मैं अंस मात्र भी आवै नाहीं—ऐसै पाणी छाणिये। अणछाण्या पानी का हाथ कूं छाण्या पाणी करि अणछाण्या पानी के वासण मै खोलियै। पाछै छाण्या पानी के वासण कूं पकडिये सो तीन वार पखालिये[5] पीछै वाके मूढै नातणा दीजिये। बांया हाथ विषै मालसा[6] (पालस्या) वा कचोला[7] वा तबला[8] राखिये। जीमणा हाथ मैं कर वाले पाणी भरि मालसा ऊपरि लिया-लिया मोणि[9] ऊपरि कूंढिये। सो अनुक्रम सूं थोडा—थोडा छाणियै। अर घणा छाणिये तौ वासण उठाय नातणा ऊपरि धीरे-धीरे कूंढिये पाछै अण-छाण्या पानी के हाथ कूं खोलि[10] अगल—बगल सूका नातणा ताकूं पकडि उलटा करियै। पीछै छाण्या पानी करि अव-शेष अणछाण्या पानी रह्या ता विषै जीवाण्या करिये। अथवा ता वासण विषै जीवाण्या करिये, बीचसूं जीवाण्या की तरफ च्यौठी[11] नातणा पकडिये नाहीं। पीछै च्यारि पहर दिन का जल आया होय तीही कूवै पहोचाय दे। वाका पासा[12] नै उलटो बाँधि पीछै डारि अपूठी ल्याव पाच-सात आंगल की लकड़ी बांधि लोट्या कै भीतर आडी लगाय पाछै लकडी का सहारा सूं लोट्या सूधा चल्या जाय। कूवा कै पीदै[13] जल ऊपरि लोट्या पहोचै, तब ऊपरि से

---

१ बर्तन २ मुँह ३ दुहरा ४ निवास-स्थान ५ धोइये ६ डोल या बाल्टी ७ कटोरा ८ तपेला, भगोना ९ बर्तन १० खोकर ११ चारों तरफ से १२ कड़ा १३ पैंदा

डोर हलाय दीजे। पाछै वह लोट्या मे सूं लाकडी निकसि औंधा होई ऊपरि नै खैच्या हुवा चल्या आवै-ऐसें जीवाण्या पहोचावणा। अथवा ई भांति न पहोचाया जाय, तौ सारा प्रभात पाणी छाणिय जीवाण्या एकठा करि पाणी भरिवा का वासण विषै घालिये अर पणिहारि को सौंपिये। पणि-हारि नै पानी भरिवा का महीना सिवाय टका-दो टका और वधाइये अर याकूं ऐसे कहिये-ये जीवाण्या सूधा उरासणा[1] कूवा मैं उरासि देणा, गैला मैं वा ऊपरा सूं कूवा विषै जीवाणी न नाखना। कदाचि नाख्या तोनै पाणी भरिवा सूं दूरि करूंगा। एता कह्या पीछै भी दोय-च्यारि वार गुपत वाकै पीछै जाय कूंचा[2] पर्यंत ठीक पाडिये। ऐसे पूर्वे कह्या माफिक जीवाणी सूधा उरासणा। ऐसै ही कूवा विषै उरासे है तौ वाकूं विशेष बड़ाई दीजे। टका-दो टका की गम खाइये, पाप का भय दिखाइये-या भांति जीवाणी पहोंचावै। तिनि कूं छाण्या पानी पीया कहिये। अर पूर्ववत् जीवाण्या न पहोचै, ताकूं अणछाण्या पानी पीया कहिये वा सूत्र साक्ष्य कहिये। जिन धर्म विषै तौ दया ही का नाम क्रिया है। दया बिना धर्म नाम पावै नाहीं। जाके घट दया है तेई पुरुष भव-समुद्र कूं तिरै हैं। ऐसा पानी का शुद्धता का स्वरूप जानना।

बहुरि मर्याद उपरांत आटा विषै कुंथिया, सुलसली आदि अनेक जीवां की रासि वा सरदी विषै निगोद रासि सहित रासि उपजै है। ज्यौं-ज्यौं मर्याद उलंघि आटा रहै, त्यौं-त्यौं अधिक बड़ी-बड़ी अवगाहना का धारक आटा की कणिका

---

१ औंधा करना २ मुहल्ला

सारिखा त्रस जोव उपजै है सो प्रत्यक्ष ही आंख्या देखिये है। तातै मर्यादा उलंघ्या आटा अर बाजार का तुरत पिसाया भी अवस्य[1] तजना। जेता आटा की कणिका तेता ही त्रसजीव जानना। तातै धर्मात्मा पुरुष ऐसा दोषीक आटा भक्षण कैसे करे ? बहुरि चाम का संयोग करि घीरत (घृत) विषै अंतर्मुहूर्तसूं लगाय जहां पर्यंत चाम का सीधडा[2] घृत रहै, तहां पर्यंत अधिक असंख्यात त्रस जीव उपजैं। अर चर्म का स्पर्श करि महानिंद्य अभक्ष्य होय है। ताका उदाहरण कहिये है—काहू एक श्रावगी रसोई करिवाके समै कोई सरधानी पुरुष हाथ पईसा-टका का घृत बाजार मैं सूं मंगाया, तब वहो सीधडा का घृत छुडायवाके अर्थि एक बुद्धि उपजावता हूवा। सो बाजार मैं सूं नवा जूता मोलि लै वा मैं घृत घालि वाकी रसोई विषैं जाय धर्‌या। तब वह रसोई छोडि उठि लाग्या; तब याने कही रसोई क्यों छोडे छै ? थे पूर्वे या कही थी म्हांके तौ चर्मका घृत कौ अटकाव नाहीं। तातैं बाजार का महाजन कै तौ काचा[3] खाल विषैं घृत था, मैं अटकाव न जानि पाका खाल का जूता विषैं घृत लाया अर थानै सौंप्या; मोने काहे का दोष ? मैं या न जाणो था कै पुरुषा वाली क्रिया है—पुरुष मोकला[4] अनछाण्या पाणी सूं तो सापडे अर सीसा सादृश्य उज्जल वासण राखे, बडा-बडा चौका दे; कोई ब्राह्मण आदि उत्तम पुरुष का स्पर्श होई तो रसोई उतारि नाखै, पाछै कांसा मैं मांस ले घणा राजी होय, तातैं त्यौं चाम का घृत महा अभक्ष्य जानना। ऐसा सुनत प्रमाण चाम का घृत, तेल, हींग

---

१ अवश्य २ कच्चे चमड़े से निर्मित कुप्पा ३ कच्चा ४ बहुत अधिक

जल आदि दोषीक वस्तु का त्याग वे पुरुष कीया। ऐसा जानि और भी भव्य जीव त्याग करो।

रसोई करने की विधि

आगै रसोई करणें की विधि कहिये हैं। जहां जीव की उत्पत्ति न होय, ऐसा स्थानक विषैं खाडा-खोचरा[1] रहित चूना की वा माटी की साफ जायगा देखि ऊपरी चंदोवा बांधि गारे का वा लोह का चूल्हा धरिये। चूना की जायगा नैं तो जीव जंतु देखि कोमल बुहारी तैं बुहारि तुच्छ पाणि करि जायगा आला चीरडासूं[2] पूछिये[3] अथवा धोय नाखिये[4]। अरगारे की जायगानैं तुच्छ शुद्ध माटी सेवो दया पूर्वक लीपिये। ता विषैं उज्जल कपडा पहरि तुच्छ[5] पाणी सूं हाथ-पाव धोय सर्व वासणा कूं मांजि रसोई विषै धरिये। पूर्वे कह्या तैसा आटा, चावल, दालि, घृत, वलीता सोधि रसोई विषैं ले बैठिये। रसोई विषैं जेता पाणी लागै, तेता छाणि लौंग, डोडा, मिरचि, कायफल, कसेला, लूण, खटाई आदि या माहि सूं येक-दोय वस्तु तै प्राशुक कीजिये। प्रासुक पाणी को मर्यादा दोय पहर की है। रसोई करने विषै दोय-च्यारि घडी लागै है। अर छाणे पाणी को मर्यादा दोय घडी को है। तातैं प्राशुक पाणी तैं रसोई करणा उचित है। प्राशुक पानी कौ दोय पहर पैलै बरताय देना। आगै राख्या यामैं जीव उपजै है, जीवाणी याको होय नाहीं। ऐसे दया पूर्वक क्रिया सहित रसोई निपजै। ताकूं उज्जल कपडा पहिर हाथ-पांव धोय पात्राकूं वा दुखित जीवाकूं दान

---

१ छोटे-बडे गड्ढे २ गीले कपड़े से ३ पोंछिये ४ डालिये
५ अल्प, थोड़ा

देय, राग भाव छांडि चौकी-पाटा बिछाय, पाटा ऊपरि बैठि चौकी ऊपरि भोजन की थाली धरि, थाली ऊपरि दृष्टि राखि, जीव-जंतु देखि, मौनि[1] संयम सहित भोजन करै। ऐसा नाहीं कै दान दिया बिना अघोरी की नाई आप तौ खाय लेय अर पात्र वा दुखित बारनै आय उठि जाय। ऐसे कृपण महारागी, महाविषयी दंड देने योग्य हैं। तातैं धर्मात्मा पुरुष हैं तौ विधिपूर्वक दान दीया पीछै भोजन करै। ऐसे दया सहित, राग भाव रहित भोजन की विधि कही। बहुरि रसोई जीमे पीछै वा रसोई विषैं कूकरा, बिलाई, हाड-चाम, मल-मूत्र के लिप्त वस्त्र सूद्र आइ-जाइ वा विशेष ऊठि[2] पडी होय, तौ प्रभात ऊपर सूं नितप्रति रसोई करवा के समय पहला चूल्हा की राख सर्व काढि नाखिये, नजरसूं जीव-जंतु देखि कोमल-बुहारी सेती बुहारी देय, पाछै चौका दीजे। अर हाड-चाम पूर्वे कहे ताका संसर्ग होय नाहीं, तौ नित चौका न दीजे। चौका दिये बिना ही राख काढि परै करिये, यत्न पूर्वक बुहारी देय रसोई करिये। बिना प्रयोजन चौका देना उचित नाहीं। चौका देने सूं जीवा की हिंसा विशेष होय है। अर अशुचि जायगा विषै रसोई करिये तौ चौका की हिंसा बोचि तौ अक्रिया के निमित्त करि राग भाव का पाप विशेष होइ है। तातैं जामें थोडा पाप लागे सो करना। धर्म दयामयी जानना। धर्म बिना क्रिया कार्यकारी नाहीं। अर केई दुर्बुद्धि नाज, लकडी कौ धोवै हैं तो लाचारी; तवा आदि वासन ताका पीदा धोय आरसी उज्जल राखै है, मोकला पानी सूं सापडि वा चौका देहैं, स्त्री के हाथ की रसोई न खाय, नाना तरह की तरकारी, मेवा व मिष्ठान्न,

---

1 मौन 2 जूठन

दही-दूध, हरितकाय सहित संवारि-संवारि भोजन बनावै है। पीछें राजी होय दोय-च्यारि वार ठूंसि-ठूंसि तिर्यंच की नाई पेट भरे हैं। अर या कहै हैं—म्हे बडा क्रिया पात्र हां, बडे संयमी हां। ऐसा झूठा डिभ धारि धर्म का आसरा ले तापारि भोला जीवांनै ठगै है। जिनधर्म विषैं तो जहां निश्चय एक रागादिक भाव नें छुडाया है अर याही के वास्तै जीवा की हिंसा छुडाई है। सोई निःपापी, राग भावा कै हिंसा की उत्पत्ति टरै सोई रसोई पवित्र है। जा विषैं ए दोनू[1] बधै सोई रसोई अपवित्र है—ऐसे जानना। बहुरि आपणा विषैं पोषिवा का अर्थि धर्म का आसरा लेय अष्टान्हिका, सोलहकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय आदि पर्व दिना विषैं आछा-आछा[2] मनमान्या नाना प्रकार का महा गरिष्ठ, और[3] दिन विषैं कबहूं मिलै नाहीं—ऐसा तो भोजन खाना अर चोखा-चोखा वस्त्र-आभूषण पहरना, सरीरनै संवारना सो सावण भादवा आदि और पर्व दिना विषैं विषय-कषाय कौ छोड़ना, संयम कौ आदरना, जिन-पूजन, शास्त्राभ्यास, जागरण का करना, दान का देना, वैराग्य का बधावना, संसार का स्वरूप अनित्य जानना, ताका नाम धर्म है। विषय-कषाय पोषने का नाम धर्म कदापि नांही। झूठा ही मान्या तो गर्ज कांई? वाका फल खोटा ही लागेगा।

बाजार के भोजन में दोष

आगै कंदोई[4] की वस्तु खाने का दोष दिखाइये है। प्रथम तो कंदोई का स्वभाव निर्दयी होय है। पीछे लोभ का

---

[1] दोनों [2] अच्छा-अच्छा [3] अन्य, दूसरे [4] हलवाई

प्रयोजन परै है। ता करि विशेष दया रहित होय है। जाका किसब[१] ही महा हिंसा का कारण है। सो ही विशेष पणें कहिये हैं। नाज सोधा[२] होय सो मोलि ल्यावै सौ सोधा तौ दीधा, सुल्या, पुराणा[३] ही आवै है। नाज नै रात्रिनै बिना देख्या पीसावे, पाछै वह आटा बेसण व मैदा महीना, पंद्रह दिन पडा रहि जाय, ता विषें अगिणति त्रस जीव उपजै हैं। पीछै वैसा तौ आटा अर अणछाण्या मसक का पाणी[४] ता करि ऊसणै[५] वीधा, सुल्या, आला, गीला भट्टी विषै रात्रि नै वलोता वालै। अर चाम का घणा दिन का बासिला घृत विषैं तलें अर-रातिनै अग्नि का निमित्त करि दूरि-दूरि सूं डंस-माछर, पतंग-माखी, कसारी-कीडी, विसमर्‌या, कानखजूरा कढाई मैं पडै। पीछै वह मिठाई, पकवान तुरत ही तौ सर्व बिक जाय नाहीं। अनुक्रम सूं बिकै सो बिकता पंद्रह दिन महीना—दो महीना पर्यंत पडी रहि जाय, ता विषैं अनेक लट आदि त्रस जीव पडि चालै। अर अपरस सूद्रकूं वह मिठाई बेचै। बाको भीटी—चूटो[६] मिठाई आपणा वासण मैं डारि ले। अर घणा कंदोई कलाल, क्षत्री आदि अन्य जाति होय है, ताके दया कहा पाइये? अर कोई वैश्य कुल के भी कंदोई होइ हैं सो भी वा सादृश्य जानना। अर जल, अन्न सूं मिलाई घृत मैं तलिये सो वा रसोई समान ही है। संसारी जीवा नै थोडा -बहोत अटक मैं राखने अर्थि सखरी-निखरी[७] का प्रमाण बांधे है। वस्तु विचारता दोनों एक ही है। ऐसी कोई जैनी कुल विषै रात्रि नै अन्न का भक्षण छोड्या, दूध, पेड़ा, आदि

---

१ व्यापार २ बीना हुआ, शोधित ३ पुराना ४ पानी ५ वसने, मूंदे
६ जूठी—चखी हुई ७ अस्पृश्य

राख्या, तौ कांई वह रात्रि-भोजन का त्यागी हूवा ? जै एती परवानगी नहीं देता तौ अन्नादिक सर्व ही वस्तु का भक्षण करता। याकै खाया बिना तौ रह्या जाय नाहीं। तातैं अन्न की वस्तु छुडाय मर्यादा मैं राख्यौ। अन्न का निमित्त तौ रंकादिक कै भी सास्वता पाइये, दूध-पेड़ा आदि का निमित्त कोई पुन्यवान कै कोई काल विषै पाइये। तातैं घणी बात घणी वस्तु का रात्रि विषैं संवर होय-ऐसा प्रयोजन जानना। तातैं ग्यानी बुद्धिवान पुरुष छै ते असं-ख्यात त्रस जीवा की हिंसा करि निपजी अनेक त्रस जीवां की राशि महा अक्रिया सहित मांस सादृश्य अभक्ष्य ऐसी कंदोई की वस्तु, ताकूं कैसे खाय? अर ठगी गई है बुद्धि जाकी, आचार करि रहित है स्वभाव जाका, परलोक का भय नाहीं है जाकैं, ऐसा पुरुष कंदोई की वस्तु खाय है। ताका फल परलोक विषैं कटुक है, तातैं जानै अपना हेत चाहिये ते पुरुष हलवाई घर की वस्तु सर्वथा तजो। बहुरि कोई अज्ञानी रसना इंद्री के लोलुपी ऐसे कहे हैं-कंदोई की वस्तु वा जाका वासण विषै मद्य, मांस वापरै ऐसा जाट, गूजर, राजपूत, कलाल आदि सूद्र के घर का दही-दूध, रोटी आदि प्रासुक है वा निर्दोष हुई। तौ और ई उपरांत दोषीक वस्तु कैसी होसी ? हाड-चाम के देखने का वा मृतक के सुनने का ही भोजन विषैं अंतराय है, तौ प्रत्यक्ष खाइबा कौ कैसे दोष न गिणिये ? तातैं जो वस्तु हिंसा करि निपजी वा अक्रिया करि निपजी, धर्मात्मा पुरुष कोई प्रकार आचरै नाहीं। प्राण जाय तौ जावौ, पणि अभक्ष्य वस्तु खानी उचित नाहीं और कोई प्रकार दीनपना का वचन कहना उचित नाहीं। दीनपना सिवाय और पाप नाहीं ? तातैं जिनधर्म विषैं अजाची वृत्ति कही है।

शहद भक्षण के दोष

आगे सहत का दोष दिखाइये है–माखी, टांट्या,[1] वनस्पति का रस, जल और विष्टा आदि मुख मैं लेय आवै बैठे, वाके मुख विषैं वह वस्तु लाल[2] रूप परणावै। पाछैं लोभ के अर्थि जैसे कोडी नाज ल्याय बिल मैं एकठा करै, पीछै भीलादिक सकल पहुंचै सो वाके सर्व कुटुंब, परिवार सहित नाज नै सोर[3] ल्यावै। पीछै सर्व कोडी का तौ स्यंघार[4] होइ, नाज भील खाय जाय। तैसे ही मक्षिका (के) तृष्णा के वशीभूत हुवा वाकूं एक स्थानक विषैं चोय-चोय[5] एकठा करै। पीछै ऐसे होते-होते घणी लाल एकठो होय। घणां काल के रहने करि मिष्ट स्वाद रूप परणवै। ता विषै समय-समय लाखा, कोट्या बडा-बडा आंख्या देखिये। तानै आदि दे और असंख्यात सूक्ष्म त्रस जीव उपजै हैं और निगोदरासि उपजै हैं अर वाही विषै मांख्या[6] नीहारि करै हैं, ताका विष्टा भी वा ही विषैं एकठा होय है। पीछैं भीलादिक महानिर्दयी वाकूं पथरादिक करि पोडै है। पीछै वाकै कच्चा-बच्चा सुद्धा अर माहिला अंडा सुद्धा[7] मसरि[8] निचोय-निचोय[9] रस काढै है। पाछै पंसारी आदि निर्दयी, अक्रियावान नै बेचै हैं। ता विषैं माखी, कीडी-मकोडी आदि अनेक त्रस जीव आय उलझि रहे है वा चिपटि जाय है। अर दोय-च्यारि वर्ष पर्यंत लोभी पुरुष संचय करै हैं। ता विषैं पूर्ववत् जा समैं मुहाल[10] की उत्पत्ति होइ, ता समय सूं लगाय जहां तहांई सहत रहै, तहां पर्यंत असंख्यात त्रस जीव

---

१ भँवरी, भ्रमरी २ लार ३ एकत्र, इकट्ठा ४ संहार ५ टपका-टपका कर ६ मधुमक्खियां ७ सहित ८ मसल कर ९ निचोड़-निचोड़ १० शहद

सासता उपजे हैं। सो ऐसा सहत पंचामृत कैसे हुवा ? पणि आपणा लोभ के अर्थि ए जीव कांई-कांई अनर्थ न करै ? अर कांई-कांई अखादि[1] वस्तु न खाय ? तातै ए सहत मांस सादृश्य है। मद (मधु), मांस, सहत एक-सा है। सो याका खावा तो दूरि ही रह्यो, ओषधि मात्र भी याका स्पर्श करना उचित नाहीं। जैसे मदिरा, मांस की ओषधि उचित नाहीं, तैसे जानना। याको ओषधि मात्र भी ग्रहण किया दीर्घकाल का संच्या पुन्य नास नै प्राप्त होय है।

कांजी भक्षण के दोष

आगे कांजी का दोष कहिये हैं। छाछिकी मर्यादा विलोयां पाछै आथण(अस्तवन, सूर्यास्त)ताईं की है। पाछै रह्या पाछैं अनेक त्रस जीव उपजे हैं। ज्यौं-ज्यौं घणा काल ताईं रहै त्यौं-त्यौं त्रस जीव उपजै हैं, जैसे रात्रि वसा का अणछाण्या जल अभक्ष्य है। सो एक तौ या दोष और छाछि विषैं राई पडै है। राई का निमित्त करि ततकाल छाछि विषैं त्रस जीवां की उत्पत्ति होय है। ताही वास्ते छाछि राई का रायता अभक्ष्य है। एक या दोष अर छाछि विषैं भुजिया पडै हैं सो विदल है। काची छाछि, दुफाडा, नाज, मुख की लाल तीनों का संयोग भये मुख विषैं ततकाल बहुत त्रस जीव उपजै हैं सो एक विदुल का दोष। बहुरि छाछि विषैं मोकला पाणी अर लूण परै है सो इनका निमित्त पाय शीघ्र ही घणा त्रस जीवां की उत्पत्ति होय है। एक या दोष। पाछैं दस-पनरा (१०-१५) दिन ताईं याका जीवां रहे हैं। जैसे धोबी, छीपा नीलगर के कूंडि का जीव रहै, तैसे कांजी

1 अखाद्य, अभक्ष्य

का जीव जानना। ज्यौं-ज्यौं घणा दिन कांजी रहै, त्यौं-त्यौं वाका स्वाद घणा अधिक-अधिक होइ। अज्ञानी जीव इंद्रियाँ का लोलुपी राजी होय खाय, या जाणै नाहीं कै ए स्वाद घणा त्रस जीवा के मांस-कलेवर का है। सो धिक्कार है ऐसा राग भाव कै तांई! ऐसी अखादि वस्तु को आचरै। ऐसा ही दोष डोहा की राब का जानना। या विषैं भी त्रस जीव घणा उपजे हैं।

अचार-मुरब्बा के दोष

आगै अथाणा-संधाणा, न्यौंजी (लौंजी) का दोष कहिये हैं। सो लूण, घृत, तेल का निमित्त पाय नीबू, कैरी आदि का अथाणा विषैं दोय-च्यारि वर्ष पर्यंत सरदी मिटै नाहीं। सो लूण, घृत, तेल का निमित्त पाय अनेक त्रस जीवां की रासि उत्पन्न होय है, वाही विषैं मरै है। ऐसा जन्म-मरण जहां ताईं वाकी स्थिति रहै, तहां ताईं होबो करै। ऐसे ही न्योजी (लौंजी), संधाणा (अचार), मुरबा (मुरब्बा) विषैं जीवां की रासि का समूह जानना। सो नष्ट भई है बुद्धि अर नष्ट भया है आचार जाका-ऐसा दोषीक जान अवश्य तजना योग्य है। अर सर्वथा नहीं रह्या जाय तो आठ पहर को खानो निर्दोष है। अथवा सूकी (सूखी) आवली वा आवला (आमला) की न्योंजी बनाय ल्यो। वृथा ही आपनै संसार-समुद्र मैं मति डोवो।

जलेबी के दोष

आगै जलेबी का दोष कहै है। प्रथम तो रात्रि विषैं मैदा मैं खटाइये है। सो खटायवा का निमित्त प्रत्यक्ष नजर

आवै। ऐसा हजारां, लाखां, लटां का समूह उपजै है। वीं खटाया मैंदा नै मही का कपडा विषै अंधर–अधर लें जल ऊपरि कूढि-कूढि छाणिये। सो मैदा तौ पाणी को साथि छणि जाय, लटां का समूह कपडा ऊपरि रहि जाय। ऐसो लटां सहित मैदानै स्वाद कै अर्थि घृत का कढाह मैं तलिये। पाछें खांड की चासणी लगाय रात्रि नै वा दिन नै अघोरी हुवा थका निर्दयी हुवा भोजन करै। सो ये भोजन कैसा अर ई का पाप कैसा सो हम न जाणैं, सर्वज्ञ जानैं है।

एक थाली में एक साथ जीमन के दोष

आगै भेला (एक साथ) जीमैं वाका (उसका) दोष कहिये। सो जगत विषैं औठि (जूठी) ऐसी निंद्य है। सो मण-दो मण मिठाई की छावडी, (टोकरी) ता माँही सूं एक-एक कण को उठाय मुख मैं दीजै तो वा मिठाई नै कोई भीटैं (उच्छिष्ट, जूठी) नहीं अर या कहै इह तो औंठि होय गई सो तजने योग्य है। अर यह मूढ श्रावक ऐसा पांच-सात जणा एकै कांसा मैं भेले बैठि भोजन-प्रसाद करै सो मुख माँहि सूं सारा की औठि थाली मै परै वा मुख की लार थारी मैं पडै है। अथवा ग्रास की साथि पाँचौं आंगली (अंगुलियाँ) मुख मैं जाय सो मुख विषैं आँगल्या लार सूं लिप्त होय जाय, फेरि वे ही हाथ सूं ग्रास उठाय मुख मैं देहै। ऐसे ही सारा की औठि कांसा विषैं घिलि-मिलि (घुल-मिल) एकूंकार (एकाकार) होय जाय। सो परस्पर सराबे तो वाकी औठि खायवे, वाकी औठि खाय परस्पर सारा हास्य, कौतूहल, अत्यंत स्नेह बधाय वा मनुहारि करि पूर्ण

इंद्री पोषै। ताके पोषने करि काम-विकार तीव्र होय वा मान अत्यंत वधै। सो भेलै जीमवा विषैं ऐसा अनेक तरह पाप उपजै हैं, तातैं सगा भाई, पुत्र, इष्ट मित्र वा धर्मात्मा साधर्मी ताकै भी भेलै जीमना उचित नाहीं।

रजस्वला स्त्री के दोष

आगै रजस्वला स्त्री का दोष कहिये हैं। सामान्य पणैं महीना कै आसि-पासि वाके योनि-संस्थान मांहि सूं ऐसा निंद्य रुधिर-विकार का समूह निकसै है, ताके निमित्त करि मनुष्य, तिर्यंच केई आंधे होय जाय वा आंखि मैं फूला पडि जाय, पापड, मंगोडी लाल होय जाय, इत्यादि वाकी छाया वा देखिवा का वा कपडा स्पर्श करि तीन दिन पर्यंत अनेक औगुण उपजे हैं। याकै रजा[1] समै महा पाप का उदय है, चूहडी समान हैं। याका हाथ की स्पर्शी वस्तु सर्व अलेण[2] है। पीछै चौथे दिन वा केई आचार्य छठे दिन कहै हैं। भावार्थ-छठे दिन वा पांचवे दिन वा चौथे दिन स्नान करि उज्जवल कपडा पहरि भगवान का दर्शन करि पवित्र होय है। मुख्यपणै चौथा स्नान करि भर्तार समीप जाय है। कोई पसू सूद्र समान याकी छोति[3] भिन्न नाहीं गिणै है, तौ वह भी चांडाल सादृश्य है। घणा कहा लिखिये?

गोरस की शुद्धता की क्रिया

आगै दूध, दही, छाछि, घृत की क्रिया लिखिये है। गारडी,[4] उटडी,[5] आदि का दूध तौ अलेण ही है—या

---

१ मासिक धर्म २ अशुध्द ३ छूत, स्पर्शपना ४ भेडनी ५ ऊंटनी

विषैं दोहता-दोहता त्रस जीव उपजै हैं। अर गाय-भैंसि का दूध लेण[1] है। सो छाण्यां पानीसूं दोहने वारे के हाथ धुवाय गाय-भैंसि का आचल धुवांय चोखा[2] मांज्यां चरी-तोला[3] ताकूं जल करि धोय वा विषै धुवाइये, पाछे दूजे वासण मैं कपडा सों छाणिये। पछि दोहा पाछै दोय घडी पहली पी जाइये अथवा दोय घडी पहलां उष्ण करिये। दोय घडी उपरांति काचा रहि जाय, तौ वा विषै नाना प्रकार त्रस जीव उपजै है। तातैं दोय घडी पहली उष्ण करना उचित है। सो प्रथम आंवलि आदि खटाई वा रूपया दूध विषैं डारि जमाइये। वाकी मर्याद आठ पहर की है। आज का जमाया दही कूं कपडा विषै बांधि वाकी मुगोडी तोडि सुकाइये। पीछे और ही वा मुगोडी का जावण दे दूध जमाइये-ऐसा दूध, दही आचरने योग्य है। सूंठ वा और खटाई वा जसद[4] रूपा[5] का भाजन[6] करि जमि जाय है। केई दुराचारी जाट, गूजर आदि अन्य जातिका दूध, दही, छांछ खाइये हैं ते धर्मविषैंवा जगत विषैं महा निंद्य हैं। और ऐसा शुध्द ही कूं बिलोया पीछे लोण्या तो तुरत अग्नि ऊपरि ताता[7] करि ताइये[8]। छांछ आथोन[9] ताईं उठाय दीजे, रात्रि विषै राखिये नाहीं। रात को राखी सवारै अणछाण्या पानी समान है। ऐसे दूध, दही, छांछ, घृत की क्रिया जाननी। अर केई विषय के लोलुपी क्रिया का आसरा लेय गाय, भैंस मोलि ले निज घर विषैं आरंभ बधावै हैं। सो ज्यौं-ज्यौं आरंभ वधै त्यौं-त्यौं हिंसा प्रचुर बधै। चौपदा राखिवा का विशेष पाप है सो कहिये है। सो वह तिर्यंच हरितकाय खाया

---

१ लेने योग्य २ अच्छा ३ गंडी-तपेली ४ जस्ता
५ चांदी ६ बर्तन ७ गर्म ८ तपाइये, पिघालइये ९ शाम

बिना वा अणछाण्या पानी पिया बिना न रहै। अर सूका तिणा अर छाण्या पानी का मिलना कठिन है। अर जो कदाच कठिनपने वाका साधन राखिये तो विशेष आकुलता उपजै। आकुलता है सो कषाय का बीज है। कषाय है सो ही महापाप है। बहुरि कदाचि वाकूं भूखा, तिसाया[1] राखिये, शीत- उष्ण, डंसमशकादि के दुख का जतन न करियैं तो वाके प्राण पीडे जाय। मुखसूं वासूं बोल्या जाय नाहीं। अर याकूं सासती कैसे खबरि रहै ? अर शीत-उष्णादि बाधा के मेटबे का उपाय कठिन। तातें वाके सासती वेदना होय। वाका सहाय न बनै तो पाप राखने वारे को लागै। बहुरि वाके गोबर, मूत्र विषैं विशेष त्रस जीवा को रासि उत्पन्न होय। अर दूध का निमित्त करि सासता रात-दिन चूल्हा बल्या करै। चूल्हा के निमित्त करि छहूँ काय के जीव भस्म होय, लोभ- तृष्णा अत्यंत वधै। तातें ऐसा पाप जानि चौपद कोई प्रकार राखना उचित नाहीं। बहुरि तेल्ही खाने का विशेष पाप है। घणा दिन को कुमल[2] दूध गाय-भैंसि का पेट विषैं रहै है। पीछे वाके प्रसूति होय। अर ता समय वाके आंचल मांहि सूं रक्त सादृश्य निचोय काढिये। वाकूं उष्ण करि जमाइये। ताका आकार और ही तरह का होय जाय। ताकूं देखि गिलानि उपजै। पीछे ऐसी निंद्य वस्तु को आचरिये तौ वाके राग भाव की काई पूछणी ? तातै अवश्य याका आचरण न करना। अर छेलो[3] प्रसूति भया पीछे आठ दिवस का अर गाय का दस दिवस पीछे अर भैंसि का पंद्रह दिन पीछे दुग्ध लेना योग्य है। पहली अभक्ष्य है। अर आधौ दुग्ध वाके बच्चा को छोडिये।

---

१ प्यासा २ अशुध्द, मल सहित ३ बकरी

वस्त्र धुलाने-रंगाने के दोष

आगै कपडा धुवावने का रंगावने का दोष कहिये है। प्रथम तो वा कपडा विषैं मैल के निमित्त करि लीख, जूं आदि अनेक त्रस जीव उपजै हैं। सो वे जीव खोम में वा तेजी के पानी में नासनैं प्राप्त होय। पीछै वे कपडा नै दरियाव विषैं सिला उपरि पछारि-पछारि धोवैं। सो पछारिवा करि मीडकी,[1] माछली पर्यंत अगिणत छोटा वा बडा त्रस जीव कपडा के पुडत में आवै ता कपडा की सगथि सिला ऊपरि पछाड्या जाय। सो पछाडिवा करि जीवा कौ खंड-खंड होय जाय। बहुरि वे तेजी का खारा पानी दरियाव विषैं घणो दूरि फैले वा बहती नदी होय तौ घणी दूरी बहता चल्या जाय। सो जहां पर्यंत तेजी का खार रस पहोचै तहां पर्यंत सर्व जीव मृत्यु कूं प्राप्ति होय। बहुरि कपडा कूं साबन[2] सेतो[3] दरियाव मैं धोवै। सो वैसे ही जहाँ ताईं साबुन का अंस पहुँचे तहां ताई दरियाव का दरियाव प्रासुक होय जाय। जैसे एक पानी के मटका विषै चिमटी भरि लौंग, डोडा, इलायची का नाखिवा करि प्रासुक होय है, तैसे एक-दोय कपडा के धोयवा करि सरव[4] दरियाव का जल प्रासुक होय है। अर केई महंत पाप के धारक सैकडा, हजारां थान छदाम, अधेला के लालच के वास्ते धुवाय बेचैं हैं, तो वाके पाप की वार्ता कौन कहे? तातैं धर्मात्मा पुरुष धोबी के कपडा धुपायवा तजौ। याका पाप अगिणत है। अर कदाचि पहरिवा का धोया बिना न रहै जाय तौ गाढा कातिना सूं दरियाव वारै कुंडी टुकडा मटका विषै पानी छाणि ओवाणि

---

१ मेंढकी २ साबुन ३ एक तरह का बर्तन ४ सभी

पहोचायां पाछै दरियाव वा कुवा में विलोकि कपडा की जूं, लीख सोधि करि धोइये ।

भावार्थ– मैला कपडा नै डील[1] सूं उतारयां पाछैं दस-पंद्रा दिन तौ कपडा नै राखिये । पीछै वा विषैं फेरि भी कोई जूं, लीख रही होइ ताकूं नेत्र करि देखिये । अर कोई नजरि आवै ताकूं नेत्र करि देखियै । अर कोई नजरि आवै ताकूं लेय और डील के विशेष मैल का भर्या पुराणा वस्त्र ता विषैं मेलियै, आंगन मैं नाखिये नाहीं । कपडा विषैं बे जूं मैल के निमित्त करि घणा दिन ताई मरै नाहीं है, आयु पूरी हुवा ही मरै है । बहुरि ऐसी जायगा धोइये सो बे पानी दरियाव के वारे सूकि जाय, ता विषै प्रासुक स्थान विषैं जल वहां का वहांई सूकि जाय, वा भूमि विषैं सूकि जाय । अर जे कदाचि वह पानी दरियाव में अपूठा जात तौ अणछाण्यां पाणी सादृश्य ही धोया कहिये । तातैं **विवेक पूर्वक छाणें पानी सूं धोवना उचित है** । बेचिवा का कोई प्रकार धोवना उचित नाहीं ।

वस्त्र रंगाने के दोष

आगै रंगावने का दोष कहिये हैं । नीलगार के छीपा, रंगरेज आदि कै दोय-च्यारी वा पंच रंग पर्यंत रंग के पानी का भाण्डार[2] रहै हैं। पीछे वा विषै कपडा का समूह डबोय मसलि रंगे हैं । सो मसलवा करि सारी कुंडि का जीव मसल्या जाय है । पीछै दरियाव मैं जाय धोवै हैं । फेरि रंगै है, फैरि धोवै है । ऐसे ही पांच–सात बार धोवना–रंगना करै है । सो धोवा विषै वैसे ही रंग का पानी जहां पर्यन्त

१ शरीर २ बर्तन

दरियाव में फैले है, तहां पर्यंत का जीव बारंबार हन्या जाय। तातें ऐसा रंगावने का महापाप जानि सतपुरुषनि कूं रंगावना त्याज्य है।

शहद खाने के दोष

आगे सेत[1] खाने का पाप दिखाइये है। एक बार मध्यान्ह समय चौडे रमना विषै निहार करिये हैं। सो तत-काल ही असंख्यात सन्मूर्छन मनुष्य और असंख्यात त्रस जीव सूक्ष्म अवगाहना के धारक जीव उत्पन्न होय हैं। पीछै दो-च्यारि पहर के आंतरे निजरया[2] आवै हैं। ऐसा लटादिक के समूह जेता वह मल होय, तेता ही जीवा का रासि उत्पन्न होता आंख्या देखिये हैं। तो जहां सासती गूढ सरदी रहै अर ऊपरा-ऊपर दस-बीस पुरुष-स्त्री मल-मूत्र क्षेपै वा सीलाउन्हा पानी कूढै सो ऐसे अशुचि स्थान विषैं जीव की उत्पत्ति का कहा कहना अर हिंसा का दोष को कहा पूछनी अर वाके पाप का कहा पूछनां? तातें ऐसा महन्त पाप जानि सुपना मात्र भी सेत खाना (खाया) जाना उचित नाहीं।

पंच स्थावर जीव के प्रमाण

आगे निगोद आदि पच स्थावरा के जीवां का प्रमाण दिखाइये है। एक खाना[3] की माटी की डली बिचि असंख्यात पृथ्वीकाय के जीव पाइये हैं। सो तिजारा का दाणा के दाणा के मानि देह धरै तो जम्बूद्वीप में मावे नाहीं वा

1 शहद 2 नजर 3 खान, खदान

संख्यात, असंख्यात द्वीप-समुद्रा में मावे नाहीं। एता ही एक पानी की बून्द मैं वा अग्नि का तिनगा[1] मैं वा तुच्छ पवन मैं वा प्रत्येक वनस्पति का सुई का अग्र भाग मात्र। गाजर कांदा[2], मूला, सकरकन्द, आदा[3], जुवारा, कूंपल[4] आदि वनस्पति विषैं तासूं अनन्त गुणां जीव पाइये। सो ऐसा जाणि पांच थावरा की भी विशेषपणैं दया पालनी। बिना प्रयोजन थावर भी नहीं विरोधना। अर त्रस सर्व प्रकार नहीं विरोधना। थावर की हिंसा बिच त्रस की हिंसा का बडा दोष है। सो भी आरम्भ की हिंसा बिच निरपराध जीव हतन (हनन) का तीव्र पाप है।

द्वाति के दोष

आगै दुवाति (दवात) के दोष कूं दिखाइये हैं। सो दुवाति विषें दो-च्यारि बरस पर्यंत जीव रहे हैं। ता विषैं असंख्यात त्रस जीव अनन्त निगोद रासि सासता उपजै है। सो ए लीलगर के कुण्डि होय है, ताके हजार, पचासवें भाग समान ए छोटी कुण्डि है सो या विषै जीव की हिंसा विशेष होय है। तातैं उष्ण पाणी सूं स्याही गालि वामें का पाणी जो प्रभात करि राखिये, पीछैं आथण नैं वै का पानी सुकाय दीजे, प्रभाति फेरि भिजोइये। ऐसे ही नित्य स्याही करि लेना-ए सदा प्रासुक है। यामैं कोई प्रकार दोष नाहीं। थोडा प्रमाद छोडिवा करि अपरम्पार नफा होय है।

---

१ तिनका, चिन्गारी २ प्याज ३ अदरक ४ कोंपल

धर्मात्मा पुरुष के रहने का क्षेत्र

आगे धर्मात्मा पुरुष के वसने का क्षेत्र कहिये है। जहां न्यायवान जैनी राजा होय, नाज-वलीता सोध्या होय, पानी छाण्या होय, विकलत्रय जीव थोडा होय, घर को वा पैला की फौज का उपद्रव न होय, सहर दोल्यू[1] गढ होय, जिन मन्दिर होय, साधर्मी होय, कोई जीव की हिंसा न होय, बालक राजा न होय, अनबैसि[2] बुद्धि का धारक राजा न होय, औरा की बुद्धि के अनुसार राजा कार्य न करै, राजा विषैं बहु नायक न होय, स्त्री का राज न होय, पंच का स्थाप्या राज न होय, नगर दोल्यू विरानी फौज का घेरा न होय, मिथ्याती लोगां का प्रबल जोर न होय, इत्यादि दुख नै कारण वा पाप नै कारण ऐसै स्थानक तातै दूरि ही तजना योग्य है।

आसादन दोष

आगै जिन मन्दिर विषै अग्यान वा कषाय करि चौरासी आसादन दोष लागै। अर विचक्षण धर्मबुद्धि करि नहीं लागै, ताका स्वरूप कहिये हैं—श्लेष्मा नाखै नाहीं, हास्य कौतूहल करै नाहीं, कलह करै नाहीं, कोई कला--चतुराई सीखे नाहीं, कुरला-उगाल नाखै नाहीं, मल-मूत्र खेपै नाहीं, स्नान करै नाहीं, गाली बोलै नाहीं, केश मुंडावै नाहीं, लोहू कढावै नाहीं, नोह लिवावे नाहीं, गूमडा, पांव आदिक रेचक नाखै नाहीं, नीला-पीला पित नाखै नाहीं, वमन करै नाहीं, भोजन-पान करै नाहीं, औषधि-चूरण खाय नाहीं, पानतांबूल

---

1 आसपास 2 अपरिपक्व

चाबै नाहीं, दांत–मल, आंख–मल, नख–मल, नाक–मल, कान-मल इत्यादि काढै नाहीं, गला का मैल, मस्तक का मैल शरीर का मैल, पगा का मैल उतारै नाहीं; गृहस्थपणा की वार्ता करै नाहीं, माता–पिता, कुटुम्ब, भ्राता, व्याही, व्याहणि आदि लौकिक जनता की सुश्रूषा करै नाहीं, सासू-जिठानी-नणद आदि का पगा लागै नाहीं, धर्मशास्त्र उपरांति लेखक-विद्या करै नाहीं वा वाचै नाहीं, कोई वस्तु का बटवारा करै नाहीं, आँगली चटकावै नाहीं, आलस्य मोडै नाहीं, मूंछा ऊपरि हाथ फेरै नाहीं, भीति का आसिरा ले बैठे नाहीं, गादी-तकिया लगावै नाहीं, पाव पसारि वा पग ऊपरि पग धरि बैठे नाहीं, छाणा थापे नाहीं, कपडा धोवै नाही, दालि दलै नाहीं, सालि आदिक खोटै नाहीं, पापड-मुंगोडो आदि सुकावै नाहीं, गाय-भैंसि आदि तिर्यंच बांधे नाहीं, राजादिक के भय करि भाजि देहुरै[1] जाय नाहीं, वा लुकै[2] नाहीं, रुदन करै नाहीं, राज-चोर-भोजन-देश आदि विकथा करै नाहीं , भाजन–गहणा–शास्त्रादि घडावै नाहीं, सिघरी[3] बालि तापै नाहीं, रूपया-मोहर परखै नाहीं, प्रतिमाजी की प्रतिष्ठा हुवा पाछै प्रतिमाजी के टांकी लगावै नाहीं, प्रतिमाजी के अंग केशर, चन्दन आदि चर्चन करै नाहीं, प्रतिमाजी तले सिंघासन ऊपर वस्त्र विछावै नाहीं। ये भगवान सर्वोत्कृष्ट वीतराग हैं, तातै सरागता के कारण जे सर्व ही वस्तु ताका संसर्ग दूर ही तिष्ठौ। अर-कोई कुबुद्धि आपना मान-बड़ाई का पोखने के अर्थ नाना प्रकार के सरागता के कारण आनि मिलावै है, ताका दोष का कांई पूछनी ? मुनि महाराज के भी तिल–तुष मात्र परिग्रह मना किया तौ भग-

---

१ मन्दिर २ छिपे ३ सिगड़ी, अंगीठी

वान के केसर आदि का संयोग कैसे चाहिये ? कोई यहां प्रश्न करै है—चमर, छत्र, सिंघासन कमल भी मनै किया होता ? ताको कहिये हैं-ये सरागता के कारण नाहीं, प्रभुत्व के कारण हैं। जल करि अभिषेक कराइये है सो स्नानादि विनय का कारण है। याके गंधोदक के लगाये से पाप गले है वा धोया जाय है। अर चंवर, छत्र, सिंहासन अलिप्त रहै हैं। तातैं जो वस्तु विनय नै साधती होय ताका दोष नाहीं, विपर्यय नै कारण ताका दोष गनिये है। तातैं भगवान का स्वरूप निराभरण ही है। पाग बांधै नाहीं, कांच में मुख देखै नाहीं, नक (ख) चटी आदि सूं केश उपाडै नाहीं, घर सूं शस्त्र बांध्या देहुरे आवै नाहीं, पाउडी[१] कै पहिरे मंदिर विषै गमन करै नाहीं, निर्माल्य खावै नाहीं, वा बेचै नाहीं वा मोल ले नाहीं अथवा देहरा का द्रव्य उधार भी लेय नाहीं, चमर आप ऊपर ढुरावे नाहीं, पवन करावे नाहीं वा आप करै नाहीं, तेलादि विलेपन वा मर्दन करै नाहीं वा करावै नाहीं, जाको मानना उचित है ताही को पूजना योग्य है। बहुरि प्रतिमाजी के हजूर बैठिये नाहीं; जो पग दूखवा लागै तो दूर जाय बैठिये। काम-विकार रूप परणावै नाहीं, वा स्त्रियां के रूप-लावण्य विकार भाव करि देखै नाहीं, देहरा को बिछायत, नगारा-निसानादि[२] वस्तु विवाहादिक के अर्थि वरतै नाहीं, देहरा का द्रव्य उधार भी न ले वा पईसा दे मोल न लेय वा आप मन में ऐसा विचार किया, ये वस्तु, ये द्रव्य देव, गुरु, धर्म के अर्थि है। पाछै वह वस्तु द्रव्य-संकल्प किया जो फिरि करि नहीं चहोडै, तो याका अंस मात्र भी विश्वा अपनै घर विषैं रह्या हुआ

---

१ खड़ाऊ, चप्पल २ नगाड़ा, तबला आदि

निरमायल का दोष सादृश्य जानना। निरमायल के ग्रहण का पाप सादृश्य और पाप नाहीं। या पाप अनंत संसार नै करै है। देव, गुरु, शास्त्र नै देखि तत्काल उठि बैठा होय हाथ जोडि नमस्कार करना, स्त्री जन एक साडी वोढि[1] देहरै आवै, ऊपरि उरणी[2] आदिक औढि आवै, पाग बांध्या पूजा न करना, स्नान वा चंदन का तिलक और आभूषणादि श्रृंगार बिना सरागी पुरुष तिन कौं पूजा करनी, त्यागी पुरुष नै अटकाव नाहीं। अर पूजा बिना देहरा की केसरि-चंदन आदि का तिलक करना नाहीं। प्रतिमाजी आगै चढ़ोड्या फूल टाकवा आदि के अर्थि अंगीकार न करना। याका ग्रहण विषै निर्मायल का दोष लागै। देहरा में वाव सरिवा[3] आदि अशुचि क्रिया न करै। गेडी, गेदडी, चौपड, सतरंज, गंजफा आदि कोई प्रकार का ख्याल (खेल) न खेले वा होड नहीं पाडै, देहरा में भांड-क्रिया न करै, रेकारे, तूकारे, कठोर वचन वा तर्क लिया वचन, मर्मछेद वचन, मस्करी, झूठ, विवाद, ईर्ष्या, अदया, मृषा, कोई नै रोकिवो, बांधिवो, लगिवो इत्यादि वचन न बोलै, कुलांट न खाइ, पगां कै दरबडी[4] वा चंपावै नाहीं, हाड, चाम, ऊन, केश आदि मंदिर विषै ले जाय नाहीं, मंदिर विषैं बिना प्रयोजन आम्हो-साम्हो फिरै नाहीं, कपडा[5] हुई स्त्री तीन दिन वा प्रसूति हुई स्त्री डेढ महीना पर्यंत देहरां विषै जाय नाहीं, गुह्य अंग दिखावै नाहीं, खाट आदि बिछावै नाहीं, ज्योतिष-वैद्यक, मन्त्र-यन्त्र करै नाहीं, जल-क्रीडा आदि कोई प्रकार क्रीडा करै नाहीं; लूला-पांगुला, विकल, अधिक अंगी, बावना,[6] अंधा, बहरा, गूंगा, काणा, माजरा, सूद्र वर्ण, संकर वर्ण

---

१ ओढकर २ ओढनी ३ वायु सरना ४ दौड़ ५ रजस्वला ६ बौना

वान के केसर आदि का संयोग कैसे चाहिये ? कोई यहां प्रश्न करै है—चमर, छत्र, सिंघासन कमल भी मनैं किया होता ? ताको कहिये हैं-ये सरागता के कारण नाहीं, प्रभुत्व के कारण हैं। जल करि अभिषेक कराइये है सो स्नानादि विनय का कारण है। याके गंधोदक के लगाये से पाप गले है वा धोया जाय है। अर चंवर, छत्र, सिंहासन अलिप्त रहै हैं। तातैं जो वस्तु विनय नैं साधती होय ताका दोष नाहीं, विपर्यय नैं कारण ताका दोष गनिये है। तातैं भगवान का स्वरूप निराभरण ही है। पाग बाधै नाहीं, कांच में मुख देखै नाहीं, नक (ख) चटी आदि सूं केश उपाडै नाहीं, घर सूं शस्त्र बांध्या देहुरे आवै नाहीं, पाउडी[1] कै पहिरे मंदिर विषै गमन करै नाहीं, निर्माल्य खावै नाहीं, वा बेचै नाहीं वा मोल ले नाहीं अथवा देहरा का द्रव्य उधार भी लेय नाहीं, चमर आप ऊपर ढुरावे नाहीं, पवन करावे नाहीं वा आप करै नाहीं, तेलादि विलेपन वा मर्दन करै नाहीं वा करावै नाहीं, जाको मानना उचित है ताही को पूजना योग्य है। बहुरि प्रतिमाजी के हजूर बैठिये नाहीं; जो पग दूखवा लागै तौ दूर जाय बैठिये। काम-विकार रूप परणावै नाहीं, वा स्त्रियां के रूप-लावण्य विकार भाव करि देखै नाहीं, देहरा की बिछायत, नगारा-निसानादि[2] वस्तु विवाहादिक के अर्थि वरतै नाहीं, देहरा का द्रव्य उधार भी न ले वा पईसा दे मोल न लेय वा आप मन में ऐसा विचार किया, ये वस्तु, ये द्रव्य देव, गुरु, धर्म के अर्थि है। पाछै वह वस्तु द्रव्य-संकल्प किया जो फिरि करि नहीं चहोडै, तौ याका अंस मात्र भी विश्वा अपनैं घर विषैं रह्या हुआ

---

१ खड़ाऊ, चप्पल २ नगाड़ा, तबला आदि

निरमायल का दोष साहश्य जानना। निरमायल के ग्रहण का पाप साहश्य और पाप नाहीं। या पाप अनंत संसार नै करै है। देव, गुरु, शास्त्र नै देखि तत्काल उठि बैठा होय हाथ जोडि नमस्कार करना, स्त्री जन एक साडी ओढि[1] देहरै आवै, ऊपरि उरणी[2] आदिक ओढि आवै, पाग बांध्या पूजा न करना, स्नान वा चंदन का तिलक और आभूषणादि श्रृंगार बिना सरागी पुरुष तिन कौं पूजा करनी, त्यागी पुरुष नै अटकाव नाहीं। अर पूजा बिना देहरा की केसरि-चंदन आदि का तिलक करना नाहीं। प्रतिमाजी आगै चढ़ोड्या फूल टाकवा आदि के अर्थि अंगीकार न करना। याका ग्रहण विषै निर्मायिल का दोष लागै। देहरा में बाव सरिवा[3] आदि अशुचि क्रिया न करै। गेडी, बेदडी, चौपड, सतरंज, गंजफा आदि कोई प्रकार का ख्याल (खेल) न खेले वा होड नहीं पाडै, देहरा में भांड-क्रिया न करै, रेकारे, तूकारे, कठोर वचन वा तर्क लिया वचन, मर्मछेद वचन, मस्करी, झूठ, विवाद, ईर्ष्या, अदया, मृषा, कोई नै रोकिवो, बांधिवो, लगिवो इत्यादि वचन न बोलै, कुलांट न खाइ, पगां कै दरबडी[4] वा चंपावै नाहीं, हाड, चाम, ऊन, केश आदि मंदिर विषै ले जाय नाहीं, मंदिर विषै बिना प्रयोजन आम्हो-साम्हो फिरै नाहीं, कपडा[5] हुई स्त्री तीन दिन वा प्रसूति हुई स्त्री डेढ महीना पर्यंत देहरा विषै जाय नाहीं, गुह्य अंग दिखावै नाहीं, खाट आदि बिछावै नाहीं, ज्योतिष-वैद्यक, मन्त्र-यन्त्र करै नाहीं, जल-क्रीडा आदि कोई प्रकार क्रीडा करै नाहीं; लूला-पांगुला, विकल, अधिक अंगी, बावना,[6] अंधा, बहरा, गूंगा, काणा, माजरा, सूद्र वर्ण, संकर वर्ण

---

१ ओढ़कर २ ओढ़नी ३ वायु सरना ४ दौड़ ५ रजस्वला ६ बौना

पुरुष अस्नान करि उज्जल वस्त्र पहरि भी श्रीजी की पखालादि अभिषेक करि अष्ट द्रव्य सूं पूजन न करै। और अपने घर सूं विनय पूर्वक चोखा द्रव्य ल्याय कपडा पहर्या ही श्रीजी के सनमुख खडा होय आगै धरि पीछे नाना प्रकार की स्तुति-पाठ पढ़ि नमस्कारादि करि उठि जाय-ऐसे द्रव्य-पूजा वा स्तुतिपूजा करै, रात्रि-पूजन न करै। मंदिर सूं अडता[1] च्यार्यौ तरफ गृहस्थी का हवेली, घर न होय, बीच में गली होय सो सर्वत्र मल-मूत्र आदि अशुचि वस्तु रहित पवित्र होय। अणछाण्या जल करि जिन मंदिर का काम करावै नाहीं। और जिनपूजन आदि सर्व धर्मकार्य विषै बहोत त्रसजीवा का घात होय सो सर्व कार्य तजना योग्य है। ऐसे चौरासी आसादन दोष का स्वरूप जानना।

भावार्थ-जिन मंदिर विषैं सर्व सावद्य योग नै लीया ये कार्य होय ते सर्व तजना। और स्थान विषै पाप किया वा उपार्ज्या ताके उपशांति करने कूं जिन मंदिर कारण है अर जिनमंदिर मांहि पाप उपार्ज्या ताके उपशांति करने कूं और कोई समर्थ नाहीं, भुगत्या ही छूटै है। जैसे कोई पुरुष कहीं सूं लड्या ताकी तकसीर तौ राजा पासि माफ करावै है। अर राजा ही सूं लड्या बाकी तकसीर[2] माफ करिवानै ठिकाणा कौन ? वाका फल बंदी रखाना ही है। ऐसा जानि निज हित मानि जिह-तिह प्रकार विनय सूं रहना। विनय गुण है सो धर्म का मूल है। मूल बिना धर्म रूपी वृक्ष के स्वर्ग-मोक्ष रूपी फल कदाचि लागै नाहीं। तीसूं हे भाई! आलस्य छोडि, प्रमाद तजि, खोटा उपदेश का वमन करि

१ भिड़ता हुआ २ अपराध

भगवान की आज्ञा माफिक प्रवर्तो। बणी कहिवा करि
कोई ? ए तो आपणां हित की बात है। जामें आपणा भल
होय सो क्यों न करना ? सो देखो अरहंत देव का उपदेश
तो ऐसा था चौरासी दोष मांहि सूं कोई एक-दोय दोष भं
लागै तो महापाप होय।

मन्दिर-निर्माण का स्वरूप तथा फल

आगै चौथा काल विषैं जिन-मिन्दर करायेअर पांचवा का
विषैं करावै है ताका स्वरूप वा फल वर्णन करिये है। चौथ
काल विषै बड़े धनाढ्य कै ये अभिलाषा होती सो मेरे द्रव्य
बहोत ताकूं धर्म के अर्थि खरचिये। ऐसा विचार करि धर्म
बुद्धि पाक्षिक श्रावक सादृश्य महंत बुद्धि के धारक अनेक
जैन शास्त्रां के पारगामी बडे-बडे राजानि करि माननीय
ऐसा गृहस्थाचार्य हुवे, ता समीप जाय प्रार्थना करै-हे प्रभो
मेरा जिनमंदिर करायवे का मनोरथ है, आपकी आज्ञा होय
तौ मेरा कार्य करूं। पीछै वे धर्मबुद्धि गृहस्थाचार्य रात्रि नै
मंत्र कौ आराध करि सैन[1] करै, पोछैं रात्रि नै सुपना देखै
सो भला शुभ सुपना आया होय तौ या जानै ये कार्य निर्वाण
पहोंचसी[2], अशुभ आया होय तौ या जाने ये कार्य निर्विघ्न
पणें पूर्ण होने का नाही। पीछै वे गृहस्थी फेरि आवै, ताकं
शुभ सुपना आया होय तौ या कहै-विचार्यो सो करो, सिद्धि
होसी। अशुभ आया होय तौ या कहै-थाकै धन है सो तीर्थ
यात्रा आदि औरहू शुभकार्य है ता विषें द्रव्य का संकल्प करं
एता द्रव्य मौनै[3] या कार्य अर्थि खरचनो, पीछै जैसा परि
णाम होय तैसा कार्य विचारै या द्रव्य विषै मेरा ममत्व

१ शयन २ निर्विघ्न सम्पन्न होगा ३ मुझे

नाहीं, ताकूं अलाधा[1] एक जायगा धरै। ऐसा नाहीं कै पर-मान[2] कीया बिना देहुरा कै अर्थि अनुक्रम सूं खरच्या जाय। सो याका प्रमाण कांई ? पहली तो प्रमाण साम्हा होय। ता विषैं बहोत द्रव्य खरचना विचार्या ही, पीछे परिणाम घटि जाय वा पुन्य घटि जाय तौ पूर्व विचार माफिक द्रव्य का खरचना कैसे बने ? अपूठा निर्मायल का दोष लागै। तातैं पूर्ववत् द्रव्य का परिणाम करिले तौ मांहि सूं ही खरच्या करै। पीछै राजा की आज्ञा सूं बडा नगर जहां जैनी लोग घणा बसता होय ताके बीचि आस-पास दूरा गृहस्था का घर छोडि पवित्र ऊँची भूमि का दाम दे राजी दावै मोल लेय, बरजोरी नाहीं लेय। पीछै भला मुहूर्त देखि गृहस्थाचार्य वाकै ऊपरि मन्त्र मांडै। पीछै जंत्र का कोठा विषैं सुपारी, अक्षत आदि द्रव्य धरै। वाके धरने करि ऐसा ग्यान होय, फलाणी जायगा एता हाथ तलै मसाण की राख है, एता हाथ तलै हाड-चाम है। पीछै वाकूं खुदाय राख, हाड, चाम, अशुचि वस्तु ऊपरि काढै। पीछै श्रेष्ठ नक्षत्र, योग्य लग्न देखि नीव विषैं पाषाण धरै। जी दिन सूं नीव लागी, तो दिन सूं करावने हारा गृहस्थी स्त्री सहित ब्रह्मचर्य अंगीकार करै। सो प्रतिष्ठा किया पाछै श्रीजी मंदिर विषैं विराजै, तहाँ पर्यंत प्रतिज्ञा पालै। और छाण्या पाणी सूं काम करावै, चूना की भठी (भट्टी) करावै नाहीं, प्राशुक ही मोल लेय। और कारीगर, मजूरा (मजदूर) सूं काम की घणी ताकीद[3] न करै, वा वाका रोजगार विषै कसर नहीं देय, वाकै सदीव निराकुलता रहै। ऐसा द्रव्य दे मंदिर का काम करावै। म्है तो धर्म-कार्य विचार्या है सो अमोघा काम कराय चोखा

---

[1] अलग [2] प्रमाण [3] निर्देश

काम होय है। मैघी (मँहगी) वस्तु मोलि आई चोखी होय
है। अर कृपणता तजि दुखित-भुखित जीवानै सदीव दान
दे और कारीगर, मजूर (मजदूर) वा चाकर आदि जे
प्राणी जनता ऊपरि कोई प्रकार कषाय नाहीं करै। सदा
प्रसन्न चित्त ही रहै। सारा कूं विशेष हेत जनावै; सौजन्यता
गुण पालै; मन में एक उच्छव वर्तै है। कब जिनमंदिर की
पूर्णता होय? श्रीजी विराजे और जिनवाणी का व्याख्यान
होय। ताके निमित्त करि घना जीवां का कल्याण होय,
जिनधर्म का उद्योत होय; घना जीव ई स्थानक विषै धर्म-
साधन करि स्वर्ग-मोक्ष विषै गमन करै। औरमैं भी संसार
बंधन तोडि मोक्ष जाऊँ। संसार का स्वरूप महा दुःख रूप
है। सो फेरि जिनधर्म के प्रताप करि न पाऊँ। ये वीतराग
देव है सो स्वर्ग-मोक्ष के फल नै शीघ्र दे है। तातैं जिनदेव
की भक्ति परम आनंदकारी है। आत्मिक सुख की प्राप्ति
याही सो होय है। तातैं मैं स्वर्गादिक के लौकिक सुख नै
छोडि अलौकिक सुखा नै वांछू हूँ और म्हारै कोई बात का
प्रयोजन नाहीं। संसारी सुख सो पूरो परो। धर्मात्मा पुरुष
के तो एक मोक्ष ही उपादेय है। मैं हूँ सो एक मोक्ष का
अर्थी हूँ सो याका फल मेरे ये निपजो। धर्मात्मा पुरुष धर्म
का मोक्ष नै चाहै है। मान, बडाई, यश, कीर्ति, नाव (नाम),
गौरव नाहीं चाहै, स्वर्ग–मोक्ष ही चाहै है।

प्रतिमा-निर्माण का स्वरूप

आगे प्रतिमाजी का निर्मापण के अर्थि खानि माय
पाषाण ल्यावै ताका स्वरूप कहिये है। सो वह गृहस्थी महा

उच्छव सूं खानि जावै, खानि की पूजा करै। पीछै खानि कूं नौति आवै अर कारीगरा नै मेल्हि[1] आवै। सो वे कारीगर ब्रह्मचर्य अंगीकार करै, अल्प भोजन ले, उज्जल वस्त्र पहरै, शिल्पशास्त्र का जानपणा विनयसूं टांची करि पाषाण धीरै-धीरै फोरि काढै। पीछै वह गृहस्थी गृहस्थाचार्य सहित वा कुटुंब परिवार युक्त घणा जैनी लोग सहित और गाजा-बाजा बजावता, मंगल गावता, जिनगुण का स्तोत्र पढता महा उच्छव सहित जाय। पीछै फेरि पूजन करि बिना चाम के संयोग महामनोज्ञ सोना-रूपा के काय महा पवित्र मनकूं रंजायमान करने वारा रथ ता विषैं मोकला रुई का महल मेलि पेटि-पाषान कूं धरै। पीछैं पूर्ववत् उच्छव सूं जिनमंदिर ल्यावै। पीछै एकांत, पवित्र स्थानक विषै घणा विनय सहित शिल्पकार शास्त्र अनुसार प्रतिमाजी का निर्मापण करै। ता विषै अनेक प्रकार गुण-दोष लिख्या है। सो सर्व दोषा नै छोडि संपूर्ण गुणां सहित यथाजात स्वरूप की निपुणता दोय-च्यारि वर्ष में होय। एक तरफ तो जिन-मंदिर की पूर्णता होय, एक तरफ प्रतिमाजी अवतार धरै। पीछै घणा गृहस्थ वा आचार्य, पंडित, देश-देश का साधर्मी ताकूं प्रतिष्ठा का मुहूर्त ऊपरि कागद देय, घणा हेत सूं बुलावै। वा संघ को नितप्रति को भोजन, रसोई होय अर सर्व दुखित नै जिमावै। नित और कोई जोव विमुख न रहै, अति महा प्रसन्न रहे। और कुत्ता, बिलाई आदि सर्व तिर्यंच भी सर्व पोष्या जाय, वे भी भूखा न रहै। पीछै भला दिन, भला मुहूर्त विषैं शास्त्र अनुसार प्रतिष्ठा होय, घणो दान बटै, इत्यादि घणो महिमा होय। ऐसा प्रतिष्ठ्या

---

[1] छोड़कर

प्रतिमाजी पूजने योग्य है । बिना प्रतिष्ठा पूजने योग्य नाहीं । अर आने भोले सूं सौ वरष पूजता हुवा होय तौ वह प्रतिमाजी पूज्य है । अंगहीन पूज्य नाहीं; उपांगहीन पूज्य है । अंगहीन होय ताको जाका पानी कदे टूटै नाहीं, तातै जल विषै पधराय देना । याका विशेष स्वरूप जान्या चाहो तौ "प्रतिष्ठापाठ" विषै वा "धर्मसंग्रहश्रावकाचार" आदि और शास्त्रां तै जानि लेना । इहां संक्षेप मात्र स्वरूप दिखाया है । ऐसे धर्म-बुद्धि नै लिया विनय सेती परमार्थ के अर्थि जिनमंदिर बनवाये है वा नाना प्रकार के चमर, छत्र, सिंहासन; कलस आदि उपकरण चढ़ोडै है । सो वह पुरुष थोडा-सा दिनां में त्रिलोक्य पूज्य पद पावै है । वाका मस्तग ऊपरि भी तीन छत्र फिरै अर अनेक चमर ढुलै और इंद्रादिक संसारीक सुख की कहा बात ? ऐसै चौथा काल का भक्त पुरुष जिनमंदिर निर्मापि, ताका स्वरूप वा फल कह्या। अर पंचम काल विषैं बनें ताका स्वरूप कहिये है । मान का आशय नै लिया गौरव सहित महंत पुरूषा नें बूझ्या बिना आपनी इच्छा अनुसारि जिनमंदिर की रचना जिह-तिह स्थान विषैं बनावै हैं । देहरा के अर्थि द्रव्य का संकल्प किया बिना द्रव्य लगावै है वा संकल्प किया द्रव्य नै आपणा गृहस्थपणे के कार्य विषै लगावै है । अथवा नारेल[१] आदि निर्मायल वस्तु भंडार विषै एकठा करिवा का द्रव्य लगावै है वा पंचायती में नावा मांडि[२] वरजोरी गृहस्था कनै पईसा मंगाय लगावै । पीछै भांडे देने के अर्थि मंदिर के तलै मोकली हाटि[३] बनावै वा हाट्या विषै कंदोई, छीपा, दरजी, हटवाण्या पंसारी, गृहस्थी आदि वा विषै राखै है । वा नाज सूं हाट्या भरि

---

१ नारियल २ नाम मांडकर ३ लम्बा-चौड़ा बाजार की दूकानें

देय सो गृहस्थी तौ वहाँ कुशीलादिक सेवै, कंदोई रात्ति-दिन भठी बालै; नाज की हाट्या में जेता नाज का कणिका तेता ही जीव परै है, सो ऐसा पाप जहाँ पर्यंत मंदिर रहै है, तहाँ पर्यंत हुवा करै। वाके भाडे[१] का द्रव्य जिनमंदिर के कार्य विषै लगावै वा पूजा करने वारे कूं दे। बहुरि जिनमंदिर विषैं कुलिंग्या नैं राखि घोरानघोर पाप श्रीजी का अविनय करै। वे वहां ही खाय-पीवै, वहां ही सोवै वा मंत्र-जंत्र, ज्योतिष, वैद्यक कौ आराधे; स्त्री को हासी-मस्करी करै; देहरा की वस्तु मनमानी वरतै वा बेचि खाय, आपकौ पुजावै अर लुगाया देहरै आवै है सो तहां विकथा करि महापाप उपार्जै। प्रतिमाजी कूं तौ पीठ दे, परस्पर पगां लागै और पंडित, जती, जैनी लोगा प्रति नमस्कारादि करावै। और पुरुष जेता आवै. तेता लौकिक बात करे, बारंबार परस्पर शिष्टाचार करै। प्रतिमाजी का वा शास्त्रजी का अविनय होय, ताकी खबरि नाहीं। अर जाजम, नगारा आदि देहरा की निर्मायल वस्तु गृहस्थी आपना विवाहादि कार्य विषैं ले जाय वर्तें। ऐसा विचारै नाहीं यामें निर्मायल का दोष लागै है। इत्यादि जहां पर्यंत मंदिर रहै, तहां पर्यंत मंदिर विषैं अयोग्य कार्य होय। धर्मोपदेश का कार्य अंश मात्र भी नाहीं। श्रेणिक महाराज चेलणा राणी की हास्य करने अर्थि कौतूहल मात्र मुन्या का गला में मृतक सर्प नाख्यो हो! सो नाखते प्रमाण ही सातवें नर्क की आयु-बंध किया। पाछैं मुन्या का शांति भाव करि परिणाम सुलट्या महादरेग[२] उपज्यो सम्यक्त की प्राप्ति भई। श्री वर्द्धमान अंतिम तीर्थंकर के निकट क्षायिक सम्यक्त को पाय तीर्थंकर गोत्र

---

१ किराये २ महान् आदर भाव

कौ बांध्यो, सभा-नायक भया तौ भी कर्मां सौं छुट्या नाहीं, नर्क के ही गया। ऐसा परम धर्मात्मा सूं कर्मां गम न खाई, तौ तीर्थंकर महाराज के प्रतिबिंब का अविनयी तासों गम कैसे खासी ? सो धर्मात्मा पुरुष ऐसा अविधि का कार्य शीघ्र ही छोडो। और कोई विरले सतपुरुष पंचम काल विषैं भी पूर्वै अविधि कही, त्या विना आपणी शक्ति अनुसार महा विनय सहित धर्मार्थी होय जिनमंदिर निर्मापै है। नाना प्रकार के उपकरण चढ़ोवै तौ वह पुरुष स्वर्गादिक के सुखा नै पाय मोक्ष सुख का भोक्ता होई है। बहुरि आन (अन्य) मती राजा जिनधर्म का प्रतिपक्षी त्या का दरबार सूं सायर का च्यौत्रा (चबूतरा) सूं पांच-सात रूपया को महीना जिन-मंदिर के अर्थि वा कनै जाचना करि पूजादिक के अर्थि रोजग्ना बांधै है सो ये महापाप है। श्रीजी के मंदिर द्रव्य अपने परम सेवकां विना इनका द्रव्य लगावना उचित नाहीं। बैरी का पईसा कैसे लगाइये ? तातै धर्म विषैं विवेक पूर्वक कार्य करना।

छह काल का वर्णन

...आगे छह काल का वर्णन करिये है। दश कोडाकोडी सागर प्रमाण अवसर्पिणी काल-एता ही उत्सर्पिणी काल ताका नाम कालचक्र है। एक-एक अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी विषैं छह काल पाइये। प्रथम सुखमासुखमा च्यारि कोडा-कोडी सागर प्रमाण, ता विषैं आयु तीन पल्य, काय तीन कोस। दूसरा सुखमाकाल तीन कोडाकोडी सागर प्रमाण, तामैं आयु दोय पल्य, काय दोय कोस। तीसरा सुखमा-दुखमा दोय कोडाकोडी सागर प्रमाण, ता विषैं आयु एक

पल्य, काय एक कोस । चौथा दुखमासुखमा बियालीस हजार बर्ष घाटि एक कोडाकोडी सागर प्रमाण, ता विषै कोडिपूर्ण आयु, सवा पाँच सै धनुष काय । सो प्रथम चौदमा नाभिराजा कुलकर भये, तहाँ पर्यंत नौ कोडाकोडी सागर ताईं जुगलिया धर्म राह्या, संयम का अभाव अर दश प्रकार के कल्पवृक्ष ता करि दिया भोग ताकी अधिकता । पीछै अंतिम कुलकर आदिनाथ तीर्थंकर भया । ज्या दीक्षा धरी, त्या की साथि च्यारि हजार राजा दीक्षा धरी सो वे मुनि-व्रत के परीषह सहवानै असमर्थ भया । अजोध्या नगर में तौ भरतचक्रवर्ती के भय करि गये नाहीं; वारै ही वन-फल, अनछाण्या पानी भक्षण करने लगे । तब वन की देवी बोली-रे पापी ! कोई नगन मुद्रा धारि थे अभक्ष का भक्षण करौ ज्याहौ सो थाने स देस्यौ; थाकै बूते ई जिनमुद्रा विषै क्षुधादिक परीषह न सही जाय तौ और लिंग धरौ । पाछै वा भ्रष्टी ऐसे ही किया । केई तो जटा बधाई, केई नख बधाया, केई विभूति लगाई, केई जोगी, केई संन्यासी, कन-फडा, एकदंडी, त्रिदंडी, तापसी भये, केईक लंगोट राखी, इत्यादि नाना प्रकार के भेष धरे । पीछै हजार वर्ष गया भगवान नै केवलज्ञान उपज्या सो केतायक तौ सुलटि दीक्षा धरी, केतायक वैसा ही रह्या, केतायक नाना प्रकार के भेष भये । बहुरि भरतचक्रवर्ती दान देना विचार्‌या सो द्रव्य तौ बहोत अर लेने वारे कोई पात्र नाहीं । तब नगर के सर्व लोग बुलाये अर मार्ग विषै हरितकाय उगाई, केई मारग प्रासुक राखे । अर सर्व पुरुषनि कौ आज्ञा दीनी इस्या[1] अप्रासुक मारग आवौ । तब निर्दय है हृदय जाका ते तौ

---

[1] इस

बहुत लोग उस ही हरित काय ऊपरि पग दे दे आये अर दया सलिल करि भीज्या है चित्त जिनका ते उहां ही खड़े रहे, आगे नाहीं आए। तब चक्री कही-इस ही मारग आवो। तब वा कही-म्हें तौ सर्वथा प्रकार हरितकाय को विरोध आवा नाहीं। तब भरतजी उन पुरुषां को दयावान जानि प्रासुक मारग बुलाया अर वानै कही थे ये धन्य हो। सो तुम्हारे दया भाव पाइये है सो अब हम कहै सो तुम करौ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र की तौ तीन तार को कंठसूत्र कहिये जनेऊ कंठ विषै धारो अर पाक्षिक श्रावक के व्रत धारो अर गृहस्थ-कार्य्य की प्रवृत्ति चलावो, अर दान ल्यौ अर दान द्यो, या में कोई प्रकार दोष नाहीं। थे म्हां करि माननीक होस्यौ सो वे वैसे ही करता हुवा सो ही गृहस्थाचार्य कहाये। पीछै ये ब्राह्मण स्थापे। केतायक काल पीछै श्री आदिनाथ भगवान को पूछी-ये कार्य्य मैं उचित किया कि अनुचित किया ? तब भगवान की दिव्यध्वनि विषै ऐसा उपदेश भया-सो थे कार्य्य विरुद्ध किया; आगै शीतलनाथ तीर्थंकर के समय सर्व भिष्ट होसो, आन मती होय जिन-धर्म का विरोधी होसो। पीछै भरत मन के विषै बहुत खेद पाय कोप करि याका निराकरण करता हुवा सो होतव्य के वश करि प्रचुर फैले, व्युच्छित्ति नाहीं भई। फेरि भगवान की दिव्यध्वनि विषै उपदेश हुवा-ये तौ ऐसे ही होणहार है, तू खेद मत करै। ऐसै ब्राह्मण का कुल की उत्पत्ति जाननी। सो ही अब विपर्ज[1] रूप देखिये है। बहुरि अंतिम तीर्थंकर के समय भगवान का मोस्याई[2] भाई ग्यारा अंग के पाठी मसकपूर्ण नाम भया। ताकै महाप्रज्वल कषाय उपजी; तानै

---

१ विपर्यय, विपरीत २ मौसेरा

म्लेच्छ भाषा रची अर म्लेच्छ-तुरका कौ मत चलायो। शास्त्र का नाम कुरान ठहराया। ताका तीस अध्याय का नाम तीस सिपारा ठहराया। ऐसा घोराघोर हिंसामयो धर्म प्ररूप्या। सो काल का दोष करि प्रचुर फैल्या; जैसे प्रलय-काल का पवन करि प्रलयकाल को अग्नि फैले। ऐसे तुरका के मत की उत्पत्ति जाननी।

बहुरि वर्द्धमान स्वामी नैं मुक्ति गया पीछे इकईस हजार वर्ष प्रमाण पंचम काल ता विषै केतायक काल गये, वरष सै अढाई उनमान गया, तब भद्रबाहु स्वामी आचार्य भये। ता समैं केवली, श्रुतकेवली, अवधिज्ञानी की व्युच्छित्ति भई। ता ही समैं एक चंद्रगुप्त राजा उज्जेणी नगरी का हुवा। तानैं सोला स्वप्ना देख्या। ताकौ फल फेरि भद्रबाहु स्वामी तैं पूछ्या। तब वह जुदा-जुदा स्वप्ना का फल कह्या, ताको स्वरूप कहिये है। कल्पवृक्ष की डाली टूटी देखी, ता करि तौ क्षत्री दीक्षा का-भार छांडसी। सूर्य अस्त देखिवा करि द्वादशांग का पाठी कौ अभाव होसी, चंद्रमा छिद्र सहित देखिवा करि जिनधर्म विषै अनेक मत होसी, भगवान की आज्ञा सूं विमुख ? होय घर-घर विषै मनमाना मत स्थापसी, बारह फणां का सर्प देखिवा करि बारह वर्ष का काल पडिसो-एती क्रियातैं भिष्ट होसो। देव-विमान अपूठा जाता देखिवा करि चारणमुनि, कल्पवासी देव, विद्या-धर पंचम काल विषै न आवसी। कमल कूडा विषैं उपज्यो देखिवा करि संयम सहित जिनधर्म वैश्यधरि रहसी, क्षत्री विषै विमुख होसो। नाचता भूत देखिवा करि नीचे देव का मान होसो, जिनधर्म सूं अनुराग मंद होसी; चमकती अग्नि

देखिवा करि जिनधर्म कठै-कठै[1] अल्प, कोई समै घणो घटि जासी, कोई समै अल्प वध जासी, मिथ्यामत नै घणा सेवसी। सूखे सरोवर विषै दक्षिण दिसा की तरफ तुच्छ जल का देखिवा करि धर्म दक्षिण की तरफ रहसी, जहाँ-जहाँ पंच-कल्याणक भये तहाँ-तहाँ धर्म का अभाव होसी। सोना के भाजन में स्वान[2] क्षीर खाता देखिवा करि उत्तम जन की लक्ष्मी नीच जनों के भोगसी। हस्ती ऊपरि कपि[3] चढ्यो देखिवा करि नीच कुल के राजा होसी। क्षत्री कुल के वाकी सेवा करसी। मर्यादा लोप तौ समुद्र देखिवा करि राजा नीति छांडि प्रजा नैं लूटि खासी। तरुण वृषभ[4] रथ के जुया देखिवा करि तरुण अवस्था में धर्म, संयम आदरसी, वृद्धपणो सिथिल होसी। ऊंट ऊपरि राजपुत्र चढ्यो देखिवा करि राजा जिनधर्म छांडि हिंसक मिथ्याती होसी। रत्ना की राशि धूल सूं ढकी देखिवा करि जति[5] परस्पर दोषी होसी। काला हस्ती का समूह लडता देखिवा करि समय-समय वर्षा थोडी होसी, मनमान्या मेघ न बरससी। सोला स्वप्ना का अर्थ अशुभनै सूचता भद्रबाहु स्वामी निमित्त ज्ञान का बल सूं राजा चन्द्रगुप्त नै याका अर्थ यथार्थ कह्या, बा करि राजा भयभीत भया। ऐसे स्वप्ना कौ फल सारा सुन्या प्रसिद्ध जान्यौ। ये ही सोला स्वप्ना चतुर्थकाल के आदि भरत-चक्रवर्ती नै आये थे। सो वह भी याका फल श्री आदिनाथ जी कौ पूछ्या, तब श्री भगवानजी की दिव्यध्वनि विषै ऐसा उपदेश भया। आगै पंचमकाल आवसी, ता विषै हुंडाव-सर्पिणी का दोष करि अनेक तरह का विपर्जै[6] होसी, ता करि या भव विषै वा परभव विषै जीवा नै महादुःख के

---

१ कहीं-कहीं २ कुत्ता ३ बन्दर ४ जवान बैल ५ साधु ६ विपर्यय,विपरीत

कारण होसी। सोला स्वप्ना पंचमकाल में राजा चंद्रगुप्त नै आये अर राजा चंद्रगुप्त दीक्षा धारी। ता विषै बारा (१२) फण का सर्प देखिवा थको बारा वर्ष को काल पडवो जान्यौ। तब चौईस हजार मुन्या कौ सिघाडो[1] छौ, त्यानै बुलाय कही-ई देश विषै बारा बरस कौ काल पडेलौ, ऐसे रहसी सो भ्रष्ट होसी, दक्षिण में जासी ज्या कौ मुनिपद रहसी, ऊठीनै[2] काल कौ अभाव होसी। पीछै ऐसो उपदेश कह्यौ सो त्या में भद्रबाहु स्वामी सहित बारह हजार मुनि तौ दक्षिण दिशा नै विहार कियौ। अवशेष बारह हजार मुनि यहां ही रह्या सो अनुक्रम सूं भ्रष्ट हुवा। पातरा,[3] झोली, पछेवडी[4] राखता हुवा ऐसे बारह बरस पूर्ण भया पीछै सुभिक्षकाल भया। तब भद्रबाहु स्वामी तौ परलोक पधारे और दक्षिण के सर्व मुनि आये, याकी भ्रष्ट अवस्था देखि निन्द्या। तब केतायक तौ प्रायश्चित दंड ले छेदोपस्थापना करि शुद्ध हुवा। अर केतायक प्रमाद के वशीभूत हुवा विषय-कषाय के अनुरागी धर्मसूं शिथिल हुवा। कायरपणानै धारता हुवा अर मन में ऐसा चिंतवन करता हुवा सो यह जिनधर्म का आचरण तौ अति कठिन है, तातैं म्है ऐसे कठिन आचरण आचरवे कौ असमर्थ। तातै अबै सुगम किरिया माफिक प्रवर्तस्या अर काल पूर्ण करिस्या। पीछै ऐसा ही उपाय करता हुवा जिनप्रणीत शास्त्र का लोप करि जामें अपना मतलब सधै, विषय-कषाय पोष्या जाय ती अनुसार नै लिया पैंतालीस शास्त्र पंडिताई का बल करि मनोक्त–कल्पित गूंथे। अर ताका नाक द्वादशांग धर्‍या। ता विषै देव, गुरु, धर्म का स्वरूप अन्यथा लिखा। देव, गुरु के

---

१ संघ २ वहां पर ३ पात्र ४ अंगोछा

परिग्रह ठहराया। धर्म सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र बिना वा सादिक बिषैक लेश वीतराग भाव बिना स्थापित कीन्हे। सो तब तौ तीन पछेवडी, ओघा, मूंपत्ती, पातरा आदि राखे थे; दीक्षादि का अभाव थे। पीछै ज्यों-ज्यों काल हीण आवता गया, त्यों-त्यों बुद्धि विशेष राग भाव नै अनुसरती गई। तीह[1] माफिक द्रव्य, असवारो आदि विशेष परिग्रह राखते भये; मंत्र-यंत्र, ज्योतिष, वैद्यक करि मूर्ख गृहस्थ लोगानै वश करते भये। आपणा विषय-कषायनै पोषते भये; ता विषै भी कषाया के तीव्र वशीभूत भये तथा बीजा मत खरतरा आदि चोरासी मत थापे। पीछै विशेष काल दोष करि ताका मता विषै ही मारवाड देश विषै एक चेला लडि करि ढूंढ्या विषै जाय बैठा। पाछें ऊ ढूंढ्या मत चलाया अर पैंतालीस शास्त्र माँहि सूं बत्तीस शास्त्र राखे। ता विषै प्रतिमाजी का तौ स्थापन है, पूजन का फल विशेष लिख्या है। अकृत्रिम चैत्याले वा प्रतिमाजी तीन लोक विषै असंख्यात हैं। ताका विशेष महिमा, वर्णन लिख्या है। परंतु हिंदू वा मुसलमान उत[2] दिगंबर वा पूर्व श्वेतांबर सो दोष पालने अर्थि प्रतिमाजी का वा जिनमंदिर का वा जिनबिंब पूजन का उत्थापन किया सो कालदोष करि खोटा मत की वृद्धि प्रचुर फैलि गई, शुद्ध धर्म की प्रवृत्ति वरजोरी भी चाल सकै नाहीं सो ही प्रत्यक्ष देखिये है। ऐसे श्वेतांबर मत की उत्पत्ति भई। याको विशेष जान्या चाहो तौ भद्रबाहुचरित्र तै देखि लीज्यो। बहुरि पीछै अवशेष दिगंबर गुरु रहे थे। केतेक काल पर्यंत तौ वा की भी परिपाटी शुद्ध चली आई। पीछै काल दोष के वश करि कोई-कोई भ्रष्ट होने लगे सो वनादिक नै

---

१ उस २ अथवा

छोडि रात्रि समै भय के मारे नगर समीप आय रहते हुए। पीछे वा विषै शुद्ध मुनिराज थे, ते निंदा करते हुए हाय-हाय ! देखो काल का दोष मुनि की सिंघवृत्ति; छी : ! सो स्यालवृत्ति आदरी। सिंघनै वन के विषै काहे का भय ? त्यों मुन्या नै काहे का भय ? स्याल रात्रि के समै नगर के आसरे आइ विश्राम ले, त्यों ही स्यालवत् ये भ्रष्ट मुनि नगर का आसरा लेहैं। प्रभात समै ये तो सामायिक करने बैठिसी अर नगर को लुगांया[1] गोबरी-पानी के अर्थि नगर के बाहरे आवसी सो याकी वैराग्य-संपदानै लूटि ले जासी। तब निर्धन होय नीच गति विषै जाय प्राप्त होसी और या भव के विषै महानिंदा नै पासी। सो नगर के निकट रहने ही करि भ्रष्टता नै प्राप्त हुवा तौ और परिग्रह-धारक कुगुरु की कहा बात ? सो वे गुरु भी ऐसे ही भ्रष्ट होते-होते सर्व भ्रष्ट हुए। अर अनुक्रम तै अधिक भ्रष्ट होते आए सो वे प्रत्यक्ष अबै देखिये ही है। बहुरि ऐसे ही कालदोष करि राजा भी भ्रष्ट हुए अर जिनधर्म का द्रोही होय गये। सो ऐसे सर्व प्रकार धर्म की नास्ति होती जानि जे धर्मात्मा गृहस्थी रहे थे, ते मन कोंविषै विचारते हुए अबै कांई करनो ? केवली, श्रुतकेवली का तौ अभाव ही हुवा अर गृहस्थाचार्य पूर्वे ही भ्रष्ट भये थे, अब राजा अर मुनि सर्व भ्रष्ट भये सो अब धर्म किसके आसरे रहैं ? तीस्यौं आपानै धर्म राखणो। सो अबै श्रीजी की डीला ही पूजन करौ अर डोला ही शास्त्र वांचौ।

---

[1] स्त्रियाँ

चौरासी अछेरा

आगे श्वेतांबर दिगंबर धर्म सूं विरुद्ध चौरासी अछेरा[1] माने है, तिनका निर्देश वा स्वरूप-वर्णन करिये है। केवली के कवलाहार-ऐसा विचार करै नाहीं, संसार विषै क्षुधा उपरांत और तीव्र रोग नाहीं अर तीव्र दुख नाहीं। अर जाके तीव्र दुख पाइये सो परमेश्वर काहे का? संसारी सादृश्य ही हुवो तौ अनंत सुख पावना कैसे संभवै? अर छियालीस दोष, बत्तीस अंतराय रहित निर्दोष आहार कैसे मिले? केवली तो सर्वज्ञ हैं सो केवली नै तौ दोषीक-निर्दोषीक वस्तु सर्व दीसे अर त्रिलोक हिंसादि सर्व दोष मयी भरि रहे हैं। सो ऐसे दोष को जानता-सुनता केवली होय दोषीक आहार कैसे करै? मुनि महाराज सदोष आहार नहीं करै तौ सर्व मुन्या करि सेवनीक त्रिलोक्यनाथ इच्छा बिना सदोष आहार कैसे लेहैं? अर एक आहार लिये पीछे क्षुधा, तृषा, राग, द्वेष, जन्म, जरा, मरण, रोग, सोग भय, विस्मय, निद्रा, खेद, स्वेद, मद, मोह, अर्ति, चिंता ये अठारा[2] दोष उपजै तौ ऐसे अठारा दोष के धारक परमेश्वर आन मती के परमेश्वर सादृश्य होय गये। और यहाँ कोई प्रश्न करै-तेरहा गुणस्थान पर्यंत आहार-अनाहार दोन्यों कह्या है सो कैसे है? ताका उत्तर-यहु आहार है सो छह प्रकार के हैं- (१) कवल, (२) कर्म-वर्गणा, (३) मानसिक, (४) ओज, (५) लेप, (६) नोकर्म, ताके अर्थ लिखिये हैं। सो कवल नाम मुख में ग्रास लेने का है सो बेंद्री तेंद्री, चौइंद्री, असैनी पंचेंद्री ये तो तिर्यंच और मनुष्य के पाइये। अर कर्म-वर्गणान को आहार

---

१ अतिशय २ अठारह

नारकोय के पाइये हैं। अर मानसिक आहार मन में इच्छा भये कंठ मां सूं अमृत श्रवै ता करि तृप्ति होय ताकै कहिये सो च्यारि प्रकार के देव-देवांगना ताके पाइये हैं। अर पंखी गर्भ में सूं बाहिर अंडा धरै है सो केतेक दिन जात थका कवला—आहार विना ही वृद्धि नै प्राप्ति होय है। सो वा विषै वीर्य-रज-धातु पाइये, ताके निमित्त करि शरीर पुष्ट होय है। कोई कहै है—हस्तादिक लगाया वीर्य गलि अंडा गलि जाय है। बहुरि लेप आहार सर्वांग शरीर विषै व्याप्त होय ताको कहिये है। सो एकेंद्री पांचों थावरां के पाइये है; जैसे वृक्ष मृत्तिका, जल को जड सेती खेंचि सर्वांग अपने शरीर सूं परिणमावै है। सो यह च्यारि प्रकार के आहार तौ क्षुधा की निवृंति करने का कारण है। बहुरि नोकर्म-आहार तैं पर्याप्ति पूर्ण करने को कारण है। समै-समै सर्वजीव आकाश मां सूं नोकर्म जाति-वर्गणा का ग्रहण करै छै; पर्याप्ति रूप परिणमावे है।

सो कार्माण का तीन समै अंतराल का छोडि बाके समुद्घात विषै प्रतरकाल जुगल का दो समय पूर्ण कर एक समय विना आयु का एक समय पर्यंत त्रिलोक के सर्व जीव सिद्ध अजोगगुणस्थानवर्ती केवली या विना लेहै। ताकी अपेक्षा तेरहा गुणस्थान पर्यंत आहारक कह्या है सो तो हम भी माने हैं। परन्तु कवलाहार छठा गुणस्थान पर्यंत ही है। ताही तै आहार संज्ञा छठे गुणस्थान विषै ही है। बहुरि कार्माण-आहार आठों कर्मनके ग्रहण करने का है सो ये सर्व जीव सिद्ध अयोगकेवली विना प्रथम गुणस्थान तैं लगाय तेरह गुण स्थान के अंत पर्यंत आयु सहित आठवां आयु बिना सातवां योग विनासै। सातावेदनीय एक कर्म का

ग्रहण करै है । ऐसे षट् प्रकार के आहारका स्वरूप जानना । तातैं केवली के कवलाहार संभवै नाहीं । अर जे पूर्वापर विचार करि रहित हैं ते मानै हैं । और श्वेतांबर मत विषै आहार संज्ञा छठा गुणस्थान पर्यंत ही कही है । मोह का मार्‍या अहंकार मति का पक्ष नै लिये वाका विचार ही करै नाहीं । ये आहार कैसा है ? अर तेरहा गुणस्थान पर्यंत भी कह्या सो आहार कैसा है ? ऐसा विचार उपजै ही नाहीं । सो यह न्याय ही है—अपने औगुण न ढाकने होय तब आप सूं गुणा करि अधिक होय, ताको औगुण पहली थापै; जैसे सर्व अन्य मत्या आपको विषय-भोग सेवना आया तब परमेश्वर के भी लगाय दिया, त्यों ही श्वेतांबर आपनै एक दिन विषै बहु बेर आहार करना आया, तातै केवली के भी आहार स्थाप्या । सो धिक्कार होहु या भाव को ! हे भाई ! अपने मतलब के वास्ते ऐसा निर्दोष परम केवली भगवान ताको दोष लगावे है । ताके पाप की बात को हम नहीं जानै, कैसा पाप उपजे है सो ज्ञानगम्य ही है । बहुरि केवली के रोग, केवली को नीहार, केवली को केवली नमस्कार करै, केवली को उपसर्ग, प्रतिमा के भूषण, अर तीर्थंकर भस्म लपेटे, तीर्थंकर की पहली देसना अहली जाय, महावीर तीर्थंकर देवानंदी ब्राह्मण के घरि औतार लियो, पाछै इंद्रजी वा का गर्भ में सूं काढि त्रिसलादे राणी का गर्भ विषै जाय म्हे ल्याया छे-वाके गर्भ थकी जन्म लियो, आदिनाथ भाई-बहन सुनंदा जुगलिया, सुनंदा बहन को आदिनाथ परणा, केवली को छींक आवै, सुंदकर ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि को गौतमजी साम्हा गया, स्त्री को महाव्रत पलै, स्त्री को मुक्ति, तीर्थंकर नै दीक्षा समय इंद्र

देवलोक तैं श्वेतवस्त्र आणि दे सो मुनि अवस्था में पहरे रहैं, प्रतिमाजी कै लंगोट कंदोरा[1] को चिन्ह, श्री मल्लिनाथ को तीर्थंकर स्त्री-पर्याय माने; जुगल्या के छोटी काय करि देव भरत क्षेत्र में ल्यायें, चौथा काल के आदि तासौ फेरि जुगल्यो धर्म चालसी, जुगल्या सौं हरिवंश चाल्यौ, जति के चौदा उपकरण, मुनिसुव्रत तीर्थंकर के घोडा गणधर हुवा; मुनि श्रावका सौं आहार आप विहरि ल्यावै अर उपासरा[2] में कवाड जुडि भोजन खावे अर दूणो[3] आहार करै, ताका *अर्थ यहु जो कोई साधु आहार विहरि ल्याये होय, आहार किया पाछै अवशेष बाको रह्यो तौ वा आहार कौ तेला आदि घणा उपवास के धारी और कोई साधु होय ताका* पेट में नाखि दीजिये तौ दोष नाहीं, साधु को उदर छै सो रोडी समान छै। भावार्थ—तेला आदि घणा उपवास विषै और साधु को बच्यो भोजन लेनो उचित छै या में उपवास का भंग नाहीं, यह निर्दोषी आहार छै। नौ पानो आहार करै, ताका अर्थ यहु जो जल को विधि नाहीं मिलै तो मूत पीय करि तृषा बुझावे साधु को कैसा स्वाद? अर नौ जाति का विधि का भेद सो घृत, दुग्ध, दही, तेल, मीठा, मद, मांस, सहद एक और अथवा कोई श्रावका नौ पानो आहार पचाया होय सो भी साधु को लेना उचित है, निंदक मार्‌या को पाप नाहीं, जुगल्या मरि नर्क भी जाय, भरतजी ब्राह्मी भगिनी को परणिवा के अर्थि अपने घर में राखी, भरतजी गृहस्थ अवस्था विषै महलां में आभूषण पहर्‌या भावना भावै ते केवलज्ञान उपाज्र्यो, महावीर जन्मकल्याण समै बालक अवस्था विषै ही पग के अंगूठा सूं सुमेरु कंपायमान किया,

---

१ करधनी २ उपाश्रय, धर्मस्थानक ३ दुगना

पंच पांडव एक द्रोपदी स्त्री पंच भरतारी शीलवंती महासती हुई, कुबडा चेला के कांधे गुरु चढ्या अर गुरु ओघा का दंड की चेला का माथा में देता जाय तब चेला खिमा खमाई, तब खिमा के प्रभाव करि चेला को केवलज्ञान उपज्यो, तब चेला सूधा गमन करने लागा, तब गुरु फरमाया काई चेला सूधा गमन करने लगा सौ तूनै केवलज्ञान उपज्या, तब चेला कही–गुरु का प्रसाद। अर जैमाली जाति तो माली सो महावीर तीर्थंकर की बेटी परणया, कपिल नारायण नै केवलज्ञान उपज्यो तब कपिलनारायण नाच्यो, धातकीखंड को ईठे आयो छे, वसुदेव के बहत्तरि हजार स्त्री हुई, मुनि स्पर्शशूद्र कै आहार लेय, अर कोई मांसादिक बेहराया[1] होइ तौ साधु ऐसा विचार करैं जो साधु की वृति तो ये है बेहरावे सो ही लेना, अर लिया पीछै पृथ्वी ऊपरि खेपिये[2] तो बहु जीवनि की हिंसा होइ तातै भक्षण ही करना उचित है, पीछै गुरांन तै खैया का दंड प्रायश्चित ले लेंगे, देवता मनुष्यनि सौ भोग करैं सो सुलसा श्रावकणी कै देव सौं बेटो हुवा, चक्रवर्ती के छह हजार स्त्री हुई, त्रिपृष्ठ नारायण छीपा का कुल विषै उपज्यौ, बाहुबल को सवा पांच सै धनुष उत्तुंग शरीर नहीं माने, क्यों घाटि मानैं, अनार्य देश विषै वर्द्धमान स्वामी विहार-कर्म कियो, चौथे आरे संयमी को यति पूजे, धनदेव को एक कोस मनुष्य के च्यारि कोस बराबर छै, समोसरण माहीं तीर्थंकर केवली नगन नाहीं दीसै, कपडा पहर्‌या दीसै, जति हाथ में डंड[3] राखै, मरुदेवी माता नै हस्ती ऊपरि चढ्या केवलज्ञान उपज्यो। भावार्थ-द्रव्य चारित्र बिना केवलज्ञान उपजै, चांडालादि

---

१ आहार में दिया २ डालिये ३ डंडा (ओघा)

नीच कुली दीक्षा धारै वा मोक्ष जाय, चंद्रमा-सूर्य मूल विमान सहित महावीर स्वामी को वंदिवा आये, पहला स्वर्ग को इंद्र दूजा स्वर्ग को जाय स्वामी होय अर दूजा स्वर्ग का इंद्र पहला स्वर्ग का स्वामी, जुगल्या को शरीर मुवा पीछै पड्यो रहै, जिनेश्वर का मूल शरीर को दाग दे, श्रावक-यति को स्त्री आय मन थिरता करावै तो स्त्री को दोष नाहीं, पुण्य ही उपजै, जति वा श्रावक की विकार-बाधा मिटी, अठारा दोष सहित तीर्थंकर को मानै, तीर्थंकर का शरीर सूं पंच थावर की हिंसा होय, तीर्थंकर की माता चौदह स्वप्ना देखै, स्वर्ग बारह, गंगादेवी सौं भोगभूमिया पंचावन हजार वर्ष पर्यंत भोग भोग्या, अर बहत्तर जुगल प्रलयकाल समै देव उडाय ले जाय, वधता नाहीं ले जाय, चामडा को पानी निर्दोष, घृत, पकवान वा सकरी रसोई, वासी निर्दोष छै, महावीर भगवान का माता-पिता भगवान दीक्षा लिया पहली पर्याय पूरी करि देव गति गये, बाहुबली युगल को रूप, सारा फल खाया दोष नाहीं, जुगल्या परस्पर लरै, कषाय करै, त्रेसठि-शलाका पुरुषां के नीहार मानै, इंद्र चौंसठि जाति के मानै; सौ जाति के नाहीं मानै, जादवा मांस भख्यो, मानुषोत्तर आगै मनुष्य जाइ, कामदेव चौबीस नाहीं मानै, देवता तीर्थंकर का मृतक शरीर का मुख मांहि को दाढ उपाडि स्वर्ग ले जाय पूजै, नाभिराजा मरुदेवी जुगलिया, नवग्रैवेयक का वासी देव अनुदिश पर्यंत जाय; चेलो आहार ल्यायो सर्व गुरु वाका पातरा[1] में थूक्यो, चेले गुरु की औठि[2] जानि खाइ गयो, तातै केवलज्ञान उपज्यो, अर शास्त्र को बांधि

---

[1] पात्र, बर्तन [2] जूठा

बैसने[1] का चौका-पाटा ताके नीचे धरि दे वा शास्त्र की सिराणा[2] दे सोवै अर या कहै यह तौ जड है याका कहा विनय करिये ? और प्रतिमाजी को भी कहै यह भी जड है, याको पूजे वा नमस्कार करिये कहा फल दे ? अर कुदेवादिक के पूजने का अटकाव नाहीं, यह तौ गृहस्थपनै का धर्म है। अर औरा नै तौ कहै धर्म के अर्थि अंस मात्र भी हिंसा कीजे नाहीं, सैकडा स्त्री वा पुरुष चातुर्मासादि नौरत्या विषै गारा[3] खूंदता-खूंदता असंख्यात-अनंत थावर-त्रस जीवां की हिंसा कराय आपनै निकट बुलावै वा आपको नमस्कार करावै, वाचालता अपूठा जाय, आवता पाच-सात कोस साम्हा जाय. इत्यादि धर्म अर्थि नाना प्रकार की हिंसा करे, ताका दोष गिणै नाहीं अर मुख के पाटी[4] राखै, कहै पवनकाय की हिंसा होय है, सो मुख का छिद्र तौ सासता मुद्रित रहै है, अब बोलै भी मुख की आडा सों स्वास निकलता नाहीं, सांस तौ नाक की बोडी सो निकसै है, सो ताकै तौ पाटी दे नाहीं अर मूंढा की लाल[5] सौं असंख्यात जीव उपजे ताका दोष गिनै ही नाहीं, जैसे एक स्त्री अपने लघु पुत्र कौं अपने शरीर को आडा पट दे पुत्र को आंचल चुसावै मुख सो या कहे ये लडका पुरुष है तातैं याका स्पर्श किये कुशील का दोष लागै है अर मैं परम शीलवती हौं तातैं पुरुष नाम मात्र का स्पर्श करना मोनै उचित नाहीं, पीछै खावंद को निद्रा विषै सूतो छोडि वा खावंद की आंख चुराय दाव-घात करि आधी रात्रि के समै वा दिन विषै वा मध्यान्ह समै चाहै जब अपने घोडा के चखादार नीचकुली, कूबडा, महाकुरूप, निर्दयी, तीव्र कषायी

---

1 बैठने 2 सिरहाना 3 कीचड़ 4 पट्टी, मुखवस्त्रिका 5 लार

ऐसे निद्यपुरुष सौं जाय भोग करे अर वह स्त्री कदे[1] जार कनै[2] मोडी-वेगी[3] जाय तब वे जार ऊनै लाठी, मूकी[4] आदि करि मारै तो भी जार सूं विनयवान होय प्रीति ही करै, कामदेव सम निज भर्तार ताको इच्छै नाहीं, तैसै श्वेतांबर कोई प्रकार मुखस्यूं बोलने करि त्रस-स्थावर के रक्षक परम दिगंबर जोगीस्वर वनोपवासी, संसार-देह-भोग सूं उदासीन, परम वीतरागी, शुद्धोपयोगी, तारण-तरण, शान्तिमूर्ति, इन्द्रादिक देवनि करि पूज्य मोक्षगामी ताका दर्शन किये ही ज्ञान-वैराग्य की प्राप्ति होय, आपा पर का जानपना होय, ऐसे निर्विकार निर्ग्रंथगुरु भी खुले मुख उपदेश काहे कौ देते ? सो तौ वाके मुख कं कोई प्रकार हस्तादिक करि भी आछादित देखिये नाहीं, सो जा बात में कोई प्रकार हिंसा नाहीं ताका तौ ऐसा यत्न करै अर सीली दोय-च्यारि दिन की वा सूद्र के घर का अणछान्या पानी खाल के स्पर्श जल, मदिरा, मांस के संयोग सहित ऐसे गारे के भाजन ता विषैं रात्रि समै पचाई रसोई दीन पुरुष की नाईं जाचि सूद्र के घर की ले आवै, वे जैनधर्म के द्रोही सो जैनधर्म की आज्ञा करि रहित भिक्षुक वत अनादर सूं आहार दे सौ ऐसा भोजन के रागी ताका भक्षण करते अंस मात्र भी दरेग[5] मानै नाहीं, कैसा है भोजन ? त्रसजीवां की रासि है, बहुरि ऐसे ही त्रसजीवां की रासि कंदोई की वस्तु, अथाणा, संधाणा, नौजो, कांजी आदि महा अभक्ष का आचरन करै है, ताकी हिंसा में दोष गिणै नाहीं अर वाको प्रासुक कहै है सो यह प्रासुक कैसे ? जो प्रासुक होना तो गृहस्थी याका त्याग काहे को करते ? सो

---

१ कभी २ प्रेमी पर पुरुष के पास ३ देर-सबेर ४ मुक्का, घूंसा ५ दोष, अपराध

रागी पुरुषा की विडंबना कहा लग। कहिये। बहुरि चित्राम की पुतली का नखै[1] रहने का दोष गिनै अर सैकडा स्त्री ताकी सिखावे-पढावै, उपदेश देवा के संसर्ग रहै वाका लालन-पालन करै अर वाकी नाडी देखै, नाडी देखिवा के मिस हो वाका स्पर्श करै वा औषधि, ज्योतिष, वैद्य करि मनोरथ सिद्धि करै, बहुत द्रव्य का संग्रह करै ता करि मनमान्या विषय-पोषै, स्त्री का सेवन करै वाको गर्भ रह्या होय तौ वाको औषधि दे गर्भ का निपात करै अर कहै म्है अति छा, म्है साधु छा, म्हानै पूजो, सो ऐसे साधता भया समर्थ कैसे होय ? पत्थर की नाव समुद्र विषै आप हो डूबे नौ औरानै कैसे तारै ? बहुरि स्त्री का भला मनावा के वास्ते वाको कपडा सहित गृहस्थपना से ही मोक्ष बतावे अर या भी कहे वज्रवृषभनाराच संहनन विना मोक्ष नाहीं, अर कर्मभूमि स्त्री के अंत का संहनन है तौ स्त्री मोक्ष कैसे जाय ? सो ताके शास्त्र में पूर्वापर दोष तो ऐसा, शास्त्र प्रमाणिक कैसे ? अर प्रमाणिक विना सर्वज्ञ का वचन कैसे ? तातै नेम करि उनमान[1] प्रमाण करि भी यह जाण्या गया ये शास्त्र कल्पित हैं, कषायी पुरुषा अपने मतलब पोषने के अर्थि रच्या है। बहुरि वे कहै हैं-स्त्री को मोक्ष नाहीं तौ नवम गुणस्थान पर्यंत तीनों वेद का उदय कैसे कह्या ? ताका उत्तर यहु जो यह कथन भावां की अपेक्षा है सो भाव तो मोह कर्म का उदय सूं होय हैं अर द्रव्य पुरुष-स्त्री-नपुंसक का चिन्ह नाम-कर्म के उदय तै होय है। सो भाव तीनों वेदवारे नै तौ मोक्ष हम भी मानै हैं; द्रव्य स्त्री-नपुंसक को मोक्ष नाहीं, वाको सामर्थ्य तौ पंचमा गुणस्थान पर्यंत चढ़ने का है; आगे नाहीं

---

१ पास १ अनुमान

ये नेम है। आमैं एक द्रव्यपुरुष का ही मोक्ष है। सो एकेन्द्री आदि असैनी पंचेंद्री पर्यंत अर सन्मूर्छन वा देव, नारकी, जुगल्या याकै तौ जैसा द्रव्यचिन्ह है तैसा ही भाववेद पाइये है अर सैनी, गर्भज, पंचेंद्री मनुष्य वा तिर्यंच याकै द्रव्य माफिक भाववेद होय वा अन्य वेद का भी उदय होय, यह गोम्मट्सारजी विषै कह्या है। जैसे उदाहरण कहिये हैं– द्रव्य तौ पुरुष है अर वाके पुरुष सूं भोग करवा की अभिलाषा वर्तै है ताको तौ भावस्त्रीवेदी, द्रव्य पुरुषवेदी कहिये अर एकै काल पुरुष-स्त्री दोन्या ही सूं भोग करने की अभिलाषा होय ताको भावां नपुंसकवेदी अर द्रव्या पुरुषवेदी कहिये। ऐसे द्रव्या पुरुष भावा तीनो वेदवारे जीव के मोक्ष होय है। ऐसे ही तीनों वेद का उदय द्रव्या स्त्री वा नपुंसक को जानने। ताको पंचमा गुण-स्थान पर्यंत आगै होय नाही, ताको ये मोक्ष मानै हैं, ताका विरूद्धपणा है। बहुरि दिगंबर धर्म विषैं वा श्वेतांबर धर्म विषैं ऐसा कह्या है–आठ समय उत्कृष्ट एक सौ आठ जीव मोक्ष जाय। अडतालीस पुरुषवेदी, बत्तीस स्त्री वेदो; अठाईस नपुंसकवेदी मोक्ष जाय सो यह ऐसे वेद के धारी को अपेक्षा तौ विधि मिलै है अर द्रव्या की अपेक्षा बिधि मिलती नाहीं। पुरुष-स्त्री तौ आधी-आधी देखने मैं आवै हैं। द्रव्या नपुसक लाखां पुरुष-स्त्री में एक भी देखिबा में आवै नाहीं। तातैं तुम्हारा शास्त्र की बात झूठी भई।
बहुरि बाहुबली मुनि को केई ऐसे कहै हैं–बरस किन तार्ग केवलज्ञान दौडो-दौडो फिरिबी कर्‌यो, परंतु बाहुबलीजी कै परिणामा विषैं ऐसा कषाय रह्‌या, यह भूमि भरत की ता ऊपरि हम तिष्ठै हैं सो यह उचित नाहीं। ऐसै मान कषाय करि केवलज्ञान उपज्यौ नाहीं, इत्यादि असंभव

वचन बावला पुरुष की नाईं ताके मत विषै कहे हैं। तो वे अन्य मत तैं कहा घटै हैं ? जिनधर्म की बात ऐसी विपर्यय होय नाहीं। ऐसी बात तौ कहानी मात्र लड़का भी कहै नाहीं। ज्यां पुरुषां कदे सिंघ देख्या नाहीं ताकै भावै विलाव ही सिंघ है, त्यों ही ज्यां पुरुषां वीतरागी पुरुषां का मुख थकी सांचा जिनधर्म कदे सुन्या नाहीं ताकै भावै मिथ्याधर्म ही सत्य छै। तातैं आचार्य कहै हैं—अहो भव्यजी वो ! धर्म को परीक्षा करि ग्रहण करो। संसार विषै खोटे धर्म बहुत हैं, खोटे धर्म का उपदेश देनहारे आचार्य बहुत हैं। सांचा जिनधर्म के कहनहारे वीतरागी पुरुष विरले हैं सो यह न्याय है- आछी वस्तु जगत विषै दुर्लभ है। सो सर्वोत्कृष्ट शुद्ध जिनधर्म है सो दुर्लभ होय ही होय। तातै परीक्षा किया बिना खोटा धर्म का धारक होय है, ताके सरधान करि अनंत संसार विषैं भ्रमण करना परै। यह जीव संसार विषै रुलै है सो एक मिथ्या धर्म के सरधान करि ही रुलै है। ताके रुलने का कारण एक यही है और नाहीं। और कोई कारण माने है सो भ्रम है। तातै धर्म-अधर्म के निर्धार करने की अवश्य बुद्धि चाहिये। घणी कहा कहिये ? ऐसे श्वेतांबरा की उत्पत्ति वा वाका स्वरूप कह्या।

स्त्री-स्वभाव का वर्णन

आगै स्त्री के विना सिखाये हुवै सहज ही यह स्वभाव होय है, ताका स्वरूप विशेष करि कहिये है। मोह की मूर्ति, काम-विकार करि आभूषित, शोक का मंदिर है, वीरजता करि रहित है, कायरता करि सहित है, साहस करि निवृत्ति है, भय करि भयभीत है, माया करि हृदय मैला है,

मिथ्यात अर अज्ञान का घर है, अदया, झूठ, अशुचि अंग, चपल अंग, वाचाल नेत्र, अविवेक, कलह, निश्वास-रुदन, क्रोध, मान, माया, लोभ, कृपणता, हास्य अंग-म्लानता, ममत्व, वा लट, सन्मूर्छन मिनख,[1] आदि त्रस-स्थावर जीवनि की उत्पत्ति की कोथली[2] जोनिस्थान कहै। कोई की आछी वा बुरी बात सुण्या पाछै हृदय विषै राखिवानै असमर्थ है, मिथ्या बात करिवानै प्रवीण है, विकथा के सुणिवा नै अति आसक्त है, भांड विकथा बोलवानै अति आपताप[3] है, घर के षट् कार्य करने विषै अति चतुर है, पूर्वापर विचार करि रहित है, पराधीन है, गाली गीत गावानै बडी वक्ता है, कुदे-वादिक की राति जगावानै, शीत कालादिक विषै परीसह सहिवानै अति सूरवीर है। आरंभ-प्रारंभ करने की सलाह देवा नै बडी चतुर है, धन एक ठौर करिवा नै मक्षिका वा कीडी सादृश्य है। गरव करि सारा गृह चारे कै भार नै धर्‍या है वा भार वहवानै समर्थ है,पुत्र-पुत्री सौं ममत्व करने की बांदरी[4] सादृश्य है, धर्मरतन के कोष वानै बडी लुटेरी है वा धर्मरतन के चोरवानै प्रवीण चोरटी[5]है,नरकादिक नीच कुगति ले जावानै सहकारी है, स्वर्ग-मोक्ष की आगल[6] है, हाव-भाव-कटाक्ष करि पुरुष के मन अर नेत्र बांधने को पासि[7] है अर ब्रह्मा, विष्णु, महेसर, इंद्र-धरणेंद्र, चक्रवर्ती, सिंघ, हस्ती आदि बडा जोधा तिन कौ क्रीडा मात्र वश करने कूं मोहन धूलि डारि वश करै है। बहुरि मन मैं, क्यों ही वचन मैं, क्यों ही काय करि, क्यों ही कोई कौ बुलावै, कही कौ सैन दे, कोई सौ प्रीति जोरै, कोई सौ प्रीति तोरै, छिन

---

१ मनुष्य २ थैली ३ व्याकुल ४ बानरी, बंदरिया ५ चोट्टी ६ अर्गला, बेंडा ७ पाश, फांस

मै मिष्ट बोले, छिन मै गाली देय, छिन में लुभाय करि निकटि आवै, छिन मै उदास होय जाती रहै, इत्यादि माया-चार स्वभाव काम की तीव्रता के वश करि स्वयमेव ऐसा स्वभाव पाइये है। स्त्री कै कारिसा[1] को अग्नि सादृश्य काम दाह की ज्वाला जाननी। पुरुषा कै तृणां की अग्नि सादृश्य काम अग्नि जाननी अर नपुंसक कै पिजावा[2] की अग्नि सादृश्य अग्नि जाननी। बहुरि दान देने को कपिला दासी समान कृपण है। सप्त स्थानक मौन करि रहित है। चिडी वत चकिच-काटि किया बिन दुचित बहुत है। इंद्रायण के फल सादृश्य रूप को धर्या है। बाह्य मनोहर भीतर विष सादृश्य कडुवा, देखने कौ मनोहर, खाये प्राण जाय, त्यों ही स्त्री बाह्य दीसै तो मनोहर अंतर कडवी प्राण हरै ही दृष्टि विषसर्पिणी सादृश्य है। शब्द सुनाय विचक्षण सूरवीर पुरुषानि कौ बिह्वल करने कौ वा कामजुर उपजावने को कारण है। रजस्वला विषै वा प्रसूति होते समै चंडाली सादृश्य है। ऐसे औगुण होते संतै भी मान के पहाड़ ऊपर चढी औरन कूं तृण सादृश्य मानै है। सो आचार्य कहै हैं-धिक्कार होहु या मोह के ताईं जो वस्तु का स्वभाव यथार्थ भासै नाहीं; विप-र्यय रूप ही भासै है। ताही तै अनंत संसार विषै भ्रमै है। मोह के उदै तै ही जिनेंद्रदेव नै छोडि कुदेवादिक नै पूजै है सो मोही जीव कांई अकल्याण को बात नहीं करै ? अर आपनै संसार विषै नांही बोवै ?

स्त्री की शर्म-बेशर्म का वर्णन

आगे स्त्रीन की शर्म का, बेशर्म का स्वरूप कहिये है।

---

[1] कंडे [2] भट्ठ

पाग की सरम होय सो तौ स्वयमेव ही नाहीं अर मूछ की सरम होय है सो मूछ नाहीं। आंख्या की सरम होय सो काली करि नाखी, नाक की सरम होय सो नाक कौ बींधि काढ्यौ अर छाती का गढ़ा-सा होय आडो कांचलो पहरि लीनो अर भुजा का पराक्रम होय सो हाथ विषै चूडी पहरि लीनी अर लखिणान्हा[1] जाणै का भय होय सो मेंहदी करि लाल करि दीन्हे, काछ की सरम होय सो काछ खोलि नाखी अर मन का गढास होय है सो मन मोह अर काम करि विह्वल होय गया अर मुख की सरम होय है सोमुख वस्त्र करि आच्छादित कीना मानूं यह मुख नाहीं आच्छाद्य है, ऐसा भाव जनावै है। सो कामी पूरुष म्हाका मुख नै देखि नर्क विषै मति आवो। अर जांघा की सरम होय है सो घांघरा पहरि लिया, इत्यादि सरम के कारण घणे हो हैं सो कहाँ लगि कहिये। तातै ये स्त्री निःशंक, निर्लज्ज स्वभाव नै धर्‌या है, बाह्य तो ऐसी शर्म दिखावै सो अपना सर्व अंग कपडा करि आच्छादित करै अर भ्रात, पिता-माता, पुत्र, देवर, जेठ आदि कुटुंब का लोग देखता गावै ता विषैं मन-मान्या विषय पोषै। अंतरंग की वासना कारण पाय बाह्य झलके बिना रहै नाहीं। बहुरि कैसो है स्त्री ? काम करि पीडित है मन अर इंद्री जाका। अर नख सो ले अर सिख पर्यंत सप्त कुधातु मयी मूर्तिवंती हैं। भीतर तौ हाड कौ समूह है, ताके ऊपर मांस अर रुधिर भर्‌या है, ऊपरि नसा[2] करि वेढी है, चाम करि लपेटी है, ता ऊपरि केशनि के कुंड हैं, मुख विषै लट सादृश्य हाड़ के दांत हैं। बहुरि आभ्यंतर वाय[3], पित्त, कफ, मल, मूत्र, वीर्य करि पूरित है, उदराग्नि

---

१ लक्षणों, हथेली की रेखाओं २ नसें ३ वात

वा अनेक और रोगनि करि ग्रासित है, जरा-मरण करि भयभीत है, अनेक प्रकार की पराधीनता कौ धर्‌या है।

एती जायगा सन्मूर्छन उपजै है-कांख विषै, कुचा विषै, नाभि तलै, जोनि स्थान विषै वा मल-मूत्र विषै असंख्यात जीव उपजै हैं। बहुरि नोवो दुवार विषैं वा सर्व शरीर विषै त्रस वा निगोद सजीव उपजिवौ ही करै है वा बाह्य तन के मैल विषैं लीख वा जूं वा अनेक उपजै हैं सो नित काढते देखिये ही हैं। अर केई निर्दयी पापमूर्ति वाकौ मारै भी हैं। दया करि रहित है हृदय जाकौ। सो देखो सराग प्रणामा[1] को माहात्म्म ! निकृष्य स्त्री कौ बडे-बडे महत पुरुष उत्कृष्ट निधि जानि सेवैं हैं अर आपनै कृतार्थ मानै हैं, वाका आलिंगन करि जनम सफल मानी हैं। सो आचार्य कहै हैं-धिक्कार होहु मोह कर्म कै तांई वा वेद कर्म के ताई ! अर धिक्कार होहु ऐसी स्त्री को मोक्ष माने है ताकौ। अर सदा ग्लान करि युक्त अत्यंत कायर, शंका सहित है स्वभाव जाका, ऐसी स्त्री कूं मोक्ष कैसै होय ? सोलहा स्वर्ग अर छठा नर्क आगै जाय नाहीं। अंत का तीन ही संहनन उपरांत संहनन होय नाहीं, अर तीन होय है। अर भोगभूमि जुगलिया कै पुरुष वा स्त्री, तिर्यंच वा मनुष्या कै एक आदि का ही संहनन होय। तातै पुरुषार्थ करि रहित हैं तो ताही तै ताकै शुक्लध्यान की सिद्धि नाहीं; अर शुक्लध्यान बिना मुक्ति नाहीं। सो एह निर्दयपणा कह्या। सो सरधान रहित वा सीलरहित स्त्री हैं ताकौ निषेध कह्या है। अर सरधावान सीलवती स्त्री हैं सो

---

१ परिणामों

निंदा करि रहित है। वाका गुण इंद्रादिक देव गावै हैं अर मुनि महाराज वा केवली भगवान भी शास्त्र विषै बडाई करै हैं। अर स्वर्ग-मोक्ष की पात्र है तौ औरां की कहा बात है ? सो ऐसी निंद्य स्त्री भी जिनधर्म के अनुग्रह करि ऐसी महिमा पावै है तो जो पुरुष धर्म साधै है ताकी कहा पूछनी? बहुगुण आगै लघु औगुण का जोर चालै नाहीं-ये सर्व तरह न्याय है। ऐसा स्त्री का स्वरूप वर्णन किया।

दश प्रकार की विद्याओं के सीखने के कारण

आगै दश प्रकार विद्या सीखने का कारण कहिये है। विषै पांच बाह्य के कारण हैं-सिखावने वारे आचार्य, पुस्तक, पढ़ने का स्थानक, भोजन की स्थिरता, ऊपरली टहल करने वाले पहलुवा। अभ्यंतर के पाँच-निरोग शरीर, बुद्धि का क्षयोपशम, विनयवान, वात्सल्यत्व, उद्यमवान, एवं सगुण कारण हैं।

वक्ता के गुण

आगै शास्त्र वांचवा वाला वक्ता का उत्कृष्ट गुण कहै हैं—कुल करि ऊंचा होय, सुंदर शरीर होय, पुण्यवान होय, पंडित होय, अनेक मत के शास्त्रां के पारगामी होय, श्रोता का प्रश्न पहली ही अभिप्राय जानिवानै समर्थ होय, सभा-चतुर होय, प्रश्न सहिवानै समर्थ होय, आप जैन मत का घणा शास्त्रां का वेत्ता होय, उक्ति-युक्ति मिलावणे कौ प्रवीण होय, लोभ करि रहित होय, क्रोध-मान-माया वर्जित होय,

उदारचित्त होय, सम्यक्-दृष्टि होय, संयमी होय, शास्त्रोक्त क्रियावान होय, निःशंकित होय, धर्मानुरागी होय, आन मत का खंडिवानै समर्थ होय, ज्ञान-वैराग्य को लोभ होय, पर दोष का ढाकने वाला होय, अर धर्मात्मा के गुण का प्रकाशने वाला होय, अध्यात्म रस का भोगी होय, विनयवान होय, वात्सल्य अंग सहित होय, दयालु होय, दातार होय, शास्त्र वांचि शुभ का फल नाहीं चाहे, लौकिक बढाई नाहीं चाहे, एक मोक्ष ही चाहै, मोक्ष के ही अर्थि स्व-पर उपदेश देने को बुद्धि होय, जिनधर्म की प्रभावना करने विषै आसक्त-चित्त होय, सज्जन घनो होय, हृदय कोमल होय, दया जल करि भीज्या होय, वचन मिष्ट होय, हित-मित नै लिया वचन होय, शब्द ललित होय, उत्तम पुरुष होय, और शास्त्र वांचते समै वक्ता आंगुली कडकावै[1] नाहीं, आलस मोरै नाहीं, घूमै नाहीं, मंद शब्द बोलै नाहीं, शास्त्र सूं ऊंचा बैठे नाहीं, पांव ऊपरि पांव राखै नाहीं, ऊकडा बैठे नाहीं, गोडा दावरि[2] बैठे नाहीं, घना दीरघ शब्द उचारै नाहीं, अर घणा मंद शब्द भी बोलै नाहीं, भरमायल शब्द बोलै नाहीं, श्रोता का निज मतलब के अर्थि खुसामदी करै नाहीं, जिनवानी के लिखे अर्थ को छिपावै नाहीं। जो एक अक्षर को छिपावै तो महापापी होय, अनंत संसारी होय। जिनवानी के अनुसार विना अपने मतलब पोसने के अर्थि अधिक हीन अर्थ प्रकासै नाहीं।

जा शब्द का अर्थ आपसूं नाहीं उपजै, ताकै अर्थ मान-बड़ाई नै लिया अनर्थ कहै नाहीं, जिनदेव नैन भुलाय देय

---

१ चटकावे २ पैर मोड़ कर

मुख सौं सभा विषै ऐसा कह्या शब्द का अर्थ हमारे ताईं कछु भास्या नाहीं, हमारी बुद्धि की नूनता (न्यूनता) है, विशेष ग्यानी मिलैगा तौ वाकौ पूछि लैंगे, नाहीं मिलैगा तौ जिन-देव देख्या सो प्रमाण है, ऐसा अभिप्राये होय। हमारी बुद्धि तुच्छ है, ताके दोष करि तत्त्व का स्वरुप और सूं और होने में वा साधने में आवे, तौ जिनदेव मो परि क्षमा करौ। मेरा अभिप्राय तौ ऐसा ही है, जिनदेव नै ऐसा ही देख्या है; तातै मैं भी ऐसे ही धारौ हौं अर ऐसे औरां कूं आचरण कराऊं हौं। मेरे मान-बढाई, लोभ-अहंकार का प्रयोजन है नाहीं अर ग्यान की नूनता करि सूक्ष्म अर्थ और सूं और भासता है, तौ मैं कहा करूं ? ताही तै मो आदि गणधरदेव पर्यंत ग्यान की नूनता पाइये है। ताहीं तै अंत का उभै मनयोग, वचनयोग बारवां गुणस्थान पर्यंत कह्या है, सत्यवचन योग केवली के कहै, तातै मूनै भी दोस नाहीं। सो ग्यान तौ एक केवलग्यान सूर्य प्रकाशक है सो ही सर्व प्रकार सत्य है। ताकी महिमा वचन अगोचर है, एक केवलज्ञान ही गम्य है। केवली भगवान बिना और का जानिबा का सामर्थ्य नाहीं। तातै ऐसे केवली भगवान के अर्थि बारंवार मेरा नम-स्कार होहु। वे भगवान मौनै बालक जानि मो ऊपरि खिमा करौ अर मेरे शीघ्र ही केवलग्यान की प्राप्ति करौ। सो मेरे भी निःसंदेह सर्व तत्त्व की जानने की सिद्धि होय; ताही माफिक सुख की प्राप्ति होय।

ग्यान का अर सुख का जोडा है। जेता ग्यान तेता सुख। सो मैं सर्व प्रकार निराकुलता सुख का अर्थी हूं; सुख बिना और सर्व असार है, तातै वे जिनेंद्रदेव मोनै सरणि

होहु। जामण- मरण के दुःख सो रहित कर हूं, संसार-समुद्र सूं पार करहु, आप समान करहु, मेरी तो दया शीघ्र करहु, मैं संसार के दुःख सौं अत्यंत भयभीत भया हूं, तातैं संपूर्ण मोक्ष का सुख कौ देहु। घणी कहा कहिये ? इति वक्ता का स्वरूप-वर्णन।

श्रोता के लक्षण

आगै श्रोता का लक्षण कहियै है। सो श्रोता अनेक प्रकार के हैं, तिनि के दृष्टांत करि कहिये है- (१) माटी, (२)चालणी, (३) छयाली[१] (छेली),(४) बिलाव, (५) सुवा, (६) बक, (७) पाषाण, (८) सर्प, (९) हंस, (१०) भैंसा, (११) फूटा घड़ा, (१२) डंसमसकादिक, (१३) जोक, (१४) गाय, ऐसै ये चौदह दृष्टांत करि या सादृश्य श्रोता का ये लक्षण कहिये है। सो यामें कोई मध्यम हैं अर कोई अधम है। आगै परम उत्कृष्ट श्रोता के लक्षण कहिये हैं–बिनयवान होय, धर्मानुरागी होय, संसार का दुःख सौं भयभीत होय, श्रद्धानी होय, बुद्धिवान होय, उद्यमी होय, मोक्षाभिलाषी होय, तत्वज्ञान-चाहक होय, भेदविज्ञानी होय, परीक्षाप्रधानी होय, हेय-उपादेय करने की बुद्धि होय, ग्यान-वैराग्य को लोभी होय, दयावान होय, खिमावान होय, मायाचार रहित होय, निरवांछिक होय, कृपणता रहित होय, प्रसन्नतावान होय, प्रफुल्लित मुख होय, सौजन्य गुण सहित होय, शीलवान होय, स्व-पर विचार विषै प्रवीण होय, लज्जा-गर्व करि रहित होय, ढीमर[२] बुद्धि न होय, विचक्षण होय, कोमल परिणामी होय, प्रमाद करि रहित होय, सप्त बिसनां का त्यागी होय,

---

१ छेरी, बकरी २ मन्द

सप्त भय करि रहित होय, वात्सल्य अंग करि संयुक्त होय, आठ मद करि रहित होय, षट् अनायतन वा तीन मूढता करि रहित होय, आन धर्म का अरोचक होय, सत्यवादी होय, जिनधर्म का प्रभावना अंग विषै तत्पर होय, गुरादिक का मुख सौं जिन-प्रणीत वचन सुनि एकांत स्थानक विषं बैठि हेय-उपादेय करि वाका स्वभाव होय, गुणग्राही होय, निज औगुण को हैरी होय, बीजबुद्धि-रिद्धि सादृश्य बुद्धि होय, ग्यान का क्षयोपशम विशेष होय, आत्मीक रस का आस्वादी होय, अध्यात्म वार्ता विषैं विशेष प्रवीण होय, निरोगी होय, इंद्री प्रबल होय, आयु वृद्धि होय वा तरुण होय, ऊँच कुल होय, अर किया उपकार नै भूलै नाहीं। जो पर-उपकार नै भूलै सो महापापी होय, या उपरांत और पाप नाहीं। लौकिक कार्य के उपकार कौ सतपुरुष नाहीं भूलै, तौ पर-मार्थ कार्य का उपकार कौ सत्पुरुष कैसे भूलै ? एक अक्षर का उपकार कौ भूलै सो महापापी है, विश्वासघाती-कृतघ्नी कहिये, किया उपकार भूलै सो संसार विषैं तीन महापापी हैं-- स्वामी-द्रोही अर गुरादिक वा आप सूं गुणांकरि अधिक होय। त्या छतां शिष्य दीक्षा-धर्मोपदेश दे नाहीं, जो देय तौ वे शिष्य दंड देने योग्य हैं। बहुरि आप तैं गुणां करि अधिक बडे पुरुष होय, ते उपदेश देय। अर वे गुरु आप सन्मुख न बोलै, तिनके वचन कौ पोषने रूप वचन कहै अर कदाचि गुरा का उपदेश कह्या में कोई तरह का संदेह पडे, ताकौ पोषने रूप वचन कहै। अर विनय सहित प्रसन्न करि ताके उत्तर सुनि निःशल्य होय चुपका होय रहै, बार-बार अगाऊ गुरा कै वचनालाप करै नाहीं। गुरा के अभिप्राय के अनुसार गुरु सन्मुख अवलोकन करै, तब प्रश्न करने रूप वचन बोलै।

ऐसा नाहीं, जो गुरा पहली ही औरां नै उपदेश देने लागि जाय, सो गुरु पहले ही उपदेश का अधिकारी होना-ये तीव्र कषाय का लक्षण है। यामें मान कषाय की मुख्यता है; अंतरंग विषैं ऐसा अभिप्राय वर्तै है सो मैं भी विशेष ग्यानवान हौं। तातैं उत्तम शिष्य होय, ते पहली आपनां औगुन काढै, आपको वार-वार निंदै, विशेष दरेग[1] करै; हाय ! मेरा कांई होसी ? मैं तीव्र पाप सौं कब छूटस्यौ, कब निवृंत्त होस्यो ? तातै आपनै सदीव न्यूनता ही मानै। पीछै कोई मौसर[2] पाय आप जिनधर्म का रोचक होय, तिनका हेत-निमित्त नै लिया उपदेश देय, तौ दोष नाहीं। बहुरि सुंदर तन होय, पुण्यवान होय, कंठ स्पष्ट, वचन मिष्ट होय, आजीविका की आकुलता करि रहित होय, गुरा का चरणकमल विषै भ्रमर समान तल्लीन होय, साधर्मी जनों की संगत होय; साधर्मी ही है कुटुंब जाके। बहुरि नेत्र तीक्षण; कसौटी का पाषाण-दर्पण अग्नि सारिखे अर सिद्धांत रूप रतन के परीक्षा करने का अधिकारी है। बहुरि सुनने की इच्छा, श्रवण, ग्रहण, धारणा, समान, प्रश्न, उत्तर, निहचै ये आठ श्रोतानि के और गुण चाहिये। ऐसे श्रोता शास्त्र विषैं सराहने योग्य कह्या है। सो ही मोक्ष के पात्र हैं, ताकी महिमा इंद्रादिक देव भी करै हैं। अर महिमा करने वारे पुरुष कै पुण्य का संचय होय है अर वाका भी मोह गलै है। गुणवान की अनुमोदना किये वाके भी गुण का लाभ होय है, औगुण वान की अनुमोदना किये वाको औगुण का लाभ होय है। तातै औगुणवान की अनुमोदना न करनी, गुणवान की अनुमोदना करनी। इति श्रोता का गुण संपूर्ण।

---

[1] अपराध [2] अवसर

उनचास का भंग

आगै गुणचास भंग का स्वरूप कहै हैं-मन-वचन-काय, कृत-कारित-अनमोदना या तीन करण अर तीन जोगा के परस्पर पलटनि करि गुणचास भंग उपजै हैं। सो जिस भंग करि सावद्य जोग का त्याग करणा होय अर आखडी आदि व्रत का ग्रहण करना होय सो या गुणचास भंगा करि करिये। ताकौ ब्योरौ-कृत, कारित, अनुमोदना ये तौ तीन भंग प्रत्येक, इक संयोगी जानना। कृत-कारित, कृत-अनुमोदना, कारित-अनुमोदना-ये दुसंयोगी तीन भंग हैं। कृत-कारित-अनुमोदना, ये त्रिसंयोगी भंग हैं। ऐसे ये सात भंग तीन योगा का हुवा। अर सात भंग करने का पूर्वे कह्या सो एक-एक उपरि सात-सात का भंग लगाये गुणचास भंग होय हैं। सो याका विशेष कहिये हैं- कृत-कारित-मन करि, कृत-कारित-वचन करि, कृत-कारित-काय करि, कृत करि मन करि, कृत करि वचन करि, कृत मन-काय करि, कृत वचन-काय करि, कृत मन-वचन-काय करि ये सात तौ कृत तने भंग भये हैं। ऐसे ही और जानने-कारित मन-काय करि, कारित वचन-काय करि, कारित मन-वचन-काय करि, अनुमोदना मन करि, अनुमोदना वचन करि, अनुमोदना काय करि, अनुमोदना मन-वचन-काय करि, अनुमोदना मन-काय करि, अनुमोदना वचन-काय करि, अनुमोदना मन-वचन-काय करि, कृत-कारित मन करि, कृत-कारित वचन करि, कृत-कारित काय करि, कृत-कारित मन-वचन करि, कृत-कारित मन-काय करि कृत-कारित-वचन काय करि, कृत-कारित मन-वचन-काय करि, कृत अनुमोदना मन करि, कृत-अनुमोदना वचन करि, कृत-अनुमोदना काय करि, कृत-अनुमोदना मन-वचन-काय करि, कारित-अनुमोदना मन करि, कारित-अनुमोदना

वचन करि, कारित-अनुमोदना काय करि, कारित-अनुमोदना मन-वचन-काय करि; ऐसे ये गुणचास भंग जानने। सो इक भेणो-इक भेणो के भंग९, इक भेणो-दुभेणो के भंग९, इक भेणो तिभेणो के भंग३, दुभेणो-इक भेणो के भंग९, दुभेणो-दुभेणो के भंग९, दुभेणो-तिभेणो के भंग३, तिभेणो-एक भेणो के भंग३; दुभेणो-दुभेणो के भंग३; दुभेणो तिभेणो के भंग३; ऐसे गुणचास भंग को संज्ञा जाननी। अर तीन काल करि इस ही गुणचास भंगनि को गुणाये, तौ एक सौ सैंतालीस भेद होय। इति भंगा का स्वरूप संपूर्ण।

सोलहकारण भावना

आगे षोडश भावना का स्वरूप लिखिये हैं। दर्शनविशुद्धि कहिये दर्शन नाम सरधा का है। सो सरधान का निश्चै व्यवहार विषै पचीस मल दोष रहित समकित की निर्मलता होय, ताको नाम दर्शनविशुद्धि कहिये। विनय-संपन्नता कहिये देव, गुरु, धर्म का वा आपतैं गुणां करि अधिक जे धर्मात्मा पुरुष ताका विनय करिये। अर 'शीलव्रतेष्वनतिचार'-कहिये-शीलव्रत है, ता विषै अतिचार भी लगावै नाहीं। मुन्या कै तो पांच महाव्रत हैं, अवशेष गुण तेईस तेई शील हैं। अर श्रावक के बारा (बारह) व्रता में पांच अणुव्रत तौ व्रत हैं अर अवशेष सात शील हैं, ऐसा अर्थ जानना। निरंतर ग्यानाभ्यास होय, ताकौ अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग कहिये। धर्मानुराग होय, ताकौ संवेग कहिये। अर अपनो शक्ति अनुसार त्याग करै, ताकी नाम शक्तित: त्याग कहिये। अपनो शक्ति कै अनुसार तप करिये, ताकौ नाम शक्तितः तप कहिये। निःकषाया मरण करिये, ताकौ साधु-

समाधि कहिये । दस प्रकार के संघ का वैयावृत कहिये, चाकरी करिये वा आप सौ गुणां करि अधिक धर्मात्मा पुरुष होय, ताकी भी पगचंपी आदि चाकरी करिये, ताको नाम वैयावृत कहिये । अरहंत देव की भक्ति करियै, ताकौ अरहंत-भक्ति कहिये। आचार्य-भक्ति, करिये, ताकौ आचार्यभक्ति कहिये । उपाध्याय आदि बहुश्रुत कहिये, घणा शास्त्र को जामें ज्ञान होय, ताकी भक्ति करियै, ताकौ बहुश्रुत भक्ति कहिये । जिनवानी समस्त सिद्धांत ग्रन्थ ताकी भक्ति करिये ताकौ प्रवचनभक्ति कहिये । षट् आवश्यक विषै दिन प्रति अंतराय न पारिये, ताकौ आवश्यकपरिहाणि कहिये । अर ज्यां-ज्यां धर्म अंग करि जिनधर्म की प्रभावना होय, ताकौ प्रभावना अंग कहिये । जिनवानी सो विशेष प्रीति होय, ताकौ प्रवचन -वात्सल्य कहिये । ये सोलहकारण भावना तीर्थंकर-प्रकृति बंधने को चौथा गुणास्थान सूं लगाय आठमा गुणस्थान पर्यंत बंधने का कारण है । तातै ऐसा सोला प्रकार के भाव निरंतर राखिये, याका विनय करिये, यासों विशेष प्रीति राखिये, याको बडे उच्छव सूं पूजा करिये वा कराइये, अर्घ उतारिये, याका फल तीर्थंकर पद है । एवं षोडश भावना का सामान्य अर्घ संपूर्ण ।

दशलक्षण धर्म

आगै दशलक्षण धर्म का स्वरूप कहियै है । न क्रोध कहिये, क्रोध का अभाव, ताकौ उत्तमक्षमा कहिये। मान के अभाव भये विनय गुण प्रकटे, ताकौ उत्तममार्दव कहिये । जाके कोमल परिणाम होय, ताकै आर्जव कहिये । झूठ जो असत्य मन वचन, काय की प्रवृत्ति तैं रहित होय, ताकौ सत्य कहिये । पर धन, पर स्त्री,

अन्याय को त्याग वा अति लोभ को त्याग वा आत्मा तैं मंद कषाय करि उज्ज्वल करै सो शौच कहिये। पांच थावर, छठा त्रस की दया पालै, पांच इंद्रिय, छठा मन इनको इनके विषय में न जाने दे सो संयम कहियें बारह प्रकार को तप करै, छह प्रकार को तो बाह्य अनशन, अवमोदर्य, व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, काय-क्लेश, छह तो बाह्य अर छह अभ्यंतर—यह प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान—ऐसे बारह प्रकार का तप करना सो तप कहिये। चौबीस प्रकार के परिग्रह—दश प्रकार का तो बाह्य अर चौदह प्रकार का अभ्यंतर का त्याग, ताकौ त्याग कहिये। किंचित् तिल-तुस मात्र परिग्रह सो रहित, नगन स्वरूप, ताकौ आकिंचन्य कहिये। शील पालना ताकौ ब्रह्मचर्य कहिये। ऐसा सामान्य पणै दशलक्षणीक धर्म का स्वरूप जानना।

रत्नत्रय धर्म

आगै रत्नत्रय धर्म का स्वरूप कहिये है। "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" ऐसा "तत्वार्थसूत्र" विषैं कह्या है। दर्शन नाम सरधान का है। दर्शनोपयोग का नाम यहाँ दर्शन नाहीं है। दर्शन, ज्ञान के अनेक अर्थ हैं। जहां जैसा प्रयोजन होय, तहाँ तैसा अर्थ जानि लेना। सो दर्शन के यहाँ अनेक नाम हैं—सो भावै दर्शन कहो वा प्रतीति कहो वा सरधान कहो व रूचि कहो, इत्यादि जानना। स्वयमेव ऐसै ही है, यो ही है; अन्यथा नाहीं और प्रकार नाहीं—ऐसा सरधान होय, ताको तो सामान्य दर्शन का स्वरूप कहिये। बहुरि सराहिवा योग्य कहो, भावै भला प्रकार कहो, भावै

कार्यकारी कही, भावै सम्यक् प्रकार कही. भावै सत्य कही वा यथार्थ कही। बहुरि यासौ उलटा जाका स्वभाव होय, ताकौ बिसरावा[1] जोग्य कहिये, भावै मिथ्या प्रकार कहिये, भावै अन्यथा कही, भावै अकार्यकारी कही, भावै प्रकार कही, ये सब एकार्थ हैं। तातै सप्त तत्त्व का यथार्थ श्रद्धान होय। तातै निश्चै सम्यग्दर्शन कहिये। याही तै यथार्थ तत्त्वार्थ का सरधान सम्यदर्शन कह्या हैं। अर तत्त्व का अयथार्थ सरधान किये, मिथ्यादर्शन कह्या है। तत्त्व का नाम वस्तु के स्वभाव का है। अर अर्थ नाम पदार्थ का है। सो पदार्थ तौ आधार है अर तत्त्व आधेय है। सो यहां मोक्ष होने का प्रयोजन है। सो मोक्ष का कारण मोक्षमार्ग ज्यौं रत्नत्रय धर्म है। प्रथम धर्म सम्यग्दर्शन, तानै कारण तत्त्वार्थ सरधान है। सो तत्त्व सप्त प्रकार हैं—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष। यामें पाप, पुण्य मिलाये, याही का नाम नव पदार्थ है। सो तत्त्व कही, भावै पदार्थ कही सो सामान्य भेद है, ताकौ तौ सप्त तत्त्व कह्या अर विशेष भेद है, ताकौ नव पदार्थ कह्या। याका मूल आधार जीव- अजीव दोय पदार्थ है। अस्तित्व तौ एक ही प्रकार है। अजीव पंच प्रकार है-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, याही कौ षट्द्रव्य कहिये। काल बिना पंचास्तिकाय कहिये, याही तै सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, षट्द्रव्य, पंचास्तिकाय का स्वरूप विशेष जाण्या[2] चाहिये। सो याका विशेष भेदाभेद कहिये अर याका ग्यान ताकौ विग्यान[3] कहिये, दोन्या का समुदाय भेद कौ भेद-विज्ञान कहिये। याही तै सम्यग्दर्शन होने का भेद-विज्ञान जिनवचन विषै कारण कह्या है। तातै ग्यान की वृद्धि सर्व भव्य जीवा नै करनी

---

[1] भुलाने [2] जानना [3] विशेष ज्ञान

उचित है । तीन मूल कारण जिनवाणी करि कह्या है—जैन सिद्धांत ग्रन्थ ताका मुख्य पहलो अवलोकन करना । जेन सम्यक्चारित्र आदि और उत्तरोत्तर धर्म है—ताकी सि सिद्धांतग्रंथ के अवलोकन तै ही है । तातै वाचना, पृच्छ अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश, ये पांच प्रकार के स्वाध्य निरंतर करना । याका अर्थ 'वाचना' नाम शास्त्र के वांच का है । 'पृच्छना' नाम प्रश्न करने का है । 'अनुप्रेक्षा' ना वार-वार चितवन करने का है ।' 'आम्नाय' नाम काल काल पढने का है, जा काल जो पाठ पढने का होय सो पढै 'धर्मोपदेश' नाम परमार्थ धर्म का उपदेश देने का है ।

सात तत्व

आगै सप्त तत्त्व के आदि तै स्वरूप कहिये । सो चेत लक्षण जीव, जामें चेतनपनो होय, ताकौ जीव कहिये । जा चेतनपनो नाहीं, ताकौ अजीव कहिये । द्रव्यकर्म आवने क कारण चाहिये, ताकौ आस्रव कहिये । सो आस्रव दोय प्रक है—द्रव्यास्रव तौ कर्म की वर्गणा तिनि कौ कहिये अ भावास्रव जो कर्म की शक्ति, अनुभाग ताकौ कहिये । तथ भावास्रव मिथ्यात्व५, अविरिति१२, कषाय२५, योग १ सत्तावन आस्रव भाव कौ कहिये । सो यहां च्यारि जाति के जीव का भाव जानि लेना । बहुरि द्रव्यास्रव, भावास्र का अभाव होना, ताकौ कहिये ।,पूर्वं द्रव्यकर्म बसता कि बंधे थे, तिनका संवर पूर्वक एकदेश निर्जरा का होना, ताक निर्जरा कहिये । बहुरि जीव के रागादिक भाव कौ निमित्त करि कर्म की वर्गणा आत्मा के प्रदेश विषै बंधै, ताकौ बंध कहिये । बहुरि द्रव्यकर्म के उदै का अभाव होना अर सत्त

का भी अभाव है, आत्मा का अनंत चतुष्टय भाव प्रकट होना, ताकौ मोक्ष कहिये। मोक्ष नाम द्रव्यकर्म, भावकर्म सूं मुक्ति होने का वा निर्बन्ध होने का वा निवृत्ति होने का है। सिद्धक्षेत्र कै विषै जाय, तिष्ठने का नाम मोक्ष होना नाहीं है—हुवा तो जीव कर्म सौं रहित हुवा, पीछै ऊर्ध्व गमन निज स्वभाव करि जाय तिष्ठै है। आगै वा ऊपरि धर्मद्रव्य का अभाव है। तातै धर्मद्रव्य कै सहकारी विना आगै गमन करने की सामर्थ्य नाहीं, तातै वहां ही स्थित भये। उस क्षेत्र में अरु और क्षेत्र में भेद नाहीं। वह क्षेत्र ही सुख का स्थानक होय, तो उस क्षेत्र विषै सर्व सिद्धनि की अवगाहना विषै पांचों जाति के थावर, सूक्ष्म-बादर अनंत तिष्ठै हैं। ते तौ महादुःखी, महा अग्यानी, एक अक्षर कै अनंतवे भाग ग्यान के धारक, तीव्र प्रचुर कर्म के उदै सहित सदैव तीन काल पर्यंत सासते तिष्ठै हैं। तातै यह निश्चय करना सो सुख, ग्यान, वीर्य, आत्मा का निज स्वभाव है। सो सर्वकर्म उदै घटतै आत्मा विषै शक्ति उत्पत्ति होय है। सो यह स्वभाव भी जीव का है या भावारूप जीव ही परिणमे है अर द्रव्य परिणमता नाहीं। और द्रव्य तो जीव कौ निमित्त मात्र है। तातै ज्यौ पर-द्रव्य के निमित्त कौ जीव पाय जीव की शक्ति तै उत्पन्न ताकौ औपाधिक या विभाव वा अशुद्ध वा विकल्प वा दुःखरूप भाव कहिये।

सम्यक् दर्शन

जीव का ग्यानानन्द तो असली स्वभाव है अर अज्ञानता, दुःख आदि अशुद्ध भाव हैं; पर द्रव्य के संयोग तै हैं, तातै कार्य के विषै कारण का उपचार करि प्रभाव ही कहिये।

ऐसे सप्त तत्त्व का स्वरूप जानना या विषैं पुण्य-पाप मिलाइये ताको नवपदार्थ कहिये। सामान्य करि कर्म एक प्रकार है। विशेष करि पुण्य-पाप रूप दोय प्रकार है। सो आस्रव भी पुण्य-पाप करि दोय प्रकार है। ऐसै ही बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष विषै भी दो-दो भेद जानना। ऐसैं नव पदार्थ का विशेष स्वरूप जानना। मूलभूत याका षट् द्रव्य है। काल बिना पंचास्तिकाय है। ताका द्रव्य, गुण, पर्याय वा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव वा प्रमाण, नय, निक्षेप, अनुयोग, गुणस्थान, मार्गणा विषै बंधै। उदीर्ण, सत्ता, नाना जीव अपेक्षा वा नाना काल अपेक्षा लगाइये वा त्रेपन भाव गुणस्थान के चढ़ने के उतरने में लगाइये; इत्यादि नाना प्रकार के उत्तरोत्तर तत्त्व का विशेष रूप ज्यौं-ज्यौं घणो-घणा भेद, निमित्त, नाम तथा आधार-आधेय, निश्चय-व्यवहार, हेय-उपादेय, इत्यादि ज्ञान विशेष अवलोकन होय, त्यौं-त्यौं सरधा निर्मल होय। याही तै क्षायिक सम्यक्त्व का घातक नाम पाया, अर केवली, सिद्ध के परम क्षायिक सम्यक्त्व नाम पाया। **तातै सम्यक्त्व को निर्मलता होने कौ ग्यान कारण है, तातै ग्यान ही बधावना;** तीसो सर्व कार्य विषैं ज्ञान गुण ही प्रधान है। यहां कोई ऐसा प्रश्न करै सप्त तत्त्व ही का सरधान करने कौ मोक्षमार्ग कह्या और प्रकार क्यों न कह्या? ताका उत्तर कहिये है— जैसे कोई दीरघ रोगी वा पुरुष कौ रोग की निवृत्ति कै अर्थि कोई सयाना वैद्य वाका चिन्ह देखै, सो प्रथम तौ वा रोगी पुरुष की वय[1] देखै, पीछे रोग का निश्चय करै। पीछै यह रोग कौन कारण तै भयौ सो जानै अर कौन कारण सों रोग मिटै, ताका उपाय विचारै। अर

---

[1] अवस्था, उम्र

यह रोग अनुक्रम सूं कैसे मिटै, ताका उपाय जानै। अर इस रोग सौं कैसे दुखी है, रोग गया पीछे कैसे शुद्ध होयगा? जैसा पूर्व निज स्वभाव जाका था, तैसा ही वाको रोग सूं रहित करि दे–ऐसा सांचा वाका जाननहारा वैद्य होय, ताही सौं रोग जाय, अजान वैद्य सूं रोग कदाचि जाय नाहीं। अजान वैद्य जम समान है, तैसे ही आस्रवादि सप्त तत्त्व का जानपणा सम्भवे है सो ही कहिये है। सो सर्वजीव संपूर्ण सुखी हुवा चाहे है। सो सम्पूर्ण सुख का स्थान मोक्ष है, तातै मोक्ष का ग्यान बिना कैसे बने? बहुरि मोक्ष तौ बंध के अभाव होने का नाम है। पूर्वे बन्ध होय तौ मोक्ष होय,तातै बन्ध का स्वरूप अवश्य जानना। बहुरि बंधने का कारण आस्रव हैं; आस्रव बिना बंध होता नाहीं। तातै आस्रव का स्वरूप जान्या बिना कैसे बने? बहुरि आश्रव का अभाव नै कारण संवर है; संवर बिना आस्रव का निरोध होय नाहीं। तातै संवर कौ अवश्य जानना योग्य है। बहुरि बंध का अभाव निर्जरा बिना होय नाहीं, तातै निर्जरा का स्वरूप जानना। बहुरि या पांच का आधारभूत जीव-पुद्गल द्रव्य हैं; तातै जीव–अजीव का स्वरूप अवश्य जानना। ऐसे सप्त तत्त्व जान्या बिना नेम करि मोक्षमार्ग की सिद्धि कैसे होय? याही तै सूत्रजी विषै "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यक्दर्शनम्" कह्या है। सो यह सर्वत्र ही न्याय है। जा कारन करि उर–झार[1] पड्या होय, तिनसौ विपर्यय उष्णता के निमित्त तै वाय[2] की निवृत्ति होय, ऐसा नाहीं कै सीत के निमित्त करि उत्पन्न भया वाया का रोग, सो फेरि सीत के निमित्त करि वाय मिटै सो मिटै नाहीं, अति तीव्र वधि जाय; त्यौं ही पर द्रव्य सौं

१ हृदय में जलन २ बात रोग

राग-द्वेष करि जीव नामा पदार्थ कर्मा सौं उलझसी । वीत-
राग भाव किये बिना सुलझै नाहीं । अर वीतराग भाव होय,
सो सप्त तत्त्व के यथार्थ स्वरूप जाने तै होय । तातै सप्त
तत्त्व का जानपणा ही निश्चय सम्यक्त्व होने कौ असाधारण,
अद्वितीय, एक ही कारण कह्या । ऐसे सम्यक्दर्शन का स्वरूप
जानना । तातै श्री आचार्य कहै हैं, हित करि वा दया बुद्धि
करि कहै हैं– सर्व जीव ही सम्यक्दर्शन कौ धारौ । सम्यक्-
दर्शन बिना त्रिकाल विषै मोक्ष मिलै नाहीं; चाहौ जैसौ
तपश्चरण करिवो करौ । जो कार्य का जो कारण होय, ताही
कारण तैं कार्य की सिद्धि होय–ये सर्व तरह नेम है । इति
सम्यक्दर्शन वर्णन-स्वरूप सम्पूर्णम् ।

सम्यग्ज्ञान

आगैं सम्यक्ग्यान कौ स्वरूप कहिये हैं । सो ज्ञान ज्ञेय
जानने का नाम है, सो ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी का क्षयो-
पशम तै जानिये है । सम्यक् सहित ज्ञानपणा कौ सम्यज्ञान
कहिये है । मिथ्यात के उदै सहित जानपणे को मिथ्याज्ञान
कहिये । यहां ज्ञान विषै दर्शन कौ गर्भित जानना । सामान्य
करि दोन्यों का समुदाय कौ ग्यान कहिये । सो सप्त तत्त्व
का जानपणा विषैं मोह, भ्रम नाहीं होय, ताकौ सम्यक्ज्ञान
कहिये । और उत्तरोत्तर पदार्थां कौ जथार्थ वा अजथार्थ
जानै, तौ वाके जानपणा तैं सम्यक् नाम वा मिथ्यात्व नाम
पावै नाहीं । तातै सप्त तत्त्व मूल पदार्थ का जानपणा संशय,
विमोह, विभ्रम करि रहित हुवे सम्यग्यान नाम पावै है ।
अर निश्चय विचारिये तौ मूल सप्त तत्त्वा का जान्या विना
उत्तरोत्तर तत्त्वा का स्वरूप जान्या जाय नाहीं । कारण–

विपर्यंय, स्वरूप–विपर्यय करि कसर रहि जाय; जैसे कोई पुरुष सोना नैं सोना कहै, रूपा नै रूपा कहै, खोटा-खरा रुपया की परीक्षा करै हैं; इत्यादि लौकिक विषैं घणा ही पदार्था का स्वरूप जानै हैं। परन्तु कारण–विपर्यय है, मूल कर्ता याका पुद्गल की प्रमाणता का है, ताकौ जानता नहीं। कोई परमेश्वर कौ कर्ता बतावै है, कोई नास्ति बतावै है, कोई पांच तत्त्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश मिलि जीव नाम पदार्थ की उत्पत्ति कहै है, याका प्रमाण वा भिन्न–भिन्न, जुदा-जुदा जाति का बतावै है; तातै कारण–विपर्यय जानना। बहुरि जीव–पुद्गल मिलि मनुष्यादिक अनेक प्रकार समान जाति की पर्याया बणी हैं, ताकौ एक ही वस्तु मानै है सो भेद–विपर्यय है। बहुरि दूरि थकी आकाश धरती सौ लाग्या दीसै, डूंगर छोटा दीसै ज्योतिषी देवां का विमान छोटा दीसै वा चसमा, दूरबीन थकी पदार्थ का स्वरूप छोटा का बड़ा दीसै, इत्यादि स्वरूप–विपर्यय जानना। अर सम्यग्ज्ञान हुआ पदार्थ का स्वरूप जैसा का तैसा जिनदेव देख्या है, तैसे ही सरधान करने में आवै है। तातें उत्तर पदार्थां का स्वरूप जानपणा भी सम्यग्ज्ञानी कौ संशय, विपर्यय, विमोह, विभ्रम रहित है।

बहुरि संशय, विमोह, विभ्रम का स्वरूप कहै हैं-जैसे च्यारि पुरुष सीप के खण्ड का अवलोकन किया, सो एक पुरुष तौ ऐसे कहने लगा– न जाने सीप है कि न जाने रूपा है? ताकौ संशय कहिये। बहुरि एक पुरुष ऐसे कहता भया– यह तो रूपा है, ताकौ विमोह कहिये। बहुरि एक पुरुष ऐसे कहता भया– 'क्यौ छे'[१]? ताको विभ्रम कहिये। बहुरि

---

१ कुछ है

एक पुरुष ऐसा कहता भया–"यह तो सीप का खण्ड है,"
ताको पूर्वं त्रिदोष रहित जो वस्तु का स्वरूप जानना
जैसा था, तैसा ही जानने का धारी कहिये, त्यौं ही सप्त
तत्त्वका जानपणा विषं वा आपा-पर का जानन विषं लगाय
लेना । सो ही कहिये है-"आत्मा कौन है वा पुद्गल कौन है",
ताको संशय कहिये ।बहुरि मैं तौ शरीर हो हौं, ताको विमोह
कहिये । बहुरि "मैं क्यौं छौं" ताको विभ्रम कहिये । बहुरि
मैं चिद्रूप आत्मा हूँ, ताको सम्यग्ज्ञान कहिये । मुख सौं
कहना, ताही माफिक मन के विषै धारण होय, सो मन का
धारण जैसा-जैसा होय, तैसा-तैसा ही ग्यान वाके कहिये ।
ऐसा सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जानना । सम्यग्ज्ञान सम्यक्दर्शन
का सहचारी है । सो सहचारी कहा, साथ ही विचरे, लार
ही लाग्या रहे । वा विना वह नाहीं होय—वाका उदै होता,
वाका भी उदै होय, वाका नाश होय, तौ वाका भी नाश होय,
ताको सहचारी कहिये । सो सम्यक्दर्शन होते सम्यग्ज्ञान
भी होय । सम्यक्दर्शन के नाश होते सम्यग्ज्ञान का भी नाश
होय । सम्यक्दर्शन विना सम्यग्ज्ञान होय नाहीं, सम्यग्ज्ञान
विना सम्यक्दर्शन होय नाहीं; यह दुतरफा नेम है । और
भेद–विज्ञान तौ सम्यदर्शन कौ कारण है । सम्यक्दर्शन
सम्यग्ज्ञान कौ कारण है । ऐसै सम्यग्ज्ञान का स्वरूप यथार्थ
जानना । इति सम्यग्ज्ञान संपूर्ण ।

सम्यक्चारित्र

आगै सम्यक्चारित्र का स्वरूप कहिये है । चारित्र नाम
सावद्य जोग के त्याग का है । सो सम्यग्ज्ञान सहित त्याग
किया, सम्यक्चारित्र नाम पावै है । मिथ्यात्व सहित सावद्य

जोग का त्याग किया, मिथ्याचारित्र नाम पावै है। सो सम्यक्दृष्टि के सरधान में वीतराग भाव है, प्रवृत्ति में किंचित् राग भी है, ताको चारित्रमोह कारण है। अर सरधान के राग भाव कौ दर्शनमोह कारण है। सो सम्यक्दृष्टि के दर्शनमोह गलि गया है, तातै सम्यक्दृष्टि के सरधान की अपेक्षा वीतराग भाव कहिये। सरधान का कषाय मंद है, तातै सम्यक्दृष्टि कौ अल्प कषाय कौ नाहीं गनिये; वीतराग ही कहिये। तातै सम्यक्दृष्टि कौ निर्बंध-निरास्रव कहिये, तौ दोष नाहीं; विवक्षा जानि लेनों। यह कथा एक जायगा शास्त्र विषैं कह्या है। मिथ्यादृष्टि के सरधान में वीतराग भाव नाहीं। वीतराग भाव विना जान्या निर्बंध-निरास्रव नाहीं। निर्बंध-निरास्रव विना सावद्य जोग का त्याग कार्यकारी नाहीं, स्वर्गादिक नै तौ कारण हैं, परंतु मोक्ष नै कारण नाहीं। तातै संसार का ही कारण कहिये। जे-जे भाव संसार का कारण हैं, ते-ते आस्रव हैं; यह देह (आस्रव नै) कार्यकारी है। तातै सम्यक् विना सावद्य जोग का त्याग करै है, सो नरकादिक के भय थको करै है, परंतु अंतरंग विषैं कोई द्रव्य इष्ट लागै है, कोई द्रव्य अनिष्ट लागै है, तातै सरधान विषैं मिथ्याती के राग-द्वेष प्रचुर है। सम्यक्दृष्टि पर द्रव्य नै असार जानि तजै है। यह पर पुरुष न कारण नाहीं, निमित्तभूत है। दुख नै कारण तौ अपने अज्ञानादि भाव हैं, सुख नै कारण अपने ज्ञानादिक भाव हैं— ऐसा जानि सरधान के विषै परद्रव्य का त्यागी हुवा है। तातै याको पर द्रव्य सौ राग नाहीं, जैसे फटकरी-लोद करि कषायला किया, त्यौं वस्त्र कै रंग चढ़ै है। विना कसायला

किया वस्त्र दीर्घकाल पर्यंत रंग के समूह विषैं भी ज्या रहै; तो वाके तौ रंग लागै नाहीं, ऊपर-ऊपर ही रंग दीस्या करै। वस्त्र कौ पानी में धोइये तौ रंग तुरत उतरि जाय, कसायला किया वस्त्र रंगा हुवा ताका रंग कोई प्रकार करि उतरै नाहीं। त्यों ही सम्यक्दृष्टि कै कषाया करि रहित जीव का परिणाम है, ताके दीर्घकाल पर्यंत परिग्रह की भीर[1] भी रहै, तो भी कर्म-मल लागै नाहीं। अर मिथ्यादृष्टि के कषाया करि परिणाम कसायला है, तातैं कर्मा सूं सदीव लिप्त होय है। बहुरि साह, गुमास्ता तथा माता, धाय, बालक कौ एकै साखि[2] लावै, एक-सा लालन-पालन करै, परंतु अंतरंग विषैं राग भावा का विशेष बहुत है। त्यौं ही सम्यक्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि कै रागभावा का अल्प-बहुत्व विशेष जानना। तातैं वीतराग भाव सहित सावद्य जोग का त्याग कौ ही सम्यक्-चारित्र कह्या। वीतराग भाव सहित सावद्य जोग का त्याग कौ ही सम्यक्चारित्र का स्वरूप जानना। इति सम्यक्-चारित्रकथन संपूर्ण।

द्वादशानुप्रेक्षा

आगै द्वादश अनुप्रेक्षा का स्वरूप कहिये है। द्वादश नाम वारा (१२) का है। अनुप्रेक्षा नाम बार-बार चिंतवन करने का है। सो यहां वारा प्रकार वस्तु का स्वरूप निरंतर विचारणा। ऐसा नाहीं, जो एक ही बार याका स्वरूप जानि स्थित होय रहना। यह जीव भ्रम बुद्धि करि अनादिकाल से वारा स्थानक विषैं आसक्त हुवा है, तातैं याकी आसक्तता छुडावने के अर्थि परमवीतराग गुरु यह वारा प्रकार की

१ भीड़ २ सरीखा

भावना याके शक्तितः स्वभाव सूं विरुद्ध देखि छुडाया है । जैसे मदवान हस्ती सुछंद हुवा जहां स्थानक विषैं अटकैं, अपना वा बिगाना नाहिं पहिचानैं, माखो बहुत करै, ताकौ चरखी, भाला वारे साट मार महावत हस्ती कौ बहुत मार देय झुकावे है, त्यौं ही श्रीगुरु ग्यान-भाला की मार देय संसारी जीव मदवान हस्ती, ताकौ विपर्यय कारिज तै छुडावै हैं, सो ही कहिये हैं । प्रथम तो यो जीव संसारका स्वरुप नैं थिर मानि रह्या है, ताकौ अध्रुव भावना करि संसार का स्वरूप अथिर दिखाया, शरीर सौं उदास किया । बहुरि जीव माता–पिता, कुटुंब, राजा, देवेंद्र आदि बहुत सुभटा की शरण वांछता संता निर्भय, अमर, सुखी हुवा चाहै है । काल वा कर्म सौं डर पिया की सरणि वांछै हैं, ताकौ अशरण भावना करि सर्व त्रिलोक के पदार्थ, ताकौ अशरण दिखाया । अभय, शरण, एक निश्चय चिद्रूप निज आत्मा ही दिखाया । बहुरि ये जीव-जगत जो संसार वा चतुर्गति, ताके दुःख का खबरि नाहीं, संसार विषै कैसा दुःख है ? ताकौ जगत भावना करि नरकादिक संसार के भय करि तीव्र दुःख की वेदना का स्वरूप दिखाये, संसार के दुःख सौं भयभीत किया अर उदास किया । अर संसार के दुःख की निवृंत्ति होने कौ कारण परम धर्म, ताका सेवन कराया । बहुरि यह जीव कुटुंब सेवा करि पुत्र, कलत्र, धन–धान्य, शरीरादि, अपने मानैं है, ताकौ एकत्व भावना करि यह कोई जीव का नाहीं। जीव अनादि काल का एकला ही है । नर्क गया तो एकला, तिर्यंच गति में गया तो एकला, देवगति में गया तो एकला, मनुष्य गति में आया तो एकला; पुण्य-पाप का साथ है और कोई याका साथि आवै-जाय नाहीं, तातै जीव सदा एकला

है। ऐसा जानि कुटुंब, परवारादिक का ममत्व छुडाया।
बहुरि यह जीव शरीर नै अर आपनै एक ही मानि रह्या
है। ताको अनित्य भावना करि जीव शरीर तै न्यारा
दिखाया। जीव का द्रव्य, गुण, पर्याय न्यारा बताया, पुद्गल
का द्रव्य–गुण न्यारा बताया; इत्यादि अनेक तरह सौ भिन्न
दिखाय निज स्वरूप की प्रतीति अणाई। बहुरि यह जीव
शरीर कौ बहुत पवित्र मानै है। पवित्र मानि यासौ बहुत
आसक्त होय है। ताकी आसक्ति छुडावने के अर्थि अशुचि
भावना करि शरीर विषैं हाड, मास, रुधिर, चाम, नसां,
जाल वा वाय, पित, कफ, मल-मूत्र आदि सप्त धातु वा
सप्त उपधातु मयी शरीर का पिंड दिखाय शरीर सौ उदास
किया। अर आपना चिद्रूप, महापवित्र, शुचि, निर्मल, परम
ध्यान, सुख का पुंज, अनंत महिमा भंडार, अविनाशी, अखंड
केवल कल्लोल, देदीप्यमान, निःकषाय, शांतिमूर्ति, सबकौ
प्यारा, सिद्धस्वरूप, देवाधिदेव, ऐसा अद्वितीय, त्रैलोक करि
पूज्य, जिनस्वरूप दिखाय; वा विषै ममत्व भाव कराया।
बहुरि यह जीव संतावन आस्रव करि पाप-पुण्य जल करि
डूबै है, ताकौ आस्रव भावना का स्वरूप दिखाया अर
आस्रव है, तिनतै भयभीत किया। बहुरि यह जीव आस्रव के
छिद्र मूंदने का उपाय नहीं जानता संता ताकौ संवर भावना
का स्वरूप दिखाया। संतावन संवर के कारण किसा[1] सो
कहिये हैं–दशलक्षणीक धर्म, (१०), बारा तप (१२), बाईस
परीसह (२२), तेरा प्रकार चारित्र (१३), ता करि संता-
वन आस्रव के मूंदने का उपाय बताया। बहुरि यह जीव
पूर्व कर्म बंध किये, ताके निर्जरा का उपाय जानता संता

१. किस प्रकार

ताको निर्जरा भावना का स्वरूप दिखाया; चिद्रूप आत्मा का ध्यान सो ही भया परम तप, ताका स्वरूप बताया। बहुरि संसार विषैं मोह कर्म के उदै करि संसारी जीवा कौ यह मिथ्या भ्रम लागि रह्या है। कैयक[१] तौ लोक का कर्ता ईश्वर मानै हैं, कैयक नास्ति मानै हैं, कैयक शून्य मानै हैं, कैयक वासुकि राजा के आधार मानै हैं; इत्यादि नाना प्रकार के भ्रम सोई हुवा मोह अंधकार, ता करि जीव भ्रमि रह्या है। ताके भ्रम दूरि करने को लोक भावना का स्वरूप दिखाया। मोह-भ्रम जिनवाणी-किरण्या[२] करि दूरि किया। तीन लोक का कर्ता षट्द्रव्य हैं। षट्द्रव्य के समुदाय का नाम लोक है। जहां षट् द्रव्य नाहीं, एक आकाश ही है, ताका नाम अलोक है। इस लोक का एक पदार्थ कर्ता नहीं। यह लोक अनादि-निधन, अकृत्रिम, अविनाशी, शाश्वत, स्वयं सिद्ध है। बहुरि यह जीव अधर्म विषैं लगि रह्या है, अधर्म कर्ता तृप्ति नाहीं है। अधर्म किया तै बहोत बुरा होय है, महाक्लेश पावै है। ऐसै ही अनादि काल व्यतीत भया; परन्तु धर्मबुद्धि याकै कबहू न भयी। तातै अधर्म के छुडावने कै अर्थि धर्मभावना का स्वरूप दिखाया। धर्म में लगाया अर धर्म कौ सार दिखाया, और सर्व असार दिखाया। धर्म विना या जीव का कबहूं भला होय नाहीं। तातै ही सर्व जीव धर्म चाहै हैं; परन्तु मोह का उदै करि धर्म का स्वरूप जानै नाहीं। धर्म का लक्षण तौ ग्यान-वैराग्य है। अर यह जीव अग्यानी हुवा सराग भाव विषैं धर्म चाहै है अर परम सुख की वांछा करै है सो यह बडा आश्चर्य है। अर-यह वांछा कैसी है? जैसे कोई अग्यानी सर्प के मुख सौं अमृत

---

१. कुछ, २. किरण से

पाना चाहै है वा जल बिलोय घृत काढ्या चाहै है वा वडवाग्नि विषैं कमल के बीज बोय, वाकी छाया विषैं विश्राम किया चाहै है अथवा बांझ स्त्री के पुत्र का ब्याह विषैं आकाश के पुष्प का सेहरा गूंथि मुवा पाछै वाकी शोभा देख्या चाहै है, तौ वाका मनोरथ कैसे सिद्ध होय ? अथवा सूर्य पश्चिम विषे उदै होय, चंद्रमा उष्ण होय, सुमेरु चलायमान होय, समुद्र मर्यादा लोपै वा सूकि जाय वा सिला ऊपरि कमल ऊगे, अग्नि शीतल होय, पाणी उष्ण होय, बांझ के पुत्र होय, आकाश कै पुष्प लागै, सर्प निरविष होय, अमृत विष रूप होय, इत्यादि इन वस्तुनि का स्वभाव विपर्यय हुआ, न होसी। परंतु कदाचि ये तौ विपर्यय रूप होय तौ होय, परन्तु सराग भाव में कदाचि धर्म न होय। यह जिनराज की आग्या है। तातै सर्व जीव सराग भावा नैं छोडौ; वीतराग भाव नै भजौ। **वीतराग भाव है सो ही धर्म है, और धर्म नाहीं, यह नेम है।** सराग भाव है सो ही हिंसा जाननी। अर जेता धर्म का अंग है, सो वीतराग भाव कै अनुसार है वा वीतराग भावा नै कारण है। ताही तै धर्म नाम पावै है। अर **जेता पाप अंग है सो सराग भावा नै पोषता है** वा सराग भावा नै कारण है, तातै अधर्म नाम पावै है। और अन्य जीव की दया आदि बाह्य कारण विषैं धर्म होय वा न होय। जो वा क्रिया विषैं वीतराग भाव मिलै, तौ ता विषैं धर्म होय; और वीतराग भाव न मिलै, तो धर्म नाहीं होय। अर हिंसा आदि बाह्य क्रिया विषैं कषाय मिलै, तौ पाप उपजै, कषाय न होय, तो पाप उपजै नाहीं; तातै यह नेम ठहर्‌या वीतराग भाव ही धर्म है। **वीतराग भावा नै कारण रत्नत्रय धर्म है। रत्नत्रय**

धर्म नै अनेक कारण हैं। तातै वीतराग भाव के मूल कारण का कारण उत्तरोत्तर सर्व कारण कौ धर्म कहिये, तौ दोष नाहीं। तातै सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान; वीतराग भाव, यह तौ जीव का निज स्वभाव है, सो मोक्ष पर्यंत शाश्वत रहै हैं। यासौ उलटा तीन भाव जीव का विभाव है, सो ही संसार-मार्ग है; मोक्षमार्ग रूप नाहीं। तातै सिद्धा कै नाहीं कह्या है। और सयोग-अयोग केवली कै चारित्र कह्या है; सो भी उपचार मात्र कह्या है। चारित्र नाम सावद्य जोग के त्याग का है। वीतराग भाव नै कारण है; वीतराग भाव कारिज है, सो कारिज की सिद्धि हुवा पीछै कारण रहै नाहीं। तातै ग्यानी की क्षयोपशम अवस्था बारमा गुणस्थान पर्यंत, ताही लौं हेय--उपादेय का विचार है, तब ही हेय--उपादेय का विचार संभवै है। केवली कृतकृत हुवा कारिज करणो छो सो करि चुक्या। सर्वज्ञ, वीतराग भये, अनंत चतुष्टय कौ प्राप्त भया। ताकै हेय-उपादेय का विचार काहे तै होय? तीसौं वाके सावद्यजोग का त्याग निश्चै करि संभवै नाहीं। ऐसै मोक्षमार्ग धर्म ताही के प्रसाद करि जीव परमसुखी होय है। ऐसै अधर्म कौ छुडाय धर्म कै सन्मुख किया। बहुरि यह जीव सम्यग्ज्ञान कौ सुलभ मानै है, ताकौ दुर्लभभावना का स्वरूप दिखाया; सन्मुख किया सो ही कहिये हैं। प्रथम तौ सर्व जीवा का घर अनादि तै नित्य निगोद है, तिन मांहि सूं निकसना महादुर्लभ है। उहां सौ निकसने का कोई प्रकार उपाय नाहीं। जीव की शक्ति-हीन भया है आत्मा जाका, सो शक्तिहीन सूं कैसै नीसरने का उपाय बने? अर एक अक्षर कै अनंतवे भाग जाकै ज्ञान है और अनेक पाप-प्रकृति का समूह का उदै पाइये है। यहां

सौ छै महीना आठ समय विषैं छह सै आठ जीव नेम करि निकसै हैं, ता उपरांत अधिक–हीन नीसरैं नाहीं। अनादि काल कै ऐसे नीसरैं हैं, विवहार राशि मैं आवै हैं। एता विवहार राशि सौ मोक्ष जाय हैं, सो यह कालाब्धि को माहात्म्य जाणो। पूर्वै अनादि काल के जेते सिद्ध हुवे वा नित्य निगोद में सौ निकसे विना ते अनंत गुने एक-एक समय विषैं अनादि काल सूं लगाय सासते नित्यनिगोद में सूं नीसरवो करैं। तौ भी एक निगोद के शरीर मांहि ता जीव–रासि का अनंतवे भाग एक अंश मात्र खाली होय नाहीं, तौ कहो राजमार्ग-बटमारा माफिक निगोद में सूं जीव का निकसना कैसे होय ? अर कोई भाग उदै उहां सूं निकसे, तौ आगै भी अनेक घाटा उलंघि मनुष्य भव विषैं उच्च कुल, सुक्षेत्रवास, निरोग शरीर, पांचों इंद्री की पूर्णता, निर्मल ज्ञान, दीर्घायु, सत्संगति, जिनधर्म की प्राप्ति; इत्यादि परम उत्कृष्टपने की महिमा कहा कहिये ? ऐसी सामग्री पाय सम्यग्ज्ञान, रत्नत्रय की प्राप्ति नाहीं वांछै है, तो वाके दुर्बुद्धि की कहा पूछनी ? अर वाका अपजस की कहा पूछनी ? तोसौं एकेंद्रिय पर्याय सूं वेंद्री पर्याय पावना महा-दुर्लभ है। वेंद्री पर्याय सूं तेंद्री पर्याय होना महादुर्लभ है अर तेंद्री पर्याय सूं चौंद्री पर्याय पावना अति दुर्लभ है। चौइंद्री पर्याय सूं असैनो पंचेंद्री की पर्याय पावना कठिन है। असैनी सौं सैनो, तामैं भी गर्भज पर्याप्तक होना महादुर्लभ है। सो यह पर्याय अनुक्रम सौं महादुर्लभ, सा भी अनंत बार पायो; परंतु सम्यग्ज्ञान अनादि काल तै लेय अब तक एक बार भी नाहीं पाया, जो सम्यग्ज्ञान पाया होता, तौ संसार विषैं क्या रहता ? मोक्ष का सुख कौ ही जाय प्राप्त होता। तोसौं

भव्य जीव शीघ्र ही सम्यग्ज्ञान परम चितामणि रतन, महा अमोलक, परम मंगल कारण, मंगल रूप, सुख की आकृति, पंच परम गुरु करि सेवनीक त्रिलोक के पूज्य मोक्ष सुख के पात्र ऐसा सर्वोत्कृष्ट सम्यग्ज्ञान महादुर्लभ परम उत्कृष्ट परम पवित्र उच्च जानि याको भजौ। घणी कहा कहिये? कदाचि ऐसा मौसर पाय करि यहाँ सौं च्युत भया, तौ बहुरि ऐसा मौसर मिलने का नाहीं। अबार और सामग्री तौ सर्व पाइये हैं, एक रूचि करनी ही रही है। सो तुच्छ उपाय किया बिना ऐसी सामग्री पायो हुई अहली जाय, तौ याका दरेग कैसे सतपुरुष न करै अर कैसे सम्यग्ज्ञान होने के अर्थि उद्यम न करै? परन्तु यह जीव फेरि एकेंद्री पर्याय विषैं जाय पडै, तो असंख्यात पुद्गल परावर्तन पर्यंत उत्कृष्ट रहै। एक पुद्गल परावर्तन के वर्ष की संख्या अनंत है। अनंते सागर, अनंते अवसर्पिणी–उत्सर्पिणी का काल-चक्र, अनंतानंत प्रमाण एक पुद्गल परावर्तन के अनंतवें भाग एक अंश भी पूर्ण होय नाहीं। अर एकेंद्री पर्याय विषैं दुःख का समूह अपरिमित है; नर्क तैं भी अधिक दुःख पाइये है। ऐसा अपरंपार दुःख दीर्घ काल पर्यंत सासते भोग्या जाय। परन्तु कर्म के परवसि पड्या जीव कहा उपाय करै? यहाँ अनेक रोग करि कोई काल विषैं एक रोग की वेदना उदै होय। ताके दुःख करि जीव कैसा आकुल-व्याकुल होय परिणमे है, आप घात करि मूवा चाहे है, सौ अवस्था इस ही पर्याय विषैं सर्व मांहि प्रवर्ते है। वा सर्व तिर्यंच पुण्यहीन मनुष्य दुःखमयी प्रत्यक्ष देखने में आवै हैं। तिनके एक-एक दुःख का अनुभव करिये, तौ भोजन रूचै नाहीं। परन्तु यह जीव अग्यान बुद्धि करि मोह-मदिरा पान करि रमि रह्या है, सौ कबहूं एकांत बैठि

करि विचार करै नाहीं। जे-जे पर्याय वर्तमान विषें पावै, तिन पर्याय सौ तन्मय होय एकत्व बुद्धि करि परिणमै हैं, पूर्वापर कछु विचारै नाहीं। ऐसा जानै नाहीं, यह अन्य जीवन की अवस्था पूर्व सर्व में अनंत बेर भोगी है अर धर्म विना बहुता भोगेगा। यह पर्याय छूटे, पाछै धर्म विना नीच पर्याय ही पावनी होयगी, तातै गाफिल न रहना। गाफिल पुरुष ही दगा खाय है, दुःख पावै है और वैरी वसि परै है। इत्यादि विशेष विचार करि सम्यक्‌दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्‌-चारित्र यह रत्नत्रय धर्म परम निधान, सर्वोत्कृष्ट, उपादेय जानि महादुर्लभ याकी प्राप्ति जानि, जिहि-तिहि प्रकार रत्न-त्रय का सेवन करना। ऐसै दुर्लभ भावना का स्वरूप जानना; वाको महादुर्लभ दिखाय या विषैं रूचि कराई। इति वारा अनुप्रेक्षा कौ कथन सम्पूर्ण।

बारह तप

आगै वारा प्रकार के तप का स्वरूप कहिये है। अनसन तप कहिये– इनका अर्थ च्यारि प्रकार आहार अशन-पान-खाद्य–स्वाद्य। असन नाम पेट भरि खाने का है। पान नाम जल-दुग्धादि पीवने का है। खाद्य नाम बीडो का अर स्वाद्य नाम मुख-शुद्धि का है। ये च्यार्‍यो जिभ्याइंद्री का ही विषय जानना और इंद्री का नाहीं; और इंद्री का विषय और हैं। बहुरि अवमोदर्य कहिये क्षुधा–निवृत्ति विषैं एक ग्रास घाटि, दोय ग्रास घाटि, आदि घटता-घटता एक ग्रास पर्यंत भोजन की पूर्णता विषैं ऊना भोजन करै, ताको ऊनोदर कहिये। बहुरि आजि ई विधि सौ भोजन मिलै, तौ ल्या नाहीं मिलै, तौ म्हाकै अहार-पानी का त्या हैं; ऐसो

अटपटी प्रतिग्या करै, ताको **व्रतपरिसंख्या** कहिये। बहुरि एक रस, दोय रस, आदि छहों रस पर्यंत त्याग करै, या विषैं मन की लोलुपता मिटै, ताको **रसपरित्यागतप** कहिये। बहुरि शीत काल विषैं नदी, तलाब, चौहट, आदि शीत विशेष पडने का स्थानक विषैं तिष्ठै। ग्रीष्मकाल विषैं पर्वत के शिखर, रेत के थल, वा चौहट मारग ता विषैं तिष्ठैं। वर्षाकाल विषैं वृक्ष तलै तिष्ठैं। इत्यादि तीनों रितु के उपाय करि **परीसह सहैं**; इनके सहने में दिढ रहें। बहुरि जिहि-तिहि प्रकार करि शरीर कृश करिये, शरीर कसने तै मन भी कस्या जाय है, सो इनिको **कायक्लेश** कहिये। इन बाह्य तप बीच अभ्यंतर के तप का फल विशेष कह्या है, ऐसा अर्थ जानना। तातै छह प्रकार अभ्यंतर के तप का स्वरूप कहिये हैं। तिन विषैं आपने शुद्ध आखडी वा संजमादि विषैं भौले वा जानि करि अल्प-बहुत दोष लाग्या होय, ताको ज्यों का त्यों गुरानै कहै; अंश मात्र भी दोष छिपावै नाहीं। पीछै गुरु दंड दे, ताकौ अंगीकार करि, फेरि सू आखडी, व्रत, संजमादि का छेद हुवे का स्थापन करे, ताकौ **प्रायश्चित्ततप** कहिये। बहुरि श्री अरहंतदेव आदि पंच परम गुरु, जिनवाणी, जिनधर्म, जिनमंदिर, जिनदेव, तिनि का परम उत्कृष्ट विनय करै वा मुनि, अर्जिका, श्रावक, श्राविका, चतुर्प्रकार संघ, ताका विनय करै वा दश प्रकार का संघ, ताका विनय करै वा आप सुगुण करि अधिक अव्रत सम्यक्दृष्टि, आदि धर्मात्मा पुरुष होय, ताका विनय करिये, ताको **विनयतप** कहिये। अथवा मुनि, अर्जिका, आदि धर्मात्मा सम्यक्दृष्टि पुरुषां की वैयावृत्य करि पग चापि, आदि चाकरी करिये व आहार दीजिये वा जाका

उनके खेद होय, जाको जिहि-तिहि प्रकार निवृत्ति करिये, रोग होय तो औषध दीजिये। इत्यादि विशेष चाकरी करिये, ताको **वैयावृत्यतप** कहिये। बहुरि वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय, धर्मोपदेश ये पाँच प्रकार स्वाध्याय के भेद हैं। सो वाचना कहिये; शास्त्र कौ वांचे ही जाना। पृच्छना कहिये, प्रश्न करना, पूछना। अनुप्रेक्षा कहिये, बार-बार चिंतवन करना। आम्नाय कहिये जो काल योग्य जो स्वाध्याय होय वा जो शास्त्र, पाठ पढने योग्य होय, तिनका तिहि काल अध्ययन करै। अर धर्मोपदेश कहिये, धर्म का उपदेश देना। ऐसे पंच प्रकार स्वाध्याय कौ करना, ताको **स्वाध्यायतप** कहिये। बहुरि जावंजीव वा प्रमाण सहित शरीर का त्याग करना; त्याग कहिये शरीर का ममत्व छोडना, बाहुबली मुनि की न ईं शरीर का कोई प्रकार संस्कार नाहीं करणा। अंग-उपांग कौ चलाचल अपनी इच्छा न करने के कारण ताको **व्युत्सर्ग वा उत्सर्गतप** कहिये। बहुरि "एकाग्रचिंता निरोधो ध्यानं" याका अर्थ यहु आर्त, रौद्र ध्यान का छोडना, धर्म ध्यान वा शुक्ल ध्यान करना, ताको **ध्यानतप** कहिये-ऐसा बारा प्रकार तप का स्वरूप जानना।

आगै बारा प्रकार के तप का फल कहिये हैं। सो त्या विषैं अनसनादि च्यारि तप करि यह जीव स्वर्ग स्थान विषैं कल्पवासी देवोपुनीत पद पावै है। थोडी-सी भोग-सामग्री मनुष्य पर्याय विषैं छोडिसी, ताका फल अनंत गुणा पावसी, सो असंख्यात काल पर्यंत निर्विघ्न पणै रहसी। अर महा सुंदर शरीर, अमृत के भोग करि तृप्त असंख्यात काल पर्यंत निरोग

एक-सा गुलाब के फूल सादृश्य महा मनोग्य, यहां बातां करि आयु पर्यंत निर्भय रहसी। ताकी महिमा वचन-अगोचर है, सो कहां लौं कहिये ? आगै स्वर्गन के सुख का विशेष वर्णन करेंगे, तहां तै जानि लेना। बहुरि विवक्त शय्यासन काय-क्लेश तप करि अत्यंत अतिशयवंत, महा देदीप्यमान, तेज, प्रताप संयुक्त, इंद्र, चक्रवर्ती, कामदेव, आदि महंत पुरुष का शरीर पावै है। यह तौ बाह्य षट् प्रकार तप का फल कह्या। या सौ अनंत गुणा फल अभ्यंतर के षट् प्रकार तप तिन विषैं प्रायाश्चित्त का फल है। बाह्य के तप करि तौ शरीर दम्या जाय है अर शरीर दमिवा करि किंचित् मन दम्या जाय है। ताही तै ये भी तप नाम पावै है। मन नाहीं दम्या जाय, तौ शरीर दम्या तप नाम पावै नाहीं। धर्मात्मा पुरुष एक मन को शुद्धता ही के अर्थि बहिरंग तप करै है। अर आन मती शरीर तौ घनो ही कसै है, परंतु मन अंश मात्र भी दम्या जाय नाहीं; तातै वाको अंश मात्र भी तप कह्या नाहीं। अर अभ्यंतर के तप करि मन दम्या जाय, तातै मन का दमिवा करि कषाय रूपो पर्वत गलै है। ज्यौं-ज्यौं कषाया की मंदता सो ही परिणामा की विशुद्धता, ताही का नाम धर्म है, वही मोक्ष का मारग है। वही कर्मा का बालिवा नै ध्यानाग्नि छै। संपूर्ण सर्व शास्त्र का रहस्य करि मोह कर्म के मंद पाडने वास्ते, नास करने कौ है। अर जेता तप, संजम, ध्यानाध्ययन, वैराग्य, आदि अनेक कारण बताये हैं, सो ये कारण सर्व सराग भावां सौ छुडावने अर्थि है। अर कर्मन सौ खुले है, सो एक वीतराग भावां सौ खुले है। तातै सर्व प्रकार तीन काल, तीन लोक विषैं वीतराग भाव ही है सो ही मोक्ष-मारग है। "सम्यक्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्ष-

मार्गः" ऐसा कह्या है सो वीतराग भाव नै कारण है। तातै कारण विषें कार्य का उपचार कह्या है। कारण बिना कार्य की सिद्धि होय नाहीं, तातें कारण प्रधान है। सो प्रत्यक्ष यह बात अनुभवन में आवै है अर आगम विषें ठौर-ठौर सर्व सिद्धान्त विषें एक वीतराग भाव ही सार, उपादेय कह्या है। अर कर्म-वर्गणा सौं तीन लोक घो का घडावत् भर्या है। सो कर्म-वर्गणा सौं ही बंध होय, तौ सिद्ध महाराज कै होय, अर हिंसा सौं ही बंध होय, तौ मुनि महाराज कै होय, अर विषय-भोग परिग्रह के समूह सौं ही बंध होय, तौ अव्रत सम्यक्दृष्टि, चक्रवर्ती, तीर्थंकर आदि ताकै होय। भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यक्दृष्टि था। तातै सम्यक्त्व के माहात्म्य करि षट् खंड की विभूति, छियानवे हजार स्त्री भोगने करि भी निर्बंध, निराश्रव ही रह्या। ताही तै दीक्षा धारे पीछै अंतर्मुहूर्त काल विषैं वाने केवलग्यान उपार्ज्या। सो सम्यक्त्व का माहात्म्य अद्भुत है। कोई यहां प्रश्न करै-जो मुनि महाराज वा अव्रती सम्यक्दृष्टि के बंध नाहीं, तौ चौथा गुणस्थान पर्यंत अनुक्रम तैं घटता-घटता बंध कैसे कह्या है? ताका उत्तर-यह कथन है सो तारतम्य की अपेक्षा है। सो बंध नै मूलभूत कारण एक दर्शनमोह है। जैसा दर्शनमोह तै बंध है, ताके अनंतवे भाग चरित्रमोह तैं बंध होय है। तातै अव्रत सम्यक्दृष्टि तै लगाय दसवां गुण-स्थान पर्यंत अल्पबंध है, तातै न गिन्या। निश्चय विचारता दसवां गुणस्थान पर्यंत रागादिक स्वयमेव पाइये हैं। यह भी शास्त्र विषें कह्या है, सो यह न्याय ही है। जा-जा स्थानक जेता-जेता राग भाव है, तेता-तेता मोह बंध होय है-यह बात सिद्ध भई। एक असाधारण कारण अष्ट

कर्म बंधने की मोहकर्म है, तासौं एक मोह ही का नाश करणा। सो प्रायश्चित्त विषैं धर्म बुद्धि विशेष होय है। अर जाके धर्मबुद्धि विशेष होय वा संसार के दुःख का भय होय, सो ही गुरान सै प्रायश्चित्त दंड लेय। याके मन की बात कौ न जानै था जो याकी आखडी भंग हुई है। परंतु यह धर्मात्मा परलोक का भय थकी प्रायश्चित्त तप अंगीकार करै है, यातै अनंत गुणा का फल विनय तप का है। या विषैं मान विशेष गलै है अर पांचो इंद्री वसि होय हैं वा चित्त की एकाग्रता होय है, सो ही ध्यान है। ग्यान मोक्ष समय विशेष होय है। सम्यक्दर्शन-ग्यान-चारित्र निर्मल होय है। अर पुन्य के संचय अत्यंत अतिशय होय है। जेता धर्म का अंग है, तेता ग्यानाभ्यास ते जान्या जाय है। तातै सर्व धर्म का मूल एक शास्त्राभ्यास है; याका फल केवल-ज्ञान है। बहुरि स्वाध्याय तै अधिक व्युत्सर्ग, अर ध्यान ताका भी अनंत गुणा विशेष फल है। याका फल मुख्यपणै एक मोक्ष ही है। बहुरि बाह्य तप कहे हैं, सो भी कषाय घटावने अर्थि कहे हैं। कषाय सहित बाह्य तप करै, तौ वह तप संसार का ही बीज है, मोक्ष का बीज नाहीं। ऐसा बारा प्रकार तप ताका फल जानना। आगै तप का फल विशेष कहिये हैं। सो देखो, अन्य मत बारे बाँ तिर्यंच मंद कषाय के माहात्म्य करि सोला स्वर्ग पर्यंत जाय हैं, तौ जिनधर्मीक श्रद्धानी कर्म काटि मोक्ष क्यों न जाय? तातै तप करि कर्मा की निर्जरा विशेष होय है, सो ही दशसूत्र (तत्त्वार्थसूत्र) विषैं कह्या है— "तपसा निर्जरा च।" तहां ऐसी निर्जरा. तातै अवश्य अभ्यंतर बारा प्रकार के तप अंगीकार करना। तप विना कर्म कदाचि कटै नाहीं, ऐसा तात्पर्य जानना। एवं संपूर्णम्

बारह प्रकार का संयम

सो संयम दोय प्रकार है—एक इन्द्रिय-संयम, एक प्राण-संयम। सो इन्द्रिय-संयम छह् प्रकार है अर प्राणी-संयम भी छह् प्रकार है। पांच इन्द्री छठा मन का निरोध करै, षट्-काय की हिंसा त्यागै, ताकौ इन्द्रियसंयम वा प्राणसंयम कहिये। **सो संयम निःकषाय नै कारण है; निःकषाय है सो ही मोक्ष का मार्ग हैं। संयम बिना निःकषाय कदाचित होय नाहीं।** निःकषाय विना बंध, उदै, सत्ता का अभाव होय नाहीं, तातैं संयम ग्रहण करना योग्य है।

जिनबिम्ब-दर्शन

आगै जिनबिंब को दर्शन कौन प्रकार करिये, कहा भेंट धरिये, कैसे स्तुति, विनय करिये, ताका स्वरूप विशेष करि कहिये है।

दोहा—मैं बंदौं जिनबिंब को, करि अति निर्मल भाव।
कर्म-बंध नै छेदने, और न कोई उपाव॥

या भांति सामायिक किये, पाछै लघु-दीरघ बाधा मेटि, जल सौं शुचिकरि पवित्र वस्त्र पहरि और मनोग्य, पवित्र एक-दोय आदि अष्ट द्रव्य पर्यंत रकेबी विषैं मेलि, आप उवाहणा[1] पगां चाम, ऊन का स्पर्श बिना महा हर्ष संयुक्त मंदिर आवै। अर जिनमंदिर में धसता तीन शब्द ऐसी उचारै—जय निस्सहि, जय निस्सहि, जय निस्सहि, ताका

---

[1] नंगे

अर्थ यहु जो देवादिक कोई गूढ तिष्ठै होय, तौ तें दूरि हूज्यौ, दूरि हूज्यौ, दूरि हूज्यौ । बहुरि पीछै तीन शब्द ऐसै कहै-जय, जय, जय । पीछै श्रोजी कौ सन्मुख पेखि अर रकेबी कूं हाथ सूं मेल्हि, दोऊ हस्त जोडि, नारेल उपरे[1] पोले हाथ राखि, तीन आवर्त करि, एक शिरोनति कीजे । पीछै अष्टांग नमस्कार, ताका अर्थ तीन-मन, वचन; काय शुद्ध होय, मस्तक, दोय हाथ, दोय पग याकूं अष्टांग नमस्कार कहिये । नमस्कार कीजे अर तीन प्रदक्षिणा पहली दीजै । भावार्थ आठ अंग कूं ही नवाइये । आठ अंग कौन, ताके नाम-मस्तक हाथ, पग, मन-वचन-काय; ऐसे आठ अंग, ताके उत्तर-अधर अवयव मुख, आंखि, नाक, कान, आंगुल्या आदि उपांग जानने । भगवान सर्वोत्कृष्ट है ताकौ अष्टांग नमस्कार करिये। बहुरि जिनवानी, निर्ग्रंथ गुरु, तिनकौ पंचांग नमस्कार करिये । दोन्यौ गोडा धरती सूं लगाय, दोन्यौ हस्त जोडि, मस्तक के लगाय, हस्त सहित मस्तक भूमि सूं लगाय, यामें छाती, पीठ, नितंब छिपाय[2] बिना पंच ही अंग नये[3], तातैं पंचांग कहिये । बहुरि पीछै खडा होय, तीन प्रदक्षिणा दीजिये । एक-एक प्रदक्षिणा प्रति एक-एक दिशि की तरफ तीन आवर्त सहित एक शिरोनति कीजिये । पीछै खडा होय स्तुत्यादि पाठ पढिये । पीछै अष्टांग दंडोत[4] करि, पीछै-पीछै पगा होय आपनै घर कौ उठि आजे । अर निर्ग्रंथ गुरु विराजे होय, तौ वाकौ 'नमोस्तु' कीजै, वाका मुख थकी शास्त्र-श्रवण किये विना न आइये ।

भावार्थ—जिनदर्शन का करिवा विषें आठ तौ अष्टांग

---

[1] मस्तक ऊपर [2] बिना [3] झुके [4] दण्डवत प्रणाम,

नमस्कार, बारा शिरोनति, छत्तीस आवर्त करिये । अबै स्तुति करने का विधान कहिये है। जैसे राजादिक बड़े महंत पुरुषनि करि कोई दीन पुरुष अपने दुःख को निवृत्ति अर्थि जाय, सन्मुख खड़ा होय, मुख आगै भेंट धरि, ऐसे वचनालाप करे। पहलो तो राजा की बड़ाई करै, पीछे आपका दुःख की निवृत्ति को वांछता संता ऐसे कहै—यह मेरा दुःख निवृत्त करो। जीछे वे मेहरबान होय, याका दुःख निवृत्त करै, त्यों यह संसारी परम दुखित आत्मा दीन, मोह कर्म करि पीड़्या हुआ श्रीजी के निकट जाय, खड़ा होय, भेंट आगै धरि, पहली तो श्रीजी की महिमा-वर्णन करै, गुणानुवाद श्रीजी का गावै। पीछै आपकूं अनादि काल का मोह कर्म घोरान घोर नरक-निगोदादिक दुःख दिये, ताका निर्णय करै। पीछै वाके निवृत्ति करने अर्थि ये प्रार्थना करै-सो हे भगवन् ! ये अष्ट कर्म मेरी लार लागे हैं। मोको महा तीव्र वेदना उपजावै हैं। मेरा स्वभाव कौ घाति मेल्या है। ताके दुःख की बात मैं कोलूं[1] कहौं ? सो अब इनि दुष्टनि का निपात[2] करिये अर मोको निरभै स्थान मोक्ष ताको दीजिये, सो मैं चिरकाल पर्यंत सुखी होहुं। पीछै भगवान का प्रताप करि, यह जीव सहज ही सुखी होय है अर मोह कर्म सहज ही गलै है। अब याका विशेष वर्णन करिये है।

जय जय, त्वं च जय, जय भगवान, जय प्रभु, जयनाथ, जय करूणानिधि, जय त्रिलोक्यनाथ, जय संसारसमुद्रतारक, जय भोगन सूं परान्मुख, जय वीतराग, जय देवाधिदेव, जय

---

१ कहां तक, २ मार गिराइये

सांचा देव, जय सत्यवादी, जय अनुपम, जय बाधारहित, जय सर्व तत्त्वप्रकाशक जय केवलज्ञान-चरित्र, जय त्रिलोक शांति-मूर्ति, जय अविनाशी, जय निरंजन, जय निराकार, जय निर्लोभ, जय अतुल महिमा भंडार, जय अनंत दर्शन, जय अनंत ग्यान, जय अनंत सुख करि मंडित, जय अनंत वीर्य धारक, संसार-शिरोमणि, गणधरा देवां करि वा सौ इंद्रां करि पूज्य, तुम जयवंते प्रवर्तो, तुम्हारी जय होय, तुम बडा वृद्ध होहु। जय परमेश्वर, जय सिद्ध, जय आनंदपुंज, जय आनंद मूर्ति, जय कल्याणपुंज. जय संसार-समुद्र के पार-गामी, जय भव-जलधि-जिहाज, जय मुक्ति-कामिनी-कंत, जय केवलज्ञान-केवलदर्शन-लोचन, परम सुख परमात्मा, जय अविनाशी, जय टंकोत्कीर्ण, जय विश्वरुप, जय विश्व-त्यागी, विश्वज्ञायक, जय ज्ञान करि लोकालोक प्रमाण वा तीन कालप्रमाण, अनंत गुण-भंडार, अनंत गुण-खानि, जय चौंसठ रिद्धि के ईश्वर, जय सुख-सरोवर-रमण, जय संपूर्ण सुख करि तृप्त, सर्व रोग-दुष्ट करि रहित, जय अज्ञान-तिमिर के विध्वंसक, जय मिथ्या वज्र के फोडने कूं-चकचूर करणें कूं परम वज्र, जय तुंगसीस, जय त्वं ज्ञानानंद बर-साने, अमोधाताप का दूरि करिवानै वा भव्यजीवां रूप खेती पोषन वा भव्यजीवां के खेती ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य अंगोपांग तीन लोक के अग्र भाग तिष्ठै हैं, परंतु तीन लोक नै एक परमाणु मात्र खेद नाहीं उपजावै हैं। भगवान के उपगार नै नाहीं भूलै हैं, तातें दया बुद्धि करि अल्प तिष्ठै हैं। तब मैं भगवान के अनंतवीर्य ज्याका भार मस्तग ऊपर कैसे धारूंगा ? याका भार मेरे बूते कैसे सह्या जायगा ? भगवान अनंतबली, मैं असंख्यात बली, ऊपरि अनंतबली का भार

सै ठहरे ? तातैं अगाऊ जाय भगवान की सेवा करिये । तो
भवान परमदयाल हैं सो मोने खेद नाहीं उपजावै हैं सो
बै प्रत्यक्ष देखिये । भगवान बृद्धि होने को मेघ सादृश्य हैं ।
हो भगवानजो ! आकाश विषैं ये सूर्य तिष्ठै हैं, सो कहा
मानूं तिहारी ध्यान रूपी अग्नि की कणिका ही है अथवा
ाहारे नख की ललाई का आकाश रूपी आरसा[1] विषैं एक
तिबिंब ही है। अहो भगवानजी ! तुम्हारे मस्तग ऊपरि
ीन छत्र सोहै हैं, सो मानूं छत्र का मिस करि तीन लोक
ा सेवने कौ आया है । अर हे भगवानजो ! तुम्हारे ऊपरि
ौसठ चमर ढुरै हैं, सो मानूं चमरन के मिस करि इंद्र के
मूह ही नमस्कार करै हैं । अर हे भगवानजी ! ये तिहारे
ंघासन कैसे सोभै हैं ? मानूं ये सिंघासन नाहीं, ये तीन
ोक का समुदाय एकठौर[2] होय, तिहारे चरण-कमल सेवने कूं
ाया है । सो कैसा संत सेवै है ? ये भगवान अनंत चतुष्टय
ौ प्राप्त भये हैं, सो सिद्ध अवस्था विषैं मेरे मस्तग ऊपरि
ा कधा ऊपरि तिष्ठैगे । अहो भगवानजो ! ये तेरे ऊपरि
शोक वृक्ष तिष्ठै है, सो त्रिलोक का जीवां नै शोक रहित
रै है । बहुरि हे भगवानजी ! आपके शरीर को कांति
सा सरीर होय, तैसा ही भामंडल की ज्योति दशों दिशा
ाषैं उद्योत[3] किया है । ता विषैं भव्य जीवां सप्त भव
ारसा वत प्रतिभासै है । बहुरि हे भगवानजी ! आपके
ाभ्यंतर के आत्मीक गुण तौ अनंतानंत हैं, ताको महिमा
ौ कौन पै कही जाय है ? परंतु आत्मा के अतिशय करि
ारीर भी ऐसा अतिसय रूप प्रणम्या[4] है, ताका दर्शन करि
ातिया कर्म शिथिल होय, पाप-प्रकृति प्रलय नैं प्राप्त होय,

---

१ दर्पण २ एकत्र ३ प्रकाश ४ परिणमित हुआ

सम्यक्दर्शन मोक्ष का बीज उत्पन्न होय, इत्यादि सर्व अभ्यं-तर-बाह्य बिघ्न बिलै जाय। सो हे भगवान ! ऐसै शरीर की महिमा सहस्र जीभ करि इंद्रादिक देव क्यों नाहीं करें? अर हजार नेत्र करि तिहारे रुप का अवलोकन क्यों नाहीं करें ? अर इंद्रां का समूह अनेक शरीर बनाय भक्तिवान आनंद रस करि भीज्या क्यौं नाहीं नृत्य करे ? बहुरि कैसा है तिहारा शरीर ? ता विषैं एक हजार आठ लक्षण पाइये हैं। तिनका प्रतिबिंब आकाश रुपी आरसा विषैं मानूं आय परया है, सो तिहारे गुणां का प्रतिबिंब तारेनि के समूह प्रतिभासे है। बहुरि हे जिनेंद्रदेव ! तिहारे चरण-कमल की ललाई कैसी है ? मानूं केवलज्ञानादि वस कै उदै करवानै सूर्य ही तहां ऊग्यौ है वा भव्य जीवां के कर्मकाष्ठ वालिवा नै तुम्हारे ध्यान अग्नि के तिणगा[1] हाय, आनि प्राप्त नाहीं भया है वा कल्याण वृक्ष ताके कूंपल ही है अथवा चिंतामणि रत्न, कल्पवृक्ष, चित्रावेलि, कामधेनु, रसकूप का पारिस[2] वा इन्द्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, नारायण, बल-भद्र, तीर्थंकर, चतुर प्रकार के देव, राजाओं का समूह अर समस्त उत्कृष्ट पदार्थ अर मोक्ष देने का एक भाजन परम उत्कृष्ट निधि ही है।

भावार्थ–सर्वोत्कृष्ट वस्तु की प्राप्ति तुम्हारे चरणां कौ आराध्य मिलै है। तातैं तेरे चरण ही सर्वोत्कृष्ट निधि है। बहुरि भगवानजी ! तिहारा हृदय विस्तीर्ण[3] है, मानूं गुलाब का फूल ही विकसायमान है। अर-तिहारे नेत्रनि विषैं ऐसा आनंद वसै है, ताके एक अंश मात्र आनंद का निरमापवा करि च्यारि जाति के देवता का शरीर उत्पन्न भया है।

---

१ चिनगारी २ पारस ३ विशाल, फैला हुआ

इत्यादि तिहारे शरीर की महिमा कहने समर्थ त्रिलोक में कौन है ? परंतु लाडले पुत्र होय, सो माता-पिता नैं चाहे ज्यों बोले। पीछे माता-पिता वाको बालक जानि वासों प्रीति ही करे अर मन–मानती[1] मिष्ट वस्तु खाने को मंगाय देय। तासों हे भगवान ! तुम मेरे उदित माता-पिता हौ। हम तिहारा लघु पुत्र है। सो लघु बालक जानि मो परि क्षमा करिये। अर हे भगवानजी ! हे प्रभुजी ! तुम समान और वल्लभ[2] मेरे नाहीं। अर हे भगवानजी ! मोक्ष-लक्ष्मी का कंत[3] थेई[4] छो अर जगत का उद्धारक थेई छो। अर भव्य जीवां के उद्धार करने को थेई छो ! तुम्हारे चरणार-विंदां को सेय–सेय, अनेक जीव तिरै, अबै तिरै हैं, आगै तिरेंगे। हे भगवान ! दुःख दूर करिवे नै थेई समर्थ छो। अर हे भगवान ! हे प्रभु जिनेंद्रदेव ! तिहारी महिमा अगम्य है। अर भगवानजी ! समोसरण लक्ष्मी सौं विरक्त थेई छो, कामबाण के विध्वंसक थेई छो, मोहमल्ल के पछाडवा नैं तुम ही अद्वितीय मल्ल हो। अर जरादि-काल त्रिलोक का जीवां कौं निगलतो, निपात करतो चल्यौ आवै है। याको निपातने कोई समर्थ नाहीं। समस्त लोक के जीव काल की दाढ विषैं वसे हैं। तिनको निर्भय हुवो काल दाढ करि चिगदति चिगले है। आज भी तृप्त नाहीं होय है। ताकी दुष्टता अर प्रबलता नै कौन समर्थ है ? ताको तुम खिण[5] मात्र में ही क्रीडा मात्र जीत्या। सो हे भगवानजी ! तुम कूं हमारा नमस्कार होहु। बहुरि हे भगवानजी ! तिहारे चरण-कमलां के सन्मुख आवता मेरा पग पवित्र हुवा। अर तिहारो रूप अवलोकन करता नेत्र पवित्र हुआ अर तिहारे

१ मन माफिक २ स्वामी ३ पति ४ तुम्हीं ५ क्षण

गुणनि की महिमा वा स्तुति करता जिह्वा पवित्र हुई अर तुम्हारे गुण-पंकति को सुमरता मन पवित्र हुवा अर तुम्हारे गुणानुवाद को सुनता श्रवण पवित्र हुवा अर तुम्हारे गुण की अनुमोदना करता विशेष करि मन पवित्र हुवा, तुम्हारे चरणां को अष्टांग नमस्कार करता सर्वांग पवित्र हुवा। हे जिनेंद्रदेव ! धन्य आज का दिन ! धन्य आजकी घडी ! धन्य यह मास ! धन्य यह संवत्सर ! सो या काल विषैं आपके दर्शन करने को सन्मुख भया। अर हे भगवानजी ! मेरे आप को दर्शन करता ऐसो आनंद हुवो, मानूं नव निधि पाई वा चिंतामणि रत्न पाये वा कामधेनु, चित्रावेलि घर माहीं आई। मानूं कल्पतरु मेरे आरणे[1] ऊग्यो[2] वा पारस की प्राप्ति भई वा जिनराज निरंतराय मेरे कर सौं आहार लियौ वा तीन लोक का राज ही मैं पायौ अथवा केवलज्ञान की आज ही मेरे प्राप्ति भई, सम्यक्‌रतन तौ मेरे सहज ही उत्पन्न भयो, सो ऐसैं सुख की महिमा हू क्यों न कहूं ? अर हे भगवानजी ! तुम्हारे गुण की महिमा करता जिह्वा तृप्त नाहीं होय है अर तुम्हारे रूप का अवलोकन करि नेत्र तृप्त नाहीं होय हैं। हे भगवानजी ! अबार मेरे कैसा उत्कृष्ट पुण्य उदै आया है अर कैसे काल-लब्धि आय प्राप्त हुई ? ताके निमित्त करि सर्वोत्कृष्ट त्रैलोक्य पूज्य मैं देव पाया, सो धन्य मेरा यह मानुष भव, सो आपके दर्शन करता सुफल भया। पूर्वे अनंत पर्याय तिहारे दर्शन विना निरफल[3] गये। अहो भगवानजी ! तुम पूर्वो तीन लोक की संपदा बोदे[4] तृणवत् छांडि, संसार-देह-भोग सूं विरक्त होय, संसार असार जाणि, मोक्ष उपादेय जाणि, स्वयमेव आर्हंती दीक्षा धरी।

---

१ आंगन मे २ उदित हुआ ३ निष्फल, व्यर्थ ४ जीर्ण, सूखे-पुराने

ततकाल ही मन:पर्यय ज्ञान-सूर्य उदै हुवा; पाछै शीघ्र ही केवलज्ञान सूर्य निरावरण उदै भया—लोकालोक का अनंत पदार्थ द्रव्य-गुण-पर्याय संयुक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नै लिया तीन काल मध्य चराचर पदार्थ एक समै विषैं, तिहारे ज्ञान रूपी आरसा विषैं स्वयमेव ही बिना ऐंचो[1] आणि[2] झलक्या, ताको महिमा कहिवाने समर्थ सहस्र जिह्वा, सौं इंद्र भी वचन की रिद्धि के धारी गणधरादि महा जोगीश्वर भी नाहीं वरणि[3] सक्या। बहुरि भव्य जीवां का पुण्य का उदै तुम्हारी दिव्य-ध्वनि ऐसे उछरी[4], सो एक अंतर्मुहूर्त विषैं ऐसा तत्त्व उपदेश करै, ताकी रचना शास्त्र विषैं लिखिये, तौ उन शास्त्र सौं अनंत लोक पूर्ण होय। सो हे भगवान ! तिहारे गुण की महिमा कैसै करिये ? बहुरि हे भगवान ! तिहारी वाणी का अतिशय ऐसै, सो वाणी खिरतो तौ अनक्षररूप अर अनभै भाषा खिरे पाछै भव्य जीवां के कान के निकट ऐसी पुद्गल की वर्गणा शब्द रूप परिणवै। असंख्याते चतुर प्रकार के देव-देवांगना ये संख्यात वर्ष पर्यंत प्रश्न विचारे थे अर संख्याते मनुष्य वा तिर्यंच घना काल पर्यंत विचारे थे। तिनको आपनो-आपनी भाषा मय प्रश्न के उत्तर हुवा। अर जिन उपरांत अनेक वाक्यां का उपदेश होता भया, तिस उपरांत अनंतानंत तत्त्व के निरूपण अहला गया। ज्यों मेघ तौ अपरंपार एक जाति के जल रूप वर्षा करै, पीछै आडू वा नारेल जाति के वृक्ष अपनी सामर्थ्य माफिक जल का ग्रहण करै; आपने-आपने स्वभाव रूप परिणमावे। बहुरि दरिया द तलाब, कूवा वावडी आदि निवान[5] आपने भाजन माफिक जल का धारण

---

१ खींच के २ लाकर ३ वर्णन ४ उछली, प्रकट हुई ५ जलाशय

करै अर विशेष मेघ का जल अहला[1] जाय, त्यौं ही जिन-वानी का उपदेश जानना। बहुरि ता विषैं भगवानजी! तुम ऐसे उपदेश देते भये जे षट् द्रव्य अनादि-निधन हैं। ता विषें पांच द्रव्य अचेतन, जड हैं। जीव नाम पदार्थ चेतन द्रव्य है। ता विषें पुद्गल मूर्तिक है; अवशेष पांच अमूर्तिक हैं। या ही छहौं द्रव्य के समुदाय को लोक कहिये। जहां एक आकाश द्रव्य ही पाइये; पाच द्रव्य न पाइये, ताकूं आलोकाकाश कहिये। लोक-अलोक का समुदाय आकाश एक अनंतप्रदेशी, तीन लोकप्रमाण, असंख्यात प्रदेशी, एक-एक धर्म-अधर्म द्रव्य है। अर काल का कालाणु असंख्यात, एक-एक प्रदेश मात्र है। जीव द्रव्य एक, तीन लोक के प्रमाण असंख्यात प्रदेश के समूह अर ते जिन सौं अनंत गुणे एक प्रदेश आकाश को धरैं। पुद्गल द्रव्य अनंते हैं। सो च्यारि द्रव्य तो अनादि के थिर, ध्रुव तिष्ठै हैं। जीव, पुद्गल द्रव्य गमनागमन भी करै हैं। सो यह तीन लोक आकाश द्रव्य कै बीच तिष्ठै है। याके कर्ता और कोऊ नाहीं। ये छहूं द्रव्य अनंत काल पर्यंत स्वयं सिद्ध बने रहे हैं। अर जीवनि के रागादिक भावनि करि पुद्गल पिंड रूप प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग, च्यारि प्रकार के बंध, तासूं जीव बंधे है; वाके उदै में जीव की दशा एक विभाव भाव रूप होय है। निज स्वभाव ज्ञानानंद मय धार्या जाय है। जीव अनंत सुख का पुंज है। कर्म के उदै करि महा आकुलता रूप परिणमे है। ताके दुःख की वार्ता कहने सम-रथ नाहीं। पाप की निवृत्ति के अर्थि सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है। ताके उपदेश हे भगवान! तुम कहनहारे हो।

---

1 विफल

तुम ही संसार-समुद्र विषैं डूबते प्राणी कौ हस्तावलंब हौ। तुम्हारा उपदेश न होता, तौ ये सर्व प्राणी संसार विषैं डूबे ही रहते, तौ बडा गजब होता। परंतु तुम धन्य तिहारा उपदेश धन्य! तिहारा जिनशासन धन्य! तिहारा बताया मोक्षमारग धन्य! तिहारे अनुसारी मुन्यादिक सत्पुरुष, ताकी महिमा करने समर्थ हम नाहीं। कहां तो नर्क वा निगोदादिक के दुःख वा ज्ञान-वीर्य की न्यूनता अर कहां मोक्ष का सुख अर ज्ञान-वीर्य की अधिकता? सो हे भगवान! तिहारे प्रसाद करि यह जीव चतुर्गति के दुःख सौं छुडाय मोक्ष के सुखा नै पावै है। ऐसे परम उपगारो तुम ही हौ, तातैं हम तिहारे अर्थि नमस्कार करै हैं। बहुरि हे भगवानजी! तुम ऐसे तत्त्वोपदेश का व्याख्यान किया—यह अधो लोक है, यह मध्य लोक है, यह ऊर्ध्व लोक है; तीन वातवलय करि वेष्टित है वा तोन लोक का एक महा स्कंध है। ता विषैं अष्ट पृथ्वी वा स्वर्ग के विमान वा ज्योतिषी के विमान जड रहै हैं। बहुरि एकेंद्री जीव, एते बेइंद्री जीव एते तेइंद्री जीव, एते चौइंद्री जीव, एते पंचेंद्री जीव, एते नारकी, एते तिर्यंच, एते मनुष्य, एते देव, एते पर्याप्ति, अपर्याप्ति, एते सूक्ष्म वा बादर, एते निगोद के जीव, एते अतीत काल के समये अनंते तासौं अनंत वर्गणा स्थान गुणे जीवराशि का प्रमाण है अर तासौं अनंत वर्गणा स्थान गुणे आकाश द्रव्य का प्रदेशन का प्रमाण है। तातैं अनंत वर्गणा स्थान गुणे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य का अगुरुलघु नामा गुण ताका अविभाग प्रतिच्छेद है। तातैं अनंत अलब्ध पर्याप्त के सर्व जीवा सूं घाटि अनंत वर्गणा स्थान गुणे एक होय, अक्षर के अनंतवे भाग ज्ञान होय—ऐसा निरास

पाइये है, ताका नाम पर्यायज्ञान है। वासूं कोई कै घाटि ज्ञान त्रिलोक, त्रिकाल विषैं होय नाहीं वा ज्ञान निरावरण रहै है। वा ऊपरि ज्ञानावरणी का आवरण आवै नाहीं; जे आवरण आवै तौ सर्वज्ञान घात्या जाय, सर्व ज्ञान घातिया कर्म करि जड होय जाय, सो होय नाहीं। सो वह पर्याय-ज्ञान विषैं अविभागप्रतिच्छेद पाइये है, तातैं अनंत वर्गणा स्थान गनै, जघन्य क्षायिक सम्यक्त्व के अविभाग-प्रतिच्छेद पाइये है, सो ऐसा भी उपदेश तुम देते भये। बहुरि एक सुई की अनी की डागला[1] ऊपरि असंख्यात लोक प्रमाण स्कंध पाइये है। एक-एक स्कंध विषैं असंख्यात लोक प्रमाण अंडर पाइये है। एक-एक अंडर विषैं असंख्यात लोक प्रमाण आवास पाइये है। एक-एक आवास में असंख्यात लोक प्रमाण पुलवी पाइये है। एक-एक पुलवी विषैं असंख्यात लोक प्रमाण शरीर पाइये हैं। एक-एक शरीर विषैं अनंत काल के समयां सूं अनंतानंत वर्गस्थान गुणा जीव नाम पदार्थ पाइये है। एक-एक जीव के अनंतानंत कर्म-वर्गणा लागी हैं। एक-एक वर्गणा विषैं अनंतानंत परमाणु पाइये हैं। एक-एक परमाणु के साथ अनुक्रम रूप विस्रसोपचये सो जीवराशि सौ अनंतानंत परमाणु पाइये हैं। एक परमाणु विषैं अनंतानंत गुण वा पर्याय पाइये हैं। एक-एक गुण वा पर्याय के अनंतानंत विभागच्छेद हैं। ऐसी विचित्रता एक सुई की अनी की डागला ऊपरि निगोद राशि के जीवां विषैं पाइये है, सो ऐसे जीव, ऐसे परमाणु वा करि वेढता[2] वा वर्गणा करि आच्छादित, जीवां सूं तीन लोक घृत का घडा

1 अग्र भाग 2 वेष्टित

बत् अतिशय करि मढ़्या है। त्यौं एक निगोदिया का शरीर माहिला जीव, ताके अनंतवे भाग भी निरंतर मोक्ष जिन करि तीन काल में घटे नाहीं--ऐसा उपदेश भी तुम देते भये। बहुरि वेई सुई की अनी का डागला ऊपरि आकाश ते पाइये है। ता विषैं अनंतानंत परमाणु वापुली तिष्ठै हैं, अनंता स्कंध दो-दो परमाणु वाका तिष्ठै है, ऐसे है। एक-एक परमाणु, अधिक-अधिक स्कंध, तीन परमाणु, वाका स्कंध सौं लगाय अनंत परमाणु, वाका स्कंध पर्यंत अनंत जाति के स्कंध, सो भी अनंतानंत सुई के अग्र भाग विषैं भी अनंत गुणा अनंत पर्याय, अनंत अविभाग-प्रतिच्छेद, तीन काल संबंधी उत्पाद, व्यय, ध्रुव की अवस्था सहित, एक समय विषैं हे जिनेंद्रदेव ! तुम ही देखे अर तुम ही जाने अर तुम ही कहते भये। अर या परमाणु वाके परस्पर रूखा-सचिकणा द्वयणुकादि वा तीना हो दो-दो अंश की अधिकता ये संग करि संयुक्त बंध विषम जातिबंध; ऐसे परमाणु का परस्पर बंधवा नै कारण रूखा-सचिकणा अंसां का समूह ताकी परस्परता नै लिया बंधने का कारण वा अकारण का सरूप भी तुम्हारे ही ज्ञान विषैं झलकै अर दिव्यध्वनि करि कहते भये। सो हे जिनेंद्रदेव ! तेरो ध्यान रूपी आरसो कैसोक बडो है ? जाकी महिमा कौलौं कहिये ? बहुरि हे भगवान ! हे कलानिधि ! हे दयामूर्ति ! हम कहा करें ? प्रथम तो हमारा स्वरूप हम कौ दीसै नाहीं अर हम कौ दुःख देने वाला दीसै नाहीं अर वाकी हम कहा कहैं ? अपराध पूर्वे किये, ता करि हमारे ताईं कर्म तीव्र दुःख देहैं अर ये कर्म किसी बात करि उपशांत होय, सो भी हमको दीसै नाहीं। अर हमारा निज स्वरूप कहा है, कैसा हमारा ज्ञान है, कैसो

हमारा दर्शन है, कैसा हमारा सुख-वीर्य है वा हम कौन हैं, हमारा द्रव्य-गुण-पर्याय कहा है ? पूर्वे हम किस क्षेत्र विषैं किस पर्याय को धरे तिष्ठें थे ? अब इस क्षेत्र, इस पर्याय विषैं कौन शख्स नै यहां आनि प्राप्त किये अर अब हम कहा कर्तव्य करै हैं, कौन बात रूप परिणवे हैं, सो याका फल आछ्या[1] लागैगा कि बुरा लागेगा, फेरि हम कहां जाहिगैं[2], कैसी-कैसी पर्याय धरेंगे, सो हम कछु जानते नाहीं । तौ हमारे सुखी होने का उपाय ज्ञान बिना कैसे बने ? तौ हमारे एता ज्ञान का क्षयोपशम होतै भी परम सुखी होने का उपाय भासै नाहीं, तौ एकेंद्री, अज्ञानी, तिर्यंच जीव वा नारकी महा क्लेश करि पीडित्त, जाके आंखि फरकने मात्र निराकु-लता नाहीं, तौ वाका जीव नैं कहा दूसण ? परंतु धन्य है आपकी दयालुता ! अर धन्य है आपका सर्वज्ञ ज्ञान ! धन्य है आपका अतिशय ! धन्य है आपकी ठीमर[3] बुद्धि ! धन्य है आपकी प्रवीणता वा विचक्षणता ! सो आप दया बुद्धि करि सर्व तरह वस्तु को स्वरूप भिन्न-भिन्न दिखायो-आत्मा को निज स्वरूप अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य को धनी आप सादृश्य बतायो अर पर-द्रव्य सौं रागादिक भावां को उलझाव बतायो, राग-द्वेष-मोह भावन करि कर्मनि सूं जीव बंधते बताये, पीछै वाके उदय-काल विषैं जीव महादुखी होते दिखाये, वीतराग भावां करि कर्मनि सूं निर्बंध, निरास्रव होना दिखाया, वीतराग भावां सूं ही पूर्वे संचित दीर्घ काल के कर्म ताकी निर्जरा होनी बताई, निर्जरा के कारण करि निज आत्मा यथाजात केवलज्ञान, केवलसुख होना प्रगट दिखाया, ताही का नाम मोक्ष कहौ वा हित

---

१ अच्छा २ जायेंगे ३ परम पवित्र

कह्यो वा भिन्न कहो। अर नारक विषैं जाय तिष्ठे हैं, सो वा क्षेत्र बिषैं मोक्ष की सिद्धि होती, तौ सर्व सिद्धां की अवगाहना विषैं अनंत पांचौ थावर, सूक्षम बादर पाइये ते महादुखी क्या नैं होते ? तातै निर्भय करि आपना ज्ञानानंद स्वभाव घात्या गया छै, वाही का नाम बंध था। सो ज्ञानावरणादिक कर्म के अभाव होते स्फुरायमान हुआ; जैसे सूर्य का प्रकाश बादलां करि रुकि रह्या था। बादलां के अभाव होते संते पूर्ण प्रकाश विकसायमान हुवा अर ऊर्ध्व जाय तिष्ठ्या, सो जीव का ऊर्ध्व गमन स्वभाव है, तातैं ऊर्ध्व गमन किया। अर आगै धर्म द्रव्य नाहीं, तातैं धर्म द्रव्य के कारण विना आगै नाहीं गमन किया, वहां ही तिष्ठै, सो अनंत काल पर्यंत सासता परम सुख रूप तीन लोक के नेत्र वा तीन काल लोकालोक के देखने रूप ज्ञान-दर्शन नेत्र, अनंत बल-अनंत सुख के धारक महाराज तीन लोक करि तीन काल पर्यंत पूजि तिष्ठसी। सो हे भगवान! ऐसे उपदेश भी तुम ही देते भये। सो तेरे उपकार की महिमा हम कहां लग कहैं ? अर कहा तिहारी भक्ति, पूजा, वंदना, स्तुति करैं ? तातैं हम सर्व प्रकार करने कौ असमर्थ हैं। अर तुम परम दयाल पुरुष हो, तातैं हम पर क्षमा करो। ये मेरे ताईं बडा असंभव फिकर है अर हम तिहारी स्तुति, महिमा करते लजायमान होते हैं; पणि हम कहा करैं ? तुम्हारी भक्ति मो ढिग[1] वरजोरी वाचाल करै है अर तिहारे चरणां विषैं नम्रीभूत करै है। तातैं तिहारे चरणा नैं बारंबार नमस्कार होहु। ये ही चरण जुगल मौनै संसार-समुद्र विषैं डूबता मैं राखौ। बहुरि अग्निकाय के

---

१ पास

जीव असंख्यात लोक प्रदेश प्रमाण हैं। तातैं असंख्यात लोक वर्गस्थान गये, निगोद का शरीर प्रमाण है। तातैं असंख्यात लोक वर्गस्थान गये; जोगां के अविभागप्रतिच्छेद है, सोभी असंख्यात का ही भेद है। सो हे भगवानजी ! ऐसा उपदेश भी तुम ही देते भये। बहुरि ये असंख्यात द्वीप, समुद्र हैं, ये अढाई द्वीप प्रमाण मनुष्य क्षेत्र हैं; ताके भी निरूपण तुम ही किये। जो ज्योतिषी मंडल हैं, ताके प्रमाण जुदे-जुदे द्वीप-समूह तुम ही कहे। बहुरि पुद्गल परमाणु का प्रमाण, वा द्वयणुक स्कंध का प्रमाण, महास्कंध पर्यंत तुम ही कही। इत्यादि अनंत द्रव्य के तीन काल संबंधी द्रव्य, गुण, पर्याय वा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सहित और स्थान लिया अनंत विचित्रता एक समय विषैं लोक की तुम ही देखी। सो तुम्हारा ज्ञान की महिमा अद्भुत, तुम्हारे ही ज्ञानगम्य है। तातैं तुम्हारा ज्ञान को फेरि भी हमारा नमस्कार होहु। हे भगवानजी ! तुम्हारी महिमा अथाह है। तुम्हारे गुण की महिमा देखि-देखि आश्चर्य उपजै है, आनंद के समूह उपजै हैं, ता करि हम अत्यंत तृप्त हैं। बहुरि हे भगवानजी ! दया-अमृत करि भव्य जीवन को तुम ही पोषो हो, तुम ही तृप्त करो हो। तुम्हारे उपदेश बिना सर्व लोकालोक शून्य भया; ता विषैं यह समस्त जीव शून्य होय गये हैं। सो अब तुम्हारे वचन रूप किरण कर अनादि काल को मोह-तिमिर मेरा विलै गया। अब मोनै तिहारे प्रसाद करि तत्त्व-अतत्त्व का स्वरूप प्रतिभास्या, ज्ञानलोचन मेरे उघरे; ताके सुख की महिमा न कही जाय। तीसूं हे भगवानजी ! संसार-संकट काटिवाने विना कारण परमवैद्य अद्वितीय दीसो हो। तातैं तिहारे चरणारविंद सौं बहुत अनुराग वर्तै है। सो हे

भगवान ! भव-भव के विषैं, पर्याय-पर्याय के विषैं एक तिहारे चरणन की सेवा ही पाऊं। वे पुरुष धन्य हैं जो तिहारा चरणा नै सेवै हैं, तिहारे गुणां की अनुमोदना करै हैं, अर तुम्हारे रूप कौ देखै हैं, तुम्हारे गुणानुवाद गावै हैं, तुम्हारा वचननि का नाम सुनै हैं, वा मन विषैं निश्चय करि राखै हैं, वा तुम्हारी आज्ञा सिर ऊपर राखै हैं। तुम्हारे चरणो विना और कौ नाहीं नमै हैं, तुम्हारा ध्यान करि अन्य ध्यान नाहीं करै हैं, तुम्हारे चरण पूजै हैं, तुम्हारे चरणां अर्घ देय है, तुम्हारो महिमा गावै है। तुम्हारे चरणतला को रज वा गंधोदक मस्तग आदि, नाभि ऊपर उत्तम अंग, ता विषैं लगावे हैं। तुम्हारे सन्मुख खडे होयहस्त-अंजुली जोडि नमस्कार करै है, अर तुम ऊपर चमर ढोलै हैं, अर छत्र चह्रोडै[1] हैं, ते ही पुरुष धन्य हैं, वाकी महिमा इंद्रादिक देव गावै हैं। वे कृतकृत्य हैं, वे ही पवित्र हैं, वे ही मनुष्य भव का लाहा[2] लिया, जन्म सफल किया, भव-समुद्र कौ जलांजलि दिया। बहुरि हे जिनेंद्रदेव ! हे कल्याणपुंज ! हे त्रिलोक-तिलक ! अनंत महिमा लायक, परम भट्टारक, केवलज्ञान-केवलदर्शन जुगल नेत्र के धारक, सर्वज्ञ, वीत-राग त्वं जयवंता प्रवर्तो, तुम्हारी महिमा जयवंती प्रवर्तो, तुम्हारा राज्य-शासन जयवंता प्रवर्तो। धन्य ! यह मेरी पर्याय सोई पर्याय विषैं तुम सारिखे अद्वितीय पदार्थ पाये। ताकी अद्‌भुत महिमा कौन कौ कहिये ? अर तुम ही माता, तुम ही पिता, तुम ही बांधव, तुम ही मित्र, तुम ही परम उपगारी, तुम ही छह काय के परिहारी, तुम ही भव-समुद्र

---

१ चढ़ावे २ लाभ ३ प्रमाद

विषैं पडते प्राणी को आधार हो। और कोई त्रिकाल में नाहीं, आवागमन सौ रहित करिवा नै तुम ही समर्थ हो। मोह-पर्वत का फोडिवानै तुम ही वज्रायुध हो, घातिया कर्म का चूरिवानै तुम ही अनंत बली हो। हे भगवानजी! तुम दोऊ हाथ लांबा नाहीं पसार्या है, भव्य जीवा नै संसार-समुद्र माहीं सौं काढिवा नै हस्तावलंबन दिया है। बहुरि हे परमेश्वर! हे परम ज्योति! हे चिद्रूप मूर्ति! आनंदमय, अनंत चतुष्टय करि मंडित, अनंत गुणां करि पूरित, वीत-राग मूर्ति, आनंद रस करि आह्लादित, महा मनोज्ञ, अद्वैत, अकृत्रिम, अनाधि-निधन, त्रिलोक-पूज्य कैसे शोभे हैं? ताका अवलोकन करि मन अरु नेत्र नाहीं तृप्त होय हैं। बहुरि हे केवलज्ञान सूर्य! षट्द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा। बीस प्ररू-पणा, चौबीस ठाणा, बारा व्रत का भेद, ग्यारा प्रतिमा का भेद, दशलक्षण धर्म, षोडश भावना, बारा तप, बारा संयम बारा अनुप्रेक्षा, अठाईस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुण, तीन सै छत्तीस मतिज्ञान का भेद, अठारा हजार शील का भेद, साढे सैंतीस हजार परमाद के भेद, अरहंत के छियालीस गुण, सिद्ध के आठ गुण, आचार्य के छत्तीस गुण, उपाध्याय के पच्चीस गुण, साधु के अट्ठाईस गुण, श्रावक के बारह गुण, सम्यक्त्व के आठ अंग-आठ-गुण-पच्चीस मल-दोष, मुनि के आहार के छियालीस दोष, बाईस अंतराय-दश मल-दोष, नवधा-भक्ति, दाता के सप्त गुण, च्यारि प्रकार आहार, च्यारि प्रकार दान, तीन प्रकार पात्र, एक सौ अडतालीस कर्मप्रकृति, बंध, उदै, सत्ता, उदीरणा, आस्रव

सत्तावन, तरेपन क्रिया[1] इनकी षट् त्रिभंगी सौं पाप प्रकृति अडसठ, पुण्य प्रकृति[2] घातिया की ४७;[3] इकवीस सर्व—घातिया[4], छब्बीस देश घातिया,[5] क्षेत्र विपाकी च्यारि[6]

---

१ गुण-वय-तव-सम-पडिमा, दाणं-जलगालणं च अणथमियं ।
दंसण-णाण-चरित्तं, किरिया तेवस्स सावया भणिया ॥

अर्थ—८ मूल गुण, १२ व्रत, १२ तप, १ समता भाव, ११ प्रतिमा, ४ दान, १ जल गालन, १ अंथऊ (सन्ध्या के सूर्यास्त से दो घड़ी पहले भोजन करना), १ दर्शन, १ ज्ञान, १ चारित्र ये ५३ क्रियाएँ श्रावक की कही गई हैं ।

२ पुण्य रूप प्रशस्त प्रकृतियाँ ६८ हैं—सातावेदनीय, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु, उच्च गोत्र, मनुष्यद्विक २, देवद्विक २, पंचेन्द्रिय जाति १, शरीर ५, बन्धन ५, संघात ५, अंगोपांग ३, शुभ स्पर्श-रस-गंध-वर्ण २०, सम चतुरस्र संस्थान, वज्रवृषभनाराच संहनन, अगुरुलघु, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशः कीर्ति निर्माण, तीर्थंकर ये भेद की अपेक्षा से प्रशस्त कही गई हैं ।

३ घातिया प्रकृति सैंतालीस हैं—ज्ञानावरणीय ५, दर्शनावरणीय ९, मोहनीय २८, अन्तराय ५ । ये सभी प्रकृतियाँ अप्रशस्त ही हैं ।

४ सर्वघातिया प्रकृति २१ हैं—केवलज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय ६ (केवलदर्शनावरणीय, निद्रा ५), कषाय १२ (संज्वलन की ४ छोड़ कर), मिथ्यात्व ये २० प्रकृतियाँ बन्ध की अपेक्षा से तथा सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति सत्ता और उदय की अपेक्षा ज्ञातव्य हैं ।

५ देश घाति प्रकृतियाँ २६ हैं—ज्ञानावरणीय की ४ (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय), दर्शनावरणीय की ३ (चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन), सम्यक्त्व प्रकृति, संज्वलन कषाय ४, नोकषाय ९, अन्तराय प्रकृति ५

६ क्षेत्र विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं—नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी ।

भव विपाकी च्यारि,[१] जीव विपाकी[२] ७८; पुद्गल विपाकी[३] ६२, दस करण चूलिका,[४] नव प्रश्नचूलिका, पांच प्रकार भागाहार, स्थिति-अनुभाग-प्रदेशबंध, इत्यादि इनका भिन्न-भिन्न स्वरूप निरूपण करते भये अर उपदेश देते भये। बहुरि प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, च्यारि सुकथा, च्यारि विकथा, तीन सै तरेसठ कुवाद के धारक, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, यंत्र, तंत्र, पंच वा आठ प्रकार निमित्त ज्ञान, न्याय-नीति, छन्द, व्याकरण, गणित, अलंकार, आगम, अध्यात्म शास्त्र का निरूपण भी तुम ही करते भये। चौदह धारा, तेईस वर्गणा, ज्योतिष-व्यंतर-भवनवासी-कल्पवासी, सप्त नारकी तिनका आयु-बल-पराक्रम, सुख-

---

१ भव विपाकी प्रकृतियाँ चार हैं—नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु।

२ जीव विपाकी प्रकृतियाँ ७८ हैं—घाति कर्म की प्रकृति ४७, वेदनीयकी २, गोत्रकर्म की २, नामकर्म की २७- तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशः कीर्ति, अयशः कीर्ति, -त्रस, स्थावर, प्रशस्त-अप्रशस्त, विहायोगति, सुभग, दुर्भग, गति ४, एकेन्द्रियादि जाति नाम कर्म ५।

३ पुद्गल विपाकी प्रकृतियाँ बासठ हैं—शरीर की ५, बन्धन की ५, संघात की ५, संस्थान की ६, अंगोपांग की ३, संहनन की ६, स्पर्श की ८, रस ५, गन्ध की २, वर्ण की ५, निर्माण, आताप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक, साधारण अगुरुलघु, उपघात, परघात।

४ बन्ध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्व, उदय, उपशम, निधत्ति, निकाचना ये दश करण (अवस्था) प्रत्येक प्रकृति के होते हैं।—गोम्मटसार कर्मकाण्ड गा. ४३७

दु:ख का विशेष निरूपण तुम ही किया। अढाई द्वीप क्षेत्र कुलाचल, द्रह, कुंड, नदी, पर्वत, वन-उपवन क्षेत्र की मर्यादा, आर्य-अनार्य, कर्मभूमि-भोगभूमि की रचना, ताके आचरण, अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल को फिरनि, पल्य-सागर, आदि आठ अर संख्यात-असंख्यात-अनंत के इकईस भेद, पंच प्रकार परावर्तन, इनका स्वरूप भो तुम ही कहते भये। सो हे भगवान ! हे जिनेंद्रदेव ! हे अरहंतदेव ! हे त्रिलोक-गुरु ! तुम्हारा ज्ञान कैसा है ? एते ज्ञान तुम्हारे एक समय विषें कैसे उत्पन्न भया ? मेरे या बात का बडा आश्चर्य है। तुम्हारे ज्ञान के अतिशय की महिमा हजार जिह्वा करि न कही जाय। मैं तो एक ज्ञेय नै एकै काल स्थूल पणे नीठि[१] जाणि सकूं। तातैं हे दयालु मूर्ति ! तुम सारिखा हम कौ भी कीजिये। मेरे ज्ञान को बहुत चाह है। तुम परम दयालु हो, मन वांछित वस्तु का देनहारा हो, तातैं मेरा मनोरथ सिद्ध कीजिये, या बात की ढील न करोगे। हे संसार-समुद्र तारक मोह--लहरि के विजयी ! घातिकर्म के विध्वंसक ! कामशत्रु के नाशक! संसारी लक्ष्मी सौं विरक्त वीतरागदेव ! आपनैं सर्व प्रकार सामर्थ्यवान जानि तारण-विरद आपको सुनिहू, आपका चरणां को सरणि आयो हूं। सो हे जगत--बंधव ! हे माता-पिता ! हे दया-भण्डार ! मोनें चरणां को सरण आयो रक्ष-रक्ष ! मोह-कर्म तै छुडाय। कैसा छै ये मोह कर्म ? लोक का समस्त जोवां नै आपका पौरुष करि ज्ञानानंद पराक्रम आदि समस्त जोवां का स्वाभाविक निधि

---

१ भलीभांति

लक्ष्मी की आनि शक्तिहीन करि, जेल में नाखि दिये।
केईक तो एकेंद्री पर्याय विषैं नाख्या सुनियें छै, घोरान घोर
दुःख पावे छै। ताके दुःख के अर्थ को तो ज्ञानी पुरुषां नै
भासै छै; वचन करि न कह्या जाय। अर केई जीवां नै
बे इंद्री पर्याव विषैं महा दुःख दिया है, सो ताका दुःख
प्रत्यक्ष इंद्री गोचर आवै है। अर तुम सिद्धांत विषैं दुःख
का निरूपण किया, तातैं तेरा वचन उनमान प्रमाण करि
सत्य जान्या। बहुरि केई जीव नर्क विषैं पडे-पडे बहुत
बिलबिलावैं हैं, रोवे हैं, हाय-हाय शब्द उच्चार करै हैं।
आप तो अन्य को मारै है, औरनि करि आप हण्यो जाय है।
ताहि छेदन-भेदन--मारन-ताडन-शूलीरोपण ये पंच प्रकार के
दुःख करि अत्यन्त पोडित भूमि को दुस्सह बेदना करि परम
आकुलताई है। कोटि रोग करि दग्ध होय गया है--ऐसा
दुःख सहवानै नारकी ही समर्थ है। कायर है, दीर्घायु-बल
सागरा पर्यंत भोगै है। ऐसै मोह दुष्ट कै वशीभूत हुवा
फेरि--फेरि मोह नैं सेवै है, मोह नैं भला मानै है, मोह की
सरण रह्या चाहै है अर परम सुख नै वांछै है। सो यह
भूलि कैसी ? यह भूलि तुम्हारे उपदेश बिना वा तुम्हारे
गुण मानै बिना तुम्हारी आज्ञा सिर ऊपरि धारे बिना
त्रिकाल, त्रिलोक विषैं जे मोहकर्म दुःख का कारण जानैंजी,
तिमकै नाहीं। अर-मोह नैं जीत्या बिना दुःख की निर्वृत्ति
नाहीं, निराकुलता सुख की प्राप्ति नाहीं। अर मो औगुण
देसी का कहा देखना ? मैं तो औगुण
का पुंज ही अनादि का बन्या हूँ। सो मेरा औगुण देखो,
तो परम कल्याण की सिद्धि होनी नाहीं। औगुण ऊपरे गुण
तुम सारिखे सतपुरुष ही करै हैं, कुदेवादिक नीच पुरुष हैं,
तै गुण ऊपरि औगुण ही किया। मैं तो वानै घणा ही

आछ्या जानि सेया छा, बंद्या छा, स्तुति करी छी; ती भी मौनै अनंत संसार विषै रुलाया। ताका दुःखां की वार्ता वचन करि न कही जाय। सो कैसे हैं सत्पुरुष अर नीच पुरुष ? ताका दृष्टांत दीजिये है। जैसे पारस नै लौह का घण फोडै, अर वे वानै सुवर्णमयी करैं है अथवा चंदन नै घसै ज्यौं-ज्यौं सुवास ही देय, साठे ने ज्यौं-ज्यौं पेलै त्यौं-त्यौं अमृत ही देहै। जल आप बलै अर दुग्ध कौ बचाय देय, सो ऐसा याका जाति-स्वभाव ही है; काहू का मेट्या मिटै नाहीं। सर्प नै दुग्ध पाइये, परन्तु वह वाके प्राण ही को नाश करै, सण[1] आपना चाम उघरावे अर अन्य को बांधै, मक्षिका आपनै प्राण तजे, पणि अन्य पुरुष को बाधा उपजावै, सो या सादृश्य कुदेवादिक वे दुर्जन पुरुष, ताका स्वभाव जानना; याका स्वभाव मेट्या मिटै नाहीं। स्वभाव नै कोई औषधि नाहीं, मंत्र-जंत्र नाहीं, तातैं स्वभाव तर्क नासे। ऐसे जिनेन्द्रदेव ! तुम्हारे प्रसाद करि कुदेवादिक का स्वरूप भलीभाँति जान्या। सो अब मैं विषधरवत दूरि ही तै छोडो हौं। धिक्कार ! होहु भिष्ट पुरुषानै अर वाका आचरण नै अर वाके सेयवानै अर म्हारो मूल पूर्वलो अवस्था नै धिक्कार होहु। अर अब मैं जिनेन्द्र देव पाया, ताकी सरधा आई सो मेरी बुद्धि धन्य है ! अर मैं धन्य हौं ! मेरा जन्म सफल भया, मैं कृतकृत्य भया, मैं कारज करणा छा सो किया। अब कार्य कछु करणा रह्या नाहीं—संसार के दुःखा नै तीन अंजुली पानी का दिया। ऐसा तीन लोक, तीन काल

---

१ सन

विषैं पाप कौन हैं जो श्रीजी का दर्शन तैं, पूजा तैं, ध्यान तैं, स्मरण तैं, स्तुति तैं, नमस्कार तैं, आज्ञा तैं, जिन-शासन का सेवन तैं जाय नाहीं। ज्यों कोई अज्ञानी, मूर्ख, मोह करि ठगी गई है बुद्धि जाकी, सो ऐसे अर्हंतदेव कौ छोडि कुदेवादिक नैं सेवै है वा पूजै है अर-मनवांछित फल नैं चाहै है, सो मनुष्य नाहीं, वे राक्षस हैं। या लोक विषैं वा परलोक विषैं वाका बुरा होता है; जैसे कोई अज्ञानी अमृत नैं छोडि विषय-विष नै पीवै है, चिंतामणि छांडि कांच का खंड नै पल्ले बांधै, कल्पवृक्ष काटि धतूरा बोयै; त्यौं ही मिथ्यादृष्टि श्री जिनदेव छांडि कुदेवादिक का सेवन करै है। घणी कहा कहिये ? बहुरि हे भगवानजी ! ऐसी करिये गर्भ-जन्म-मरण का दुःख तातै निर्वृत्ति करो। अब मेरे दुःख नाहीं सह्या जाय। वाका स्मरण किया ही दुःख उपजै, तौ सह्या कैसे जाय ? तातैं कोडि बात की एक बात है—मेरा आवागमन निवारिये, अष्ट कर्म तैं मोक्ष करिये। केवल ज्ञान, केवल दर्शन, केवल सुख, अनन्त वीर्य, यह मेरा चतुष्टय स्वरूप घात्या गया है। सोई घातिया का नाश तैं प्राप्ति होऊ; मेरे स्वर्गादिक कांचाह नाहीं। मैं तौ परमाणु पर्यंत का त्यागी हूँ। मैं त्रिलोक विषैं स्वर्ग, चक्रवर्ती, कामदेव, तीर्थंकर पद पर्यंत चाहता नाहीं। मेरे तौ मेरे स्वभाव की वांछा है, भावे जैसे स्वभाव की प्राप्ति होहु। **सुख छै सो आत्मा का स्वरूप भाव है अर मैं एक सुख ही का अर्थी हूं। तातैं निज स्वरूप की प्राप्ति नै अवश्य चाहूं हूं।** तुम्हारे अनुग्रह विना वा सहकारी विना ये कार्य सिद्ध होना नाहीं। और

त्रिलोक, त्रिकाल विषैं तुम विना सहकारी नाहीं, तातैं और सर्व कुदेवादिक नै छांडि तुम्हारे ही सरणे नै प्राप्ति भया हूं । मेरा कर्तव्य था, सो तो मैं करि चुक्या, अब कर्तव्य एक तुम्हारा ही रह्या है । तुम तरणतारण विरद कौ धरया हौ, सो आपना विरद राख्या चाहै, तो मोनै अवश्य तारो । त्यौं ही तारणे ते ही तिहारी कीर्ति त्रिलोक में फैली है, आगे अनंतकाल पर्यंत रहसी । सो हे भगवान ! आप अद्वैत व्रत धरया हौ । आप अनंता जीवां नै मोक्ष दीनो ! अंजन चोर सारिखा अधम पुरुष तानै तौ शीघ्र ही अल्पकाल में मोक्ष नै प्राप्त किया और भरत चक्रवर्ति सारिखा बहुत परिग्रही तानै एक अंतमुहूर्त मैं केवलज्ञान दिया । श्रेणिक महाराज जिनधर्म का अविनयी बौधमती मुन्या का गला में सर्प डारयौ, ताके पाप करि सातवां नर्क का आयु बांध्या, ताकौ तौ महरबानगी करि तुम एक भवतारी करि दिये हैं । इत्यादि घना ही अनंत जीवां नै तारया सो अबै प्रभुजी ! मेरी वेर क्यौं ढील करि राखी है, सो कारण कहा हम न जानैं ? तुम तौ वीतराग परम दयालु कहावौ हौ, तो मेरी दया क्यौं नहीं आवै है ? मेरी वेर ऐसा कठोर परिणाम क्यों किया है ? सो आपनै यह उचित नाहीं । अर मैं घणा पापी था, तौ भी तुम पासि पूर्वे ही खिमा कराई, तातैं अब मेरा अपराध भी क्यौं रह्या नाहीं ? तासूं अब नेम करि ऐसा जानूं हूं, मेरे थोडे भव बाकी रहै हैं, सो यह प्रताप एक तुम्हारा है । सो तुम्हारे जस गावने करि कैसे तृप्त हूजिये ? सो धन्य तुम्हारा केवल ज्ञान ! धन्य तुम्हारा केवल दर्शन ! धन्य तुम्हारा केवल सुख ! धन्य तुम्हारा अनंतवीर्य ! धन्य तुम्हारी परम वीतरागता ! धन्य

तिहारी उत्कृष्ट दयालुता ! धन्य तुम्हारा उपदेश ! धन्य तुम्हारा जिनशासन ! धन्य तुम्हारा रत्नत्रय धर्म ! धन्य तुम्हारा गणधरादि मुनि, श्रावक, इंद्र, आदि अव्रती सम्यक् दृष्टि देव-मनुष्य ! सो तिहारी आज्ञा सिर परि धारै है, तुम्हारी महिमा गावै हैं। धन्य महिमा तुम्हारी कहा लौं कहिये ? तुम जयवंत प्रवर्तो अर हम भी तिहारा चरणां निकट सदैव तिष्ठैं; महा प्रीति सौ भी जयवन्त प्रवर्तें।

आगै फेरि और कहिये। बहुरि मार्ग में जेती बार जिन-मंदिर आगै होय, निकलिये, तेती बार श्रीजी का दर्शन किया बिना आग्रै नाहीं जाइये। अथवा जिन-मंदिर कै निकटि आपका समागम करना पड़ै तो वेती वार दर्शन का साधन सधै नाहीं; तो बाह्य सौ नमस्कार ही करि आगै जाना, नमस्कार कर्‌या बिना न जाना। अर मंदिर विषैं जेतीवार आमू-सामू ही गमन करता प्रतिमाजी दिष्टि पड़ै, तेती वार दोऊ हस्त मस्तग कै लगाय नमस्कार करिये। बहुरि असवारी परि चढि आये होय, तौ जिन मंदिर दिष्टि परै, तब तैं असवारी तै उतरि पयादा[१] गमन करना। ऐसैं नाहीं कि असवारो ऊपरि चढ्‌या हो जिन-मन्दिर पर्यंत चल्या जाय; यामें अविनय बहोत होय है। **अविनय सोई महापाप है अर विनय सोई धर्म है। देव, धर्म, गुरु का अविनय उपरांत अर कुदेवादिक का विनय उपरांत तीन लोक, तीन काल विषैं पाप हुवो न होसी;** त्यौं ही यासौं उलटा देव, गुरु, धर्म का विनय उपरांत

---

१ पैदल, नंगे पाव

अर कुदेवादिक की अवहेलना-अवज्ञा उपरांत धर्म तीन लोक, तीन काल विषैं हुवा न होसी। तीस्यौं देव, गुरु; धर्म का अविनय का विशेष भय राखना। जो जाका चूक्या[1] ने कहूं तैं ही ठिकाना नाहीं। घणी शिक्षा कहा लिखिये ? कोडिवास[2] किया का सा फल 'एक दिन जिन-दर्शन किये का होय है, अर कोडि उपवास किया बराबर एक दिन पूजन का फल होय है। तातैं निकट भव्य जीव हैं, ते जे श्रीजी का नित दर्शन-पूजन करौ। दर्शन किये बिना कदाचि[3] भोजन करना उचित नाहीं, अर दर्शन किया बिना कोई मूढधी, शठ, अज्ञानी रोटो खाय है, सो वाका मुख सेत[4] खाता बराबर है अथवा सर्प का बिल बराबर है। जिह्वा है सोई सर्पिणी है, मुख है सो ही बिल हैं। अर कुभेषी, कुलिंगी जिनमन्दिर विषैं रहते होय, तौ वा मंदिर विषैं भूल कदाचि जावे नाहीं। वहां गया सरधान रूपी रत्न जातो रहै। तहां विशेष अविनय होय, सो अविनय देखने करि महापाप उपजै। जहां कुभेषी रहै, तहां श्रीजी का विनय का अभाव है। फल है सो तौ एक श्रीजी के विनय ही का है। विनय सहित तो एक बार ही श्रीजी का दर्शन किये का महा पुण्य बंध होय है। अर अविनय सहित तो घनी वार दर्शन करै, त्यौं-त्यौं घणा पाप उपजै है। आपणा माता-पिता का कोई दुष्ट पुरुष अविनय करता होय, अर मो करि आपनी सामर्थ्य होय, तौ वाका निग्रह करि, आपना माता-पिता नै छुडाय ल्यावै, वाका विशेष विनय किया। अर आपनी सामर्थ्या न होय,

---

१ मूल की २ उपवास ३ कभी भी ४ मद्दद

तो वा मारग न जाइये, वाका बहोत दरेग करिये; वैसे ही श्री वीतरागदेव का जिनबिंब का कोई दुष्ट पुरुष अविनय करै, तौ वाका निग्रह करि, जिनबिंब का विशेष विनय करिये। अर आपनी सामर्थ्य न होय, तौ वाका अविनय के स्थान कदाचित न जाइये। जहां कुभेषी रहे हैं, तहां घोरान घोर अनेक तरह का पाप होय है। वहां जाने वारे कुभेष्यां का शिष्य गृहस्थ भी वाका उपदेश पापी वा सारिखे ही है। अज्ञानी, मूढ, तीव्र कषायो वज्र मिथ्याती होय है। तातैं वाका संसर्ग दूरि ही तै तजना उचित है। जो पूर्वे हलका मिथ्या कषाय होय, तौ तहां गये अपूठा तीव्र होय जाय तौ धर्म कहा का होय ? धर्म का लुटेरा पासि कोई धर्म चाहै है, सो वह कोई वावला होय गया है; जैसे सर्प नै दूध पाय वाका मुख सौ अमृत चाहै है तो अमृत की प्राप्ति कैसे होय ? विष की ही प्राप्ति होय; त्यौं ही कुभेष्यां का संसर्ग सौं अधर्म ही की प्राप्ति होय। वे धर्म का निंदक हैं, परम बैरी हैं, अधर्म के पोषने वारे हैं, मिथ्यात को सहायक हैं। जे एक अंश मात्र प्रतिमाजी का अविनय होय, तौ वाका कहा होनहार है ? सो हम न जानें, सर्वज्ञ ही जानै हैं। प्रतिमाजी के केसरि-चंदन लगावना अयोग्य है, वाका नाम विलेपन है; सौ अनेक शास्त्रां में कह्या है। अर भवानी, भैरो आदि कुदेवादिक की मूर्ति आगे स्थापि वाका पूजन करै अर नमस्कार करैं, अर प्रतिमाजी की गिणती नाहीं। अर ये सिंघासन ऊपरि बैठि जगत विषें पुजावै हैं। अर मालोन सै अणछाण्या पाणी मंगाय मैला चीरडा (वस्त्र) सौं प्रतिमाजी को पखाल करै। अर

जेता पुरुष-स्त्री आवैं, तेता सर्व बिषय-कषाय की वार्ता करैं; धर्म का लवलेश भी नाहीं। इत्यादि अविनय का वर्णन कहां तक करिये? सो पूर्वे विशेष वर्णन किया है ही अर प्रत्यक्ष देखने में आवै है, ताका कहा लिखिये? स्वयंभू (सुभौम) चक्रवर्ती वा हनुमानजी की माता अंजना अर श्रेणिक महाराज, या नवकार मंत्र, वा प्रतिमाजी का वा निर्ग्रंथ गुरु का तनक-सा अविनय किया था, सो वाके कैसा पाप उपज्या? अर मींडक[1] वा शूद्र माली की लडकी श्रीजी का मन्दिर की देहली परि पुष्प चढावै थी, वा फूल चढावे का तनक-सा भाव किया था, सो स्वर्ग पद पाया। तासौ जिन-धर्म का प्रभाव महा अलौकिक है। तातैं प्रतिमाजी वा शास्त्र जी का वा निर्ग्रंथ गुरु का अविनय का विशेष भय राखना। बहुरि कोई यहां प्रश्न करै कै प्रतिमाजो तौ अचेतन हैं, ताको पूजें कहा फल निपजै? ताका समाधान—रे भाई! मंत्र-यंत्र-तंत्र-औषधि-चिंतामणि रत्न-कामधेनु-चित्रावेलि-पारस-कल्पवृक्ष अचेतन मन वांछित फल नै देहैं अर चित्राम की स्त्री विकार भाव उपजने कौ कारण है, पीछे वाके फल नर्कादि लगै हैं। त्यौं ही प्रतिमाजी निराकार, शांति मुद्रा, ध्यान दशा कौ धरे हैं; तिनको दर्शन किये वा पूजन किये मोह कर्म गलै हैं, राग-द्वेष भाव विलै जाय हैं अर ध्यान का स्वरूप जान्या जाय है। तीर्थंकर महाराज वा सामान्य केवली की छबि याद आवै है, याके अवलोकन किये ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि होय है। ज्ञान—वैराग्य है सो ही निश्चै मोक्ष का मारग है। अर शास्त्र हैं सो भी

---

[1] मेंडक

अचेतन हैं; याके अवलोकन किये प्रत्यक्ष ज्ञान-वैराग्य की वृद्धि होती देखिये हैं। जेते धर्म के अंग हैं, तेते अंग शास्त्र सौं जाने जाय हैं। पीछै जानि करि हेय वस्तु तजन सहज ही होय है, उपादेय वस्तु का ग्रहण सहज ही रहि जाय है। पीछै याही परिणामां सेती मोक्ष मार्ग सधै है। मोक्ष-मार्ग सेती निर्वाण की प्राप्ति होय है। तातैं यह बात सिद्ध भई- इष्ट-अनिष्ट फल नै कारण शुद्ध--अशुद्ध परिणाम ही हैं। शुद्ध-अशुद्ध परिणाम नै कारण अनेक ज्ञेय पदार्थ हैं। कारण विना कार्य की सिद्धि त्रिकाल में होय नाहीं। जैसा कारण मिलै, तैसा कार्य निपजै। तातैं प्रतिमाजी का पूजन, स्मरण, ध्यान, अभिषेक, आदि परम उत्सव विशेष महिमा करणा उचित है। जे कोई मूर्ख, अज्ञानी, अवज्ञा करै हैं, ते अनंत संसार बिषें भ्रमै हैं। चतुर[1] प्रकार देवनि कै तौ मुख्य धर्म श्रीजी का पूजन का ही है। तातैं सर्व प्रकार म्हारा वारंवार त्रिलोक के जिनबिंब को नमस्कार होहु। भव-भव के विषैं मोनै याही की सरण होहु, याही की सेवा होहु, याही की सेवा विना एक समै मति जावौ। मैं तो अनादि काल का संसार विषैं भ्रमण करता महाभाग के उदै काल- लब्धि के योग तैं यह निधि पाई। सो जैसे दीर्घ काल को दरिद्री चिंतामणि रतन पाय सुखी होय, त्यों मैं श्री जिन- धर्म पाय सुखी हुवा। सो अबै मोक्ष पर्यंत यह जिनधर्म मेरा हिरदा मैं एक समै मात्र अन्तर रहित सदैव सासतो तिष्ठो। यह मेरी प्रार्थना श्री जिनबिंब पूर्ण करो। धनी

---

१ चार

कहा अर्जी करे ? दयालु पुरूष थोडी ही अरज किये, बहुत माने है। इति जिन-दर्शन संपूर्ण।

सामयिक का स्वरूप

आगे अपने इष्ट देव को विनय पूर्वक नमस्कार करि सामायिक का स्वरूप निरुपण करिये हैं, सो हे भव्य! सुनि।

दोहा—साम्यभाव युत वंदिके, तत्त्वप्रकाशन सार।
वे गुरू मम हिरदै वसो, भवदधि-तारनहार ॥

सो सामयिक नाम साम्य भाव का है। सामयिक कहो, भावै साम्य भाव कहो, भावै शुद्धोपयोग कहो, भावै वीतराग भाव कहो, भावै निःकष्पाये कहो, भावै ये सब एक कार्य कहो। सो यह तो कार्य है-या कार्य सिद्धि होने के अर्थि बाह्य क्रिया साधन कारणभूत है। कारण बिना कार्य की सिद्धि होय नाहीं; तातै बाह्य कारण संयोग अवश्य करणा योग्य है। सो द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव च्यारि प्रकार हैं। द्रव्य करि श्रावक एक लंगोट तथा एक ओछी पना की तीन वा साढे तीन हाथ की धोवती[1] अर एक मोर-पक्षिका[2] राखै। बहुरि शीतकालादि विषैं शीत की परीसह उघाडा शरीर सौं न सह्या जाय, तौ एक श्वेत वस्त्र बडा मोटा सूत का सूं डील[3] ढकै जेता निकटि राखै; उपरांत परिग्रह राखै नाहीं। तथा चोकी, पाटा वा सुद्ध भूमि का ऊपरि तिष्ठै

---

१ धोती २ मोर-पिच्छी ३ शरीर

अर सामायिक करै। एता परिग्रह उपरांत और राखै नाहीं। बहुरि क्षेत्र-शुद्धि कहिये जा क्षेत्र विषैं कोलाहल शब्द न होइ। बहुरि पुरुष-स्त्री, तिर्यंच वाका गमन नाहीं होय, अगल-बगल भी मनुष्यां का शब्द नाहीं होय। ऐसे एकांत, निर्जन स्थान वा अपना घर विषैं वा जिनमंदिर विषैं वा सामान्य भूमि, वन, गुफा, पर्वत के शिखर ऐसे शुद्ध क्षेत्र विषैं सामायिक करै। अर क्षेत्र का प्रमाण ऐसे करि लेय, सो जिह क्षेत्र मैं तिष्ठ्या होय, सो क्षेत्र उठता-बैठता, नमस्कार करता दशों दिशा स्पर्शने मैं आवे। सो तौ क्षेत्र मोकला होय, सो अपने प्रमाण सूं उपरांत क्षेत्र का सामायिक काल पर्यंत त्यागै। बहुरि काल-शुद्धि कहिये जघन्य दोय घडी, मध्यम च्यारि घडी, उत्कृष्ट छह घडी का प्रमाण करै। प्रभाति तौ एक घडी का तडका सूं लेय एक घडी दिन चढे पर्यंत वा दोय घडी का तडका सूं लगाय दो घडी दिन चढ्या पर्यंत वा तीन घडी का तडका सूं लगाय तीन घडी दिन चढ्या पर्यंत जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट सामायिक-काल है। ऐसे ही मध्यान्ह समै एक घडी घाटि तै लगाय एक घडी अधिक पर्यंत, दोय घडी घाटि तै लगाय दोय घडी अधिक पर्यंत, तीन घडी घाटि तै लगाय तीन घडी अधिक पर्यंत मध्यान्ह सामायिक-काल है। बहुरि सांझ समै विषैं एक घडी दिन रहे सूं लगाय एक घडी रात पर्यंत, दोय घडी दिन रहे तै लगाय दोय घडी रात गये पर्यंत, तीन घडी दिन रहे तै लगाय तीन घडी रात गये पर्यंत ये सांझ समै सामायिक-काल है। या भांति तीनों कालों विषैं सामायिक करणा। काल की जेती प्रतिज्ञा कीनी होय, तासौं सिवाय थोडा-अधिक काल बीते तहां आपना मन निश्चल

होय, तब सामायिक सौ उठै। बहुरि भावां विषैं आर्त-, रौद्र ध्यान कौ छांडि धर्मध्यान कौ ध्यावे। ऐसें द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की शुद्धता जाननी।

बहुरि आसन-शुद्धि कहिये पद्मासन वा कायोत्सर्ग आसन राखै--अंग नै चलाचली न करै, इत-उत[1] देखै नाहीं, अंग मोडै नाहीं, अंग चालै नाहीं, घूमे नाहीं, निद्रा ले नाहीं, उतावला बोलै नाहीं, ऐसा शब्द का धीरे-धीरे उच्चारण करै, सो आपका शब्द आप ही सुनै; अन्य नाहीं सुनै। और का शब्द आप राग भाव सहित नाहीं सुनैं, और कौ राग भाव सहित देखैं नाहीं, आंगली[2] कडकावै नाहीं, इत्यादि शरीर की प्रमाद क्रिया छांडै। बहुरि सामायिक विषैं मौन राखै; जिनवानी विना और पढै नाहीं। बहुरि विशेष विनय सहित सामायिक करै। सामायिक करने का अगाऊ[3] उत्सव रहै। किया पाछे पछतावो नाहीं करै, दोय-च्यारि घडी निरर्थक काल गया, यामै कोई दोय-च्यार गृह-स्थापना (गृहस्थीपना) का कार्य और करते, तातैं अर्थ की सिद्धि होती, सो ऐसा भाव नाहीं करै। बहुरि ऐसे भावां सो न रहै, सो मैं अवार[4] यों ही उठ्या, मेरा परिणाम घणा चोखा था, सो ऐसा ही रहता; तौ विशेष कर्मां की निर्जरा होती। बहुरि सामायिक विषैं दोय वार पंचांग नमस्कार पंच परमगुरु को करै, बारा आवर्त सहित चार शिरोनति करै, नौ बार नौकार मंत्र पढै, एता काल पर्यंत एक बार खडा होय कायोत्सर्ग करै। सो नमस्कार तौ सामायिक का आदि-अंत विषैं करै।

---

१ इधर-उधर २ उंगली ३ आगे, पहले से अब ४ अब

भावार्थ—च्यारि शिरोनति, बारा आवर्त सहित एक कायोत्सर्ग ये तीनूं क्रिया सामायिक का मध्यकाल विषें जो श्रावक करै, ताको ब्योरो—सामायिक का पाठ की चौईस संस्कृत-प्राकृत पाटी हैं, ता विषें जाका विधान है, ता विषें देख लेना। बहुरि सामायिक करतो विरियां[1] प्रभात का सामायिक विषै बैठती बार पूर्वं रात्रि समै निद्रा, कुसीलादिक क्रिया करता उत्पन्न भया जो पाप, ताकी निवृत्ति के अर्थि श्री अर्हंतदेव तासो खिमा करावे। आप निंदा करें, मैं महा-पापी छूं मोसूं यो पाप छूटै माहीं है, वा समै कब आवेगा, तब में याका तजन करूंगा। याका फल अत्यन्त कडुवा है, सो हे जीव ! तू कैसे भोगसी ? यहां तौ तनक सौ वेदना सहने को असमर्थ है, तो परभव विषें नर्कादिक के घोरान-घोर दुःख, तीव्र वेदना दीर्घकाल पर्यंत कैसे सहोगा ? जीव का पर्याय छोडते नाश तौ नाहीं होहै। जोव तो अनादि-निधन, अविनाशी है। तातैं परलोक का दुःख अवश्य आपनै ही भोगना पडैगा[2] परलोक का गमन कैसा है ? जैसे ग्राम सूं ग्रामांतर क्षेत्र सूं क्षेत्रांतर, देश सूं देशांतर, कोई प्रयो-जन कै अर्थि गमन करिये। सो जीव क्षेत्र नै छोड्या, तहां तो उस पुरुष का अस्तित्व नाहीं रह्या। अर जीव क्षेत्र विषैं जाय प्राप्त हुवा, तहां उस पुरुष का अस्तित्व ज्यो का त्यों है। तो वा पुरुष का क्षेत्र छोडते नै मनाही है। अर कोई क्षेत्र विषें जाय प्राप्त भया, तो उहां उसका उत्पाद नाहीं कहिये और पर्याय की पलटन ही है। पूर्व क्षेत्र विषें तो बालक था, उस क्षेत्र विषें वृद्ध भया अथवा पूर्व दुखी था

---

१ समय २ पडैगा

अब सुखी हुवा अथवा पूर्वै सुखो छा, अबै दुःखी हुवा। ऐसे ही परभव का पर्याय का स्वरूप जानना। पूर्वै मनुष्य क्षेत्र विषैं था, पीछै नरक की दुःखमयी पर्याय होय गई वा पूर्वै मनुष्य भव विषैं दुःखी था, पीछे देव पर्याय विषैं सुखी हुवा- ऐसे भव-भवके विषैं अनेक पर्यायकी परिणति जाननी। जो पदार्थ सासता है। तातैं हे जीव! ये पाप कार्य छोडै, तो भला है। ऐसा दरेग करता संता दोऊ[1] हस्त जोडि मस्तग कै लगाय श्रीजी नै परोक्ष नमस्कार करि ऐसे प्रार्थना करै- हे भगवन्! ये मेरा पाप निवृंत्त करो। तुम परम दयालु हो, सो मेरा औगुण दिशि न देखोगे। मोनै दीन, अनाथ जानि मो ऊपरि खिमा ही करो, वाका जिह-तिह प्रकार भला ही करें। सो हे जिनेंद्रदेव! मो ऊपरि अनुग्रह करहु अर पाप-मल ताकूं हरहु। तुम्हारे अनुग्रह विना पाप-पर्वत गलै नाहीं, तातैं मो ऊपरि विशेष म्हारबान होय समस्त पाप का क्षय करहु। ऐसे पूर्वले पाप को हलका पाडि[2] जीरन[3] करि पीछे द्रव्य, क्षेत्र, काल का, भाव का प्रमाण बांधि वा स्वरूप पूर्वे कहि आये, ताके अनुसार भांगा[4] पूर्वक त्याग करि पूर्व दिशा नै वा उत्तर दिशा नैं मुख करि पीछी सूं भूमिका सोधि पंच परम गुरु की नमस्कार करि पद्मासन मांडि अथवा पलगटी[5] मांडि बैठि जाय। पीछै तत्त्व का चिंतवन करै, आपा-पर का भेद-ज्ञान करै, निज स्वरूप का भेद रूप वाभेद रूप अनुभवनकरै वा संसार का स्वरूप दुःख रूप विचारै। संसार सौं भयभीत होय बहुत वैराग्य दशा आदरै अर मोक्ष का उपाय चितवै। संसार के दुःख की निवृंत्ति वांछता संता पंच परम गुरु नै सुमरै। ताके गुण की वारंवार अनुमोदना करै, गुणानुवाद गावै, वाका स्तोत्र

---

१ दोनों २ पाड़कर ३ जीर्ण ४ प्रतिज्ञा ५ पालथी, पद्मासन

पढै वा आत्मा का ध्यान करै वा विशेष वैराग्य विचारै। म्हारी कांई होसी ? हूं या घोरानघोर संसार के महा भयानक दु:खां सूं कब छूटस्यौं वा समै म्हारै कब आवसी? दिगंबर दशा धारि, परिग्रह पोट[1] उतारि, वनवासी होय करि, पर घर आहार लेस्यौं, बाईस परीसह सहस्यौं, दुद्धर तपश्चरण करस्यौं, मोह-वज्र फाडि पंचाचार आचरिस्यौं अर अपने निज शुद्ध स्वरूप का अनुभव करिस्यौं। ताका अतिशय करि वीतराग भाव की वृद्धि होसी, तब मोह कर्म गलसी, घातिया कर्म शिथिल है, क्षय नै प्राप्त होसी। अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य, अनंत चतुष्टय प्रगट होसी। सो मैं सिद्ध सादृश्य लोकालोक के देखने-जानने हार होसी। अनंत सुख, अनंत वीर्य के पुंज, कर्म-कलंक सौ रहित महा निराकुलित, आनंदमय सर्व दु:ख सौ रहित कब होवा ? कहां तो मेरो यह दशा अर कहां नरक-निगोद आदि महा पाप की मूर्ति, महा दु:ख-मयी आकुलता के पुंज, नाना प्रकार के पर्याय के धरनहारे। में सौ जिनधर्म के अनुग्रह विना अनादि काल सौं लेय सिंह; सर्प, कागला, कुत्ता, चिडी, कबूतर, कीडी-मकोडी, आदि महाभिष्टा पर्याय सर्व धारी। एक-एक पर्याय अनंत वेर[2] धरी। तौ भी जिनधर्म विना संसार के दु:खां का चोर[3] अब तक आया नाहीं। अब कोई महाभाग के उदै यह श्रीजिनधर्म सर्वोत्कृष्ट, परम रसायण, अद्वैत, अपूर्व पाया, ताकी महिमा कौन-कौन कहिये ? कै तौ मैं ही जाणौं कै सर्वज्ञ जानै हैं। सो यह बीतराग प्रणीत जिनधर्म

---

१ गठरी २ बार ३ अंत

जयवंता प्रवर्तो, नंदो, वृद्धो होहु; मोनै संसार-समुद्र सौं काढो। धनी कहा अरज करै ? ऐसा चिंतवन करि महा वैराग्य सहित सामायिक का काल पूर्ण करे। कोई प्रकार राग-द्वेष राखै नाहीं। अर आपा-पर की संभालि करि यह चिन्मूर्ति साक्षात सबके देखने-जानने द्वारा, ज्ञाता-द्रष्टा, अमूर्तिक, आनंदमय, सुख के पुंज, असंख्यात प्रदेशी, तीन लोक प्रमाण, पर द्रव्य सौं भिन्न मैं अपने निज स्वभाव का कर्ता-भोक्ता पर द्रव्य का अकर्ता, ऐसा मेरा स्वसंवेदन रूप, ताकी महिमा कौन-कौन कहिये ? यह जीव पुद्गल द्रव्य पिंड को त्रिलोक विषैं कर्ता-भोक्ता नाहीं। मोह के उदै भरम बुद्धि करि झूठ्या ही अपना मान्या था, ताहि करि भव-भव के विषैं नरकादिक के परम कलेश कौ प्राप्त भये। सो मैं अबैं सर्व प्रकार शरीरादिक पर वस्तु ताका ममत्व छांडू हूं। यह पुद्गल द्रव्य चाहै ज्यौं परिणमो, मेरा यासी राग-द्वेष नाहीं। सो यह पुद्गल द्रव्य का पसारा है। सो भावै[1] छीजौ, भावै भीजौ, भावै प्रलय नै प्राप्त होहु, भावै एकठा होहु, याका मैं मुजाम[2] नाहीं; याके जोग तै मेरा ज्ञानानंद की वृद्धि नाहीं। **ज्ञानानंद तौ मेरा निज स्वाभाव** है। सो अपूठा पर द्रव्य के निमित्त तै घात्या गया है; ज्यौं-ज्यौं पर द्रव्य का निमित्त सो निवृत्ति होय है, त्यौं-त्यौं ज्ञानानंद रूप की वृद्धि होय है। सो प्रत्यक्ष अनुभव में आवै है। तातैं व्योहार मात्र तौ मेरा परम वैरी घातिया कर्म चतुष्टय है। निश्चय विचार तो मेरा अज्ञान भाव परम वैरो है। मेरा मैं ही वेरो, मेरा मैं ही मित्र। सो अज्ञान भाव करि मैं कार्य करना था, सो किया, सो ताके वश

---

१ चाहे २ गुलाम

वैसा ही आकुलता मय फल निपज्या,[1] नारकी में परम दुखी हुवा। सो वा दुःख की बात कौन सी कहिये? सर्व जगत के जीव तो मोह-भ्रम रूप परिणमे हैं। भ्रम करि अत्यन्त प्रचुर अनादि काल का परम दुःख पावै हैं। मैं भी वाही के साथ अनादि काल का ऐसा ही दुःख पावै था। अब कोई महा परम भाग के योग तै श्रीअरिहंत देव के अनुग्रह करि श्रीजिनवानी के प्रताप तै मुनि महाराज आदि दे परम धर्मात्मा, दयाल पुरुष, ताका मिलाप भया, अर वाके वचन रूप अमृत का पान किया। ताके अतिशय करि मोहज्वर मिट्या, कषाय की आताप मिटी, परिणाम शांति भया; काम-पिशाच भाजि गया, इंद्री-सफरी[2] ज्ञान-जाल करि पकरी[3] गई, पांच अव्रत का विध्वंस भया, संयम भाव करि मेरा आत्मा ठंडा हुवा। सम्यक्दर्शन-ज्ञान लोचन करि मोक्ष मार्ग साक्षात अवलोकन में आये। अब हम धीरै वा शीघ्र मोक्ष-मार्ग नै चालै हैं; मोह की सेना लुटती जाय है, घातिया कर्म का जोर मिटता जाय है, मेरी ज्ञान-ज्योति प्रगट होती जाय है। मेरा अमूर्तिक, असंख्यात प्रदेश ता ऊपरि सूं कर्म-रज झडती-गिरती-गलती जाय है, ता करि मेरा स्वभाव हंस[4] अंश उज्जल होता जाय है। सो अब मैं चारित्रग्रहण करि मोह कर्म का शीघ्र ही निपात करूंगा, मोह-पर्वत को चूरन करुंगा अर मोह का अंश घातिया कर्मनि के परिवार सहित ध्यानमयी अग्नि विषै भस्म करौगा। ऐसा मेरे परम उच्छव वर्तें है। केवलज्ञान—लक्ष्मी, ताके देखिवे की अत्यन्त अभिलाषा चाह वर्तें है। केवलज्ञान-लक्ष्मी, ताके देखिवे को अत्यन्त अभिलाषा चाह वर्तें है। सो कब यह मेरा मनोरथ सिद्ध होयगा? मैं ई शरीर बंदीखाना सूं छूटि निवृत्त होय अनंत चतुष्टय संयुक्त तीन लोक का अग्रभाग विषै मेरा

---

१ उत्पन्न हुआ २ मछली ३ पकड़ी ४ आत्मा

सिद्ध भगवान-कुटुम्ब ता विषैं जाय तिष्ठौंगा। अर लोका-लोक के तीन काल सम्बन्धी द्रव्य-गुण-पर्याय सहित समस्त पर द्रव्य-पदार्थ ता एक समय विषैं अवलोकन करौंगा। ऐसी मेरी दशा कब होयगी? सो ऐसा मैं परमजोति मय आप द्रव्य ताको देखि और कौन कौ देखौं? और तो समस्त ज्ञेय पदार्थ जड के पिंड हैं, तासौं कैसी यारी, तासौं कहा प्रयोजन? जैसे की संगति करै, तैसा फल लागै, सो जड सौ यारी[1] की थी, सो मोनैं भी जड करि नाख्या। कहां तो मेरा केवलज्ञान स्वभाव, अर कहां एक अक्षर के अनंत भाग ज्ञान का सुख, अर कहां नर्क पर्याय के सागरां पर्यंत वीर्य आकुलता मय दुःख, अर कहां वीर्य अंतराय के नाश भये केवलज्ञान दशा विषैं अनंत वीर्य का पराक्रम अनंतानंत नै उठाय लेवा सारिखा सामर्थ्य? केई पर्याय का वीर्य सो रूई के तार का अग्र भाग के असंख्यातवे भाग सूक्ष्म एकेंद्री का शरीर है; इंद्रियगोचर नाहीं। वज्रादिक पदार्थ में अटकै नाहीं, अग्नि करि जलै नाहीं, पानी करि गलै नाहीं, इंद्र महाराज के वज्र दंडकरि भी हणबे योग्य नाहीं, ऐसा शरीर ताकौ भी लेवा नै सारिखो सामर्थ्य एकेंद्री कौ नाहीं। याही कारण करि याका नाम थावर संज्ञा है, अर बेंद्री आदि पंचेंद्री पर्यंत ज्यौं-ज्यौं वीर्य अंतराय का क्षयोपशम भया, त्यौं-त्यौं वीर्य प्रगट भया। सो बेंद्री अपना शरीर कौ ले चालै, अर किंचित् मात्र खाने की वस्तु मुख में ले चालै। ऐसे ही सर्वार्थसिद्धि का देवा तीर्थंकर महाराज वा रिद्धि धारी मुनि कै वीर्य की अधिकता जाननी। सो ही केवली

---

१ मित्रता

भगवान के सम्पूर्ण वीर्य का पराक्रम जानना। जेता आकाश द्रव्य का प्रमाण है, एते रोमन का लोक होय, तौ ऐसे बडे अनंतानंत लोक उठावने की सामर्थ्य ता सिद्ध महाराज की है। एती ही सामर्थ्य ता सर्व केवली की है। दोन्या ही के वीर्य अंतराय के नाश होने तैं सम्पूर्ण सुख हुवा है। सो मेरे स्वरूप की महिमा ऐसी ही है। सो मेरे प्रगट होहु, सो यह मैं अज्ञानता करि कहा अनर्थ किया ? कैसी-कैसी पर्याय धारि परम दुखी हुवा, सो धिक्कार होहु मेरी भूल कौ अर मिथ्याती लोगां की संगति कौ ! अर धन्य है यह जिनधर्म कौ ! अर पंच परम गुरू अर सरधानी पुरुष ! ताके अनुग्रह करि मैं अपूर्व मोक्षमार्ग पाया। कैसा है मोक्ष-मार्ग ? स्वाधीन है, तातैं अन्यन्त सुगम है। मैं तो महा कठिन जान्या था, परन्तु श्रीपरमगुरु सुगम ही बताया। सो अबै मोनै मोक्ष-मार्ग चलता खेद नाहीं; भ्रम करि ही खेद मानै था। अहो परमगुरु ! थाकी महिमा, अनुमोदना कहां लौं करू ? मैं मेरी महिमा सिद्ध सादृश्य तुम्हारे निमित्त करि जानी। इति सामायिक-स्वरूप सम्पूर्ण।

स्वर्ग का वर्णन

आगै अपने इष्टदेव कौ विनयपूर्वक नमस्कार करि, वा गुण-स्तवन करि, सामान्य पणैं स्वर्ग की महिमा का वर्णन करिये है। सो हे भव्य ! तुम सावधान होय कै सुणि।

दोहा—जिन चौबीसौं वंदि कै, वंदौ सारद माय।
गुरु निर्ग्रंथहि वंदि पुनि, ता सेवैं अघ जाय ।।१।।

पुण्यकर्म विपाक तैं, भये देव सुर राय।
आनंदमय क्रीडा करैं, बहु विधि भेष बनाय ॥२॥

स्वर्ग संपदा लक्ष्मी, को कवि कहत बनाय।
गणधर भी जानै नाहीं, जानै शिव जिनराय ॥३॥

ऐसे ही श्रीगुरा पासि शिष्य प्रश्न करै है, सो ही कहिये हैं। हे स्वामिन्! कृपानाथ, दयानिधि, परम उपगारी, संसार-समुद्र-तारक, दयामूर्ति, हे कल्याणपुंज! आनंदस्वरूप, तत्त्वज्ञायक, मोक्ष-लक्ष्मी का अभिलाषी, संसार सौ परान्मुख, परम वीतराग, जगत-बांधव, छहूं काय के पिता, मोहविजयी, असरण कौ सरण, स्वर्गनि के सुख का स्वरूप कहौ। बहुरि कैसे हैं शिष्य? परम विनयवान हैं, आत्म-कल्याण के अर्थी हैं, संसार के दुःख सौं भयभीत हैं, व्याकुल भया है वचन जाका, कंपायमान है मन जाका, वा कोमल भया है मन जाका, ऐसे होते संता श्रीगुरु की प्रदक्षिणा देय, हस्त जुगल जोर मस्तक कूं लगाय, श्रीगुरा के चरनन कूं वारंवार नमस्कार करि, मस्तक उनके चरण निकट धर्‌या है अर चरणतल की रज मस्तक के लगावै हैं, आपनै धन्य मानै हैं वा कृतकृत्य मानै हैं, विनयपूर्वक हस्त जोर सन्मुख खडा है। पीछै श्रीगुरा का मोसर[१] पाय वारंवार दीनपना का वचन प्रकाश स्वर्गनि के सुख का स्वरूप बूझे है। बहुरि कैसा है शिष्य? अत्यन्त पुण्य के फल सुनवा की अभिलाषा जाकी। जब ऐसा प्रश्न होते संते अब वे श्री गुरु अमृत वचन करि कहे हैं। बहुरि कैसे हैं परम

---

१ अवसर

निर्ग्रंथ वनोपवासी ? दया करि भीजा है चित्त जिनका, सो या भांति कहते भये–हे पुत्र ! हे भव्य ! हे आर्जव[1] ! तेनै बहुत अच्छा प्रश्न किया, बहुत भलो करो। अब तू सावधान होय सुनि। मैं तोहू जिनवानी के अनुसार कही हौं। यह जीव श्रीजिनधर्म के प्रभाव करि स्वर्गन के विमानन में जाय उपजै है, यहां की पर्याय का नाश कर अंत–मुंहूर्त काल मैं उत्पन्न होय है; जैसे मेघ-पटल बिनटते देदीप्यमान सूर्य बादल बाहर निकसै, तैसे उपपादिक सिज्या[2] के पटल दूर होते वह पुण्याधिकारी संपूर्ण कला संयुक्त, ज्योति का पुंज, आनंद, सौम्यमूर्ति, सबकूं प्यारा, सुन्दर देव उपजै है। बहुरि जैसे बारा बरस का राजहंस महा अमोलक आभूषण पहिरै निद्रा तै जाग उठै। कैसा है वह देव ? संपूर्ण छहौं पर्याप्ति पूर्ण करि, सरीर की कांति सहित रतनमय आभूषण-वस्त्र पहिरै सूर्यवत् उदै होय है। अनेक प्रकार की विभूति कौं देख विस्मय सहित दसों दिसान कूं अवलोकन करै। मन में यह विचारे–मैं कौन हूं, कहां था, कहां आया ? यह स्थानक कौन है ? यह अपूर्व अर रमणोक, अलौकिक, मन रमने का कारण, अद्भुत सुख का निवास, ऐसा अद्भुत यह स्थान कौन है ? यह जगमगाट रतनां की जोति कर उद्योत हो रहा है, अर मेरा देव सारिखा सुंदर आकार काहे तै भया है ? अर जैठी-तैठी[3] सुंदराकार मन कूं अत्यन्त मनोज्ञ देवनि सारिखा दीसै है, सो ये कौन हैं ? बिना बुलाय आय मेरी स्तुति करै हैं, नम्रीभूत होय नमस्कार करै हैं, अर मीठे-मीठे विनयपूर्वक

---

१ सरल चित्त २ उपपाद शय्या ३ जहां-तहां

वचन बोलै हैं। सो ये कौन हैं, याका संदेह कैसे मिटै; ऐसी सामग्री कदाचि सांची भी होय। अर कैसे हैं ये पुरुष-स्त्री ? गुलाब के फूल सारिखा है मुख जिनका, अर चन्द्रमा सादृश्य है सोमे मूर्ति जाकी, अर सूर्य सादृश्य है प्रताप जाका; रूप-लावण्य अद्भुत धरे है। सारा ही की दृष्टि एकाग्र मो तरफ है। मोनै खावंद[1] सादृश्य मानै हाथ जोडि खडे हैं अर अमृत मयी मीठा, कोमल, विनय सहित म्हारा मन माफिक वचन बोलै है। ताकी महिमा कौन सौ कहिये ? धन्य हैं ये स्थानक ! अर धन्य है वा सारिखे पुरुष-स्त्री ! धन्य है जाका रूप, धन्य है जाका विनय गुण वा सौजन्यता वा वात्सल्य गुण ! बहुरि कैसे हैं पुरुष-स्त्री ? पुरुष तो सब कामदेव सादृश्य हैं अर स्त्री इंद्राणी सादृश्य है। वाके शरीर की गंधता करि सर्वत्र सुगंधि फैल रही है। जाके शरीर के प्रकाश करि सर्व तरफ प्रकाश फैल रह्या है। जहां-तहां रत्न-माणिक-पन्ना-हीरा-चिंतामणि रत्न, पारस, कामधेनु, चित्रावेलि, कल्पवृक्ष, इत्यादि अमोलक अपूर्व निधि के समूह ही दीसै हैं। अर अनेक प्रकार के मंगलीक बाजे बजे हैं। केई गान करै हैं, केई ताल-मृदंग बजावै हैं, केई नृत्य करै हैं, केई अद्भुत कौतूहल करै हैं। केई रत्न के चूरण करि मंगलीक देवांगना साथ्या पूरे है। केई उत्सव वर्तै हैं, केई जस गावे हैं, केई धर्म की महिमा गावै हैं, केई धर्म को उत्सव करै हैं; सो यहु बडा आश्चर्य

---

१ सौम्य २ पति

है। ये कहा है, मैं न जानूं ? ऐसी अद्भुत चेष्टा, आनंद-कारी पूर्वो कदे[1] देखने में न आई; मानूं ये परमेश्वरपुरी है वा परमेश्वर का निवास ही है अथवा ये स्वपना है अथवा मेरे ताईं भ्रम उपज्या है कि इंद्रजाल है ? ऐसा विचार करते संते वे पुण्याधिकारी देवता के सर्व आत्म-प्रदेशां विषैं शीघ्र ही अवधिज्ञान स्फुरायमान ह्वै है। तातैं होते पूर्वला भव कूं निश्चै करि वा देखै है। ताके देखने करि सर्व भ्रम विलै[2] जाय है। तब फेरि ऐसा विचार करै है—मैं पूर्व जिन-धर्म का सेवन किया था, ताका ये फल है, सुप्न तौ नाहीं अर भ्रम भी नाहीं, इंद्रजाल भी नाहीं। प्रत्यक्ष मेरा कले-वर कूं ले जाय, कुटुंब परवार के मसाण भूमि का विषैं दग्ध करै है; ऐसा निःसंदेह है यामैं संदेह नाहीं। बहुरि कैसे हैं देव—देवांगना अर कैसी विभूति अर कैसे हैं मंगला-चरण ? कैसे हैं जनम का जानि शीघ्र ही उच्छव संयुक्त आवता हुवा, कैसा वचन प्रकाशता हुवा ? जय-जय स्वा-मिन् ! जय नाथ ! जय प्रभु ! ये जयवंता प्रवर्तो, नांदो[3] - वृद्धा होहु। आज की घडी धन्य सो तुम्हारा जन्म भया, म्है एते दिन अनाथ था सो अब सनाथ हुवा। अर अब म्है तुम्हारा दर्शन पाय सो कृतकृत्य हुवा। हे प्रभु ! ये संपदा तुम्हारी अर राज तुम्हारा है अर यह विमान तुम्हारा है अर देवांगना के समूह तुम्हारे हैं। ये हस्ती तुम्हारा है, ये चमर तुम्हारा है, ये सरल रत्नां के स्तूप तिहारा है। ये सात जाति की सेन्या वा गुणचास जाति की सेन्या तुम्हारी है। ये रत्नमयी मंदिर तुम्हारा है, ये दश जाति

---

१ कभी २ विलीन ३ आनन्द

के देव तुम्हारा है, ये गिलम[1] बिछायत तिहारी है। ये रत्नमयी मंदिर रत्नां करि भरे तिहारे हैं, अर हे प्रभु! हे नाथ! हम तिहारे दास हैं, सो म्हा ऊपरि आज्ञा कीजे, सोई म्हा नै प्रमाण छै। हे प्रभु! हे नाथ! हे स्वामिन्! हे दयामूर्ति! कल्याणपुंज। तुम नै पूर्वे कौन पुण्य किया था, कौन षट्काय की दया पाली थी अर कौन सरधान ठीक किया था अर कौन अणुव्रत वा महाव्रत पाल्या था? कैसा शास्त्राभ्यास किया था? कै एका विहारी होय ध्यान धर्या था, कै तीर्थयात्रा विषैं गमन किया था, कै वनोपवासीह्वै तपश्चरण किया था, बाईस परीसह सह्या था वा जिनगुण विषैं अनुरक्त हुवा था, कै जिनवाणी माथा ऊपरि धारी थी? इत्यादि जिनप्रणीत जिनधर्मं ताके बहुत अंग के आचरण किये थे, ताके प्रसाद करि तुम म्हाके नाथ अवतरे। सो हे प्रभु! ये स्वर्गस्थान है, सो पुण्य का फल है अर म्हे देव-देवांगना हैं अर तुम भी वे मनुष्य लोक सूं जिनधर्म का प्रभाव करि देव पर्याय पाई है, यामैं संदेह मति जानो। सो म्हे कांई करज करां? आप भी अवधि करि सारो विरतांत जान्यो ही हो। धन्य आपकी पूर्ण बुद्धि! धन्य आप को मनुष्य भव! सो संसार असार जाणि निज आत्म-कल्याण कै अर्थि जिनधर्म आराध्यो, ताको ऐसो फल पायो। धन्य है यह जिनधर्मं! ताके प्रसाद करि सर्वोत्कृष्ट वस्तु पाइये है। जिनधर्मं उपरांत संसार विषैं और सार पदार्थ नाहीं। जेतोक[2] संसार विषैं सुख है, सो एक जिनधर्म ही तैं पाइये हैं। तातैं परम कल्याण रूप एक जिनधर्म ही है,

---

[1] मखमली [2] जितना भी

ताकी महिमा वचन अगोचर है। सहस्र जिह्वा करि सुरेंद्र भी पार नहीं पावै है, सो कांई आश्चर्य है। जिनधर्म का फल तो सर्वोत्कृष्ट मोक्ष है। तहां अनंत काल पर्यंत अविनाशी, अतेंद्री, बाधा रहित, अनौपम्य[1], निराकुलित, स्वाधीन, संपूर्ण सुख पावजे है अर लोकालोक प्रकाश ज्ञान पावजे है। ऐसे अनंत चतुष्टय संयुक्त आनंद-पुंज अर्हंत-सिद्ध ऐसे मोक्ष सुख को अंतर रहित भोगवे हैं। तातैं अत्यंत तृप्ति है; जगत करि त्रिलोक विषैं पूज्य हैं। वाके पूजने वारे वा सादृश्य ह्वै हैं। सो हे प्रभो ! जिनधर्म की महिमा म्हा तैं न कही जाय। अर धन्य आप ! सो ऐसे जिनधर्म को पूर्वे मनुष्य भव में आराधे थे। ताके महातप तैं यहां आय ओतार[2] लियो है सो आपकी पूर्व कुमाई[3] ताका फल जानो। ताको निर्भय चित्त करि अंगीकार करो अर मनवांछित देवोपुनीत सुख नै भोगवो अर मन की शंका नै दूर ही तैं तजो। हे प्रभो ! हे नाथ ! हे दयाल ! जिन-धर्म-वात्सल्य ! सब को प्यारा म्हारा सारिखा देवनि करि पूज्य असंख्यात देवांगना के स्वामी अब तुम हू अपनै किया कार्य का फल अवधारो[4]। हे प्रभो ! हे सुंदराकार देवनि के प्यारे ! म्हा परि आज्ञा करो, सो ही म्हे सिर ऊपरि धारेंगे अर ये असंख्यात देव-देवांगना आप के दास-दासी हैं, ताको आपनै जानि अंगीकार करि अनुग्रह करो। ऐसे जिन-धर्म विना ऐसे पदार्थ कोई पावै नाहीं। तीस्यों हे प्रभो ! अबै शीघ्र ही अमृत के कुंड विषैं स्नान करि, अर मनोज्ञ वस्त्र सहित आभूषण पहरि, अन्य अमृत के कुंड तैं रत्न

---

१ अनुपमता २ अवतार ३ कमाई ४ निश्चय करो।

मयी झारी भरि, अर उत्कृष्ट देवोपुनीत अष्ट द्रव्य को अपने हस्त जुगल विषैं धरि मन, वचन, काय की शुद्धता करि महा अनुराग संयुक्त महा आडंबर सौं जिनपूजन को पहली चालो[1], पाछै और कार्य करो। जीसीर[2] पहली जिनपूजन करि, पाछै अपनी संपदा को संभारि आपनै आधीन करी। सो आपने निज कुटुंब को उपदेश पाय वा स्वयं इच्छा ही सौं वा पूर्वली धर्म-वासना तै शीघ्र ही बिना प्रेर्या महा उच्छव सूं जिनपूजन को जिनमंदिर को जाता हुवा; सो कैसा है जिनमंदिर अर जिनबिंब सो कहिये हैं—सौ जोजन लांबा, पचास जोजन चौडा अर पचहत्तरि जोजन ऊंचा ऐसा माहिला[3] मंदिर, ताके अभ्यंतर[4]पूर्व सन्मुख द्वार को धारता ऐसा जिनमंदिर उत्तुंग अद्भुत सोभै है। ताकै अभ्यंतर एक सौ आठ गर्भ—गृह हैं। एक—एक गर्भ—गृह विषैं तीन कटनी ऊपर गंधकुटी निर्मापित है। ता विषैं जुदे-जुदे एक-एक श्रीजी पांच से धनुष उत्तुंग प्रमाण आसन सिंघासन ऊपरि विराजमान हैं। बहुरि वेदी ऊपरि ध्वजा, अष्ट मंगल द्रव्य, धर्मचक्र, आदि अनेक आश्चर्यकारी वस्तु के समूह पाइये हैं। बहुरि कैसो है गंधकुटी ? ता विषैं श्रीजी अद्भुत शोभा सहित विराजै हैं। एक-एक गर्भगृह विषैं एक-एक सासते, अनादिनिधन, अकृत्रिम, जिनबिंब स्थित हैं। सो कैसे हैं ? जिनबिंब समचतुरस्र संस्थान हैं अर कोटिक सूर्य की जोति नै मलिन करता तिष्ठै हैं। गुलाब के फूल सादृश्य महा-मनोज्ञ हैं, शांति—मूर्ति ध्यान अवस्था को धारे, नासाग्र दृष्टि को धारे, परम वीतराग मुद्रा आनंदमय अति सोभै हैं।

---

१ चलो २ जिससे ३ प्रासाद, महल ४ भीतर का

बहुरि कैसे हैं जिनबिंब ? ताया[1] सोना सारिखी रक्त जिह्वा वा होठ वा हथेली वा पगथली हैं, फटिकमणि सारिखी दांतन की पंक्ति वा हाथां-पगां के नख अत्यन्त उज्जल, निर्मल हैं अर श्याम मणिमयी महा नरम, महा सुगन्ध ऐसे मस्तक विषैं केशां की आकृति ही मुरलावती वक्र मूंछा की रेखा तीर्थंकर के केश सादृश्य यथावत सोभै हैं। बहुरि कैसे हैं जिनबिंब ? केई तौ सुवर्णमयी हैं केई रक्त माणिक के हैं केई नील वर्ण पन्ना के हैं, केई श्याम वर्ण मणि के निर्मापे हैं। मस्तक ऊपरि तीन छत्र विराजै हैं, सो मानूं छत्र के मिस करि तीन लोक ही सेवा करने कौ आया है। चौसठ यक्ष जाति के देवता का रत्नमयी आकार है, ताकै हस्तां विषैं चौंसठ चमर हैं। सो श्रीजी ऊपरि बत्तीस बाईं तरफ लिये खडे हैं। अनेक हजार धूप का घडा, लाखां कोड्या रत्नमयी क्षुद्र घंटा, लाखां–कोड्या रत्न के दंड परि कोमल वस्त्र सहित उत्तुंग[2] ध्वजा लहलहाट कर रही है। हजारां रत्न के स्तूप नाज[3] की रासि की नाईं ढेर पर्वत सारिखे उत्तुंग सोभै हैं। अनेक चंद्रकांत मणि शिलान की बावडी व सरोवर वा कुंड, नदी, पर्वत, महलो की पंक्ति ता सहित वन वा फूलवाडी[4] सहित जिनमन्दिर वहां सोभै हैं। बहुरि कैसे हैं जिनमन्दिर ? एक बडा दरवाजा पूर्व दिशा सन्मुख चौघता[5] है, दोय दरवाजा दक्षिण उत्तर चौघता है। बहुरि पूर्व सन्मुख रचना कै सैकडा-हजारां योजन पर्यंत आगू[6] नै चली गई हैं। तैसे ही दक्षिण-

---

१ तपाया, तप्त २ ऊंची ३ अनाज ४ फुलवारी ५ चौखूटा
६ आगे

जाय हैं, आकाश में उडि जाय हैं वा चकफेरी[1] देहैं वा भूमि ऊपरि पगां कूं अतिशीघ्र चलावै हैं। कबहुक देव किसी निहारि मुलकि देहैं वा वस्त्र करि मुख आच्छादित करि देहै वा वस्त्र दूरि करि उघाडि देहै; जैसे चन्द्रमा कबहुक बादलां करि आच्छादित होय हैं, कबहुक बादलां करि रहित होय दिखाय देहैं। कबहुक देव-देवांगना ऊपरि फूलनि की मूठी[2] फेंकिये हैं सुगंध, वा अरगजा सूं देवांगनानि का शरीर कूं सींचे हैं। अथवा देवांगना देव ऊपरि फूल उछालि भय करि भागि जाय हैं, पीछे अनुराग करि देव के शरीर सूं आनि लिपटै हैं, पीछे दूरि जाय दिखलाई देहैं। कबहुक इंद्र सहित बहु देवांगना मिलि चकफेरी देहैं, कबहुक ताल, मृदंग, बीन बजाय देव नै रिझावै हैं, कबहुक सेज ऊपरि लोटि जाय हैं, कबहुक उठि भागै हैं। पीछै आकाश मैं तिष्ठि नृत्य करै हैं, मानूं आकाश विषैं बीजली-सी चमकै हैं अथवा आकाश विषैं चन्द्रमा दोन्यूं तारा की पंक्ति सोभै है। तैसे देव के साथ देवांगना सोभै है; अथवा चन्द्रमा के साथ चन्द्रिका गमन करती सोभै है, तैसे देव के साथ देवांगना गमन करती सोभै है। इत्यादि अनेक प्रकार की आनन्द क्रीडा करि देव-देवांगना मिलि कौतूहल करै हैं। बहुरि देवांगना नृत्य करती थकी पवन कूं भूमि ऊपरि वा आकाश विषैं नेवर आदि पगां के गहने ताके झनकार सहित चलावै हैं सोई कहिये हैं—झिमि-झिमि, झिण-झिण, खिण-खिण, तिण-तिण आदि शब्द के समूह अनेक

---

१ चक्राकार घूमना २ मुट्ठी

राग नै लिया पगां के गहनां के शब्द होय रहै हैं; मानूं देव की स्तुति ही करै हैं। पीछै कोमल सिज्या ऊपरि देव का आलिंगन करै हैं; सो परस्पर पुरुष का संयोग करि ऐसा सुख उपजै है, मानूं नेत्र मूंद करि सुख नै आचरै है—ऐसा सोभै है। अर तिर्यंच, मनुष्य को-सी नाईं भोग किया पाछै शिथिल नाहीं होय है, अत्यन्त तृप्ति होय है; मानूं पंचामृत पिये। बहुरि देव मे ऐसी शक्ति पाइये है, कबहुक तौ शरीर नै सूक्ष्म करि लेहै, कोई समै शरीर कौ बडा करि लेहै, कबहुक शरीर कूं भारो करि लेहै, कबहुक आंखि का फरकवा मात्र असंख्यात जोजन चलै है, कबहुक विदेह क्षेत्र में जाय श्री तीर्थंकर देव को वंदै हैं। अर स्तुति करै हैं—जय! जय! जय जय! जय भगवान जी! जय त्रिलोकीनाथ! जय करुणानिधि! जय संसार-समुद्र-तारक! जय परम वीतराग! जय ज्ञानानंद! जय ज्ञानस्वरूप! जय मोक्ष-लक्ष्मी-कंत! जय आनन्दस्वरूप! जय परम उपकारी! जय लोकालोक—प्रकाशक! जय स्वभावमय मोदित! जय स्वपर-प्रकाशक! जय ज्ञानस्वरूप! जय चैतन्यधातु! जय अखंड सुधारस पूर्ण! जय ज्वलितमचलित ज्योति! जय निरन्जन! जय निराकार! जय अमूर्तिक! जय परमानन्द! जय परमानन्द के कारण सहज स्वभाव! जय सहज स्वरूप! जय सर्व विघ्नविनाशक! जय सर्वदोष-रहित! जय निःकलंक! जय परस्वभाव-भिन्न! जय भव्य जीव-तारक! जय अष्टकर्मरहित! जय ध्यानारूढ। जय चैतन्यमूर्ति! जय सुधारसमयी! जय अतुल! जय अविनाशी! जय अनुपम! जय स्वच्छ पिंड! जय सर्वतत्त्व

ज्ञायक ! जय अनंतगुणभंडार ! जय निज परिणति के रमणहार ! जय भवसमुद्र के तिरनहार ! जय सर्व दोष के हरनहार ! जय धर्मचक्र के धरनहार ! नहार हे देवजी ! पूरा देव थेई हो। अर हे प्रभुजी ! देवां का देव थेई हो। अर हे प्रभुजी ! आन मत के खंडन-हार थेई हो। अर हे प्रभुजी ! मोक्षमार्ग के चलाव देव थेई हो; भव्य जीवां नै प्रफुल्लित थेई करो। अर हे प्रभुजी ! जगत का उद्धार करवानै थेई हो; जगत का नाथ थेई हो; भव्य जीवां नै कल्याण के कर्ता थेई हो; दया-भंडार थेई हो। अर हे भगवानजी ! समोसरण सारिखी लक्ष्मी सौं विरक्त थेई हो। हे प्रभुजी ! जगत का मोहिवानै समर्थ थेई हो अर उद्धार करवानै समर्थ थेई हो। हे प्रभुजी ! थाका रूप देखि करि नेत्र तृप्त नाहीं होय हैं। अर हे भगवानजी ! आज की घडी धन्य है, आज का दिन धन्य है, सो म्है थाको दर्शन पायो। सो दर्शन करवा थको हूं कृत-कृत्य हुवो। अर पवित्र हुवो, कार्य करणो थो सो में आज कियो। अब कोई कार्य करणो रह्यो नाहीं। अर हे भगवानजी ! थाकी स्तुति करि जिह्वा पवित्र भई अर वाणी सुनि श्रवण पवित्र हुवा अर दर्शन करि नेत्र पवित्र हुवा, अर ध्यान करि मन पवित्र हुआ, अष्टांग नमस्कार करि सर्वांग पवित्र हुवा। अर हे भगवान जी ! मोनै एता प्रश्न का उत्तर कहो। आपका मुखारविंद सो सुन्या चाहूं हो। हे प्रभुजी ! सप्त तत्त्व का स्वरूप कहो अर चौदह गुणस्थान, चौदह मार्गणा का स्वरूप कहो अर मूल अष्ट कर्म का स्वरूप कहो वा उत्तर कर्मां का स्वरूप कहो। हे

स्वामी ! प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग ताका स्वरूप कहौ । अर हे स्वामिन् ! काल वा लोकालोक का स्वरूप कहौ अर मोक्षमार्ग का स्वरूप कहौ । अर हे स्वामी ! पुण्य-पाप का स्वरूप कहौ । अर हे स्वामी ! च्यारु गत्या का स्वरूप कहौ, जीवां की दया-अदया का स्वरूप कहौ, देव-धर्म-गुरु का स्वरूप कहौ । अर हे स्वामी ! हे नाथ ! सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप कहौ अर ध्यान का स्वरूप कहौ अर आर्तध्यान, रौद्रध्यान का स्वरूप कहौ अर धर्मध्यान, शुक्लध्यान का स्वरूप कहौ । अर हे भगवानजी ! हे प्रभुजी ! ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, यंत्र वा तंत्र का स्वरूप कहौ वा चौसठ रिद्धया का स्वरूप कहौ अर तीन सै तरेसठ कुवाद का धारकां का स्वरूप कहौ । और बारह अनुप्रेक्षा का स्वरूप कहौ अर दशलक्षणी धर्म अर षोडश भावना का स्वरूप कहौ । अर सप्त नय अर सप्त भंगी बानी, ताका वा द्रव्यां का सामान्य गुण वा विशेष गुण ताका स्वरूप कहौ वा अधोलोक व मध्यलोक, ताकी रचना का स्वरूप कहौ वा द्वादशांग का स्वरूप कहौ वा केवलज्ञान का स्वरूप कहौ, यानै आदि दे सर्व तत्त्व का स्वरूप कौ जाण्या चाहू हूँ । अर हे भगवान ! नर्क किसा पाप करि जाय, तिर्यंच किसा पाप करि होय, मनुष्य किसा परिणाम सौं होय, देव पर्याय किसा पुण्य करि पावै सो कहौ, निगोद क्या करि जाय ? विकलत्रय क्या करि होय, असैनी किसा पाप करि होय, सम्मूर्च्छन, अलब्ध पर्याप्तक स्थावर किसा खोटा परिणाम करि होय, आंधो, बहरो, गूंगो, लूलो, किसा

पाप करि होय, बावनौ[1] -कूबरौ[2], विकलांगी, अधिक अंगी, किसा पाप करि होय, कोढी, दीर्घ रोगी, दारिद्री, कुरूप शरीर, किसा पाप करि होय, मिथ्याती, कुविसनी, अज्ञानी, अभागी, चोर, कषायी, जुवारी, निर्दयी, अक्रिया-वान, धर्म सूं परान्मुख, पाप कार्य विषें आसक्त, अधोगामी किसा[3] पाप करि होय ? बहुरि शीलवान, संतोषी, दया-वान, संयमी, त्यागी, वैरागी, कुलवान, पुण्यवान, रूपवान, किसा पुण्य करि होय ? निरोगी, बुद्धिवान, विचक्षण, पंडित, अनेक शास्त्रां के पारगामी, धीर, साहसिक, सज्जन, पुरुषां के मनमोहन, सबकौ प्यारौ, दानेश्वरी, अरहन्त देव का भक्त, सुगतिगामी किसा पुण्य करि होय ? इत्यादि इन प्रश्ना का दिव्यध्वनि करि याका स्वरूप सुन्या चाहूं हूं । सो मो परि अनुग्रह करि दया बुद्धि करि मेरे ताईं कहौ । अहो भगवानजी ! म्हारा पूर्वला भव अर अनागत भव कहौ । अर हे भगवानजी ! म्हारे संसार केतो[4] बाकी है अर कदि दीक्षा धरि अर थां सारिखो कदि होस्यौं, सो मोनै यथार्थ स्वरूप कहौ । म्हारै याका जाणिवा की घणी वांछा-अभिलाषा छै । ऐसा प्रश्न पाय श्री भगवानजी की बानी खिरती हुई अर सर्व प्रश्न का उत्तर एक साथ ज्ञान में भासता हुवा; ताकौ सुन करि अत्यन्त तृप्त हुवा, पाछै आपनै स्वर्ग स्थानक नै जाता हुवा; पाछै फेरि कबहुक[5] ये नंदी-श्वर द्वीप में जाय, वहां का चैत्याला वा प्रतिमाजी पूजै हैं । कबहुक अनेक प्रकार का भोगां नै भोगवै हैं, कबहुक सभा विषें सिंघासन ऊपरि बैठि राज-कार्य करै हैं, कबहुक धर्म-

---

१ बौना २ कुबड़ा ३ किस ४ कितना कभी

चरचा करै हैं; कबहुक च्यारि जाति वा सात जाति की सेन्या सजि भगवान का पंच कल्याणक विषैं जाय हैं वा वनादिक विषैं वा मध्यलोक विषैं क्रीडा करिवानै जाय हैं। बहुरि वहां ऐसा नाटक होय है—कबहुक देवांगना देव का अंगुष्ठ ऊपरि नृत्य करै है अर कबहुक हथेली ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक भुजा ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक आख की भौंह ऊपरि नृत्य करै है, कबहुक देवांगना आकाश मैं उछकि[1] जाय है, कबहुक धरती माहि डूबि जाय है, कबहुक अनेक-अनेक शरीर बनाय लेहै, कबहुक बाल होय जाय, कबहुक देव की स्तुति करै है। कांई स्तुति करै है? हे देव! थानै देखिवा करि नेत्र तृप्त नाहीं होय है। अर हे देव! थाका गुण चिंतवन करि मन तृप्त नाहीं होय है। अर हे देव! थाका संयोग को अन्तर कबहु मति पडो। थाको सेवा जयवंती प्रवर्तो। थे महान कल्याण का करता हो अर थे जयवंता प्रवर्तो। अर थे म्हाका मनोवांछित मनोरथ पूरो। बहुरि कैसे हैं देव अर देवांगना? जाके नेत्र टमिकारवो[2] नाहीं, शरीर की छाया नाहीं, अर क्षुधा नाहीं, तृषा नाहीं। हजारां वर्ष पाछै किंचित् मात्र क्षुधा-तृषा लागै है, सो मन ही करि तृप्ति होय है। अर केई देव मद सुगंध पवन चलावै है अर केई देव वादित्र बजावै हैं अर केई देव गंधोदकमयी जल का कण बरसावै हैं अर केई इंद्र ऊपरि चमर ढोरै हैं। कैसे है चमर? मानूं चमर का मिस करि नमस्कार ही करै हैं, ऐसे सोभै हैं। अर केई छत्र लिया हैं अर केई देव अनेक आयुध ले करि खडे

---

१ उचक २ झँपना ३ भीतरी

दरवाजे तिष्ठैं हैं। अर केई देव माहिलीर सभा विषैं तिष्ठैं हैं, केई देव मध्य की सभा विषैं तिष्ठै हैं अर केई देव बारिलो' सभा विषैं तिष्ठै हैं अर केई देव विही होसी। देखो या विमान की सोभा अर देखो देव वा देवांगना की सोभा अर देखो राग वा नृत्य वा वादित्र वा सुगंध उत्कृष्ट आवै है। सो सोभा आनि एकठा हुई है। कैसो एकठो हुई है। कठै ही तौ देव मिलि गान करै हैं, कठै ही देव क्रीडा करै हैं, कठै ही देवांगना आनि एकठी हुई है कि मानूं सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र, ग्रह तारा को पंक्ति एकठो होय दशों दिशा प्रकाशित कीनी हैं। केईक देवांगना रत्नां का चूर्ण करि मंगलीक सांथ्या पूरै हैं, अर केई देवांगना मीठा स्वर सूं गावै हैं, अर केई मंगल गावै हैं, मानूं मंगल के मिस करि मध्यलोक सूं धर्मात्मा पुरुषानि कूं बुलावै हैं। कोई देवांगना देव पासि हाथ जोडे ऊभो है, कोई देवांगना हाथ जोडि देव को स्तुति करै है, कोई देवांगना देव का तेज-प्रताप नै देखि भयमान होय है, कोई देवांगना थर-थर धूजती जाय अर हाथ जोडि मधुर-मधुर हलवै-हलवै[2] बोलती जाय है। अर कठै ही देवांगना या कहै है—हे प्रभो! हे नाथ! हे दया-मूर्ति! क्रीडा करिवा चालो अर म्हानै तृप्त करो। बहुरि कैसा है स्वर्ग? कठै ही तौ धूप करि फैला है सुगधता, कठै ही पन्ना सादृश्य हरियाली करि सोभित है, कठै ही पुष्प वाडी करि सोभित है, कठै ही भौंवर का हुंकार करि सोभित है, कठै ही चंद्रकांत शिला करि सोभित है; कठै ही कांच सादृश्य निर्मल शिला भूमिका

---

१ बाहर की २ होले-होले, धीरे-धीरे

सोभै है, मानूं जल के दरियाव ही हैं, ताके अवलोकन करते ऐसी संका ऊपजै है मति या विषैं डूबि जाय। बहुरि कठै रत्नां सारिखी हरी शिलाभूमि सोभै है। कठै माणिक सारिखी लाल सोना सारिखी पीत भूमि वा सिला सोभै है, कठै ही तेल करि मथ्या काजल सादृश्य वा काली बादली की घटा सादृश्य भूमि सोभै है, मानूं पाप के भय करि छिपि रहिवानै अंधकार की माता ही है, इत्यादि नाना प्रकार के रत्न लिया, स्वर्गां की भूमि का दंव ताके मन कूं रंजायमान करैं हैं। अर सर्वत्र पन्ना सारिखो है अर अमृत–सा मीठा, रेसम-सा कोमल, चंदन सारिखो सुगंध; सावन-भादवा की हरियाली सादृश्य पृथ्वी सोभै है; सदा एक-सी रहै है। बहुरि जायगा ज्योतिषी देवनि के विमान सादृश्य उज्जल आनन्द मंदिर वा सिला वा पर्वत के समूह बणि रहे हैं, ता विषैं देव तिष्ठै हैं। कठै ही स्वर्ण-रूपा के पर्वत सोभै हैं, कठै ही वैडूर्य मणि, पुखराज लहसनिया, मोतिन के समूह नाज के ढेर वत् परै हैं। बहुरि कठै ही आनंद-मण्डप हैं, कठै ही क्रीडा–मंडप हैं, कठै ही चरचा-मंडप हैं, कठै ही केलि करने का निवास है, कठै ही ध्यान धरने का स्थानक है, कठै ही चित्रामवेलि है, कठै ही कामधेनु है, कठै ही रस-कूपिका के कुंड भर्‌या है, कठै ही अमृत के कुंड भर्‌या है अर कठै ही नव निधि परी है, कठै ही हीरा के ढेर परै हैं, कठै ही माणिक का समूह है, कठै ही पन्ना की ढेरी हैं, कठै ही नीलमणि आदि मण्या का ढेर परै हैं, यानै आदि दे करि अनेक प्रकार के

उत्तर विस्तारसभा-मंडप आदि रचना चली गई है। विशेष इतना पूर्व के द्वार आदि रचना का लांबा-चौडा, उत्तुंग प्रमाण है। तातें आधा दक्षिण-उत्तर के द्वार आदि का प्रमाण है। ताही तै उत्तर द्वार को क्षुल्लकद्वार कहै हैं। बहुरि सर्व रचना करि बाह्य च्यारि-च्यारि द्वार सहित तीन उत्तुंग महाकोट हैं। बहुरि जिनमन्दिर के लाखा-कोट्यां अनेक रत्नां करि निर्मापित महा उत्तुंग स्थंभ लागे हैं। बहुरि तीनों तरफा अनेक प्रकार के सैकडा-हजारां योजन पर्यंत रचना चली गई है। कठै ही सभा-मंडप है, कठै ही ध्यान-मंडप है, कठै ही जिन-गुण गाने का वा चरचा करने का स्थानक है। कठै ही छाति[1] है, कठै ही महला का पंक्ति है, कठै ही रत्नमयी च्योत्रा[2] है; दरवाजा-दरवाजा तोरण-द्वार है। कठै ही दरवाजा का अग्र भाग विषैं मानस्थंभ है। जो मानस्थंभ देखने तै महा मानी का मान दूर होय है, तातैं अत्यन्त ऊंचे हैं, आकाश कौ परसै हैं। जायगा-जायगा असंख्यात मोत्या[3] की सोना की वा रत्ना की माल झूमि रही है। संख्यात, लाखा-कोट्यां धूप का घडा तिन विषैं धूप खेइये हैं। जायगा-जायगा संख्यात ध्वजा है। तिनकी पंक्ति वा महला की पंक्ति उत्तुंग सोभै हैं। कैसे हैं महल, कैसी हैं ध्वजा? मानूं स्वर्ग लोक के इंद्रादिक देवनि कौ वस्त्र के हालने करि मानूं सैन करि बुलावै ही है। कहा कहि बुलावै है? कहै—यहां आवो, यहां आवो, श्रीजी का दर्शन करो, पूजन करो, तासो महा पुण्य उपजै; पूर्वला कर्म-कलंक ने धोवो। बहुरि कठै ही रत्नां का पुंज डूंगर सारखा जगमगाट करै है,

---

१ छत २ चबूतरा, ओटला ३ मोतियों

कठै ही रंग की भूमिका है, कठै ही माणिक की भूमिका है, कठै ही सोना-रूपा की भूमिका है, कठै ही पांच-सात वरन के रत्नां को भूमिका है। केई मंडप के स्थंभ हीरा के हैं, केइक पन्ना के हैं, केइक अनेक रत्नां के हैं। केई मंडप सोना-रूपा के हैं, केई भूमि स्थानक विषैं कल्पवृक्ष का वन है, कठै ही सामान्य वृक्ष का वन है। कठै ही आगा नै पुष्पवाडो है, तिन विषैं भी रत्नां का पर्वत, शिला, महल, बावडो, सरोवर, नदी सोभा धरि रही है; च्यार-च्यार आंगुल मात्र सर्वत्र हरा पन्ना सादृश्य महा सुगन्ध, कोमल, मीठी सोभा दे रही है। मानूं सावण-भादवा की हरियाली सादृश्य ही सोभै हैं अथवा आनंद के अंकुरा ही हैं। कठै ही जिन-गुण गावै हैं, कठै ही नृत्य करै हैं, कठै ही राग आलाप में जिन-स्तुति करै हैं, कठै ही देव-देव्या की चरचा करे हैं, कठै ही मध्यलोक के धर्मात्मा पुरुष-स्त्री तिनका गुणां की बडाई होय है। ऐसे जिनमंदिर विषैं संख्यात वा असंख्यात देव-देवांगना दर्शन करने को आवै हैं अर जाय हैं अर ताकी महिमा वचन अगोचर है, देखे ही बनि आवे। तातैं ऐसे जिनदेव को हमारा वारंवार नमस्कार है। घणो कहिवा-कहिवा करि पूर्णता हो। बहुरि कैसे हैं जिनबिंब ? मानों बोलै है कि मानूं ये मुलकै हैं कि मानूं ये हंसै हैं कि स्वभाव विषैं तिष्ठै हैं, मानूं ये साक्षात् तीर्थंकर ही हैं।

भावार्थ—नख-शिख पर्यंत जिनबिंब का पुद्गल-स्कंध तीर्थंकर कै शरीरवत् अंग-उपांग शरीर के अवयव हैं। हाथ, पग, मस्तक आदि सर्वांग वर्ण, गुण-लक्षण मय, स्वयमेव अनादि

निधन परिणमे हैं, तातैं तीर्थंकर साहश्य हैं। महाराज के शरीर विषैं केवलज्ञानमय आत्म द्रव्य, लोकालोक के ज्ञायक अनंत चतुष्टय मंडित विराजे हैं। जिनबिंब विषैं आत्म द्रव्य नाहीं। ताके दर्शन करत ही मिथ्यात का नाश होय है, जिनस्वरूप की प्राप्ति होय है। सो ऐसा जिनबिंब को वे देव पूजै हैं अर मैं भी पूजूं हूं, और भी भव्य जीव पूजन करो। एक नय करि तीर्थंकरां का पूजन अर प्रतिबिंबजी के पूजन करि बहुत फल होय है। कैसा है ? सो कहिये हैं-जसे कोई पुरुष राजा को छबि को पूजै है। तब वह राजा देशांतर सौ आवै तब वा पुरुष सो बहोत राजी होय अर या विचारै-यो म्हां की छबि ही की सेवा करै है, तो हमारी करै ही करै। तातैं ऐसो भक्ति जानि बहोत प्रसन्न होय है, त्यौं ही प्रतिमाजी का पूजन विषैं अनुराग होता सूचै है। फल है सो एक परिणामां की विशुद्धता ही का है अर परिणाम होय है सो कारण के निमित्त तै होय है। जैसा कारण मिलै, तैसा ही कार्य उत्पन्न होय है। निःकषाय पुरुष के निमित्त तै पूर्व कषाय भी गलि जाय, जैसे अग्नि के निमित्त तै दुग्ध उछलि भाजन बाह्य निकसै अर जल के निमित्त तै भाजन विषैं निमग्न रूप परिणमे, त्यौं ही प्रतिमाजी की शांति दशा देख करि नियम थकी परिणाम निर्विकार शांति रूप होय है, सोई परम लाभ जानना। ऐसा ही अनादि-निधन निमित्त-नैमित्तिक नै लिया वस्तु का स्वभाव स्वयमेव बनै है। याके निवारने कोई समर्थ नाहीं। बहुरि और भी उदाहरण कहिये हैं-जैसे वेई जल की बूंद ताता तवा ऊपरि पडै, तो नाश नै

प्राप्त होय अर सर्प का मुख मैं पडे, तौ विष हो जाय, कमल का पत्र ऊपरि पडै, तौ मोती सादृश्य सोभै, सीप मैं पडै, तौ मोती हो जाय, अमृत के कुंड मैं पडै, तौ अमृत ही हो जाय, इत्यादि अनेक प्रकार जल कौ बूंद परिणमती देखिये है। ताकी अद्भुत विचित्रता केवली भगवान ही जानै हैं; देश मात्र सम्यक्दृष्टि पुरुष जानै हैं। बहुरि यहां कोई प्रश्न करै–प्रतिमाजी तौ जड, अचेतन है, स्वर्ग-मोक्ष कैसे दे ? सो ताकौ कहिये-रे भाई ! प्रत्यक्ष ही संसार विषै अचेतन पदार्थ फलदायी देखिये है; चिंतामणि, कल्पवृक्ष, पारस, कामधेनु, चित्रावेलि, नव निधि, आदि अनेक वस्तु देते देखिये हैं। बहुरि भोजन करि क्षुधा मिटै है, जल पिये तृषा मिटै है, अनेक औषधि के निमित्त करि अनेक जाति के रोग उपशांत होय हैं; सर्प वा और विष के निमित्त करि प्राणांत होय है। सांची स्त्री के शरीर का पाप लागै है, त्यौं ही प्रतिमाजी का दर्शन किये, मोह कर्म गलै है। सोई वीतराग भाव होना ताही का नाम धर्म है; या ही धर्म करि स्वर्ग–मोक्ष पावै है। तातैं प्रतिमाजी स्वर्ग–मोक्ष होने का कारण है। प्रतिमाजी का दर्शन करि अनंत जीव तिरे, आगै और तिरैंगे। बहुरि प्रतिमाजी का पूजा, स्तुति-करण है सो तीर्थंकर महाराज के गुण की अनुमोदना है। जो पुरुष गुणां की अनुमोदना करै, तौ वाके गुण सादृश्य वाके गुण उत्पन्न होय अर औगुणवान पुरुष की अनुमोदना किये वा सादृश्य औगुण फल लागै; त्यौं ही धर्मात्मा पुरुष की अनुमोदना किये धर्म का फल स्वर्ग-मोक्ष लागै। तातैं प्रतिमाजी साक्षात् तीर्थंकर महाराज की छवि हैं; ताकी

पूजा-भक्ति किये, महाफल निपजै है । बहुरि यहां कोई फेरि प्रश्न करै--अनुमोदना करनी थी, तौ वाका सुमरण करि ही अनुमोदना कोनो होती, आकार काहे को बनाया ? ताको कहिये है---सुमरण किये, तौ वाका परोक्ष दरसण होय है; साहृश्य आकार बनाय प्रत्यक्ष दर्शन होय है। सो परोक्ष बीच प्रत्यक्ष विषैं अनुराग विशेष उपजै है। अर आत्मद्रव्य है सो डोला का भी दोसै नाहीं; डोला का भी वीतराग मुद्रा स्वरूप शरीर ही दीसै है। तातैं भक्त पुरुष नै तौ मुख्यपणै वीतराग का शरीर का ही उपकार है। भावैं जंगम प्रतिमा हो, भावैं थावर प्रतिमा हो, दोन्या के उपकार साहृश्य है। जंगम नाम तीर्थंकर का है, थावर नाम प्रतिमा का है। जैसे नारद रावण नै सीता के रूप की वार्ता कही, तब तौ रावण थोडा आसक्त हुवा। पाछै वाका पट दिखाया, तब बिशेष आसक्त हुवा। ऐसे प्रत्यक्ष-परोक्ष का तात्पर्य जानना। सो वे तौ चित्रपट पत्र रूप ही था अर ये प्रतिमाजी विनय रूप आकार है। तातैं प्रतिमाजी का दर्शन किये, तीर्थंकर का स्वरूप याद आवै है। ऐसा परमेश्वर की पूजा करि अब वे देव कांई करै हैं अर कैसा है सो कहिये हैं। जैसा बारा बरस का राजहंस-पुत्र शोभाय-मान दीसै है, तासूं भी असंख्यात, अनंत गुणा तेज, प्रताप कूं लिया सोभै हैं। बहुरि कैसा है शरीर जाका ? हाड, मांस, मल-मूत्र के समूह करि रहित है। कोटिक सूर्य की जोति नै लिया महा सुन्दर शरीर है। अर रेसम, गिलम सूं अनंत गुणा कोमल स्पर्श है अर अमृत सारिखा मीठा है।

अर बावना[1] चन्दन वा कस्तूरी व कोट्यां रुपया तोला का अतर[2] तासूं भी अनंत गुणा सुगंधमयी शरीर है। अर ऐसा ही सुगंध सांस–उस्वास[3] आवै है। बहुरि सुवर्णमयी वा ताया सोना समान लाल व ऊगता सूर्य समान लाल वा फटिक मणि समान श्वेत ऐसा वर्ण जाका। बहुरि अनेक प्रकार के आभूषण रत्नमयी पहरे हैं अर मस्तक ऊपरि मुकुट सोभै है। अर हजारां वर्ष पीछै मानसिक अमृतमयी आहार लेहै अर केई मास पीछैं सांसोस्वास लेहै अर कोट्यां चक्रवर्ती सारिखो बल है। अर अवधिज्ञान करि आगिला पिछला भव को वा दूरवर्ती पदार्थ का वा गूढ पदार्था को वा सूक्ष्म पदार्था को निर्मल पुष्ट जानै है। अर आठ रिद्धि वा अनेक विद्या वा विक्रिया करि संयुक्त है। जैसी इच्छा होय, तैसे ही कौतूहल करै है। बहुरि रेसम सौ असंख्यात गुणी विमान की कोमल भूमिका है। अर अनेक प्रकार रत्नां का चूर्ण सादृश्य कोमल धूलि है। अर गुलाब, अंबर, केवडा, केतकी, चमेली, सेवती, रायबेल, सोनजुही, मोगरा, रायचंपा आदि पहुपनि[4] का चूर्ण समान रज है। अर कहूं ही अनेक प्रकार के फूलनि को वाडी[5] सुगन्ध सोभै है। अर कोटिक सूर्य सारिखो ताप रहित शांतिमयी प्रकाश है। अर मंद, सुगंध पवन बाजै है अर अनेक प्रकार के रत्नमयी चित्राम हैं। अर अनेक प्रकार के रत्ननि की शोभा नै धर्‌या नगर दोन्यूं कोट सोभै है, अर निर्मल जल सूं भरी खाई सोभै है, अर अनेक जाति के कल्पवृक्ष आदि संयुक्त बन सोभै हैं। तंठै बन मैं अनेक बावडी, निवाण,[6]

---

१ उत्तम, श्रेष्ठ २ इत्र ३ श्वासोच्छ्वास ४ पुष्पों ५ बगीची, वाटिका ६ जलाशय

पर्वत, सिला सोभै है, तैठै देव जाय क्रीडा करै हैं। बहुरि देवा का मंदिर कै अनेक प्रकार के रत्न लग्या हैं वा रत्नमयी है। ताके ध्वजा-दंड सोभै है वा ऐसे ध्वजा हालै है, मानूं धर्मात्मा पुरुषनि कौ मन करि बुलावै है, कहै है— आओ, आओ; यहां ऐसा सुख है सो त्रिलोक में और ठौर दुर्लभ है। जीसूं अब सुख आय भोगौ, आपना किया कर्तव्य का फल ल्यौ। बहुरि कोट्यां जाति के वादित्र बाजै हैं। अर नृत्य होय है, अर नाटिका होय है, अर अनेक कला, चतुराई वा हाव-भाव कटाक्ष करि देवांगना कोमल हैं शरीर जिनके, निर्मल है, सुगन्धमयी अर चन्द्रमा की किरण सूं असंख्यात गुणा निर्मल प्रकाशमयी सुख है। बहुरि कैसी है देवांगना ? तीक्ष्ण कोकिला सारिखा कंठ है अर मीठा मधुर वचन बोलै है अर तीखा मृग सारिखा बडा नेत्र है अर चीता सारिखा कटि है अर फटिक समान दांत हैं, ऊगता सूर्य-सी हथेली है वा पगथली है। बहुरि कैसी हैं देवांगना ? जैसे बारा बरस की राजपुत्री सोभै, तासौ असंख्यात गुणा अतुलित शोभा नै लिया आयुर्बल पर्यंत एक दशा रूप रहे हैं।

भावार्थ—या तरुण वा वृद्धपणा नै नाहिं प्राप्त होय है। ऐसा देव की बाल दशा सासती रहे है। बहुरि कैसी हैं देवांगना ? मानूं सर्व खुसबोय[1] पिंड हैं, मानूं सर्व गुणां का समूह ही हैं, सर्व विद्या का ईश्वर हैं, सर्व कला-चतुराई का अधिपति हैं, सर्व लक्ष्मी का स्वामी हैं। अनेक सूर्य की

---

[1] खुशबू

कांति को जीते हैं, अनेक कामदेव करि शरीर निपजाया है। बहुरि कैसे हैं देव-देवो ? सो देव तो देवांगनानि के मनकूं हरै हैं अर देवांगना देवनि के मन कूं हरै हैं अर हंस की चाल कूं जीतै हैं। विक्रिया करि अनेक शरीर बनावै हैं, अनेक तरह सूं नृत्य करै हैं ऐसो देवांगना। सो अनेक शरीर बनाय, देव युगपत् एकै काल सर्व देवांगना नै भोगवै है। सो वे देव अनेक शरीर बनाय जुदे-जुदे महल विषैं सुगंधमयी महा कोमल कोटिक चन्द्रमा-सूर्य के प्रकाश सादृश्य शांतिमयी मन कूं रंजायमान करने वाले प्रकाश करि दैदीप्यमान अनेक प्रकार कल्पवृक्षनि के फूलनि करि आभूषित ऐसी सेज्या ऊपरि देव तिष्ठै हैं। पीछै वे देवांगना अनेक प्रकार के भूषण पहरे जुदे-जुदे महल विषैं जाय हैं। पीछै दूर ही देव कूं हस्त जोडि तीन नमस्कार करै हैं। पीछै देव की आज्ञा पाय सेज्या ऊपरि जाय तिष्ठै है। पीछे देव कभी गोद में धारै हैं वा हस्तादि करि स्पर्शे हैं वा नृत्य करने की आज्ञा करै है। ता विषैं ऐसा भाव (देवांगना) ल्यावैं हैं-हे प्रभु ! हे नाथ ! म्हे काम करि दग्ध छां, ताको भोग-दान करि शांत करो। आप म्हारे काम-दाह मेटिवा नै मेघ सादृश्य छो। बहुरि कबहुक देव का गुणानुवाद गावै हैं, कबहुक कटाक्ष करि जाती रहे हैं, कबहुक आनि इकट्ठी होय हैं, कबहुक पगां में लोटि जाय हैं, कबहुक बुलाय सूं भी न आवै हैं, सो ये स्त्रियों का मायाचार स्वभाव ही है। मन में तो अत्यन्त चाहैं, बहुरि बाह्य अचाह दिखावै। बहुरि कबहुक नृत्य करती धरती सूं झुकि

रत्ननि करि विमान व्याप्त होय रह्या है। बहुरि खसबोय वा अनेक वादित्र का राग करि विमान व्याप्त है। सो याने आदि दे सुख-सामग्री स्वर्ग विषैं पाइये है। सो स्वर्ग लोक का सुख वर्णन करिवाने समर्थ श्रीगणधरदेव भी नाहीं, केवलज्ञानगम्य है। सो यो जीव धर्म का प्रभाव करि सागरां पर्यंत ऐसा सुख नै पावै है। जासूं हे भाई! तू धर्म का सेवन निरंतर करि, धर्म बिना ऐसा भोग कदापि पावै नाहीं। तासो अपना हेत का वांछिक पुरुष है ज्याने, धर्म परम्पराय मोक्ष नै कारण है सो ऐसा सुख नै भी आयुर्बल नै भी पूरा करि, उठा सूं भी पूरा करि चवै है। सो छह मास आयु का बाकी रहे है, तब वह देवता अपने मरण कूं जानै है। सो माला वा मुकुट वा शरीर की कांति ताकी जोति मंद पडिवा थकी, सो देव मरण जानि बहुत झूरे है। हाय! हाय! अबै हूं मरि जास्यूं, ये भोग-सामग्री कौन भोगसी? अर हूं किसी गति जास्यो? मूनै राखिवा समर्थ कोई नाहीं! अब हूं काईं करूं, कौन के सरनै जाऊं? म्हारो दरद काहू कूं नाहीं, म्हारा दुःख की बात कौन नै कहूं? ये भोग सारा म्हारा वैरी था, सो सब मिलि एकठा मोनै दुःख देवा आया है, सो ये नर्क सारिखो मानसिक दुःख कैसे भोगूं? कहाँ तौ स्वर्ग सारिखा सुख, अर कहां एकेंद्री पर्याय आदि का दुःख? सो कौडी सारे अनंता जीव बिके हैं अर कुहाड्या[1] सूं छिदै हैं अर हांडी मैं घालि रांधै हैं। सो ऐसी पर्याय कूं हूं आय प्राप्त होस्यो। हाय! हाय! यह कौन अनर्थ? ऐसान की ऐसी दसा होय

---

[1] कुल्हाडी

जाय। बहुरि अपने परिवार के देवनि सूं कहै है–हे देव ! आजि मो परि जम के किंकर काल कोप्यो है। मो नको सूं ऐसा सुर पदवी का सुख सूं छुडावै है अर खोटी गति को प्राप्त करै है सो थे मोनै अब राखो। ई दुःख राहवानै हूं समर्थ नाहीं। घणी कांई कहूं ? म्हारा दुःख की बात सर्वज्ञ देव जानै हैं और जानिवा समर्थ कोई नाहीं। तब परिवार का देव कहता हुवा–ऐसा दीनपना का वचन क्यों कहै है ? या दशा सारा ही मैं होती है। सो काल सौ काहू को जोर नाहीं। ई काल के वसि समस्त लोक का जीव है। जीसौं अबै एक धर्म की शरण है। सो धर्म को सरणो ही गहौ अर आर्तध्यान छोडौ। आर्तध्यान सूं खोटी तिर्यंच गति पावै है अर परम्पराय अनन्त संसार विषैं भ्रमण करै है। तासौ अब ताईं काई गयो नाहीं। अब ही आपु संभालो सावधान होहु अर अपना सहजानंद की संभाल करो, स्वरूप पीवो; ज्या सूं जन्म-मरण का दुःख विलै जाय अर सासता सुख नै पावो। ई संसार सूं श्री तीर्थंकरदेव भी डर्‌या; डरपि करि राज-संपदा नै छोडि वन के विषैं जाय वस्या। तीस्यौ थानै भी यौ कार्य करनौ उचित छै, दरेग[1] करनो उचित नाहीं। सो अबै वे देव ई उपदेश नै पाय अर कितेक दिन ताईं श्रीजी की पूजा करता हुवा। पाछै वारंवार श्रीजी नै याद करता हुवा अर धर्म ही विषैं बुद्धि राखता हुवा अर बारा[2] अनुप्रेक्षा का चिंतवन करता हुवा। कांई चिंतवन करता हुवा ?

बारह भावना

देखो, भाई ! कुटुम्ब परिवार है सो बादला की नाईं

---

[1] छल कपट [2] बारह

बिलै जासी अथवा दशों दिशा सूं सांझ समै पंछी आय वृक्ष ऊपरि विश्राम लेहैं, पाछै प्रभात उडि जाय है अथवा हाट विषें वा मेला विषें अनेक व्यापारी वा तमाशगीर आनि एकठा होय पाछै दोय-च्यारि दिन मैं जाता रहे हैं; त्यौं ही कुटुम्ब परिवार है। अर माया है सो बिजली का चमत्कार समान चंचल है अर जोवन है सो ओस की बूंद समान है। अर आयुर्बल अंजली का जल समान है सो याकै आदि देय सर्व ठाठ विनासीक है, क्षणभंगुर है, कर्म-जनित है, पराधीन हैं। ई सामग्री मैं म्हारी कोई भी नाहीं। म्हारो चैतन्य स्वरूप सासतो अविनासी है। हूं कुणी[1] का सोच करूं? और अबै असरनप्रेक्षा को चिंतवन करै है--

अशरण अनुप्रेक्षा--देखो, भाई! संसार के विषें देव वा विद्याधर वा इंद्र-धरणेंद्र वा नारायण-प्रतिनारायण वा बल-भद्र वा रुद्र वा चक्रवर्ती वा कामदेव यानै आदि दे कोई सरण नाहीं। ये भी सारा काल के वश है तौ और कौन नै सरणे राखै? ज्यास्यौं बाह्य तौ मोनै पंच परमेष्ठी सरण छै। अर निश्चै म्हारो निज रूप सरण है; और सरणो मू नै[2] त्रिकाल में नाहीं।

संसार अनुप्रेक्षा--अबै संसार अनुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई! यो जीव मोह के वशीभूत भूल करि यौं ही संसार के विषै किसा-किसा दुःख नै सहै है? कदी तौ नर्क जाय है, कदी तिर्यंच मैं जाय हैं, कदी मनुष्य ते देव मैं जाय है। ई भांति संसार सौं उदासीन होय, निश्चै-व्यवहार

---

१ किस २ मुझको

धर्म ही को निरंतर सेवन करनो।

एकत्व अनुप्रेक्षा—अबै एकात्वानुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई यो जीव तौ अकेलो है। ईकै कुटुंब-परिवार है नाहीं। नर्क में गयो तौ अकेलो, अैठे आयो तौ अकेलो, अैठा सो जासी तौ अकेलो। तीस्यो म्हारै अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत सुख, अनंत वीर्य यो परिवार सासतो है, सो म्हारी लार है।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा—अबै अन्यत्वानुप्रेक्षा को चितवन करै है। देखो, भाई! ये छहूं द्रव्य अनादि काल का भिन्न-भिन्न न्यारा-न्यारा एक क्षेत्र अवगाह भेले तिष्ठै हैं। कोई द्रव्य काहू सूं मिलै नाहीं; ऐसा अनादि वस्तु का स्वभाव है, तामें संदेह नाहीं। मैं चैतन्य स्वरूप अमूर्तिक अर यो शरीर जड मूर्तिक तासूं मैं कैसे मिल्या? ईको स्वभाव न्यारो, म्हारो स्वभाव न्यारो; ईका प्रदेश न्यारा, म्हारा प्रदेश न्यारा; ईका द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा, म्हारा द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा सो मैं ई सौ अभिन्न कैसे? त्रिकाल भिन्न हूं।

अशुचि अनुप्रेक्षा—अबै अशुच्यानुप्रेक्षा को चितवन करै हैं। देखो, भाई! यो शरीर महा अशुचि है अर घिनावनो है। एता दिन ई शरीर नै पोषता हुवा, काम पड्यो तब दगा ही दिया। ई शरीर सारा द्वीप, समुद्र का पानी सौ पखालिये अर धोइये तौ भी पवित्र नाहीं होय। यो जड अचेतन को अचेतन ही रहै। तीसौं बुधजन ऐसा शरीर सौ कैसे प्रीति करें? कदाचि नाहीं करै।

आस्रव अनुप्रेक्षा—अबै आस्रवानुप्रेक्षा को चितवन करै

है। देखो, भाई ! मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, योग के द्वार कर्मों का द्रव्यत्व आस्रव करि संसार-समुद्र विषैं डूबै है। कैसे डूबै है ? जैसें जहाज छिद्रों करि युक्त समुद्र विषैं डूबें है, तैसे डूबै है।

संवर अनुप्रेक्षा—अबै संवरानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई ! तप, संयम, धर्म-ध्यान करि संवर होय है। जैसे जहाज का छिद्र मूंदे जल आवता रहि जाय है, तैसे कर्म आवता रहि जाय है।

निर्जरा अनुप्रेक्षा—अबै निर्जरानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई ! आत्मा का चिंतवन करि पूर्वला कर्म नाश कूं प्राप्त होय है। जैसे जिहाज माहिला पानी उच्छेद किया हुवा जिहाज कूं पार करै है, तैसे आत्मा कूं कर्म रूपी बोझ सूं हलको करि आत्मा मुक्ति को प्राप्त करै है।

लोक अनुप्रेक्षा—अबै लोकानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई ये त्रिलोक षट् द्रव्य का बन्या है अर कोई कर्ता नाहीं। या षट् द्रव्य मिलि त्रैलोक कूं निपजाया है।

धर्म अनुप्रेक्षा—अबै धर्मानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई ! धर्म ही संसार में सार है। धर्म ही आपनो मित्र है; धर्म ही आपनो सज्जन है; धर्म बिना कोऊ हितु नाहीं, जासूं धर्म ही का साधन करो। अब धर्म ही आराधनो। जेता त्रिलोक विषैं उत्कृष्ट सुख है सो धर्म ही का प्रसाद करि पावै है अर धर्म ही करि मुक्ति पावजे है। सो धर्म ही म्हारो निज लक्षण है, म्हारो निज स्वभाव है, सोई मोनै ग्रहण करनो, औरां करि कांई ?

बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा—अबै बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा को चिंतवन करै है। देखो, भाई! संसार विषैं एकेंद्रिय पर्याय सूं बेंद्रिय पर्याय दुर्लभ है। बेंद्री सौ तेंद्री, तेंद्री सौ चौइंद्री, चौइंद्री सौ असैनी पंचेंद्री, असैनी सौ सैनी पंचेंद्री, तामैं भी मनुष्य पर्याय अर मनुष्य पर्याय में भी धर्म की संगति; धर्म का संयोग है सो दुर्लभ सौ दुर्लभ जानना। तामैं भी सम्यग्ज्ञान महादुर्लभ जानना। ऐसे वह देव भावना भावता हुवा, पाछै आयुबल पूरी करि मनुष्य पर्याय मैं उच्च पद पावता हुवा। अर धर्म ही संसार में सार है। धर्म समान और हितु नाहीं; और मित्र नाहीं। तासौं शीघ्र ही पाप कार्य छोडि वामैं लीन मति करो। अपना हेत का वांछक पुरुष धर्म ही की वांछा राखो; धर्म ही की सरण गहो। घणी कहिवा करि कहा? ऐसे श्रीगुरु प्रश्न का उत्तर दिया। अर उपदेश कह्या, आशीर्वाद दिया। ये शुभ भाव को ज्ञाता जानै है। भूलि-चूक होय तौ शास्त्र माफिक जानना। अर बुधजन याको शुद्ध करि लेना, मम दोष नाहीं। इति स्वर्गन का सुख वर्णन संपूर्ण।

समाधिमरण का स्वरूप

अैठा आगै अपने इष्टदेव कौ नमस्कार करि अंतिम समाधिमरण ताका स्वरूप वर्णन करिये है। सो हे भव्य! तू सुनि सो ही लक्षण अबै वर्णन करिये है। सो समाधि नाम निःकषाय शांत परिणाम का है, ऐसा याका स्वरूप जानना। आगै और विशेष कहिये है। सो सम्यग्ज्ञानी पुरुष है, ताका यह सहज स्वभाव ही है। सो समाधिमरण ही

की चाहे । ऐसी निरंतर सदैव भावना वर्ते है। पाछै मरण की मौसर[1] निकट आवै है तब ऐसा सावधान होय है। मानूं सूता[2] सिंघनै काहू पुरुष नै ललकार किया है। हे सिंघ ! अपना पुरुषार्थ करो। था ऊपरि बैर्‌या की फौज आनि प्राप्त भई है। सो गुफा बाह्य सिताबी[3] निकसो। जेते बैर्‌या का वृंद कहिये समूह केताक दूरि है, तेते निकसि बैर्‌या की फौज नै जीतो। महंत पुरुषा की यह ही रीति छै। सो उठते पहली उत सूं[4] ऐसा वचन वे पुरुष का सुनि सादूंल, सिंघ तत्क्षण उठतो हुवो अर ऐसी गुंजार करतो हुवो। मानूं असाढ के महीने इंद्र ही गडूक्यो[5]। सो ऐसा सिंघ की गुंजार सुनि बैर्‌या की फौज विषैं हस्ती, घोडा; कंपायमान भया आगानै पैड न धारता हुवा। कैसा है ? सो हस्त्या का समूह त्या का हृदै विषैं सिंघा का आकार पैठि गया है। सो हस्ती धीरज नाहीं धरै है। क्यौं नाहीं धरै है ? खिण[6]-खिण में नीहार करै है, ता परि सिंघ का पराक्रम सह्या नाहीं जाय है। त्यौं ही सम्यग्ज्ञानी पुरुष सोई भया शार्दूल, सिंह ताके अष्टकर्म सोई भया बैरी सो मरण समै विषया का विशेषपने जीतिवा कौ उद्यम करै है। सो ऐसा कर्मा का अनुसार जानि सम्यग्ज्ञानी पुरुष है ते सिंघ की नाईं सावधान होय है। अर कायरपना नै दूरि ही तै छांडै हैं। बहुरि कैसा है सम्यग्ज्ञानी पुरुष ? त्या का हृदय विषैं आत्मस्वरूप दैदीप्यमान प्रगट प्रतिभासै है। कैसा प्रतिभासे है ? ज्ञान ज्योति नै लिया आनंद रस करि झरतो ऐसा साक्षात् पुरुषाकार अमूर्तिक चैतन्य धातु

---

१ अवसर २ सोते हुए ३ शीघ्र ४ उधर से ५ गरजा है ६ क्षण

को पिंड, अनंत गुणां करि पूरित ऐसा चैतन्यदेव आप कौ जानै है। ताका अतिशय करि पर द्रव्य सौ अंस मात्र भी रंजित कहिये रागी नाहीं होय है। क्यों नाहीं होय है? आपना निज स्वरूप तौ वीतराग, ज्ञाता-द्रष्टा, पर द्रव्य सौ भिन्न, सासता, अविनाशी जान्या है। अर पर द्रव्य का गलन, पूरन, क्षणभंगुर, असासता अपने स्वभाव सौ भिन्न भलीभांति नीके जान्या। तातैं सम्यग्ज्ञानी पुरुष मरण सौ कैसे डरे? सो सम्यग्ज्ञानी पुरुष मरण समै का मौसर विषैं कोई भावना भावै अर कोई विचारै। ऐसा जाने है-अबै ई शरीर का आयुर्बल तुच्छ है, ये चिह्न मोनें प्रतिभासै है, तातैं मोनै सावधान होना उचित है; ढील करना उचित नाहीं। जैसै सुभट रण-तूर-भेरी बाज्या पाछै भेर्‌या ऊपरि चढिवा की ढील क्षण मात्र भी नाहीं करै है, वीर रस चढि आवै है। कद्या[1] जाय वैर्‌या सौ भिडा अर कद्या वा वैर्‌या का समूह नै जीता-ऐसा जाका अभिलाषा जागि रह्या है। त्यौं ही म्हारै भी अबै काल का जीतिवा का अभिप्राय है। सो हे कुटुंब-बंधु! परिवार के तुम सुनो। अहो देखो! इस पुद्गल पर्याय का चरित्र सो आंख्यां देखता ही उत्पन्न भया अबै विलै जायगा। सो में तौ पहली ही याका स्वभाव विनाशीक जानै था। सोई अबै यह आनि मौसर प्राप्त भया। सो अबै ई सरीर का आयु तुच्छ रह्या है। तामैं भी समय-समय गलता जाय है सो मैं ज्ञाता-द्रष्टा हुवा देखूं हूं अर मैं याका पडौसी हूं। सो अबै देखूं ई शरीर को आयुर्बल कैसै पूर्ण होय अर कैसै शरीर का नाश होय? सो मैं ताकि[2]

---

१ कभी तो २ टकटकी लगाकर

रह्या हू अर तमासगीर हुवा चरित्र देखूं हूं सो ये अनंत पुद्गल की परमाणु एकठी होय पर्याय कूं निपजाया है वा निर्मांप्या है अर कोई शरीर जुदा ही पदार्थ नाहीं । अर मेरा स्वरूप तो एक चैतन्य स्वभाव सासता अविनाशी है, ताकी अद्भुत महिमा हैं सो मैं कौन को कहूं ? बहुरि देखो इस पुद्गल पर्याय का माहात्म्य सो अनंत परमाणु का एक-सा परिणमन एता[1] दिन रह्या सो बडा आश्चर्य है । अबै यह पुद्गल परमाणु वा भिन्न-भिन्न अन्य स्वभाव कूं अन्य रूप परिणमे लागी, तब यह आश्चर्य नाहीं । जैसे लाखां[2] मनुष्य एकठा होय हैं 'मेला' नाम पर्याय कूं निर्मापे है अर केतायक दीर्घ काल पर्यंत वे मेला नाम पर्याय रहे है तो याका आश्चर्य गनिये ? एता दिन लाखां मनुष्य का परिणमन एक-सा रह्यो-ऐसा विचार देखने वाला पुरुष आश्चर्य मानै है । पाछै वे मनुष्य जुदा-जुदा दशों दिशा नै गमन करि जाय हैं· तब मेला का नाश होय है । सो एता पुरुषा का अन्य-अन्य रूप परिणमन सो तो याका स्वभाव ही है । याका आश्चर्य कैसे गनिये ? त्यौं ही अबै ये शरीर और प्रकार परिणमे है तो अबै ये थिर कैसे रहसी ? अबै ई शरीर पर्याय का राखिवा नै कोई की सामर्थ्य नाहीं । सोई कहिये हैं । जेतेक त्रिलोक विषें पदार्थ हैं सो अपना-अपना स्वभाव सूं परिणमे हैं; कोई किसी को परणामे नाहीं; कोई किसी का कर्ता नाहीं अर कोई किसी का भोक्ता नाहीं । आप आवे, आप जावे, आप मिलै, आप बिछुरै, आपै गलै, आपै पूरै सो मैं इसका कर्ता, इसका भोक्ता कैसे ? अर मेरा राख्या शरीर कैसे रहे ? अर मेरा दूरि कर्‌या शरीर कैसे

---

१ इतने २ लाख

दूरि होय ? मेरा क्यौ कर्तव्य है ही नाहीं, झूठे कर्ता मानै है। मैं तो अनादिकाल का खेद-खिन्न, आकुल होय महा दुःख पावै था। सो यह बात न्याय ही है। जाका कर्तव्य तो क्यौ चलै नाहीं, वे पर द्रव्य का कर्ता होय। पर द्रव्य कूं आपके स्वभाव के अनुसार परिणमावै ते दुःख पावै ही पावै। तातें मै एक ज्ञायक स्वभाव ही का कर्ता हौं अर ता ही का भोक्ता हौं अर ताही कूं वेदूं हूं वा ताहि को अनुभवौ हौं। सो ई शरीर के जाते मेरा कछु भी बिगाड नाहीं अर शरीर के रह्या ते मेरे कछु भी सुधार नाहीं। या शरीर विषैं या जाणपणा का चमत्कार है। सो तौ मेरा स्वभाव है; ई शरीर का स्वभाव नाहीं। शरीर तो प्रत्यक्ष मुरदा है। मैं शरीर मांहि सो निकस्या अर शरीर को मुरदा जानि दग्ध किया। मेरे ही मुलाहजे ई शरीर का जगत आदर करै है। जगत के ताईं सो खबरि नाहीं। सो आत्मा न्यारा है अर शरीर न्यारा है। तातैं ये जगत भरम बुद्धि करि ई शरीर कौ अपना जानि ममता करै हैं। अर याकैं जाते बहुत झूरै हैं अर विशेष शोक करै हैं। कांई शोक करै हैं ? हाय ! हाय ! म्हारा पुत्र तू कहां गया ? अर हाय ! हाय ! म्हारा पति तू कहाँ गया ? अर हाय ! हाय ! पुत्री तू कहां गई ? अर हाय ! हाय ! माता तू कहां गई ? अर हाय ! हाय ! पिता तू कहाँ गया ? हाय ! हाय ! इष्ट भ्राता तू कहां गया ? इत्यादि अनेक विरह का विलाप करि अज्ञानी जीव इस पर्याय कूं सत्य जानि करि झूरै है अर महा दुःख-क्लेश कूं पावै हैं अर ज्ञानी पुरुष ऐसे विचारे है—अहो ! कुणो[१] का पुत्र, कुणी की पुत्री, कुणी का पति कुणी की स्त्री, कुणो की माता, कुणी का पिता अर कुणी

की हवेली, कुणी का मंदिर, कुणी का धन, कुणी का माल, कुणी का आभूषण, कुणी का वस्त्र इत्यादि सर्व सामग्री दीसती तौ बहुत रमणीक-सी लागै, परन्तु वस्तु-स्वभाव विचारता ये क्या भी नाहीं। जो वस्तु होती, तौ वह थिर रहती, नाश कौ क्या नै प्राप्त होती? तीस्यो मैं ऐसा जानि सर्व त्रिलोक विषैं पुद्गल का जेतायक पर्याय है ताका ममत्व छाडूं हूं; तैसे ही ई शरीर का ममत्व छाडूं हूं। शरीर के जाता मेरे परिणाम विषैं अंश मात्र भी खेद नाहीं। ये शरीरदि सामग्री है सो चाहे ज्यौं परिणमो, मेरा कुछ भी प्रयोजन नाहीं; भावै छीजो, भावै भीजो, भावै प्रलय नै प्राप्त हो; भावै अब आनि मिलो, भावै जाती रहो, म्हारो क्यो भी मतलब नाहीं? अहो! देखो मोह अर स्वभाव प्रत्यक्ष, यह सामग्री पर वस्तु है अर तामैं भी विनाशीक है। पर भव विषैं वा ई भव विषैं दुखदायी है। तौ भी यह संसारी जीव आपनी जानि रक्षा ही करै है। सौ मैं ऐसा चरित देखि ज्ञाता-द्रष्टा भया हूं। मेरा एक छोछा ज्ञान स्वभाव है ता ही कौ अवलोको हौं। अर काल का आगमन देखि मैं नाहीं डरूं हूं। काल तौ या शरीर का लागू है, मेरे लागू नाहीं। जैसे माखी दौडि-दौडि मिष्टादि वस्तुनि विषैं ही जाय-जाय बैठे है, पणि अग्नि विषैं कदाचि बैठे नाहीं; त्यौं ही ये काल दौडि-दौडि शरीर को ग्रसीभूत करै है अर मो सूं दूरि-दूरि ही भाजै है। मैं तो अनादि काल का अविनाशी चैतन्यदेव लोकनि करि पूज्य इसा पदार्थ ता विषैं काल का जोर नाहीं। सो अबै कोण मरै अर कोण जीवै अर कोण मरण का भय करै। मोनै तो

मरण दीसता नाहीं। मरे छै सो पहल्या ही मूवा था। अर जीवे है सो पहली ही का जीवै है सो मरै नाहीं। मोह इष्ट करि अन्यथा भासे था सो अबै मेरा मोह कर्म विलै गया। सो जैसा वस्तु का स्वभाव छा, सो ही मोनै प्रतिभास्या। ता विषैं जामन-मरण अर सुख-दुःख देख्या नाहीं तौ अबै मैं काहे का सोच करूं? मैं एक चैतन्य धातुमयी मूर्ति सासता बन्या हूं। ताका अवलोकन करता मरणादिक कौ दुःख कैसे ब्यापै? बहुरि कैसा हूं मैं? ज्ञानानंद निज रस करि पूर्ण भर्‍या हूं अर शुद्धोपयोगी हूं वा ज्ञान रस नै आचरूं हूं वा ज्ञान-अंजुलि करि शुद्धामृत नै पीवूं हूं। निज शुद्धामृत मेरा सुभाव थकी उत्पन्न भया है, तातें स्वाधीन हैं, पराधीन नाहीं; तातैं ताका भोग विषें खेद नाहीं। बहुरि कैसा हूं मैं? अपने निज स्वभाव विषैं स्थित हूं, अडोल हूं, अकंप हूं। बहुरि कैसा हूं मैं? स्वरस करि निर्भर-कहिये अतिशय करि भर्‍या हूं, अर ज्वलित कहिये दैदीप्यमान ज्ञान-ज्योति करि प्रगट अपने ही निज स्वभाव विषें तिष्ठौ हूं। देखो, अद्भुत ई चैतन्य स्वरूप की महिमा ताका ज्ञान स्वभाव विषें समस्त ज्ञेय पदार्थ स्वयमेव आय झलके हैं। पणि ज्ञेय रूप नाहीं परिणमे हैं अर ताके जाणता विकल्पता अंश मात्र भी नाहीं होय है। तातें निर्विकल्प, अभोगित, अतींद्रिय, अनौपम्य, बाधा रहित है तो अखंड सुख उपजै है सो ये सुख संसार विषें दुर्लभ है। सुख की आभा-सा अज्ञानी जीवा कौ भासे है। बहुरि कैसा हूं मैं? ज्ञानादि गुण करि पूर्ण भर्‍या हूं। त्या गुणादि गुणमय एक वस्तु वा अनंत गुणा की खानि हूं। बहुरि कैसा हूं? मेरा चैतन्य स्वरूप

जहां-तहां चैतन्य ही सर्वांग विर्षे व्याप्त है। जैसे लूण की डली पिंड विषैं व्याप्त है अथवा जैसे शर्करा की डली विर्षे सर्वांग मीठा कहिये अमृत रस व्याप्त होय रह्या है। वा जैसे सक्कर की कणिका छोछा अमृतमय पिंड है, तैसे ही मैं एक ज्ञानमय पिंड बण्या हूं। मो विषैं सर्वांग ज्ञानमय ही ज्ञानपुंज हौ, तैसे मानि शरीर का निमित्त पाय शरीर के आकार मेरा आकार ही है। अर वस्तु द्रव्य-स्वभाव विचारता तीन लोक प्रमाण मेरा आकार है। सो अवगाहना शक्ति करि एते आकार विषैं एता आकार समाय ही गया है। एक प्रदेश विर्षे असंख्यात प्रदेश भिन्न-भिन्न तिष्ठै हैं। सर्वज्ञ देव जुदा-जुदा ऐसे ही देखे हैं; यामैं संकोच-विस्तार शक्ति है। बहुरि कैसा है मेरा निज स्वरूप? अनंत आत्मिक सुख का भोक्ता है। एक सुख ही की मूरति है, चैतन्य पुरूषाकार है। जैसी मांटी का सांचा विर्षे एक शुद्ध रूपा मय धातु का पिंड बिंब निर्मापिये है, तैसै ही आत्माकार स्वभाव ई शरीर विषैं जानना। माटी का सांचा काल पाय गलि गया वा विलै गया वा फूटि जाय तब वे बिंब ज्यौं का त्यौं रहै; बिंब का विनाश नाहीं। वस्तु पहली ही दोय थी। एक का नाश होते दूजी का नाश कैसे होय? ये सर्व प्रकार नेम है; त्यौं ही काल पाय ये शरीर गलै है तो गलो, मेरा स्वभाव का तो विनाश है नाहीं। मैं काहे का सोच करूं? बहुरि कैसा है? यह चैतन्य स्वरूप आकाश-वत् निर्मल सूं निर्मल है। आकाश विषैं कोई जाति का विकार नाहीं; एक शुद्ध निर्मलता का पिंड है। अर कोई

आकाश नै खड्ग करि छेद्या चाहै अर अग्नि करि जाल्या[1] चाहै अर पाणी करि गाल्या चाहै तो वह आकाश छेद्या-भेद्या न जाय। अर कैसे बलै अर कैसे गलै कदाचि भी वाका नाश नाहीं। बहुरि कोई आकाश के ताईं पकड़्या-चाहै अर तोड़्या चाहै तौ कैसे पकड़्या जाय वा तोड़्या जाय? त्यौं ही मैं तो आकाशवत् अमूर्तिक, निर्मल सूं निर्मल, निर्विकार, छोछा,[2] निर्मलता का एक पिंड हूं। मेरा नाश किसी बात करि होय नाहीं। काहू प्रकार करि नाहीं होय, यह नेम है। जो आकाश का नाश होय तो मेरा नाश होय, ऐसा जानना। पणि आकाश का स्वभाव में अर मेरा स्वभाव में एक विशेष है; आकाश तौ जड, अमूर्तिक पदार्थ है अर मै चेतना, अमूर्तिक पदार्थ हूं। जे चैतन्य था तौ ऐसा विचार भया सो यह आकाश जड है अर मैं चैतन्य हूं। मेरे यह विद्यमान जानपना दीसै है अर आकाश में दीसै नाहीं, यह निःसंदेह है। बहुरि कैसा हूं मैं? जैसा सीसा एक छोछा स्वच्छ शक्ति का पिंड है। वाकी स्वच्छ शक्ति विषैं स्वच्छ शक्ति स्वयमेव ही है; घट-पटादि पदार्थ आनि झलकै है, सीसा पदार्थ स्वयमेव झलकै है। ऐसी स्वच्छ शक्ति शुद्धातम व्यापि करि स्वभाव विषैं तिष्ठूं हूं। सर्वांग विषैं एक स्वच्छता भरि रही है, मानूं यह ज्ञेय पदार्थ स्वच्छतामय होय गया है, पणि स्वच्छता न्यारी है अर ज्ञेय पदार्थ न्यारा है। सो स्वच्छ शक्ति का स्वभाव है उस विषैं पदार्थ का प्रतिबिंब आणि ही पडै है। बहुरि कैसा हूं मैं? अनंत, अतिशय करि निर्मल, साक्षात् ज्ञानपुंज बन्या हौं। अर अत्यन्त शांत रस करि पूर्ण भर्‌या

---

१ जलाना २ शुद्ध, निष्पाप

हौं। एक अभेद निराकुलित करि व्याप्त हूं। बहुरि कैसा है मेरा चैतन्य स्वरूप ? अपनी अनंत महिमा करि विराजमान है। कोई का सहाय चाहै नाहीं अर ये स्वभाव नै धर्या है, स्वयंभू है। एक अखंड ज्ञानमूर्ति पर द्रव्य सौ भिन्न सासता अविनाशी परम देव ही है। अर ई उपरांत उत्कृष्ट देव कौन कूं मानिये ? जो त्रिलोक विषैं होय तौ मानिये। बहुरि कैसा है यह ज्ञान स्वरूप ? अपना स्वभाव छोडि अन्य रूप नाहीं परिणमे है, निज स्वभाव की मर्यादा नाहीं तजे हैं। जैसे समुद्र जल का समूह करि पूर्ण भर्या है, परन्तु स्वभाव कौ छोडि अंत गमन नाहीं करै है अर अपनी तरंगावली सोई भई लहरि, त्या करि अपना स्वभाव विषैं भ्रमण करे है; त्यौं ही यह ज्ञान समुद्र शुद्ध परिणति तरंगावलि करि सहित अपने सहज स्वभाव विषैं भ्रमण करै है। ऐसा अद्भुत महिमा करि विराजमान मेरा स्वरूप परमदेव ई शरीर सूं न्यारा अनादि काल का तिष्ठै है। मेरा अर ई शरीर का पाडोसी का-सा संयोग है। मेरा स्वभाव अन्य प्रकार याका स्वभाव अन्य प्रकार, मेरा परिणमन अन्य प्रकार याका परिणमन अन्य प्रकार सो अबै ई शरीर गलन स्वभाव रूप परिणमे है, तौ मैं काहे का सोच करूं, काहे का दुःख करूं ? मैं तो तमासगीर पाडोसी हुवा तिष्ठौ हूं। मेरे ई शरीर सूं राग-द्वेष नाहीं। राग-द्वेष है सो जगत विषैं निंद्य है अर परलोक विषैं महा दुःखदायी है। ये राग-द्वेष मोह ही तैं उपजै है। जाका मोह विलै गया, ताका राग-द्वेष भी विलै गया। मोह करि पर द्रव्य विषैं अहंकार-ममकार उपजै है। सो ये द्रव्य है सोई मैं हूं, ऐसा तौ अहंकार अर ये द्रव्य मेरा है, ऐसा ममकार उपजै

है। पाछै वे सामग्री चाहे, तौ आवे नाहीं है अर छोडी जाती नाहीं है; पाछै यह आत्मा खेद-खिन्न होय है। अर जे सर्व सामग्री पैला की जानिजे तो काहे का वाका आवा-जावा का विकल्प उपजै। तातें मेरे मोह पहले ही विलो गया है। अर मैं पहले शरीरादि सामग्री विरानी जानी है। तो अबे भी मेरे या शरीर जाते काहे का विकल्प उपजै? विकल्प उपार्जिवा वाला मोह ताका भलीभांति नाश किया, तासूं मैं निर्विकल्प, आनंदमय, निज स्वरूप नै बार-बार संभालता वा याद करता स्वभाव विषैं तिष्ठूं हूं। यहां कोई कहै—यह शरीर तुम्हारा तौ नाहीं। परंतु ई शरीर का निमित्त करि यही मनुष्य पर्याय विषैं शुद्धोपयोग का साधन भलीभांति बनै था, ताका उपकार जानि याका राखने का उद्यम बनै, तौ उचित है, यामैं टोटा तौ नाहीं। ताकौ कहिये हैं–हे भाई! तैं ऐसा कह्या सो या बात हम भी जानै हैं। मनुष्य पर्याय विषैं शुद्धोपयोग का साधन अर ज्ञानाभ्यास का साधन अर ज्ञान-वैराग्य की बधवारी, इत्यादि अनेक गुणां की बधवारी प्राप्त होय है, जैसी अन्य पर्याय विषैं दुर्लभ है। परंतु आपणा संयमादि गुण रह्या शरीर है, तो भला ही है। म्हाकै कोई शरीर सूं वैर तौ है नाहीं अर नाहीं रहै छै, तौ आपणा संयमादि गुण निर्विघ्नपणे राखणा। अर शरीर का ममत्व अवश्य छोडना। शरीर के वश तैं संयमादि गुण कदाचि भी खोवणा[1] नाहीं। जैसे कोई पुरुष रत्नां का लोभी परदेश सौं आया, रत्नद्वीप विषैं फूस की झूपडी कूं निर्मापि है, अर

---

[1] खोना

उस झूपडी विषैं रत्न ल्याय-ल्याय एकठा करै। अर जो उस झूपडी कै अग्नि लागि जाय, तौ वह विचक्षण पुरुष ऐसा विचार करै–सो कांई विचार करि अग्नि का निवारण कीजै अर रत्न सहित इस झूपडी कूं राखिये ? या झूपड़ी रहसी, तौ ई के आसिरे घणा रत्न भेला करिस्यूं, सो वे पुरुष अग्नि कौ बुझतो जाने, तौ रत्न राखि करि बुझावै। अर कोई कारण ऐसा देखे कि वह रत्न गया, झूपडी रहै छै, तौ कदाचि भी झूपडी राखिवा कौ जतन करै नाहीं। झूपडी नै तौ वलि जावा दे अर आप संपूर्ण रत्न ले आपणे देस सो उठि आवै। पाछै एक-दोय रत्न बेचि अनेक तरह की विभूति नै भौगवै अर अनेक प्रकार के सुवर्णमयी वा रूपामयो[1] महल वा हवेली करावै वा बागादि निर्मापै। पाछै वा विषैं स्थिति करि रंग-राग खुसबोय संयुक्त आनंद क्रीडा करै, अर निर्भय हुवो अन्यंत सुख सौ तिष्ठै। सौ ही भेद-विज्ञानी पुरुष छै, ते शरीर के वास्ते संयमादि गुण विषैं अतिचार भी लगावै नाहीं। अर ऐसा विचारै जो संयमादि गुण रहसी तौहूं विदेहक्षेत्र विषैं जाय औतार लेस्यौं। अर श्रीतीर्थंकर केवली भगवान ताका चरणारविंद विषैं क्षायिक सम्यक्त्व का प्रारंभक निष्ठापन करिस्यौं। पाछै पवित्र होय श्रीतीर्थंकरदेव के निकटि दीक्षा धरिस्यूं। पाछै नाना प्रकार दुर्धर तपश्चरण ग्रहण करिस्यौं। अर जन्म-जन्म का संच्या पाप ताका अतिशय करि नाश करिस्यौं। अर अनेक प्रकार का संयम तिनका ग्रहण करिस्यौं। अर अनेक प्रकार का मनवांछित प्रश्न करिस्यौं।

---

[1] चांदी युक्त

अर अनेक प्रकार का प्रश्ना का उत्तर सुनि करि सर्व पदार्थ का वा तत्काल का स्वरूप जानिस्यूं अर राग-द्वेष संसार का कारण छै, त्या को शीघ्रपणै अतिशय करि जड-मूल तै नाश करिस्यूं । अर श्री परमदयाल, आनंदमय, केवली भगवान, अद्भुत लक्ष्मी संयुक्त ऐसा श्रीजिनेंद्रदेव, ताका स्वरूप कूं देखि-देखि दर्शन रूपी अमृत, ताका अतिशय करि अर्चन करि, वा थकी म्हारा कर्म-कलंक-रज धोया जासी, तब मैं पवित्र होस्यूं । अर सीमंधर स्वामी आदि बीस तीर्थंकर और घणा केवली और घणा मुनिराज का वृंद कहिये समूह, ताका दर्शन करिस्यूं । ताका अतिशय करि शुद्धोपयोग अत्यंत निर्मल होसी, तब स्वरूप विषें अत्यंत लागसी, तब क्षपक श्रेणी चढिवा कै सन्मुख होस्यौं । पाछै शीघ्रपणै कर्म घणे जोरावर, तासूं अडि करि राडि[1] करिस्यूं । अर पटक-पटक, भचक-भचक जड-मूल सौं नाश करि कै केवलज्ञान उपावस्यौं । पाछै एक समय विषैं समस्त लोकालोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थ को मूंनै भी दीससी । पाछै ऐसा ही स्वभाव सासता रहसी । तौ मैं ऐसी लक्ष्मो का स्वामी ताके ई शरीर सौं कैसैं ममत्व उपजै ? ऐसे सम्यग्ज्ञानी पुरुष विचार करता तिष्ठै है, म्हारे दोन्यों ही तरह आनंद है । जे शरीर रहसी, तौ फेरि भी मैं शुद्धोपयोग नै हो आराधस्यौं अर शरीर नहीं रहसी, तौ परलोक विषैं जाय शुद्धोपयोग नै ही आराधस्यौं । सो म्हारे कोई प्रकार शुद्धोपयोग के सेवन में तौ बिघ्न दीसै नाहीं । तो म्हारे काहे का परिणाम विषैं क्लेश उपजै ? म्हारा परिणाम शुद्ध स्वरूप सूं

---

१ झगड़ा

अत्यन्त आसक्त, ताकूं छुडावने को ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इंद्र, धरणेंद्र, आदि कोई चलावने समर्थ नाहीं । एक मोह कर्म समर्थ था, त्यानैं तौ मैं पहली ही जीत्या, सो अब म्हारे त्रिलोक विषैं वैरी रह्यो नाहीं अर वैर भी नाहीं । त्रिकाल, त्रिलोक विषैं दुःख नाहीं । तो हे सभा के लोगो ! मेरे ई मरण का भय कैसे कहिये ? तोसूं मै आज सर्व प्रकार करि निर्भय भया हूं । थे या बात नीके करि जानो अर यामैं संदेह मति विचारो । ऐसे शुद्धोपयोगी पुरुष शरीर की थिति पूर्ण जानै हैं । तब ऐसा विचार करि आनंद में रहे है । कोई तरह की आकुलता उपजै नाहीं । आकुलता है सो ही संसार का बीज है । इस ही बीज करि संसार की स्थिति है । आकुलता करि बहुत काल का संच्या हुवा संयमादि गुण जैसे अग्नि विषैं रुई भस्म होय, तैसे भस्म होय । तातें सम्यक्दृष्टि पुरुष छै, त्यानै कोई प्रकार आकुलता करनी नाहीं । निश्चै एक स्वरूप ही का बारंबार विचार करना । वा ही कौ बार-बार देखना, वा ही के गुण का चितवन करना, वा ही के पर्याय की अवस्था का विचार करना, वा ही का स्मरण करना, वा ही विषैं स्थित रहना । अर कदाचि शुद्ध स्वरुप सूं उपयोग चलै, तौ ऐसा विचार करना सो यह संसार अनित्य है । ई संसार मैं क्यौं भी सार नाहीं । जे सार होता, तौ तीर्थंकरदेव क्या नैं छोडते ? तीस्यों अबै मूंनै निश्चै तौ म्हारो स्वरूप ही मूंनै सरण है । बाह्य पंच परमेष्ठो अर जिनवाणी वा रत्न-मय धर्म सरण हैं । अर कदाचि स्वप्ना मात्र भूले-विसरे भी म्हारा अभिप्राय करि मोन सरण नाहीं हैं, म्हारै यह नेम है । ऐसा विचार करि फेरि स्वरूप विषैं उपयोग

लगावै, अर फेरि भी ऊठा सूं[1] उपयोग चलै वा उतरै, तौ अर्हंन, सिद्ध ताका आत्मीक स्वरूप का अवलोकन करै अर ताका द्रव्य, गुण, पर्याय विचारै। पाछै वाका द्रव्य, गुण, पर्याय विचारता-विचारता उपयोग निर्मल होय, तब फेरि अपने स्वरूप विषै लगावै। अर आपणा स्वरूप सारिखो अरहंत, सिद्ध को स्वरूप छै। अर अर्हंत–सिद्ध का स्वरूप सारिखा आपणो स्वरूप छै। सो कैसै द्रव्यत्व स्वभाव मै तो फेर नाहीं है अर पर्याय स्वभाव विषैं फेर है ही। अर मैं हूं सो द्रव्यत्व स्वभाव का ग्राहक हूं। तौसौं अर्हंत का ध्यान करता आत्मा का ध्यान नीके सधै है। अरहंत का स्वरूप में अर आत्मा का स्वरूप में फेर नाहीं। भावै तो अरहंत कौ ध्यान करौ, भावै आत्मा कौ ध्यान करौ। ऐसा विचार करतो सम्यक्‌दृष्टि पुरुष सावधान हुवो स्वभाव विषैं तिष्ठै है। ऐठा आगै अब कांई विचार करै है, अर कैसै कुटुंब-परिवारादिक सौ ममत्व छुडावै सोई कहिये है। अहो! ई शरीर के माता-पिता तुम नीके करि जानो। यह शरीर एता दिन तुम्हारा छा, अब तुम्हारा नाहीं। अब याका आयुर्बल पूर्ण भया, सो कोई का राख्या रहै नाहीं। याकी एती ही थिति थी, सो अबै यासौं ममत्व छाडो। अब यासौं ममत्व करिवा करि कांई? अब प्रीति करिवो है सो दुःख को कारण है। यह शरीर पर्याय है सो इंद्रादिक देव को भी विनाशीक है। याका मरण समय आवै, तब इंद्रादिक देव छै, ते भी जुलक-जुलक मोहडो[2] चौषता रहै[3]। सब देवा का समूह देखता काल-किंकर छै, सो

---

१ वहां से २ मुख, मुँह ३ बार-बार देखने की अभिलाषा से मुंह की ओर देखता रहे है

उठाय के जाय। या किस ही की शक्ति नाहीं जो काल की डाढ़ में सूं छुड़ाय छिण मात्र तो राखै, सो यो काल-किंकर एक-एक नै ले जाय, तो सर्व का भक्षण करसी। अर जे अज्ञान करि काल के वश रहसो, त्याको याही मति होसी। सो थे मोह का वश करि पराया शरीर सौं ममत्व करो छो, अर राख्यो चाहो छो। सो थानै मोह का वश करि संसार को चरित्र झूठो दीस्यो नाहीं। सो पहला को शरीर तो राखिवो दूरि ही रहो, थे थाको शरीर तो पहली राखो। पाछै औरां का राखिवा को उपाय कीज्यो। थाको या भरम बुद्धि छै, सो वृथा दुःख ही के अर्थि छै। थानै प्रत्यक्ष या दीसै नाहीं छै। आज पहलो ई संसार विषैं काल कहीं कूनै[१] छोड्या? अबै कहीं तैनें छोडिसी। सो हाय! देखो आश्चर्य की बात! थे निर्भय हुवा तिष्ठो छो। सो यो थाके कौन अज्ञानपणो छै, अर थाको कांई होणहार छै, सो हूं नहीं जानूं छूं, तोसूं हूं थाने पूछूं छूं। थानै आपा-पर की क्यो खबरि भी छै? सो म्है कौन छा अर म्है कठा सूं आया छा? अर म्है पर्याय पूरी करि कठै जास्या? अर पुत्रादिक सौ प्रीति करा, सो कर, सो कोण छै? अर एता दिन म्हाको पुत्र कठै छो! अब म्हाकै पुत्र की ममता बुद्धि हुई। अर वाका बियोग का म्हानै शोक उपज्यो, यासूं अबै थे सावधान होय विचार करो अर भरम रूप मति रहो। अर थे तो थाको कार्य विचार्या सुख पावोला पर को कार्य-अकार्य वैला कै हाथि छै, थाको कर्तव्य क्यौं भी नाहीं? थे वृथा ही खेद-खिन्न क्यों प्रवर्तो हो? अर

---

१ किस को।

आपना आपनै मोह के वशि करि संसार के विषैं क्यौं डुबोवो छो ? संसार विषैं नर्कादि का दुःख थानै ही सहना पडैला, थाको वोई और तो नहीं सहेला। जिनधर्म को ऐसो उपदेश है नाहीं, पाप करै कोई अर भोगवै कोई। अर तोसौं मूंनै अपूठा थाको दया आवै है। सो थे म्हारो उपदेश ग्रहण करौ। म्हारो उपदेश थानै महा सुखदायी छै। सो कैसे सुखदायो छै ? सोई कहिये है—म्है तौ यथार्थ जिनधर्म को स्वरूप जान्यौ छै, अर थे न जान्यू छं, तोसूं थानै मोह दुःख दे छै। अर म्है मोह ने जिनधर्म का प्रताप करि सुलभ पणै जान्यौ। एक जिनधर्म को अतिशय जान्यौ, तोस्यौं थानै भी। जिनधर्म को स्वरूप विचारिवो कार्यकारी है। देखो, थे प्रत्यक्ष ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा छौ; अर शरीरादि पर्याय पर वस्तु छै। आपना स्वभाव रूप स्वयमेव परिणमे छै। काहू का [illegible] रहे नाहीं; भोला जीव भरम बुद्धि छै, तोस्यौं थे भरम बुद्धि छोडौ अर एक आपा-पर की ठीक एकता करौ। तीमैं आपणो हेत सधै सोई करौ, विचक्षण पुरुष की याही रीति है। एक आपणा हेत ही नै चाहै, विना प्रयोजन एक पैड भी धरै नाहीं। अर थे मोसौं ममत्व जेतो घणो करिस्यौ, तेतो घणा दुःख के अर्थि होसी। कार्य क्यौं भी सरनो नाहीं ? यो जोव अनंत वार अनंत पर्याय विषैं न्यारा-न्यारा माता-पिता पाया, सो वे अबै कठै गया ? अर अनंत वार ई जीव कै स्त्री-पुत्र-पुत्री का संयोग मिल्या, सो अबै वे कहां गया ? अर पर्याय-पर्याय के विषैं भ्राता, कुटुम्ब, परिवारादि घणा ही पाया, सो अबै वे कहां गया ? संसारी जीव छै, सो तो पर्याय बुद्धि छै। जैसी पर्याय धरै तैसो ही आपो मानै। अर पर्याय सौ तन्मय होय परिणमे, या जाणे

नाहीं पर्याय का स्वभाव छै, ते विनाशीक छै। अर म्हा कौ निजस्वरूप छै, सो सासतो अविनाशी छै; ऐसा विचार उपजे नाहीं। तीसूं थानै कांई दूषण छै ? यो मोह कौ माहात्म्य छै; प्रत्यक्ष झूठी बात नै सांची दिखावै है। अर जाको मोह गलि गयो सो भेद-विज्ञानो पुरुष छै, ते ई पर्याय सौं कैसे आपो मानै ? अर कैसे याको सत्य जाने ? अर कौन कौ चलायो चलै, कदाचि न चलै। तीसूं मेरे ज्ञान भाव यथार्थ भया है। अर आपा-पर को ठीक एकता भई है। सो मौनै अबै ठगिवा समर्थ कौन छै ? अनादि काल कौ पर्याय पर्याय विषैं घणो ही ठगाय आयो जाहि करि भव-भव विषैं जामन -मरण का दुःख सह्या, तीसौं थे अबै नीका करि जानो था कै अम्हारे एता ही दिन कौ संयोग सम्बन्ध छौ, सो अबै पूरो हुवो। सो थानै भी आत्म-कार्य करिवो उचित है; मोह करिवो उचित नाहीं। तीस्यौं निज स्वरूप आपनो सासतो छै, तिहि नै सम्हालो। तामैं कोई तरह कौ खेद नाहीं, कहूं पासि जाचनो नाहीं। आपणा ही घर मैं महा अमोलक निधि है, तिहि नै सम्हाल्या जन्म-जन्म का दुःख विलै जाय है। जेता एक संसार विषैं दुःख छै, तेता इक आपा जाण्या विना है; तीसूं एक ज्ञान नै ही आराधौ। ज्ञान स्वभाव छै सो आपनो निजस्वरूप छै। ताकौ पाय यो जीव महासुखी होय छै। ताकौ विना पाया ही महा दुखी छै। तीसौं यो प्रत्यक्ष देखन-जाननहारो ज्ञायक पुरुष शरीर सौं भिन्न ऐसा अपना स्वभाव, ताकौ छोडि और किसी बात विषैं प्रीति उपजै। जैसे सोलहा स्वर्ग को कल्पवासी देव ख्याल के अर्थि[1] मध्य लोक विषै आय अर एक कोई रंक पुरुष

[1] कौतुक वास्ते

का शरीर मैं आय पैठो, अर वे रंक को-सो क्रिया करिवा लाग्यो। कांई क्रिया करिवा लाग्यो ? कदे तो काष्ठ को भार माथे धरि बाजार विषैं बेचिवा चालै, अर कदे गारि को सकोर्‌यो ले माता वा स्त्री नखै रोटी जाचिवा लाग्यो। कदे पुत्रादिक कूं ले खिलावा लाग्यो, अर कदे राजादिक पै जाय जाचना करिवा लाग्यो। महाराज ! हूं आजीविका करि घणो दुखी हूं, म्हारो प्रतिपालन करो। कदे टको मजूरी को लेय दांतलो[1] ले करिकैं खडो, सोले घास काढिवा चाल्यो अर कदे रुपया, दोय रुपया को माल गुमाय रोयवा लाग्यो? सो कैसे रोयवा लाग्यो?अरे वाह रे ! अब हूं कांई करिस्यूं, म्हारो धन चोर ले गयो। मैं नीठि-नीठि कमाय-कमाय एकठो कियो छो सो आज जातो रह्यो। सो अबै हूं कैसे काल पूरो करिस्यौं ? कर कदे नगर विषैं भाजतो पडो। तब वे पुरुष एक लडका ने तो कांधे चढाया अर एक लडका को आंगुली पकडि लीनो अर स्त्री वा पुत्री को आगै करि लीनो। अर तामैं छाजलो[2] वा चालणी वा रांधिवा की हांडी वा बुहारी इत्यादि सामग्री सूं छाव[3] भरि स्त्री के माथै दीनी अर एक दोय गूदडा आदि पोट[4] मैं बांधि आपनै माथै लीनी। पाछे आधी रात का नगर मै सूं निकस्या। पाछै मारग विषैं राहगीर, बटाऊ मिल्या, ते पूछता हुवा-रे भाई ! थे कठै चाल्या ? तब यह पुरुष कहता हुवा-ई नगर विषैं वैर्‌या की फौज आई छै, सो म्है आपणो धन ले भाज्या छा। तीसौं और नगर विषैं जाय गुजरान करस्यां। इत्यादि नाना प्रकार के चरित्र करितो, वह कल्पवासी देव आपणा सोलहा स्वर्ग को विभूति, तिहि नै खिण मात्र भी नाहीं

---

1 हंसिया 2 सूपा 3 टोकरा 4 पेट

बिसारे है। वा विभूति का अवलोकन करि महासुखी हुवा विचारै है-वा रंक पुरुष की पर्याय विषें भई जो नाना प्रकार की अवस्था, ता विषें कदाचि अहंकार-ममकार नाहीं आवे है; एक सोलहा स्वर्ग की देवांगना आदि विभूति अर आपणा देव-पुनीत स्वरूप ता विषें ही आवे है। तैसे ही सो मैं सिद्ध समान आत्म द्रव्य ई पर्याय विषें नाना प्रकार की चेष्टा करता थका, आपनो मोक्ष-लक्ष्मी नै नाहीं विसारू ं[1] छूं तौ हौं लोकां मैं काहे का भय करूं ? ऐठा आगै स्त्रीनि का ममत्व छुडावे है सो ही कहिये है। अहो ! इस शरीर की स्त्री अबै ई शरीर सूं ममत्व छांडि। तेरा अर ई शरीर का एता ही संयोग था सो अबै पूरा हुवा। तेरा गरज ई शरीर सूं अबै सरणी नाहीं, तीसूं तू अबै मोह छोडि। बिना प्रयोजन खेद मति करै। अर थारा राख्या शरीर रहै छै तो राखि मैं तो तै वरजूं[2] नाहीं। अर जो थारा राख्या शरीर रहै, ई न छै, तो मैं कांई करूं ? अर जे तू विचार करि देखि, तौ तू भी आत्मा है। मैं भी आत्मा हूं। स्त्री-पुरुष की पर्याय है सो पुद्गलीक है, तासूं कैसो प्रीति ? शरीर जड अर आत्मा चैतन्य ऊंट-बैल का-सा जोडा; सो यह संयोग कैसे बने ? अर तेरा पर्याय है सो भी तू चंचल जानि, तीसूं अपना हेत क्यों न विचारै ? हे स्त्री ! राता-दिन भोग किया ता करि कांई सिद्धि हुई ? तौ अबै सिद्धि कांई होनी छै ? वृथा ही भोगां करि आत्मा नै संसार विषें डुबोयो। या मरण समै जानी नाहीं, आप मुवा पाछै तीन लोक की

---

१ भुलाता २ मना करना

संपदा झूठी। तीसूं म्हाका पर्याय को थानै दरेग करनो उचित नाहीं। जो तू म्हा की प्यारी छी तौ म्हाको धर्म को उपदेश क्यों दे ? या थाकी विरिया[1] छै अर जे तू मतलब ही को संगी है, तौ तू थारी जानो। म्है थारा डिगाया किसा डिगा छा ? म्है तो थारी दया करि ही थानै उपदेश दियो छै। मानै तो मानि, नाहीं मानै तौ थारो होनहार छै, सो होसी। म्हाको तो अबै क्यौ मतलब नाहीं, तीसूं तू अबै म्हा नखे[2] सूं जा अर परिणामा नै शांत राखि आकुलता मति करै। आकुलता छै सो संसार को बीज छै। ऐसे स्त्री कूं समझाय सीख दो ी। आगै निज कुटुंब, परिवार को बुलाय समझावै है—अहो ! कुटुंब-परिवार के अबै ई शरीर को आयु तुच्छ रही है। अब म्हाके परलोक नजीक छै। तीसूं अबै म्है थाने कहा छा—थे म्हा सौं कांई बात को राग कीज्यो मति। थाके अर म्हाके च्यारि दिन को मिलाप छै, ज्यादा नाहीं। जैसै सराय के विषैं राहगीर दोय रात्रि विषैं तिष्ठै, पाछै बिछुरता दरेग करै। यह कौन सयानपणो ? तोसूं म्हाकै थासूं खिमा भाव छै। थे सारा ही आनंदमय तिष्ठौ। अनुक्रम सौं सारा ही की याही रीति होणी छै। सो ऐसो संसार को चरित्र जानि ऐसो बुद्धिमान कौन है; सो यासूं प्रीति करै। ऐसे ही कुटुंब-परिवार को समझाय सीख दीन्ही। अब पुत्र को बुलाय समझावै हैं - अहो पुत्र ! थे सयाणा हो, म्हा सौं कांइ[3] तरह सौं मोह कीजो मति। अर एक जिनेश्वरदेव को धर्म छै, ताको नीका पालिज्यो। थानै धर्म ही सुखकारी होयलो; माता-

---

१ समय, वेला, घड़ी २ पास ३ किसी

पिता सुखकारी नाहीं। माता-पिता नै कोई सुख कर्ता मानै छै, सो यह मोह को माहात्म्य जानो। कोई किसी का करता नाहीं, कोई किसी का भोगता नाहीं। सर्व ही पदार्थ आपना स्वभाव का कर्ताभोक्ता है। तीसूं अबै म्है थानै कहा छाजे ? थे विवहार मात्र म्हाकी आज्ञा मानो छो तो म्हें कहा सो करो। प्रथम तौ थे देव, गुरु, धर्म की अवगाढ गाढी प्रतीति करो अर साधर्म्यां स्यौं मित्रताई करो अर दान, तप, सील, संयम तासूं अनुराग करो। अर स्व-पर विषैं भेद-विज्ञान ताका उपाय करो। अर संसारी जीव सूं ममता भाव कहिये, प्रीति ताकौ छोडो। सरागी जीवां की संगति सूं संसार विषैं अनादि काल को ई जीव महा दुःख पायो छै, तातैं सरागी पुरुषा की संगति अवश्य छोडनी अर धर्मात्मा पुरूषा की संगति करनी। अर धर्मात्मा पुरूषा की संगति छै, सो ई लोक विषैं अर परलोक विषैं महा सुखदायी छै। ई लोक विषैं तो महा निराकुलता सुख की प्राप्ति होय है अर जस की प्राप्ति होय है। अर परलोक विषैं स्वर्गादिक का सुख नै पाय मोक्ष विषैं शिव-रमणी को भर्तार होय छै अर निराकुलित, अतींद्रिय, अनौपम्य, बाधा रहित, सासता, अविनाशी सुख नै भोगवै है। जासूं हे पुत्र ! थानै म्हाका वचन सांचा दीसै छै, अर यामें थाको भलो होनो थाने दीसै छै, तो म्हाका वचन अंगीकार करो। अर थानै म्हाका वचन झूठा दीसै अर यामें थाको भलो होवो नाहीं दीसै छै, तौ म्हाको वचन अंगीकार मति करो। म्हाको थासूं कोई बात को प्रयोजन नाहीं। दया बुद्धि करि थानै उपदेश दियो छै, सो मानो तो मानो, नाहीं मानो तो थाकी थे जानो। अब वे सम्यक्दृष्टि पुरुष अपनी

आयु नजीक तुच्छ जानै हैं। तब दान-पुण्य करणो होय सो आपना हाथ सूं करै हैं। पाछै जेते पुरुषा सौं बतलावनो होय, तीसूं बतलाय नि:शल्य होय है। पीछें सर्व कर्मा के नाता के जा पुरुष-स्त्री ताकूं सीख देय अर धर्म के नाता का जे पुरुष तिनको बुलाय नजे राखै है। अर आपना-आपना आयु नियम करि पूरा हुवा जानै है, तो सर्व परिग्रह का जावंजीव त्याग करै है अर च्यार प्रकार का अहार का जावंजीव त्याग करै है। अर सर्व परिग्रह का भार पुत्र नै सौंपै है। आप विशेषपने नि:शल्य कहिये वीतराग होय है। अर आपका आयु का नियम नाहो जानै है; पूरा होय वा न होय, ऐसा संदेह वर्ते है, तो दोय-च्यारि घड़ी आदि काल की मर्यादा करै, त्याग करै, जावंजीव त्याग नाहीं करै। पाछै खाट ऊपरि सूं उतरै, भूमि विषैं सिंह की नाईं निरभै तिष्ठै है। जैसे वैर्‍या का जीतिवानै सुभट उद्यमी होय रण-भूमिका विषैं तिष्ठै; कोई जाति की अंश मात्र आकुलता नाहीं उपजावै है। बहुरि कैसा है शुद्धोपयोगी सम्यक्दृष्टि? जाके मोक्षलक्ष्मी का पाणिग्रहण की वांछा वर्ते है, ऐसा अनुराग है सो अबार ही मोक्ष कूं जाय वरूं। ताका हृदय विषैं मोक्ष लक्ष्मी का आकार उकीर राख्या है, ताकी प्राप्ति की शीघ्र चाहै है। अर ताही का भय थकी राग परिणति का प्रदेश नाहीं बांधे है। अर ऐसा विचारै है—कदाचि म्हारा स्वभाव विषैं राग परिणति आणि प्रवेश किया तो मोक्ष—लक्ष्मी मोनै वरने सन्मुख हुई है सो ओटी होय जासी, तातैं मैं राग परिणति नै दूरि ही तै छोडो हौं। ऐसो विचार करतो काल पूरण करै है। ताका परिणाम विषैं निराकुलता आनंद रस वरसै है। तो शांतिक रस करि

तातैं तृप्ति है। ताकै आत्मिक सुख बिना कोई बात की वांछा नाहीं; एक अतींद्रिय, अभोगत सुख की वांछा है। ताही को भोगवे ऐसा स्वाधीन सुख है। सो यद्यपि साधर्मी का संयोग है, तथापि वाका संयोग पराधीन आकुलता सहित भासै है। अर आगै है निश्चै विचारता ये भी सुख का कारण नाहीं सो मेरा मो पासि है, तातैं स्वाधीन है। ऐसे आनंदमयी तिष्ठै, तो शांति परिणामां संयुक्त समाधिमरण करै। पाछै समाधिमरण का फल थकी इंद्रादिक की विभूति नै पावै है। पाछै वहां थकी चय करि राजाधिराज होय है। पाछै केतायक काल राज्य करि विभूति नै भोग अर्हंत दीक्षा धरै है। पाछै क्षपक श्रेणी चढि च्यारि घातिया कर्मा को नाश करि केवलज्ञान लक्ष्मी नै पावै है। कैसी है केवलज्ञान लक्ष्मी ? ता विषैं समस्त लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल संबंधी एक समय मैं आणि झलकै हैं। ताके सुख की महिमा वचन अगोचर है। इति समाधिमरण वर्णन संपूर्ण।

मोक्ष सुख का वर्णन

आगै मोक्ष सुख का वर्णन करिये हैं। ॐ श्री सिद्धेभ्यः नमः। श्री गुरां पासि शिष्य प्रश्न करै है—हे स्वामिन् ! हे नाथ ! हे कृपानिधि ! हे दयानिधि ! हे परम उपकारी! हे संसार—समुद्र तारक ! भोगन सूं परान्मुख, आत्मीक सुख विषैं लीन तुम मेरे ताईं सिद्ध परमेष्ठी ताके सुख का स्वरूप कहो। सो कैसा है शिष्य ? महा भक्तिवान अर मोक्ष की प्राप्ति की है अभिलाषा जाके। सो विशेष श्री

तीन प्रदक्षिणा देय हस्तकमल मस्तक के लगाय हाथ जोडि अर गुरां का मोसर नै पाय बार-बार दीनपणा का विनय पूर्वक वचन प्रकाशतो अर मोक्ष का सुख नै पूछतो हुवो। अबै श्रीगुरू कहै हैं—हे पुत्र ! हे भव्य ! हे आर्य ! तेनै बहुत अच्छा प्रश्न किया। अब तू सावधान होय करि सुनि। यो जीव शुद्धोपयोग का माहात्म्य करि केवलज्ञान उपार्ज्या, सिद्ध क्षेत्र विषें जाय तिष्ठै है। सो एक-एक सिद्ध का अवगाहना विषैं अनंतानंत सिद्ध भगवान न्यारे-न्यारे भिन्न-भिन्न तिष्ठैं हैं; कोई काहू सौं मिलै नाहीं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? ताके आत्मीक विषें लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल सम्बन्धी द्रव्य, गुण, पर्याय नै लिया एक समय विषें युगपत् झलकै हैं। तिनके आत्मिक चरण युगल कौ नमस्कार करूं हूं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? परम पवित्र हैं, परम शुद्ध हैं अर आत्मिक स्वभाव विषें लीन हैं। अर परम अतींद्रिय, अनौपम्य, बाधा रहित, निराकुलित सुरस रस कूं निरन्तर अखड पीवै हैं। तामैं अंतर नाहीं परे है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? असंख्यात प्रदेश चैतन्य धातु के पिंड अगुरुलघु रूप कूं धर्या है, अमूर्तिक आकार है। सर्वज्ञदेव नै प्रत्यक्ष न्यारे-न्यारे दीसै है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध प्रभु ? निःकषाय हैं अर आवरण सौं रहित हैं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? धोया है घातिया-अघातिया कर्म रूपी मल जानै। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? आपना ज्ञायक स्वभाव नै प्रगट किया है। अर समय-समय षट् प्रकार हानि-वृद्धि रूप परिणमे हैं। अनंतानंत आत्मिक सुख कूं आचरे हैं, आस्वादे हैं अर बिर्प्ति नाहीं होय है वा अत्यन्त तृप्ति है, अबै कुछ चाह

रही नाहीं। बहुरि कैसे हैं परमात्मदेव ? अखंड हैं अर अजर हैं अर अविनाशी हैं अर निर्मल हैं अर शुद्ध हैं अर चैतन्य स्वरूप हैं अर ज्ञानमूर्ति हैं अर ज्ञायक हैं, अर बीतराग हैं अर सर्वज्ञ हैं अर सर्व तत्त्व के जाननहारे हैं अर सहजानंद हैं, सर्व कल्याण के पुंज हैं, त्रिलोक करि पूज्य हैं, सर्व विघ्न के हरणहारे हैं। श्रीतीर्थंकरदेव भी तिनकौ नमस्कार करै हैं। सो मैं भी वारंवार हस्तकमल मस्तक कै लगाय नमस्कार करूं हूं। सो क्या वास्ते नमस्कार करूं हूं। वाही का गुणां की प्राप्ति के अर्थि। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? देवाधिदेव हैं। सो देव संज्ञा सिद्ध भगवान विषैं ही सोभै है। और च्यारि परमेष्टी नै गुरु संज्ञा है, देव संज्ञा नाहीं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? सर्व तत्त्व को प्रकासि ज्ञेय रूप नाहीं परिणमे हैं, अपना स्वभाव रूप ही रहे हैं अर ज्ञेय कूं जानै ही हैं। कैसे जानै हैं ? सो ये समस्त ज्ञेय पदार्थ मानूं शुद्ध ज्ञान मैं डूबि गया है कि मानूं उखार निगल गया है कि मानूं अवगाहना शक्ति करि समाय गया है कि मानूं आचरण करि गया है कि मानूं स्वभाव विषैं आय वसै हैं कि मानूं तादात्म्य होय परिणमे है कि मानूं प्रतिबिंब हुवा है कि मानूं पाषाण के उकीर काढ्या है कि चित्राम के चितेरे हैं कि मानूं स्वभाव विषैं आणि प्रवेश किया है। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? शांतिक रस करि अनंत प्रदेश भरे हैं अर ज्ञान रस करि आह्लादित है अर शुद्धामृत करि स्रवे है प्रदेश जाका वा अखंड धाराप्रवाह बहै हैं, जा विषैं ऐसे हैं। बहुरि कैसे हैं ? जैसे चन्द्रमा के विमान विषैं अमृत स्रवे है। अर औरा कूं आनंद, आह्लाद उपजावै है अर आताप को दूरि करै अर प्रफुल्लित करे हैं; त्यों ही सिद्ध भगवान

सो ज्ञानामृत कूं पीवै हैं, आचरै हैं अर औरा नै भी आनंदकारी हैं, ताको नाम लेत ही वा ध्यान करता ही भव रूपी आताप विलै जाय है। अर परिणाम शांत होय अर आपा-पर की शुद्धता होय है, अर ज्ञानामृत नै पोवै है, अर निज स्वरूप की प्रतीति आवै है–ऐसे सिद्ध भगवान को म्हारो वारंवार नमस्कार होहु। ऐसे सिद्ध भगवान जैवंता प्रवर्तो, अर मोनै संसार-समुद्र मांहि तैं काढो, अर मोनै संसार माहि पडता सूं राखो, अर म्हारा अष्ट कर्मा को नाश करो, अर मोनै कल्याण के कर्ता होहु, अर मोनै मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति देहु, अर म्हारा हृदय विषैं निरंतर बसो, अर मोनै आप सारिखो करो। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? जाके जामण-मरण नाहीं, अर जाकै शरीर नाहीं, अर जाका विनाश नाहीं, अर जाका संसार विषैं गमन नाहीं, अर ज्ञान वा प्रदेश विषैं अकंप हैं। बहुरि कैसे हैं सिद्ध भगवान ? अस्तित्व, वस्तुत्व वा प्रमेयत्व वा अप्रमेयत्व वा प्रदेशत्व वा अगुरुलघुत्व वा चेतनत्व यानै आदि दे अनंत गुणां करि पूर्ण भरे हैं। तातैं औगुण आवा नै आयगा नाहीं। ऐसे सिद्ध भगवान को फेरि भो म्हारो नमस्कार होहु। ऐसे श्रीगुरु सिद्ध परमेष्ठी के स्वरूप में फेर नाहीं। जैसा सिद्ध है तैसा ही शिष्य नै बताया अर ऐसा उपदेश दिया। हे शिष्य ! हे पुत्र ? तू ही सिद्ध सादृश्य है। यामैं संदेह मति करै। सिद्धनि का स्वरूप मैं अर थारा स्वरूप मैं फेर नाहीं। जैसा सिद्ध है तैसा ही तू है। अबै सिद्ध समान तू तेनै देख, सिद्ध समान छै कि नाहीं ? तानै देखत ही कोई परम आनंद उपजैला सो कहिवा मात्र नाहीं। तीसूं तू अब सावधान होय अर सुलटि परिणति करि अर

एकाग्र चित्त करि साक्षात् ज्ञाता-द्रष्टा तू पर का देखन, जाननहारा ताही कूं तू देखि ढील मति करै। ऐसा अमृत मयी वचन श्रीगुरां का सुनि अर शीघ्र ही आपणा स्वरूप को विचार शिष्य कहतो हुवो। श्रीगुरु परमदयाल बार-बार मोनै याही कही अर यो ही उपदेश दियो सो याके कांई प्रयोजन छै ? एक म्हारा भला करिवा का प्रयोजन छै। तीसूं मोनै बार-बार कहै छै-सो देखो, हूं सिद्ध समान छूं कि नाहीं ? देखो, यो जीव मरण समै ई शरीर मांहि सूं निकसि, पर गति मांहि जाय छै, तब ई शरीर का आंगोपांग; हाथ, पग, आंख, कान, नाक, इत्यादि सर्व चिह्न ज्यों का त्यों रहै छै अर चेतनपणो रहै नाहीं। तो यह जान्या गया, सो कोई जानिवा वाला, देखिवा वाला शख्स कोई और हो था। बहुरि देखो, मरण समै यो जीव परगति मैं जाय छै, तब कुटुंब-परिवार का मिलि ई नै घनो पकडि-पकडि राखै छै, अर ऊंडा भौंहरा मैं गाढा कपाट जड राखै, पणि सर्व कुटुंब का देखता भीति वा धर फोडि आत्मा निकसि जाय है, सो काहूनै दीसै नाहीं। तातैं यह जाण्या गया जो आत्मा अमूर्तिक छै। जो मूर्तिक होता तो शरीर की नाईं पकड्या रहि जाता। तातैं आत्मा प्रत्यक्ष अमूर्तिक है, यामें संदेह नाहीं। बहुरि यह आत्मा पांच प्रकार के वर्ण कूं निर्मल देखै है। अर यह आत्मा श्रोत्र इंद्रिय के द्वारै तीन प्रकार वा सप्त प्रकार शब्दों की परीक्षा करै है। बहुरि यह आत्मा नासिका इंद्रिय के द्वारै दोय प्रकार की सुगंध-दुर्गंध कूं जानै है। बहुरि यह आत्मा रसना इंद्रिय के द्वारैं पांच प्रकार के रस कूं आस्वादे है। बहुरि यह आत्मा स्पर्श इंद्रिय के द्वारै आठ प्रकार के स्पर्श

कूं वेदे है वा अनुभवै है वा निरधार करे है। सो ऐसा जानपना ज्ञायक स्वभाव बिना इंद्रियां मैं तो नाहीं; इंद्रिय तो जड हैं—अनंत पुद्गल के परमाणु मिलि आकार बन्या हैं। सो ए ही जहां इंद्री के द्वारे दर्शन, ज्ञान उपयोग आवता है, सो वह उपयोग मैं हूं और नाहीं; भ्रम करि ही अन्य भासे है। अब श्रीगुरु का प्रसाद करि मेरा भरम विलै गया। मैं प्रत्यक्ष साक्षात् ज्ञाता-द्रष्टा, अमूर्तिक, सिद्ध सादृश्य तोको देखूं हूं अर जानूं छूं अर अनुभवूं छूं। सो अनुभवन मैं कोई निराकुलित, शांतिक, अमूर्तिक, आत्मिक, अनौपम्य रस उपजै है अर आनंद स्रवे है। सो यह आनंद प्रभाव मेरे असांख्यात आत्मिक प्रदेश विषें धाराप्रवाह रूप होय चलै है। ताकी अद्भुत महिमा मैं ही जानूं हूं कै सर्वज्ञदेव जानै हैं सो वचन अगोचर हैं। बहुरि देखूं हूं मैं कदे ऊंडा[1] तहखाना विषें बैठि करि विचारूं। मेरे ताईं वज्रमयी भीति फोडि घट-पटादि पदार्थ दीसै हैं; ऐसा विचार होते देखो! यह मेरी हवेली प्रत्यक्ष मोनै अबार दीसै है। अर यह नगर मोनै प्रत्यक्ष दीसै है। यह भरत क्षेत्र मोनै दीसै है अर सप्तपृथ्वी विषैं तिष्ठता नारकीनि के जीव मोनै दीसै हैं। अर सोला स्वर्ग वा नवग्रैवेयक, अनुदिश, सर्वार्थसिद्धि वा सिद्धक्षेत्र विषैं तिष्ठै हैं; अनंतानंत सिद्ध महाराज वा समस्त त्रैलोक्य वा एते हो मानि अमूर्तिक धर्म द्रव्य वा एते ही मानि अमूर्तिक अधर्म द्रव्य वा एते ही मानि एक प्रदेश विषैं एक-एक अमूर्तिक कालाणु द्रव्य एक-एक प्रदेश मात्र तिष्ठै है। बहुरि अनंतानंत निगोदनि के जीव सूं त्रैलोक्य भर्या है। बहुरि और जाति के त्रस त्रसनाडी विषैं तिष्ठै

---

१ गहरे

हैं। अर नरकनि विषैं नारकोनि के जीव महा दुःख पावै हैं। अर स्वर्गनि विषैं स्वर्गवासी देव क्रीडा करै हैं अर इन्द्रिय जनित सुख कूं भोगवै हैं। बहुरि एक समय मैं अनंतानंत जीव मरते-उपजते दीसै हैं। बहुरि एक-दोय परमाणु का खंध[1] आदि दे अनंता परमाणु वा त्रैलोक्य प्रमाण महास्कंध पर्यंत नाना प्रकार के पुद्गलनि के पर्याय मोनै दीसै हैं। अर समय-समय अनेक स्वभाव नै लिया परिणमता दीसै है। अर दशों दिशा मैं, अलोकाकाश मैं, सर्वव्यापी दीसै है। अर तीन काल का समयनि का प्रमाण दीसै है। अर तीन काल संबंधी सर्व पदार्थनि की पर्याय की पलटनि दीसै है। अर केवलज्ञान का जानपना प्रत्यक्ष मोकूं दीसै है। सो ऐसा ज्ञान का धनी कौन है? ऐसा ज्ञान किसके भया? ऐसा ज्ञायक पुरुष तौ प्रत्यक्ष साक्षात् विद्यमान दीसै है। अर यह जहां-तहां ज्ञान का प्रकाश मोनै दीसै है। शरीर कूं दीसता नाहीं, सो ऐसा जानपना का स्वामी और ही है कि मैं हूं। जो और ही होय तो मेरे ताईं ऐसी खबरि काहे कूं परती? और की देख्या और कैसे जाने? तातै यह जानपना मेरे ही उपज्या है अथवा जानपना है सो ही मैं हूं अर मैं छूं सो ही जानपना है। तातैं जानपना मैं अर मो दुजायगी नाहीं। मैं एक ज्ञान ही का स्वच्छ-निर्मल पिंड बन्या हूं। जैसे लूण की डली खार का पिंड बन्या है अथवा जैसे सकर की डली मिष्ट अमृत का पिंड अखंड बन्या है; तैसे ही मैं साक्षात् प्रगट शरीर तै भिन्न जाका स्वभाव लोकालोक के प्रकाश करि

---

१ स्कन्ध

चैतन्य धातु, सुख पिंड, अखंड, मूरति, अनंत गुननि करि पूरित बन्या हूं, ता मैं संदेह नाहीं। देखो, मेरे ज्ञान की महिमा सो अबार म्हारे कोई केवलज्ञान नाहीं, कोई मनः पर्यय ज्ञान नाहीं; मति-श्रुत पायजे है, सो भी पूरा नाहीं, अनंतवें भाग क्षयोपशम भया है। ताके होते ऐसा ज्ञान का प्रकाश भया अर ताही माफिक आनंद भया। सो या ज्ञान की महिमा कुणो[1] नैकहूं ? सो यो आश्चर्यकारो स्वरूप म्हारो ही छै कै कोई और को भी छै ? तोसौं ऐसा अद्भुत विचक्षण पुरुष अवलोकि के मैं और कौन सूं प्रीति करूं ? अर मैं कौन कूं आराधूं अर मैं कौन का सेवन करूं अर कौन के पासि जाय जाचना करूं ? ई स्वरूप कूं जान्या बिना मैंने करना था, सो किया सो यह मोह का स्वभाव था; मेरा स्वभाव नाहीं। मेरा स्वभाव तौ एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायक चैतन्य लक्षण अर सर्व तत्त्व के जाननहारे है, निज परिणति के रमनहारे हैं, शिव स्थान के बसनहारे है, संसार समुद्र सौं तिरनहारे हैं, राग-द्वेष के हरनहारे हैं, स्वरस के पीवनहारे हैं वा ज्ञान–पान करनहारे हैं, निराबाध, निगम, निरंजन, निराकार, अभोक्ता वा ज्ञान-रस के भोक्ता वा पर स्वभाव के अकर्ता, निज स्वभाव के कर्ता, सासता, अविनाशी, शरीर-भिन्न, अमूर्तिक, निर्मल पिंड, पुरुषाकार ऐसा देवाधिदेव मैं हो जान्या। ताकी निरंतर सेवा, अवलोकन करना अर ताही का अवलोकन करता शांतिक सुधामृत की छटा उछलै है अर आनंद धारा स्रवै है। ताके रस पोय करि अमर हुवा चाहूं हूं। सो ये मेरा स्वरूप जैवंता प्रवर्तो, इसका अवलोकन वा ध्यान जैवंता प्रवर्तो अर इसका विचार

---

१ किंस

जैवंता प्रवर्तो। इसका अंतर खिण मात्र भी मति परौ। ई स्वरूप की प्राप्ति बिना हूं कैसे सुखी होहु ? कदाचि नहीं होहु। बहुरि कैसै छूं हूं ? जैसै काठ की गणगोर[1] की आकाश विषैं स्थापिये, सो स्थापत प्रमाण आकाश तौ उसका प्रदेश विषैं पैसि[2] जाय छै अर काठ की गणगोर का प्रदेश आकाश विषैं पैसि जाय छै। सो क्षेत्र की अपेक्षा एकमेक होय भेली तिष्ठै है। अर भेली ही समै-समै परिणमे है। पणि[3] स्वभाव की अपेक्षा न्यारी-न्यारी, भिन्न-भिन्न स्वभाव नै लिया तिष्ठै है अर जुदा-जुदा ही परिणमे है। सो कैसी है ? आकाश तौ समै-समै आपणा निर्मल, अमूर्तिक स्वभाव रूप परिणमे है अर काठ की गणगोर समै-समै आपणा मूर्तिक, जड, अचेतन स्वभाव रूप परिणमे है। सो काठ की गणगोर नै आकाश के प्रदेशनि तै उठाय दूरा स्थापिये, तौ आकाश का प्रदेश तौ वहां का वहां हो रहै अर काठ का प्रदेश चल्या आवै। आकाश के प्रदेश के क्यौं भी लागी रहै नाहीं। तीसौं जे भिन्न-भिन्न स्वभाव रूप पावै छा, तौ न्यारा करता न्यारा हुवा। तीसूं मैं भी ई शरीर सूं क्षेत्र की अपेक्षा एक क्षेत्र अवगाह होय भेला तिष्ठूं हूं; पणि स्वभाव की अपेक्षा म्हारो रूप न्यारो छै। एतो प्रत्यक्ष जड-अचेतन, मूर्तिक, गलन-पूरण स्वभाव नै लिया समै-समै परिणमे है। अर वो हूं छूं जो शरीर के न्यारे होते न्यारा भी प्रत्यक्ष हूं छूं। सो शरीर के अर म्हारे भिन्नपणो कैसै ? ई का द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा अर म्हारा द्रव्य-गुण-पर्याय न्यारा; ईका प्रदेश न्यारा अर म्हारा प्रदेश न्यारा; अर ई की स्व-

---

१ गनगौर २ प्रविष्ट, ठहरना ३ लेकिन

भाव न्यारो अर म्हारो स्वभाव न्यारो। अर कोइक पुद्गल द्रव्य सूं तो वारंवार भिन्नपणो, अभयपणो, अवशेष च्यारि द्रव्य सूं अथवा पर जीव द्रव्य सो तो भिन्नपणो भयो नाहीं ? ताका उत्तर यह च्यारि द्रव्य तो अनादि काल का ठिकाना बंध अडोल तिष्ठैं हैं अर पर जीव द्रव्य का संयोग प्रत्यक्ष ही न्यारा है; तोसौं वे कांई भिन्न करिये ? एक पुद्गल द्रव्य ही का उलझाउ[1] है, तातैं याही तैं भिन्न करणो उचित है। घणा विकल्प करि कांई प्रयोजन ? जानिवा वाला थोडा ही मैं जानि लेहै अर न जानिवा वाला घणा ही नै न जानै। तातैं यह बात सिद्ध भई, यह बात कला[2] करि साध्य है; बल करि साध्य नाहीं। बहुरि यह आत्मा शरीर विषैं वसता इंद्रिया के द्वारैं अर मन के द्वारैं कैसे जानै है ? सो ही कहिये हैं ? जैसै एक राजा कूं काहू एक पुत्रादिक नै महा सुपेद[3] बडा सिखर[4] कहिये महल ता विषैं बंदीखाना दिया है सो उस महल के पांच तो झरोखा हैं अर एक बीच में सिंहासन तिष्ठै है। सो कैसे हैं झरोखा अर सिंहासन ? सो उस झरोखा कै ऐसी शक्ति लिया चसमा[5] लागा है अर ऐसी शक्ति कूं लिया सिंहासन के रत्न लागा है सो ही कहिये हैं। सो राजा अनुक्रम सौ सिंहासन ऊपरि बैठा हुवा झरोखा दिसि अवलोकन करै है। प्रथम झरोखा दिशि अवलोकन करै तब तो स्पर्श के आठ गुण नै लिया पदार्थ दीसै; अवशेष पदार्थ छै ते दीसै नाहीं। बहुरि दूजा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै तब पांच जाति के रस की शक्ति नै लिया पदार्थ दीसै। अर विशेष पदार्थ तो भो दीसै नाहीं। बहुरि तीजा

---

१ उलझाव २ युक्ति ३ सफेद, श्वेत ४ महल शीश ५ चश्मा

झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो अवलोकन करै, तब गंध जाति के दोय पदार्थ दीसै अर विशेष पदार्थ छै, तो भी दीसै नाहीं। बहुरि चौथा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै, तब पंच जाति के वर्ण पदार्थ दीसै, अवशेष पदार्थ छै, तौ भी दीसै नाहीं। बहुरि पांचमा झरोखा दिशि राजा सिंहासन ऊपरि बैठो ही अवलोकन करै, तब तीन जाति कौ शब्दमयी पदार्थ दीसै, अवशेष पदार्थ छै तो भी दीसै नाहीं। बहुरि वह राजा पांचों झरोखा का अवलोकन छोडि अर सिंहासन ऊपरि दृष्टि करि पदार्थ का विचार करै, तब बीसों जाति के पदार्थ तौ यह मूर्तिक और आकाश आदि अमूर्तिक पदार्थ सर्व दीसै। और झरोखा बिना वा सिंहासन बिना बैठो नै[1] पदार्थ नै जान्यौ चाहै, तो जानै नाहीं। अबै राजा नै बंदीखाना सूं छोडि अर महल बोर[2] काढै, तौ वे राजा नै दशों दिशा का पदार्थ मूर्तिक वा अमूर्तिक बिना विचार सर्व प्रतिभासै। सो यह स्वभाव देखवा का राजा के है, कोई महल का तौ नाहीं। अपूठा महला का निमित्त करि ज्ञान आच्छाद्या जाय है। अर कोई इस जाति की परमाणु वा झरोखा सिंहासन के लागी, ताकौ निमित्त करि किंचित् मात्र जाणपणा रहे है। दूजा महल का स्वभाव तौ सर्व ज्ञान कूं घातवा कौ है। त्यौं ही ई शरीर रूपी महल विषै यह आत्मा कर्मनि करि बंदीखाने दिया है। त्यौं ही अैठें पांच इंद्रिय रूपी तौ झरोखा है अर मन रूपी सिंहासन है। तब आत्मा इह जोति[3] इंद्रिय के द्वार अवलोकन करै, तिह

---

१ वहीं के २ द्वार पर ३ जीत कर, विजयी हो

इंद्रिय माफिक पदार्थ कूं देखे है। अर मन के द्वारे अव-
लोकन करै, तब अमूर्तिक सर्व पदार्थ प्रतिभासै हैं। अर
यह आत्मा शरीर रूपी बंदीखाना सूं रहित होय है, तब
मूर्तिक वा अमूर्तिक लोकालोक के त्रिकाल सम्बन्धी चरा-
चर पदार्थ एक समै मैं युगपत् प्रतिभासै हैं। ये स्वभाव
आत्मा का है, कोई शरीर का तो नाहीं। शरीर के निमित्त
करि अपूठा ज्ञान घटता जाय है। अर इंद्रिय, मन का
निमित्त करि किंचित् मात्र ज्ञान खुल्या रहै है। ऐसा ही
निर्मल जाति की परमाणु वा इंद्रियां मन के लागी हैं। ता
करि किंचित् मात्र दीसै है। दूजा शरीरका स्वभाव तो एता
ज्ञान कूं भी वातवा का ही है। बहुरि जानै निज आत्मा
का स्वरूप जान्या है, ताका यह चिह्न होय है। सो और
तो गुण आत्मा मैं घणा ही है अर घणा ही नै जानैं है,
परन्तु तीन गुण विशेष हैं, ताकौ जानै तौ अपना स्वरूप
जानैं ही जानैं। अर ताके जान्या बिना कदाचि त्रिकाल
विषैं भी निज स्वरूप की प्राप्ति होय नाहीं अथवा तीन
गुण विषैं दो ही कौ नीका जानैं तौ भी निज सहजानन्द
कौ पहचानै। दोय गुण की पिछान विना स्वरूप की प्राप्ति
त्रिकाल त्रिलोक विषैं होय नाहीं, सो ही कहिये हैं—प्रथम
तौ आत्मा का स्वरूप ज्ञाता-दृष्टा जानै। यह जानपना है
सो ही मैं हूं अर मैं हूं सो ही जानपनो है। ऐसा निःसंदेह
अनुभवन में आवे, सो एक तौ गुण ये हैं। अर दूजा राग-
द्वेष रूप व्याकुल होय परिणमे है, सो ही मैं हूं। कर्म का
निमित्त पाय करि कषाय रूप परिणाम हुवा है। अर कर्म
का निमित्त अल्प पडै, तब परिणाम शांतिक रूप परिणमे है।
जैसै जल का स्वभाव तो शीतल वा निर्मल है, सो अग्नि

का निमित्त पाय वह जल उष्ण रूप परिणमे है अर रज का निमित्त पाय वह जल गदलता रूप परिणमे है। त्यों ही यह आत्मा ज्ञानावरणादिक कर्म का निमित्त पाय, तो ज्ञान घात्या जाय है अर कषायां का निमित्त पाय करि निराकुलता गुण घात्या जाय है। ज्यों-ज्यों ज्ञानावरणादिक का निमित्त हलका पडै, त्यौं-त्यौं ज्ञान का उद्योत होय। अर ज्यौं-ज्यौं कषाय का निमित्त मंद पड़ता जाय. त्यौं-त्यौं निराकुलित परिणाम होता जाय। सो यह स्वभाव जिन नै प्रत्यक्ष जान्या अर अनुभवा, सो ही सम्यक्दृष्टि निज स्वरूप के भोक्ता हैं। बहुरि तीजा गुण यह भी जानै है कि मैं असंख्यात प्रदेशी अमूर्तिक आकार हूं। जैसै आकाश अमूर्तिक है, तैसा ही में भी अमूर्तिक हूं। परंतु आकाश तो जड है अर मैं चैतन्य हूं। बहुरि कैसा है आकाश ? काट्या कटै नाहीं, तोड्या तूटै[1] नाहीं, पकड्या आवै नाहीं रोक्या रुकै नाहीं, छेद्या छिदै नाहीं, भेद्या भिदै नाहीं, गाल्या गलै नाहीं, बाल्या बलै नाहीं, यानै आदि दे कोई प्रकार ताका नाश नाहीं; त्यौं ही मेरा असंख्यात प्रदेशनि का नाश नाहीं। में असंख्यात प्रदेशी प्रत्यक्ष वस्तु हूं। अर मेरा ज्ञान गुण अर परिणति गुण प्रदेशनि के आसरै है। जो प्रदेश नाहीं होय, तो गुण कौन के आसरे रहै ? प्रदेश विना गुण की नास्ति होय, तब स्वभाव की नास्ति होय। जैसै आकाश के फूल क्यो[2] वस्तु नाहीं, त्यौं हो जाय सो मैं छूं नाहीं। मैं साक्षात् अमूर्तिक अखंड प्रदेशनि कूं धर्या हूं। अर ता विषैं ज्ञान गुण कूं लिया हूं। ऐसा तीन प्रकार करि

---

१ टूटे २ कोई

संयुक्त मेरा स्वरूप ताको मैं नोका जानूं हूं अर अनुभवूं हूं। कैसा अनुभवो हौं ? सो या तीन गुण को मेरे प्रतीति है सो ही कहिये हैं। केई मेरे ताईं आय ऐसा झूठ्या ही कहैं कै तू चैतन्य रूप नाहीं अर परिणमन गुण में भी नाहीं। यह बात फलाणा ग्रंथ में कहो है—ऐसा म्हाकूं कहै, तब मैं उसके ताईं कहूं रे दुर्बुद्धि ! रे बुद्धि रहित ! मोह करिठग्या हुवा तेरे ताईं कछु सुधि नाहीं, तेरी बुद्धि ठगी गई है। बहुरि वह पुरुष या कहै—कांई करूं ? फलाणा ग्रंथ मैं कही है। ऐसा कहै मोकूं, तो मैं प्रत्यक्ष चैतन्य वस्तु पर के देखन-जाननहारा सो कैसै मानूं ? तब यानै शास्त्र में ऐसा मिथ्या कहै नाहीं, यह नेम है। जैसे सूर्य शीतल रूप कदे हुवा नाहीं अर अबार है नाहीं, आगै होसी नाहीं। अर मेरे ताईं या कहै—आज सूर्य शीतल रूप ऊग्या, सो मैं कैसै मानूं। कदाचि न मानूं। परंतु मेरे ताईं झूठा हो सर्वज्ञ का नाम लेय अर ऐसे कहै है—तू चेतन नाहीं अर तेरे परिणति भी नाहीं, सो मैं या कदाचि भी नाहीं मानूं। सो क्यों नहीं मानूं ? यह दोय गुण की तो मेरे आज्ञा करि भी प्रतीति है अर अनुभवन करि प्रतीति है। अर तीजा प्रशस्त गुण का मेरे एकदेश तो इसका भी आज्ञा करि वा अनुभवन करि प्रमाण है। कैसै ? सो मैं या जानूं, सर्वज्ञदेव का वचन झूठा नाहीं, तातैं तो आज्ञाप्रमाण है। अर मैं या जानूं, मेरे ताईं मेरो अमूर्तिक आकार मोको दीसता नाहीं, सो आज्ञा प्रमाण है। अर अनुभवन मैं प्रमाण कैसै होय ? परंतु मैं उनमान[१] करि प्रदेशनि के आसरे बिना चैतन्य

---

१ अनुमान

गुण किसके आसरे होय अर प्रदेश बिना गुण कदाचि भी नाहीं होय; यह नेम है। जैसें भूमिका बिना रूखादिक कौन के आसरे होय, त्यौं ही प्रदेश बिना गुण किसके आसरे होय ? ऐसा विचार करि अनुभवन भी आवे है अर आज्ञा करि प्रमाण है। बहुरि कोई मेरे ताईं आनि-आनि[1] झूठ्या ही या कहै—फलाणा ग्रंथ मैं या कह्यो है। थे आगै तीन लोक प्रमाण प्रदेशां का श्रद्धान किया था। अब बडा ग्रंथ में ऐसे नीसर्या है। सो आत्मा का प्रदेश धर्म द्रव्य का प्रदेशा सूं घाटि है। तौ मैं ऐसा विचारूं-सामान्य शास्त्र सूं विशेष बलवान है। सो ऐसे ही होयगा। मेरे अनुभवन में तौ कोई निरधार[2] होता नाहीं। अर विशेष ज्ञाता दीसै नाहीं, तातैं में सर्वज्ञ का वचन जानि प्रमाण करूं हूं। परंतु मेरे ताईं या कहै—तू जड, अचेतन वा मूर्तिक है वा परिणति तैं रहित है, तौ या मैं कोई मानूं नाहीं; यह मेरे निःसंदेह है। या मैं कोटि ब्रह्मा, कोटि विष्णु, कोटि नारायण, कोटि रुद्र आनि करि या कहैं, तौ मैं या ही जानूं कि ये बावला होय गया है, कै मोनैं ठगिवा आया, कै मेरी परीक्षा ले हैं। मैं ऐसा मानूं, सो भावार्थ यहु जु ज्ञान परिणति मैं आप ही है, आप ही कै होय है। सो याकौ जानै सो सम्यक्दृष्टि होय है। याके जान्या बिना मिथ्यादृष्टि होय। और अनेक प्रकार के गुण-स्वरूप वा पर्याय का स्वरूप कौ ज्यों-ज्यों ज्ञान होय, त्यों-त्यो जानिबो कार्यकारी होय। परंतु मनुष्यपनै या दोय का तौ जानपणा अवश्य चाहिये; ऐसा लक्षण जानना। बहुरि विशेष गुण ऐसे जानना-सो एक गुण में अनंत गुण हैं अर

---

[1] अन्य, दूसरे [2] निर्णय

अनंत गुण मैं एक गुण है। अर गुण सौं गुण मिलै नाहीं अर सर्व गुण सौं मिल्या है। जैसे सुवर्ण विषें भारी, पीला, चीकणा नै आदि दे अनेक गुण हैं सो क्षेत्र की अपेक्षा सर्व गुणा विषैं तौ पीला गुण पाइये है अर पीला गुण विषौं क्षेत्र की अपेक्षा सर्व गुण पाइये है अर क्षेत्र ही की अपेक्षा गुण मिलि रह्या है अर सर्व का प्रदेश एक ही है। अर स्वभाव की अपेक्षा सौ रूप न्यारे-न्यारे हैं। सो पीला का स्वभाव और ही है। सो ऐसे ही आत्मा के विषैं जानना और द्रव्य विषें भी जानना। वा अनेक प्रकार अर्थ पर्याय वा व्यंजन पर्याय का स्वरूप यथार्थ शास्त्र के अनुसार जानना उचित है। बहुरि या जीव कूं सुख की बधवारी व घटवारी दोय प्रकार होय है सोई कहिये है। जेता ज्ञान है, तेता ही सुख है। सो ज्ञानावरणादिक का उदै होते, तौ सुख-दुःख दोन्या का नाश होय है अर ज्ञानावरणादिक का तौ क्षयोपशम होय है। अर मोह कर्म का उदै होता तब जीव के दुःख शक्ति उत्पन्न होय है। सो सुख शक्ति तौ आत्मा का निजगुण कर्म का उदै बिना है अर दुःख शक्ति कर्म का निमित्त करि होय है सो औपाधिक शक्ति है; कर्म का उदय मिटे जातो रहै है अर सुख शक्ति कर्म का उदय मिटै प्रगट होय है। तातें वस्तु का द्रव्यत्व स्वभाव है। बहुरि फेरि शिष्य प्रश्न करै है-हे स्वामी ! हे प्रभो ! मेरे ताईं द्रव्यकर्म वा नो कर्म सौं तौ मेरा स्वभाव भिन्न न्यारा आपका प्रसाद करि दरस्या, अबै मेरे ताईं राग-द्वेष सूं न्यारा दिखावौ। सो अबै श्रीगुरु कहै हैं-हे शिष्य ! तू सुनि। जैसे जल का स्वभाव तौ शीतल है अर अग्नि के निमित्त करि उष्णहोय है, सो उष्ण हुवा थका आपणा शीतल गुणा नै भी खोवै है।

के निमित्त करि उष्ण होय है, सो उष्ण हुवा थका आपणा शीतल गुणा नै भी खोवै है। अर आप तप्तायमान होय परिणमे है अर औरा नै भी आताप उपजावै है। पाछै काल पाय अग्नि का संयोग ज्यौं-ज्यौं मिटै, त्यौं-त्यौं जल का स्वभाव शीतल होय है अर और कौ आनन्दकारी होय है। तैसे यह आत्मा कषाय का निमित्त करि आकुल होय परिणमे है, सर्व निराकुलित गुण जाता रहै है, तब पर नै अनिष्ट रूप लागै है। बहुरि ज्यौं-ज्यौं कषाय का निमित्त मिटता जाय है, त्यौं-त्यौं निराकुलित गुण प्रगट होता जाय है। अर तब पर नै इष्ट रूप लागै है, सो थोडा-सा कषाय के मिटते भी ऐसा शांतिक सुख प्रगट होय है। न जानै, परमात्मा देव के सम्पूर्ण कषाय मिट्या है अर अनंत चतु-ष्टय प्रगट भया है सो कैसा सुख होसी? पणि थोडा सा निराकुलित स्वभाव कौ जान्या सम्पूर्ण निराकुलित स्वभाव की प्रतीति आवै है। सो शुद्ध आत्मा कैसे निराकुलित स्वभाव होसी? ऐसा अनुभवन मैं नीका आवै है। बहुरि शिष्य प्रश्न करै है—हे प्रभो! बाह्य आत्मा वा अंतरात्मा वा परमात्मा का प्रगट चिह्न कह्या, ताका स्वरूप कहौ। सो गुरु कहै है—जैसे कोई होता ही बालक कै ताईं तह-खाना मैं राख्या अर केतायक दिन पाछै रात्रि नै बारं काढ्या। अर ऊनै[1] पूछै-सूर्य किसी दिशा नै ऊगै है? अर सूर्य का प्रकाश कैसा होय है अर सूर्य का बिंब कैसा होय है? तब वह या कहै-मैं तो जानता नाहीं, दिशा वा प्रकाश वा सूर्य का बिंब कैसा है। फेरि ऊनै बूझै तो क्यौं सूं क्यूं[2]

---

१ उससे २ कुछ से कुछ

बतावं । पाछै भाक[1] फाटै, तब ऊनै पूछै, तब वो या कहै–जैठो नै प्रकाश भया है, तैठो नै पूर्व दिशा है अर तैठो नै सूर्य है । सो क्यों ? सूर्य बिना ऐसा प्रकाश होता नाहीं । ज्यौं-ज्यौं सूर्य ऊंचा चढं, त्यौं-त्यौं प्रत्यक्ष प्रकाश निर्मल होता जाय है अर निर्मल पदार्थ प्रतिभासता जाय है । कोई आनि ई नं कहै—सूर्य दक्षिण दिशा नै है, तौ यौ कदाचि मानै नाहीं, औरा कूं बावला गिनै कै प्रत्यक्ष ये सूर्य का प्रकाश दीसै है । मैं याका कह्या कैसे मानूं ? यह मेरे निःसंदेह है, सूर्य का बिंब तौ मेरे ताईं नजर आवता नाहीं, पणि प्रकाश करि सूर्य का अस्तित्व होय है । सो नियम करि सूर्य अैठो नै हो है, ऐसो अवगाढ प्रतीत आवै है । बहुरि फेरि सूर्य का बिंब सम्पूर्ण महा तेज प्रताप नै लिया दैदीप्यमान प्रगट भया, तब प्रकाश भो सम्पूर्ण प्रगट भया । तब पदार्थ भी जैसा था, तैसा प्रतिभासवा लाग्या, तब कछु पूछना रह्या नाहीं, निर्विकल्प होय चुक्या । ऐसा दृष्टांत के अनुसार दार्ष्टांत जानना सोई कहिये हैं । मिथ्यात्व अवस्था मैंई पुरुष नै पूछै कि तू चैतन्य हैं, ज्ञानमयी है तौ या कहै–चैतन्य ज्ञान कहा कहावे ? वा चैतन्य ज्ञान मैं हूं । कोई आय ऐसे कहै है–शरोर है सो ही तू है वा तू सर्वज्ञ का एक अंश है, खिन मैं उपजै है, खिन मैं विनसै है, वा तू शून्य है तो ऐसे ही मानै । ऐसा ही हूंगा, मेरे ताईं कछु खबरि परती नाहीं; बाह्य आत्मा का लक्षण है ।

बहुरि कोई पुरुष गुरु का उपदेश कहै–प्रभु ! आत्मा के कर्म कैसे बंधे हैं ? श्री गुरु कहै हैं–जैसे एक सिंह

---

[1] पौ

उजाडि विषैं तिष्ठै था। तहां हो आठ मंत्रवादी अपनी सभा विषें वन मैं था। सो सिंह उस मंत्रवादी ऊपरि कोप किया। तब वा मंत्रवादी एक-एक धूलि की चिरूठी[1] मंत्री[2] सिंह का शरीर ऊपरि नाखि दीनो। सो केताक दिन पाछै एक चिमटी का निमित्त करि नाहर को ज्ञान घटि गयौ अर एक चिमटी का निमित्त करि देखने की शक्ति घटि गई। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर दुखी हुवौ। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर उजाड छोडि और ठौर गयौ अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर की आकार और ही रूप ह्वै गयौ। अर एक चिमटी का निमित्त करि नाहर हू आप कौ नीच रूप मानवा लाग्यो। अर एक चिमटी का निमित्त करि आपनो ज्ञान घटि गयो। ऐसे ही आठ प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म जीवनि का राग-द्वेष करि ज्ञानादि आठ गुण कौ घाते हैं, ऐसा जानना। ऐसे शिष्य प्रश्न किया, ताका उत्तर गुरु दिया। सो भव्य जीवनि कूं सिद्ध का स्वरूप नै जानि अर आपना स्वरूप विषैं लीन होना उचित है। सिद्ध का स्वरूप मैं अर आपना स्वरूप मैं सादृश्यपणा है। सो सिद्ध का स्वरूप नै ध्याय निज स्व-रूप का ध्यान करना। घणा कहिवा करि कहा? ऐसा ज्ञाता अपना स्वभाव कौ जानै है। इतिसिद्ध-स्वरूप वर्णन संपूर्णम्।

कुदेवादि का स्वरूप-वर्णन

आगै कुदेवादिक का स्वरूप-वर्णन करिये है। सो हे भव्य! तू सुणि। सो देखो जगत विषै भी यह न्याय है कैं

---

१ चिकुटी भर धूल २ मंत्रित कर, मतरकर

आप सौं गुण करि अधिक होय अर कै आप को उपकारी होय ताको नमस्कार करिये है वा पूजिये है। जैसै राजादिक तो गुणां करि अधिक है अर माता-पितादिक उपकार करि अधिक हैं, ताहि कूं जगत पूजै है अर वंदै है । ऐसा नाहीं कि राज्ञादिकादि बडे पुरुष तो रैयत[1] जन आदि रंक पुरुष ताकूं वंदै वा पूजै अर माता-पितादि पुत्रादिक कूं वंदै अर पूजै, सो तो देखिये नाहीं। अर कदाचि मति की हीनता करि राजादिकादि बडे पुरुष होइ करि नीच पुरुष कौ पूजै अर माता-पिता भी बुद्धि की हीनता करि पुत्रादिक कौ पूजै, तो वह जगत विषैं हास्य अर निंदा को पावै। सो कौन दृष्टांत ? जैसे सिंह होय अर स्याल की सरणि[2] चाहै, तो वह हास्य नै पावै ही पावै; यह युक्ति ही है। तीस्यौं धर्म विषैं अर्हंतादि उत्कृष्ट देव छोडि और कुदेव कौ पूजै, सो कांई लोक विषैं हास्य कूं नाहीं पावेगा ? अर परलोक विषैं नर्कादिक के दुःख अर क्लेश कूं नाहीं सहेगा ? अवश्य सहेगा। सो क्यों सहे है ? सो कहिये हैं। सो आठ कर्मां विषैं मोह नाम कर्म है सो सर्व को राजा है । ताके दोय भेद हैं—एक तो चारित्रमोह अर एक दर्शनमोह । सो चारित्रमोह तो ई जीव को नाना प्रकार की कषाया करि आकुलता उपजावै है। सो कैसो है आकुलता अर कैसा है याका फल ? सो कोई जीव नाना प्रकार का संयमादि गुण करि संयुक्त हैं अर वा विषैं किंचित् कषाय पावजै तो दीर्घ काल के संयमादिक करि संचित पुण्य नाश कूं प्राप्त होय है। जैसै अग्नि करि रुई को समूह भस्म होय तैसै कषाय रूपी अग्नि विषैं समस्त पुण्य रूप ईंधन भस्म होय है। अर कषायवान पुरुष ई जगत विषैं महा निंदा नै पावै

हैं। बहुरि कैसी है कषाय ? कोटया स्त्री का सेवन सूं भी याका पाप अनंत गुणा है। तासूं भी अनंत गुणा पाप मिथ्यात्व का है। यो जीव अनादि काल को एक मिथ्यात्व करि ही संसार विषैं भ्रमे है। सो मिथ्यात्व उपरांत और संसार विषैं उत्कृष्ट पाप है नाहीं। फेरि मोह करि ठगी गई है बुद्धि जाकी, ऐसा जो संसारी जीव ताको कषाया-दिक तौ पाप दीसै अर मिथ्यात्व पाप दीसै नाहीं। अर शास्त्र विषैं एक मिथ्यात्व का नाश किया, ता पुरुष सर्व पाप का नाश किया। अर संसार का नाश किया सो ऐसा जानि कुदेव, कुगुरु, कुधर्म का त्याग करना। सो त्याग कहा कहिये ? सो देव अरहंत, गुरु निर्ग्रंथ कैसा, तिल-तुस मात्र परिग्रह सौ रहित ऐसा अर धर्म जिनप्रणीत दयामय कहिये। या उपरांत सर्व को हस्त जोडि नमस्कार नाहीं करना। प्राण जाय तो जावो पणि नमस्कार करना उचित नाहीं।

अर्हंतादि का स्वरूप वर्णन

आगे अरहंतादिक का स्वरूप-वर्णन करिये है। सो कैसे हैं अरहंत ? प्रथम तौ सर्वज्ञ हैं जाका ज्ञान विषैं सम-स्त लोकालोक के चराचर पदार्थ तीन काल सम्बन्धी एक समय विषैं झलकै हैं। ऐसी तो ज्ञान की प्रभुत्व शक्ति है अर वीतरागो है। अर सर्वज्ञ होता अर वीतराग नहीं होता तौ ता विषैं परमेश्वरपणा सम्भवता नाहीं। अर वीतराग होता अर सर्वज्ञ न होय, तौ भी पदार्थां को स्वरूप अज्ञानता करि सम्पूर्ण कहा बनै। अर समर्थ होता, तौ ऐसा दोष

करि संयुक्त, ताको परमेश्वर कौन मानता ? तातैं जा मैं ये दोष दोष—एक तौ राग-द्वेष अर एक अज्ञानपनो नाहीं ते परमेश्वर हैं अर ते ही सर्वोत्कृष्ट हैं। सो ऐसा दोष दोष करि रहित एक अरहंत देव ही हैं, सो ही सर्व प्रकार पूज्य है। बहुरि जे सर्वज्ञ, वीतराग भी होता अर तारिवा समर्थ न होता, तौ भी प्रभुत्वपणा मैं कसर पड जाती। सो तो जा मैं तारण शक्ति भी पायजे है। सो कोई जीव तौ भगवान का स्मरण करि ही भव--संसार--समुद्र तै तिरै हैं, केई भक्ति करि ही तिरै हैं, केई स्तुति करि ही तिरै हैं, केई ध्यान करि ही तिरै हैं; इत्यादि एक-एक गुण कूं आराधि मुक्ति कूं पहुंचै। परन्तु भगवानजी नै खेद नाहीं उपजै है सो महन्त पुरुषा की अत्यन्त शक्ति है। सो आपनै तो उपायन करणो पडे नाहीं अर ताका अतिशय करि सेवक तिनका स्वयमेव भला होय जाय। अर प्रतिकूल पुरुषा का स्वयमेव बुरा हो जाय। अर शक्तिहीन जे पुरुष होय हैं, ते डीला जाय अर पैला का बुरा-भला करैं तब वासूं कार्य होय सिद्ध सो भी नेम नाहीं, होयवान होय। इत्यादि अर्हंतदेव अनंत गुणा करि शोभित हैं। बहुरि आगै जिमवाणी के अनुसार ऐसा जो जैन सिद्धान्त सर्व दोष करि रहित ता विषैं सर्व तत्वा का निरूपण है। अर ता विषैं मोक्ष का अर मोक्ष का स्वरूप का वर्णन है अर पूर्वापर दोष करि रहित है। इत्यादि अनेक महिमानै धर्‌या ऐसा जिनशासन है।

निर्ग्रन्थ गुरु का स्वरूप

आगै निर्ग्रंथ गुरु ताका स्वरूप कहिये हैं। जो राज–लक्ष्मी नै छोडि मोक्ष के अर्थि दीक्षा धरी है अर अणिमा,

महिमा आदि रिद्धि जाने फुरी है अर मति, श्रुत, अवधि मनःपर्यय ज्ञान करि संयुक्त है, अर महा दुर्द्धर तप करि संयुक्त है, अर निःकषाय है, अर अठाईस मूलगुण विषें अतिचार भी नाहीं लगावे है, अर ईर्या समिति नै पालता थका साढे तीन हाथ धरती सोधता थका विहार करै है।

भावार्थ—कोई जीव नै विरोध्या नाहीं चाहै है। अर भाषा समिति करि हित-मित वचन बोलै है, ताका वचन करि कोई जीव दुःख नाहीं पावै है। ऐसा सर्व जीवां के विषें दयाल जगत विषें सोभै है। ऐसा सर्वोत्कृष्ट देव, गुरु, धर्म तानै छोडि विचक्षण पुरुष हैं, ते कुदेवादिक नै कैसे पूजे ? प्रत्यक्ष जगत विषें ताकी हीनता देखिये हैं जे—जे जगत विषें राग-द्वेषादि औगुण हैं, ते—ते सर्व कुदेवादिक मैं पावजे हैं। त्यानै सेया जीव का उद्धार कैसे होय ? त्या ही नै सेया उद्धार होय तो जीव का बुरा कुणी को सेया होय ? जैसे हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, आरंभ-परिग्रह, आदि जे महा पाप त्या करि ही स्वर्गादिक का सुख नें पावजै, तौ नर्कादिक का दुःख क्या करि पावजे, सो तो देखिये नाहीं और कहिये है—देखो, ई जगत विषें उत्कृष्ट वस्तु हैं, ते थोडी हैं सो प्रत्यक्ष ही देखिये हैं। हीरा, मानिक, पन्ना जगत विषें थोडा है, कंकर-पत्थर आदि बहुत हैं। बहुरि धर्मात्मा पुरुष थोडा है, पापी पुरुष बहुत है। ऐसा अनादि-निधन वस्तु का स्वभाव स्वयमेव वण्या है। ताका स्वभाव मेटिवा समर्थ कोई नाहीं। तीसूं तीर्थंकरदेव ही सर्वोत्कृष्ट है सो एक क्षेत्र विषें पावजे। अर कुदेवा का

वृंद कहिये समूह, ते वर्तमान काल विषैं सासता अगणित पावजे है। सो किसा-किसा कुदेव नै पूजिजे? अर वे परस्पर रागी-द्वेषी अर वे कहैं मूंनै पूजो, वे कहैं मूंनै पूजो। बहुरि पूजिबा वाला कनै[1] खावा नै मांगै? अर या कहै-हूं घणा दिनां को भूखो छूं, सो वे ही भूखा तो औरा नै उत्कृष्ट वस्तु देवा समर्थ कैसै होसी? जैसै कोई रंक पुरुष क्षुधा करि पीडित घर-घर सूं अन्न का कणूका[2] वा रोटी का टूक[3] वा औठि आदि मांगतो फिरै है, अर कोई अज्ञानी पुरुष वे नखै उत्कृष्ट धनादिक सामग्री मांगै, वाके अर्थि वाकी सेवा करै, तो वह पुरुष कांई हास्य नै न पावै? पावै ही पावै। तीसूं श्रीगुरु कहै हैं-हे भाई! तू मोह का वशि करि आंख्या देखी वस्तु नै झूठी मति मानै। जीव ईं भरम बुद्धि करि ही अनादि काल को संसार विषैं थाली मै मूंग रुलै, तैसै रुलै है। जैसै कोई पुरुष के आगै तो दाह ज्वर का तीव्र रोग लागि रह्या है अर फेरि अजान वैद्य तीव्र उष्णता का ही उपचार करै है, तो वह पुरुष कैसे शांतिता कूं प्राप्त होय? त्यौं ही यह जीव अनादि तै मोह करि दग्ध होय रह्या है। सो या मोह की वासना तो या जीव के स्वयमेव बिना उपदेश ही बनि रही। ता करि तो आकुल-व्याकुल महादुखी होहि। फेरि ऊपरि सूं गृहीत मिथ्यात्वा-दिक सेय-सेय ता करि याका दुःख की कांई पूछनी है? सो अगृहीत मिथ्यात्व बीच गृहीत मिथ्यात्व का फल अनंत गुणा खोटा है। सो तो गृहीत मिथ्यात्व द्रव्यलिंगी मुन्या सर्व प्रकार छोड्या है अर गृहीत मिथ्यात्व ताके भी अनं-

१ किसकै २ दाना ३ टुकड़ा

तर्वें भाग ऐसा हलका अगृहीत मिथ्यात्व ताके पावजे है। अर नाना प्रकार का दुर्द्धर तपश्चरण करै है अर अठाईस मूलगुण पालै हैं अर बाईस परीषह सहै हैं अर छियालीस दोष टारि आहार लेहैं अर अंश मात्र भी कषाय नाही करै है। सर्व जीव के रक्षपाल होय जगत विषैं प्रवर्तें हैं। अर नाना प्रकार के शील, संयमादि गुण करि आभूषित हैं। अर नदी, पर्वत, गुफा, मसान. निर्जन, सूखा वन विषैं जाय ध्यान करैं हैं। अर मोक्ष की अभिलाषा प्रवर्तें है अर संसार का भय करि डरपैं है। एक मोक्ष-लक्ष्मी के ही अर्थि राजादि विभूति छोडि दीक्षा धरै है। ऐसा होता संते भी कदाचि मोक्ष नाहीं पावैं। क्यों नाहीं पावै है ? याके सूक्ष्म केवलज्ञानगम्य ऐसा मिथ्यात्व का प्रबलपणा पाजै है। तातैं मोक्ष का पात्र नाहीं, संसार का ही पात्र है। अर जाके बहुत प्रकार मिथ्यात्व का प्रबलपणा पावजे है, तौ ताकूं मोक्ष कैसै होय ? झूठ्या ही भरम बुद्धि करि मान्या, तौ गर्ज है नाहीं। कौन दृष्टांत ? जैसे अज्ञानी बालक गारे का हाथी, घोरा, बैल, आदि बनावै अर वाकौ सत्य मानि करि बहुत प्रीति करै है अर वा सामग्री कूं पाय बहुत खुसी होय है। पीछै वाकूं कोई फोडै वा तोडै वाले जाय तौ बहुत दरेग करै अर रोवै अर छातो, माथा आदि कूटै। वाके ऐसा ज्ञान नाहीं कि ये तौ झूठा कल्पित है। त्यौं ही अज्ञानी पुरुष मोही हुवा बालक कुदेवादिक नै तारण-तरण जानि सेवै है। ऐसा ज्ञान नाहीं कि ये तिरवा नै असमर्थ तौ म्हानै कैसे तारिसी ? बहुरि और दृष्टांत कहिये हैं। कोई पुरुष कांच का खंड नै पाय वा विषैं चिंतामणि रत्न की बुद्धि करै है अर या जानै है— ये चिंतामणि रत्न है

सो मूंनैं बहुत सुखकारी होसी, वे मूंनै मनवांछित फल देसी। सो भरम बुद्धि करि कांच का खंड नैं पाय अर खुसी हुवा, तौ कांई वह चिंतामणि रत्न हुवा ? अर कांई वासूं मनवांछित फल की सिद्धि होय ? कदाचि न होय । काम पडे वाकौ आराधसी अर बाजार विषैं वाकूं बेचसी, तौ दोय कोडी की प्राप्ति होयसी। त्यौं ही कुदेवादिक नै आछ्या जाणि घणा ही जीव सेवौ हैं, पणि वासूं क्यौं ही गर्ज सरै नाहीं। अर अपूठा परलोक विषैं नाना प्रकार के नर्कादिक के दुःख सहने पडै हैं। तीसौं कुदेवादिक कौ सेवन तौ दूरि ही रहौ, परंतु वाका एक ठाह[1] रहना भी उचित नाहीं। जैसै सर्पादिक क्रूर जीवनि का संसर्ग उचित नाहीं, त्यौं ही कुदेवादिक का संसर्ग उचित नाहीं। सो सर्पादिक मैं अर कुदेवादिक में इतना विशेष है—सर्पादिक का सेवनै तै तौ एक ही बार प्राणनि का नाश होय है अर कुदेवादिक सेवन करि पर्याय-पर्याय विषैं अनंत बार प्राणनि का नाश होय है और नाना प्रकार के जीव नर्क-निगोद कौ सहै हैं। तातैं सर्पादिक का सेवन श्रेष्ठ है अर कुदेवादिक का सेवन श्रेष्ठ नाहीं। ऐसा कुदेवादिक का सेवन अनिष्ट जानना। तातैं जे विचक्षण पुरुष आपना हेत नै वांछै हैं, ते शीघ्र ही कुदेवादिक का सेवन तजौ। बहुरि देखो, संसार विषैं तौ ये जीव ऐसा सयाणा है, ऐसी बुद्धि खरचे है जो दमडी की हांडी खरीदै, ताकैं तीन कडकौ[1] ल्याकी देय फूटी-सारी[2] देखि करि खरीदै। अर धर्म सारिखा उत्कृष्ट वस्तु ताका सेवन करि अनंत संसार का दुःख सूं छूटै, ताका अंगीकार करिवा विषैं अंश मात्र भी परीक्षा करै नाहीं। सो

---

1 स्थान 2 टकोर, 3 साजी, भली

लोक विषें गाडरी प्रवाह क्यों है और लोक पूजै वा सेवै तैसे ही पूजे, सेवै। सो कैसा है गाडरी[1] प्रवाह ? सो गाडरी के ऐसा विचार है नाहीं आगै खाई है कि कुवा है कि सिंह है कि व्याघ्र हैं–ऐसा विचार बिना वा गाडरी के पीछै सर्व गाडरी चली जाय हैं। जे आगली गाडरी खाई वा कुवा में पडै, तो सर्व पाछली गाडरी भी खाई, कुवा में पडै अथवा आगली गाडरी सिंह, व्याघ्रादिक के स्थानक में जाय फंसै, तो पाछली हू जाय फंसै। त्यौं ही ये संसारी जीव हैं, जे बडे के कुल के खोटा मार्ग चाल्या, तो यहु खोटा मारग चालै अथवा आछ्या मार्ग चाल्या, तो पणि याके ऐसा विचार नाहीं जो आछ्या मार्ग कैसा अर खोटा मार्ग कैसा ? ऐसा ज्ञान होय, तो खोटा को छोडि आछ्या का ग्रहण करै। तीसौं एक ज्ञान ही की बडाई है। जी मैं ज्ञान विशेष है, ताही को जगत पूजे है अर ताही को सेवै है। अर ज्ञान है सो जीव को निज स्वभाव है। जासूं धर्म नै परीक्षा करि ग्रहण करो।

अब आगै कुदेवादिक का लक्षण कहिये है। जा विषैं राग-द्वेष पाबजे अर सर्वज्ञपणा का अभाव पाबजे, ते सर्व कुदेवादिक जाणिज्यो। सो कहां ताईं याका वर्णन करिये? दोय-च्यार, दस-बीस होय, तो कहना भी आवै। तातैं ऐसा निश्चय करना सर्वज्ञ, वीतराग देव हैं। अर ताही के वचन अनुसार शास्त्र वा प्रवृत्ति सो ही धर्म है। अर ताही के वचन अनुसार बाह्य, अभ्यन्तर परिग्रह के त्यागी, तुरत का जाया बालकवत् तिल-तुस मात्र परिग्रह सौं रहित

---

[1] भेड़

वीतराग स्वरूप के धारक तेई गुरु हैं। आप भव समुद्र कूं तिरै है औरा कूं तारै है। धर्म सेय जो इह लोक विषैं बडाई नाहीं चाहैं हैं, ऐसा देव, गुरु, धर्म उपरात अवशेषरह्या ते सर्व कुदेव, कुगुरु, कुधर्म जानना। आगै और कहिये-हैं-कोई, तौ खुदा ही कौ सर्व सृष्टि का कर्ता मानै हैं, कोई ब्रह्मा, विष्णु महेश को कर्ता मानै हैं---इत्यादिक जानना सो याका न्याव करिये है। जे सारा ही तीन लोक का कर्ता कह्या, सो खुदा ही तीन लोक का कर्ता है. तो हिंदू नै पैदा क्यौं किया? अर विष्णु आदि हो तीन लोक का कर्ता है, तो तुरका ने पैदा क्यौं किया? हिन्दू तौ खुदा को निंदा करै अर तुरका विष्णु को निंदा करै। कोई या कहै पैदा करती बार तीकूं ज्ञान नहीं छो तौ परमेश्वर काहे का ठहर्‍या? जाके एतो भी ज्ञान नाहीं। बहुरि जे तीन लोक का कर्ता ही था, तौ कोई दुखी, कोई सुखी, कोई नारकी, कोई तिर्यंच, कोई मनुष्य, कोई देव ऐसा नाना प्रकार जीव पैदा क्यौं किया? कोई कैसा, कोई कैसा जैसा शुभाशुभ कर्म जीवा नै किया, तैसा ही सुख-दुःख फल देवा के अनुसार पैदा किया, तौ यामै परमेश्वर का कर्तव्य कैसै रह्या? कर्म का ही कर्तव्य रह्या। सो कै तौ परमेश्वर का ही कर्तव्य कहौ, कै कर्मा का ही कर्तव्य कहौ, कै दोऊ का भेला ही कर्तव्य कहौ। म्हारी मां अर बांझ ऐसे तौ बनै नाहीं। बहुरि पहली जीवन ही था, तौ शुभ, अशुभ कर्म कुणै[1] किया? यामैं कर्ता का अभाव संभवै हैं। बहुरि जगत विषैं दोय-च्यारि कार्य कौ करिये हैं, ताकूं आकुलता विशेष उपजै है। अर आकुलता है सोई परम दुःख है। अर परमेश्वर

---

१ किसने

कौ निरंतर तीन लोक विषैं अनंता जीव, अनंता पुद्गल आदिं पदार्थ ताका कर्ता होना अर अनेक प्रकार जुदा-जुदा परिभोगवाना अर ताकी जुदी-जुदी यादगारी राखनी अर जुदा-जुदा सुख-दुःख देना, ताके वास्ते महा खेद-खिन्न होना, ऐसा कर्ता होय, ताका दुःख की कांई पूछनी ? सर्वोत्कृष्ट दुःख परमेश्वर के बाटै[1] आया, तौ परमेश्वर पणा काहे का रह्या ? बहुरि एक पुरुष सौं एता कार्य कैसे बने ? कोई कहेगा कि जैसै राजा के अनेक प्रकार के चाकर जुदा-जुदा कार्य कौ करि लैहै अर राजा खुसी हुवौ महल में तिष्ठै है, तैसै ही परमेश्वर के अनेक चाकर हैं, ते सृष्टि कौ उप-जावै हैं वा खिपावै[2] हैं। अर परमेश्वर सुख सौं बैकुंठ विषैं तिष्ठै है। ताकौ कहिये हैं–रे भाई ! ये तौ संभवै नाहीं। जाका चाकर कर्ता हुवा, तौ परमेश्वर कर्ता काहे कौ कहिये ? परमेश्वर कच्छ, मच्छ, आदि बैर्‍या का संहार ताके अर्थि वा भक्त्या की सहाय के अर्थि चौबीस अवतार धर्‍या और धना कौ खेत आनि निपजायौ अर नरसिंह भक्ति कौ आनि माहिरो दियौ, अर द्रौपदी कौ चीर बढायो, अर टीटोडी की अंग की सहाय कीनी, अर हस्ती नै कीच मांहि सौ उधार्‍यो; ऐसा विरुद्ध वचन यहां संभवै नाहीं। बहुरि कोई या कहै–श्रीपरमेश्वर कौ या चाहिये सर्व ही का भला करै, ऐसा नाहीं, कब ही तौ वाको पैदा करै कर वा ही का नाश करै-ये परमेश्वर पणा कैसे ? सामान्य पुरुष भी ऐसा कार्य विचारै नाहीं। बहुरि कोई सर्व जगत कूं वा सर्व पदार्थ कूं सून्य कहिये नास्ति मानै है, ता ताकूं कहिये

---

१ हिस्से में २ नष्ट करे

है—रे भाई ! तू सर्व नास्ति माने है। तो तू नास्ति कहन-हारा तो वस्तु ठहर्‌या। ऐसे ही अनंत जीव, अनंत पुद्गल आंख्या विषैं प्रत्यक्ष वस्तु देखिये हैं, ताकौ नास्तिक कैसे कहिये ? बहुरि कोई ऐसे कहै है—जीव तो खिण-खिण मैं उपजै है अर खिण-खिण मैं विनसै है। ताकूं कहिये हैं—रे भाई ! जे खिण-खिण में जीव उपजै हैं, तो काल्हि की बात आजि कौन जानी ? अर मैं फलाणा था, सो मरि देव हुवौ हूं, ऐसैं कौन कह्या ? बहुरि कोई ऐसे कहै—पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, ये पांच तत्त्व मिलि एक चैतन्य शक्ति उपजावै हैं। जैसे खार, हलद शामिल लाल रंग उपजि आवै है अथवा नील, हलद मिलि हर्‌या रंग उपजि आवै है। ताकूं कहिये हैं—रे भाई ! पृथ्वी, अप, तेज, वायु आकाश, ये पांचों तत्त्व कह्या, सो तो जड, अचेतन द्रव्य हैं। सो अचेतन द्रव्य विषैं चैतन उपजै नाहीं, ये नियम है सो प्रत्यक्ष आंख्या देखिये हैं। नाना प्रकार का मंत्र, जंत्र, तंत्र, आदि धारक जे किसबी पुरुष पुद्गल द्रव्य कौ नाना प्रकार परिणमावै हैं, ऐसे आजि पहली कोई देख्यौ नाहीं, कोई सुन्यौ नाहीं कि फलाणा देव, विद्याधर या फलाणा मंत्र आराधि वा फलाणा पंच पुद्गल कौ चैतन्य रूप परिणमायो है। अर आकाश अमूर्तिक अर पृथ्वी आदि च्यार्‌यौं तत्त्व मूर्तिक मिलि जीव नामा अमूर्तिक पदार्थ कैसे निपजै ? ऐसे होय तौ आकाश, पुद्गल का तौ नाश होय अर आकाश, पुद्गल की जायगा सर्व चैतन्य ही चैतन्य दव्य होय जाय; सो तौ देखिये नाहीं। चैतन्य, पुद्गल आदि सर्व न्यारे-न्यारे पदार्थ आंख्या देखिये हैं। ताकूं झूंठा कैसे मानिये ? रे भाई ! ऐसा होय तो बडा दोष उपजै। केईक

पदार्थ भी नाना प्रकार के देखिये हैं अर चेतन पदार्थ भी नाना प्रकार के देखिये हैं। ताकौं एक कैसे मानिये ? बहुरि यो एक ही पदार्थ होय, तो ऐसा क्या नै कहिये हैं–फलाणो नर्क गयो, फलाणो स्वर्ग गयो, फलाणो मनुष्य हुवो, फलाणो तिर्यंच हुवो, फलाणो मुक्ति गयो, फलाणो दुखी, फलाणो सुखी, फलाणो चेतन, फलाणो अचेतन, इत्यादि नाना प्रकार के जुदे-जुदे पदार्थ जगत विषें मानिये हैं। ताकूं झूठा कैसे कहिये ? बहुरि सर्व जीव पुद्गल की एक सत्ता होय, तो एक के दुःख होता सारा ही के दुःख होय, अर एक के सुखी होता सारा ही के सुख होय। अर चेतन, अचेतन पदार्थ त्याका भी सुख होय, सो तो देखिये नाहीं। अर जो सर्व पदार्थ की एक सत्ता होय, तो अनेक पदार्थ क्या नै करना पडै ? अर फलाणो खोटा कर्म किया, अर फलाणो आछ्या कर्म किया, ऐसा क्या नै कहना पडै ? सर्व ही मैं व्यापक है, एक ही पदार्थ हुवा, तो आप को आप कैसे दु:ख दिया ? ऐसा कोई त्रिलोक मैं होता नाहीं, सो आप को आप दुःख दिया चाहै। जे आप कूं आप दुःख देवा ही मैं सिद्धि होय, तो सर्व जीव सुख क्या नै चाहै ? तीस्यौं नाना प्रकार का जुदा-जुदा पदार्थ स्वयमेव अनादि-निधन वण्या है; कोई किसी का कर्ता नाहीं। सर्व व्यापी एक ब्रह्म का कहवा में नाना प्रकार की महा बिपरीतता भासै है। तीस्यौं हे स्थूल बुद्धि! ये तेरा श्रद्धान मिथ्या है। प्रत्यक्ष वस्तु आंख्या देखियै, तामैं संदेह कांई अर तामैं प्रश्न कांई ? आंख्या देखी वस्तु नै भूलै है वा और सौ और कहै है वा और सो और मानै है। ताका अज्ञानपणा को कांई पूछणो ? जैसे कोई जीव ता पुरुष नै या कहै तू तो मरि गया, तो

वह पुरुष आपनै मूवा ही मानै, तौ वा सारिखा बेवकूफ कौन ? अर तू कहेसी मैं कांई करूं ? फलाणा शास्त्र मैं कही है, ये सर्वज्ञ का वचन है, ताकूं झूठ कैसे मानिये ? ताकौ समझाइये है—रे भाई ! प्रत्यक्ष प्रमाण सौं विरुद्ध होय, ताका आगम सांचा नाहीं अर वे आगम का कर्ता प्रामाणिक पुरुष नाहीं। यह निःसंदेह है जाका उनमान प्रमाण सौ आगम मिलै, तेई आगम प्रमाण है अर वा ही आगम का कर्ता पुरुष प्रमाण है। पुरुष प्रमाण सौ वचन प्रमाण होय है अर वचन प्रमाण सौ पुरुष प्रमाण होय है। तीसौं जे कोई सर्वज्ञ, वीतराग हैं, ते ही पुरुष प्रमाण करवा जोग्य है। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये छहूं पदार्थ मिलि त्रिलोक उपजाया है अर ये छहूं द्रव्य अनानि-निधन हैं। इसका कोई कर्ता नाहीं। अर जे कोई इसका कर्ता होय, तौ कर्ता नैं कौन किया ? अर कोई कहै-कर्ता तौ अनादि-निधन है, तौ ये भी छहूं द्रव्य अनादि-निधन है। तीसौं यही नेम ठहर्‌या, कोई पदार्थ किसी पदार्थ का कर्ता नाहीं। सारा ही पदार्थ अपना-अपना स्वभाव कर्ता अर आपना-आपना स्वभाव सूं स्वयमेव परिणमे है। चेतन द्रव्य तौ चेतन रूप परिणमे है अर अचेतन द्रव्य अचेतन रूप परिणमे है। अर जीव द्रव्य का तौ चैतन्य स्वभाव है अर पुद्गल का मूर्तिक स्वभाव है। धर्म द्रव्य का चलन सहकारी स्वभाव है अर अधर्म द्रव्य का चेतन वा अचेतन कौ स्थिति स्वभाव है। आकाश का असाधारण अवगाहन स्वभाव है, काल का वर्तना लक्षण हेतुत्व स्वभाव है। बहुरि जीव तैं अनंत पदार्थ हैं। पुद्गल तासौ अनंत गुणा अनंत पदार्थ हैं। अर धर्म द्रव्य, अधर्म, द्रव्य एक-

एक पदार्थ हैं। अर आकाश द्रव्य एक पदार्थ है अर काल का कालाणु असंख्यात पदार्थ है। बहुरि एक जीव द्रव्य का और तीन लोक प्रमाण है; संकोच–विस्तीर्ण शक्ति है। तातें कर्मा के निमित्त करि सदैव शरीर आकार प्रमाण है, अवगाहन शक्ति करि तीन लोक प्रमाण है। आत्मा का और शरीर है, अवगाहन विषें समाय जाय है। बहुरि पुद्-गल का आकार एक रुई के तार का अग्रभाग का असंख्यात वे भाग गोल, षट्कोण ने धर्‍या है। अर धर्म, अधर्म द्रव्य का आकार तीन लोक प्रमाण ताही वास्ते याको सर्व व्यापी कहिये हैं। अर काल अमूर्तिक पुद्गल सादृश्य एक प्रदेश मात्र अणो धर्‍या है। बहुरि जीव तो चेतन द्रव्य है, अव-शेष पांचों अचेतन द्रव्य हैं। बहुरि पुद्गल तो मूर्तिक द्रव्य है, बाकी पांचों अमूर्तिक द्रव्य हैं। बहुरि आकाश लोक विषें सारा[1] पावजे है, बाको पांचों लोक विषें ही पावजे हैं। बहुरि जीव पुद्गल, धर्म द्रव्य का निमित्त करि क्षेत्र सूं क्षेत्रांतर गमन करें हैं अर जीव, पुद्गल बिना अवशेष च्यारि द्रव्य अनादि-निधन, ध्रुव कहिये स्थिति रूप तिष्ठै हैं। बहुरि जीव, पुद्गल स्वभाव तो शुभाशुभ रूप ही परि-णमे है। अवशेष च्यारि द्रव्य स्वभाव रूप ही परिणमे हैं, विभाव रूप नाहीं परिणमे हैं। बहुरि जीव तो सुख-दुःख रूप परिणमे है, अवशेष पांचों सुख-दुःख रूप नाहीं परिणमे हैं। बहुरि जीव तो आप सहित सर्व का स्वभाव को भिन्न जानै है; अवशेष पांचों द्रव्य न तो आप को जानें, न पर को जानें। बहुरि काल द्रव्य का निमित्त करि तो पांचों

---

१ सब कहीं

द्रव्य परिणमे हैं अर काल द्रव्य आप ही करि आप परिणमे हैं। बहुरि जीव पुद्गल द्रव्य का निमित्त करि रागादिक अशुद्ध भाव रूप परिणमे हैं। अर पुद्गल का निमित्त करि वा जीव का निमित्त करि रागादिक अशुद्ध भाव रूप परिणमे है। बहुरि जीव कर्म का निमित्त करि नाना प्रकार के दुःख कौ सहै है वा संसार विषैं नाना प्रकार की पर्याय कूं धरै है वा भ्रमण करै है। अर कर्म का निमित्त करि आछाया जाय है, ताही कौ औपाधिक भाव कहिये हैं। अर कर्म रहित हुवा जोव केवलज्ञान संयुक्त महा अनंत सुख का भोक्ता होय है अर तीन काल संबंधी समस्त चराचर पदार्थ एक समय विषैं युगपत् जानै। अर दोय परमाणु आदि स्कंध अशुद्ध पुद्गल कहिये हैं, अर अकेला परमाणु शुद्ध पुद्गल द्रव्य कहिये। बहुरि तोन लोक पवन का वात-वलय के आधार हैं अर धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य का भी सहाय कहिय, निमित्त है। अर तीन लोक परमाणु का पुद्गल का एक महा स्कंध नाम स्कंध है; ता करि तीन लोक लडि रह्या है। वे महास्कंध के ताईं केतो सूक्ष्म रूप हैं अर केतायक बादर रूप हैं, ऐसे तीन लोक का कारण जानना। यहां कोई कहसी एता करणा तौ कह्या, पणि एता तीन लोक का बोध कैसे रहै? ताकौसमझाइये है—रे भाई! ये ज्योतिषी देवा का असंख्यात विभाण अधर काहे तै देखिये हैं अर बडा-बडा परवेरू[1] आकास मैं उडता देखिये हैं अर गुडी[2] आदि और भी पवन के आसरे अधर आकास विषैं उडता देखिये हैं, सो ये तौ नोका बनै है अर वासुकि

1 पखी, पछी

राजा आदि तीन लोक का आधार मानिये है, सो ये नाहीं संभवे है। वासुकि का बिना आधार आकाश मैं कैसे रहे ? अर वासुकि कूं भी और आधार मानिये तौ या मैं वासुकि का कहा कर्तव्य रह्या ? अनुक्रम तै परंपराय आधार का अनुक्रमपना आया, तातैं ये नियम करि संभवै नाहीं; पूर्वे कह्या सो ही संभवै है। ऐसे छहूं द्रव्यां की वार्ता जाननो। ये छहौं द्रव्य उपरांत कोई कर्ता कहिये नाहीं। अर छहूं द्रव्य मांहि सौं एक कौ कर्ता मानिये, तौ बनै नाहीं, सो ये न्याय ही हैं। ऐसे ही उनमान प्रमाण मैं आवे है। याही तें आज्ञा प्रधान बोचि परीक्षा प्रधान सिरै[1] कह्या है। अर परीक्षाप्रधान पुरुष का कार्य सिद्ध होय है, ऐसै षट् मतनि विषैं जुदा-जुदा पदार्थ का स्वरूप कह्या है। परंतु बुद्धिवान पुरुष ऐसा विचारै-छहौं मता विषैं कोई एक मत सांचो होसी; छहौं तौ सांचा नाहीं, वाके परस्पर विरुद्ध है तातैं कौन मत की आज्ञा मानिये ? सो ये तौ बनै नाहीं। तासौं परीक्षा करणी उचित है। परीक्षा किये पीछे उनमान मैं बात मिलनी सो ही प्रमाण है। सो वा छहौं मत विषैं कोई सर्वज्ञ, वीतराग है। ता मत विषैं ही पदार्थां का स्वरूप कह्या है सो ही उनमान मैं मिलै है। तातैं सर्वज्ञ, वीतराग का मत ही प्रमाण है, सो ही उनमान मैं मिलै है। और मत विषैं वस्तु का स्वरूप कह्या है, सो उनमान मैं मिलै नाहीं तातैं अप्रमाण है। म्हारे राग-द्वेष का अभाव है, जैसा वस्तु का स्वरूप था, तैसा ही उनमान मैं प्रमाण किया। म्हारे राग-द्वेष होते मैं भी अन्यथा श्रद्धान करता, सो राग

---

१ मुख्य, उत्तम

द्वेष गया, अन्यथा श्रद्धान होय नाहीं । अर जानै जैसा कहिये; तो जा विर्षै राग-द्वेष नाहीं । राग-द्वेष याकूं कहिये है जो वस्तु का स्वरूप तो क्यों ही, अर राग-द्वेष को प्रेर्यो बतावै क्यों ही । सो म्हारे ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम करि ज्ञान यथार्थ भया है । अर मैं भी सर्वज्ञ हौं, केवलज्ञानी सारिसो[१] म्हारो निज स्वरूप है । अबार च्यारि दिन कर्म का उदय करि ज्ञान की हीनता दीसै है, तो कांई हुवो; वस्तु का द्रव्यत्व स्वभाव मैं तो फेर नाहीं अर अबार भी म्हारे एतो ज्ञान पावजे है, सो यो केवलज्ञान को बीज है । तातें म्हारी बुद्धि ठीक है । कोई यामैं संदेह मति विचारो । ऐसा सामान्य पणै पट् मत का स्वरूप कह्या ।

आगै संसारी जीव चंद्रमा, सूर्य आदि कूं देव तारण-तरण मानै हैं, ताको कहिये है । चंद्रमा, सूर्य जगत विर्षै दीसै हैं, सो तो विमान हैं सो अनादि-निधन सासता है । या ऊपरि चंद्रमा, सूर्य अनंत होय गया है, सो चंद्रमा का विमान सामान्य पणै अठारा सै कोस चोडा है अर सूर्य का विमान सोला सै कोस चोडा है । अर ग्रह–नक्षत्र–तारा का विमान पांच सै कोस बडा, जघन्य सवा सै कोस चोडा है अर खोपरा के वा नगारा के आकार है । सो अणो तो अधो लोक मैं सम चौकोर चोडा ऊपर नै है । ये विमाण पांचौं ही ज्योतिष्या के रत्नमयी हैं, ता ऊपरि नगर हैं । ताके रत्नमयी खाई हैं, रत्नमयी कोट, रत्नमयी दरवाजा, रत्नमयो बाजार, रत्नमयी महल, अनेक खण[२] संयुक्त वा बडा बिस्तार नै लिया विमाण विर्षै स्थित है । ता नगर मैं

संख्यात देव-देवांगना बसै है, ताका स्वामी ज्योतिषी देव है। बारा बरस के राजपुत्र का पुत्री सोभै, तैसे देव-देवांगना सोभै है। मनुष्य का-सा आकार परंतु एता विशेष देवनि का शरीर महा सुन्दर रत्नमयी, महा सुगंधमयी, कोमल आदि अनेक गुण संयुक्त है। माथे मुकुट हैं, रत्नमयी वस्त्र पहर्‌या है वा अनेक प्रकार रत्नमयी आभूषण पहर्‌या है वा रत्नमयी वा महा सुगन्ध पुष्पानि की माला धारे है। ताके शरीर विषें क्षुधा, तृषादि कोई प्रकार के रोग नाहीं है। बाल दशावत् आयुबल पर्यंत देव-देवांगना का इकसार[1] शरीर रहै है।

भावार्थ-देवा के जरा[2] नाहीं व्यापै है। बहुरि विमाण को भूतिका विषें नाना प्रकार का पन्ना सादृश्य हरियाली दूब है। अर नाना प्रकार के वन वा बावडी, नदी, तलाब, कुवा, पर्वत आदि अनेक प्रकार की सोभा पावजे है। बहुरि कठै ही पुष्पवाडी सोभै है, कठै ही नव निधि वा चिंतामणि रत्न सोभै हैं, कठै ही पन्ना, माणिक, हीरा, आदि नाना प्रकार के रत्न ताके पुंज सोभै हैं। अर अठै मध्य लोक विषें बडे मंडलेश्वर राजा राज करे हैं, तैसे ही विमाण विषें ज्योतिषी देव राज करे हैं। ताका पुण्य चक्रवर्ति सूं अनंत गुणा अधिक है। ताका वर्णन कहा ताईं करिये ? चय करि तिर्यंच आणि उपजे हैं, ताकूं ज्योतिषी देव कहिये है। सो को याने त्यारिवा समर्थ नाहीं। जो आप ही काल के वसि तो औरा नै कैसे राखै ? अर जगत का जीव भरम बुद्धि करि ऐसे मानै, सो चंद्रमा सूर्या तारा के विमान आकाश विषें गमन करे है। ता विमान हीकू या कहे हैं ये चन्द्रमा, सूर्य हैं अर गाडा का पैया माने हैं अर तारा कूं कूंडा माने हैं। सो या चन्द्रमा, सूर्य

1 एक सरीखा, एक जैसा 2 बुढ़ापा

नै मानैं हैं वा पूजै हैं सो म्हाको सहाय करिसो। सो अज्ञानी जीवा कै ऐसा विचार नाहीं जो दस-पांच कागदा को गुडी सौ-दोय सै हाथ ऊंची आकाश मैं उडै है। सो भी तनक-सी कागली-कागला सादृश्य दीसै है। सो सोला लाख कोस ऊंचा तौ सूर्य का विमान है अर सतरा लाख साठ हजार कोस ऊंचा चंद्रमा का विमान है अर तारा का विमान पंदरा लाख असी हजार कोस ऊंचा है। सो एतो दूरि सौं गाडा को पैया सादृश्य म्हाको भलो कैसे करिसा? और भी उदाहरण कहिये है। सो देखो, दोय-तीन कोस का चोडा अर पांच-सात कोस का ऊंचा पर्वत सो धरतो विषैं चौडे तिष्ठै हैं। सो दस-बीस कोस पर्यंत तौ नजर आवै, पाछै नजर आवै नाहीं। इंद्री ज्ञान की ऐसी हीन शक्ति है। तासूं घणी दूरितै वस्तु निर्मल दीसैं है। केवलज्ञानी व अवधिज्ञानी दूरवर्ती सूक्ष्म वस्तु भी निर्मल दीसै हैं चंद्रमा सूर्य, तारा का विमान, ऐसा छोटा होय तौ दूरि सौं कैसे दीसे ? यह नियम है। बहुरि कोई कहसी ये ज्योतिषी देव ग्रह भव्य तौ हैं, पर संसारी जीवा कूं दुःख देहैं, याको पूज्या, याके अर्थि दान दिया शांतिता कूं कहिये हैं। रे भाई ! तेरे भरम बुद्धि है। ये ज्योतिषी देवां का विमान अढाई द्वीप विषैं मेरु दोल्यौ गोल क्षेत्र ता विषैं प्रदक्षिणा रूप भ्रमण करे है। सो कोई ज्योतिषी देवा का विमान शीघ्र गमन करे है, कोई विमान मंद गमन करे है। ताकी चाल कूं देखि अर वाकी चाल विषैं कोई का जन्मादिक हुवा देखि करि विशेष ज्ञानी अगाऊ होतव्यता कूं बतावै हैं। याका उदाहरण कहिये हैं--जैसे सामुद्र का चिन्ह देखि वाके ताईं होतव्यता कूं बतावै हैं अथवा वासौं एसो देखिवा के ताईं होतव्यता कूं बतावै हैं। ऐसे ही होतव्यता बतावने कूं आठ प्रकार के निमित्त ज्ञान हैं। ता विषैं एक

ज्योतिष भी निमित्त ज्ञान है। ये आठ प्रकार निमित्त ज्ञान कोई इति-भीत्ति टालिवा नै तौ समर्थ नाहीं जे समर्थ होय तौ पूजिये भी। सो हिरण वा गिलहरी वा चिडी वा वायस इत्यादिक का सुकन अगाऊ होतव्यता का बतावने कौ कारण है। सो याकूं पूजिये तो ईति-भीति टलै? कदाचि नाहीं टलै। त्यौं ही ज्योतिषी देवा नै पूजिया वा ताके अर्थि दान दिया ईति-भीति अंश मात्र भी टलै नाहीं। अनूठा अज्ञानता करि महा कर्म बंधे हो है, सो जिनेश्वर देव कूं पूज्या शांति होय है। और उपाय त्रिकाल त्रिलोक विषैं है नाहीं। अर जीवा के महा भरम बुद्धि ऐसी है। जैसे कोई पुरुष कौ महा दाह-ज्वर है, अर फेरि अग्नि आदि उष्णता का ही उपचार करे है, तौ वह पुरुष कैसे शांतिता नै प्राप्त होय? त्यौं ही आगै तौ ये जीव मिथ्यात्व करि ग्रस्त होय रह्या है अर फेरि भी मिथ्नात्व कौ ही सेवै, तौ ये जीव कैसे सुख पावे? अर कैसे याके शांति होय? बहुरि केई महादेव कौ अयोनि शंभु तरण-तारण माने हैं अर या करि सर्व सृष्टि का संहार मानै हैं अर याकूं महा कामी मानै हैं अर याका गला विषैं मनुष्यां को मस्तक की माला मानै है। सो कैसे कामी मानै हैं? या कहै हैं—महादेव का आधा शरीर स्त्री का है, आधा पुरुष का है। तीसौं याका नाम अर्द्धांगी कहिये; ऐसा स्त्री सूं रागी है। ताकूं कहिये है—रे भाई! ऐसा सर्व सृष्टि कौ मारिवा वाला अर महा विड[1] रूप ऐसा पुरुष तारिवा समर्थ कैसे होय? जाका नाम सुनता ही ताप उपजै है; तौ दर्शन किया कैसे सुख उपजै? ये जगत विषैं न्याय है। जैसो कारण मिलै, तैसौ ही कार्य सिद्ध

---

१ बकुल

होय। सो याका उदाहरण कहिये है; जैसे अग्नि का संयोग तें दाह ही उपजै अर जल का संयोग सूं शीतलता ही उपजै है। अर कुशील स्त्री का संयोग सूं विकार भाव उपजै अर शीलवान पुरुष का संयोग सूं विकार भाव हैं ते विलाय जाय अर विष-पान करि प्राणां को हरण होय अर अमृत का पीवा करि प्राणां की रक्षा होय। अर सिंघ, व्याघ्र, सर्प, हस्ती, रोगादि संयोग करि भय ही उपजै अर दयाल, साधु जन का संयोग करि निर्भय, आनंद ही उपजै। ऐसा नाहीं जो अग्नि का संयोग करि तो शीतलता होय अर जल का संयोग करि उष्णता होय, इत्यादि जानना। तीसूं हे भाई! अबै महादेव का असली निज स्वरूप ज्यौं छै, त्यौं ही कहिये हैं। ये महादेव कहिये रुद्र सो ये चौथा काल विषें ग्यारा उपजे हैं, ताकी उत्पत्ति कहिये हैं। सो जैन का निर्ग्रंथ गुरु अर आर्जिका दोन्यों भ्रष्ट होय कुशील सेवैं हैं। पाछै मुनि तो तत्क्षण ही दण्ड ले छेदोप स्थापना करै, पीछै मुनि पद धरि शुद्ध होय है। अर अर्जिका नै गर्भ रहै है सो गर्भ का निपात[1] किया जाय नाहीं। तातैं शुद्ध श्रावका नव मास पर्यंत गर्भ नै बधावैं, पाछै पुत्र जणि अर कहीं स्त्री-पुरुष को सौंपि अर्जिका भी वैसे ही दीक्षा धरै है। अर बालक वृद्ध होय है, पाछै बालक आठ-दस वर्ष का होय, तब या कौन मायका[2] कह करि लडका हास्य करै। तब वह बालक जीके पलै तीनै जाय पूछै—म्हारा माता-पिता कौण छै? अर कौंन को बेटो छूं? तब वे ज्यौं को त्यो मुनि-अर्जिका को वृत्तांत कहै। वह बालक माता-पिता मुनि-अर्जिका

---

१ गिराया २ माता का

जानि अर वा ही मुन्या पासि दीक्षा धरी है। पाछै बहुली
सो मुनि-अर्जिका का वीर्य सूं उपज्यो, तातैं महापराक्रमी
छो ही, पाछै दीक्षा धरि मुनि पद सम्बन्धी तपश्चर्या करि
अनेक रिद्धि फुरे वा अनेक विद्या सिद्धि होय, पीछै केवली
वा अवधिज्ञानी मुनि ताका मुख थकी कथा सुणी है—ये
महादेव स्त्री का संयोग करि मुनि पद सूं भ्रष्ट हो सी।
पाछै महादेव मुनि भ्रष्ट होवा का भय थकी। एकांत
डूंगर[1] ऊपरि जाय ध्यान धरै है, सो वहां अनेक लडकियां
आय स्नान आदि क्रीडा करे हैं। पाछै या लडकियां का
सर्व वस्त्र ये मुनि ले आवै हैं अर लडकियां मांगै तो भी दे
नहीं। अर या लडकियां ने या कहै हैं—थे मूंनै परणो तो
वस्त्र द्यो। तब वे लडकियां कहैं—म्हे कांई जाना ? म्हांका
मां-बाप जानैं। तब ये महादेव या कही—जो थाका मां-बाप
परणावै तो परणोली तब आरे[2] करो। ऐसे कौल[3] करि
वाका वस्त्र देइ। या लडकियां आपणा माता-पिता सूं
सारो महादेव मुनि का वृत्तांत कह्या। तब या लडकियां
का माता-पिता जानिवै—महादेव महा पराक्रमी है। जो
नहीं परणावस्यां, तो महादेव दुःख देसी। ऐसे जानि सारी
लडकियां परणाय दीनी। पाछै महादेव सारी लडकियां
भोगीं, सो याका वीर्य का तेज करि सारी लडकियां मरि
गईं। पाछै अंत के विषैं महादेव पर्वत राजा की पुत्री
पार्वती परणी। सो याका भोग आगै टिकी, सोई पार्वती
नै रात वा दिन चाहै जेठं भोगवै, कोई की शंका राखै
नाहीं। सो या विपरीतता देखि सर्व नगर का स्त्री-पुरुष
वा देश का राजा या वार्ता सुनि घणा दुखी हुवा अर ईका

---

१ पहाडी २ हां, स्वीकार ३ सौगन्ध

जीतिवा नै असमर्थ हुवा, तातैं वे बहुत दुखी हुवा। पाछै पार्वती का माता-पिता नै ई कही तू महादेव नै पूछि--था सूं किंवा दूरि कदि रहै छै। तब पार्वती नै ऐसे ही पूछी, तब महादेव ने कही--और बार तौ दूरि रहै नाहीं, था सूं भोग करता दूरि रहै छै। ये समाचार पार्वती माता--पिता नै कह्या। तब राजा पर्वत जो यो दाव जानि भोग करता महादेव नै मारचो। तब ई का इष्ट दाता देव था, ते सारा नगर मैं महा पीडा करता हुवा अर या कही--म्हाका खावंद[१] नै थैं क्यौं मारचो ? तब राजा कही--मारचो सो पाछो आवै नाहीं और थे कहो सो करां। तब वा व्यंतर देव कही--भग सहित महादेव का लिंग की पूजा करो। तब पीडा का भय थकी नगर का लोग ऐसे हो आकार-बनाया पूजा करी। पाछै ऐसे ही व्यंतर देवा का भय थकी केतायक काल ताईं पूजता हुवा। पाछै गाडरी प्रवाह सारिखो जगत है, सो देख्या देखि सारी धरती का पूजता हुवा। सो वा ही प्रवृत्ति औरूं चली आवै है। अर जगत का जीवा के ऐसो ज्ञान है नाहीं, सो हम कुणी नै पूजो हां अर याको फल काईं है। सो मिथ्यात्व की प्रवृत्ति बिना चलाई बरजोरी सूं चालै है। अर धर्म की प्रवृत्ति चलाई भी चलै नाहीं हैं। सो यह बात न्याय ही है; संसार विषैं जीवा नै घणो रहणो छै। अर संसार सूं रहित थोडा जीवा नै होणो छै। अर देखो, स्त्री का स्वभाव दगाबाज सो जगत के दिखावने ऐसी लज्जा करै जो शरीर के आंगोपांग अंश मात्र भी दिखावै नाहीं अर माता-पिता, भाई इत्यादि देखता महादेव का लिंग की अर पार्वती की भग की

---

१ पति

चोहटे[1] मैं निःशंक पूजा करै। अर कोई बरजै, तो भी मानै नाहीं, सो यात न्याय ही हैं। सर्व संसारी जीवा के विषया सौं आसक्तता स्वयमेव मोह कर्म का उदै करि बिना ही चाह बन रही है। पाछैं यामै विषय पोष्या जाय, तामैं कदे[2] धर्म हुवो? जो विषय पोषिवा मैं धर्म होय, तो पाछैं पाप किसी बात मैं होय? सो ये श्रद्धान अयुक्त है। आगै और कहे है—कोई या कहै कृष्णजी सब का कर्ता हैं। अर पाछैं वाको या कहै है—ये कृष्णजी ढांडा[3] चराया अर माखन चोरि-चोरि खाया। अर परमेश्वर रम्या अर पर स्त्रियां सूं क्रीडा करी। ताकौ कहिये हैं--रे भाई! ऐसा महन्त पुरुष होय, ऐसा नीच कार्य कदे न करै, ये नियम हैं। नीच कार्य करै, तो बडा पुरुष नाहीं। कार्य के अनुसार ही पुरुष विषैं नीच—ऊंचपणा आवै है। ऐसा नाहीं कि नीच कार्य करता प्रभुत्व पणा पावै अर ऊंच कार्य करता नीचता नै प्राप्त होय। यह जगत विषैं प्रत्यक्ष आंख्या देखिये हैं। एक-दोय गांव का ठाकुर है, ते भी ऐसा निंद[4] कार्य करे नाही, तो बडा पृथ्वी पति राजा वा देव वा परमेश्वर होय कैसे करे? यह प्रकृति स्वभाव ही है। बालक होय सो तरुण अवस्था का वा वृद्ध अवस्था का कार्य नाहीं करै अर तरुण होय बालक अवस्था का कार्य नाहीं करै वा वृद्ध होय तरुण अवस्था का वा बालक अवस्था का कार्य नाहीं करै, इत्यादि ऐसो सर्वत्र जानना। सो कृष्णजी की प्रभुत्व शक्ति का वर्णन जैन सिद्धांत विषैं किया है और मत विषैं ऐसा वर्णन नाहीं। सो वह कृष्ण जी तीन खंड का स्वामी है अह घणा देव, विद्याधर, अर

१ चौराहे २ कब ३ पशु, ढोर ४ निम्ननीच, निन्द्य

हजारों मुकुट बद्ध राजा जाकी सेवा करैं हैं अर कोटि शिला उठावा सारिखो याम बल है। अर नाना प्रकार की विभूति करि संयुक्त है अर निकट भव्य है। शीघ्र ही तीर्थंकर पद को धारि मोक्ष जासी। सो भी यह राज अवस्था विषैं नमस्कार करवा योग्य नाहीं। नमस्कार करिवा योग्य दोय पद हैं—कै तो केवलज्ञानी कै निर्ग्रंथ गुरु। तासो मोक्ष के अर्थि राजा नै नमस्कार कैसै संभवै ? अर कृष्ण गोपियां संयुक्त गल्या-गल्या[1] नाचता फिर्‌या अर बांसुरी बजाता फिर्‌या, इत्यादि नाना क्रिया सद्भाव कहै हैं। सो कैसे हैं ? सोई कहिये हैं—भाई का स्नेह करि बलभद्रजी स्वर्ग लोक सूं आय नाना प्रकार की चेष्टा करी थी सो वह प्रवृत्ति चली आवै है। अर जगत का यह स्वभाव है जिसी देखै तिसी ही मानिवा लागि जाय, नफा-टोटा गिनै नाहीं। सो अज्ञान के वसि यह जीव कांई अश्रद्धान न करै ? आगै और कहिये हैं—कोई या कहै हैं—हरि की जोति छै, तो मांहि सो चौईस औतार नीकस्या है। कोई या कहै है—बडी-बडी भवानी है। अर कोई या कहै चौईस तीर्थंकर अर चौबीस अवतार अर चौईस बघडावत अर चौईस पीर एक ही हैं। कहवा मात्र नाम विषैं, संज्ञा विषैं भेद हैं; वस्तु-भेद नाहीं। कोई गंगा, सरस्वती, जमुना, गोदावरी इत्यादि नद्या नै तारण-तरण मानै है, कोई गऊ नै तारण-तरण मानै है अर गऊ की पूछ मैं तैतीस कोडि देवता मानै है; कोई जल पृथ्वी पवन बनस्पति आनै परमेश्वर के रूप मानै है कोई भेरू, क्षेत्रपाल, हनुमान को मानै हैं; कोई गणेश नै पार्वती को पुत्र मानै हैं; ऐसा विचारै नाहीं,

---

[1] गली-गली

अंगादिक तथा जड़-अचेतन कैसी तारिसी ? अर मनुष्य पशु तिर्यंच कैसे तारिसी ? अर वाका पूंछ विषें तेतीस कोटि देव कैसे रहसी अर पार्वती स्त्री के गणेश पुत्र कैसे होसी ? अर समुद्र तौ एकलो जल है सो ताके चंद्रमा पुत्र कैसे होसी ? सो यह हनुमान पवनंजय नाम महा मंडलेश्वर राजा ताका पुत्र है सो या बात संभवे। अर बाली, सुग्रीव, हनुमान आदि वानर वंशी ये महा पराक्रमी विद्याधरां का राजा है। अर ये बांदरा को रूप बणाय लेहै अर और अनेक प्रकार को रूप बणाय लेहै। सो याके ऐसी हजारां विद्या हैं। त्यां करि अनेक आश्चर्यकारी चेष्टा बनावै हैं। अर केई या कहै यो तौ बांदर[1] हैं सो ऐसा विचारैं नाहीं, जो तिर्यंच के ऐसा बल, पराक्रम कैसे होसी जो संग्राम मैं लड़वा का अर रामचंद्रजी आदि राजा सौ बतलावा को ज्ञान कैसे होसी अर मनुष्य की-सी भाषा कैसे बोलसी ? अर ऐसे ही रावण आदि राक्षसवंशी विद्याधरां का राजा अर ताके राक्षसी विद्या आदि हजारां विद्या करि बहुत रूप आदि नाना प्रकार किया करै है। अर लंका कंचन की-सी छी,[2] तो अग्नि सौं कैसे जरी ? अर कोई या कहै वासुकि राजा नै फणा ऊपरि धरती धर्या है अर ये धरती सदा अचल है अर सुमेरु भी अचल है। परंतु कृष्णजी सुमेरु की रई कीन्ही अर वासुकि राजा को नेतो कियो अर समुद्र को मथ्यो अर मथ करि लक्ष्मी को स्तंभ मानि पारिजात कहिये फूल अर सुरा कहिये दारु अर धन्वंतरि वैद्य, चंद्रमा, कामधेनु गऊ, ऐरावत हस्ती, रंभा कहिये देवांगना, सात

---

1 बन्दर 2 थी

मुख को घोड़ो, अमृत, पंचानन शंख, विष, कमल, ये चौदह रत्न काढ्या, सो ऐसे विचारें नाहीं कि जे वासुकि राजा नै धरती तळा सूं काढि ल्यायो, तो धरती कुण के आधार रही ? और सुमेरु उखल्यो[1] तो सासतो कैसे कहिये ? अर चंद्रमा आदिक चौदह रत्न अब ताइं समुद्र मांहि था, तो चंद्रमा बिना आकाश विषें गमन कौण करे छे ? अर चांदनी कौन करे है अर एक-दोय आदि पंदरा तिथि वा उजालो-अंधारो पखवाड़ो अर महीनो अर वरस याकी प्रवृत्ति कौण सूं थी ? अर लक्ष्मी बिना धनवान पुरुष कैसे था ? सो ये प्रत्यक्ष विरुद्ध सो सत्य कैसे संभवे ? अर कोई कहे—है कोई राक्षस धरती नै पाताल विषें ले गयो, पाछे वराह रूप धरि करि पृथ्वी का उद्धार किया। सो ऐसा विचार नाहीं, ये पृथ्वी सासता थी तो राक्षस कैसे हरि ले गयो ? अर कोई या कहे है—सूर्य काश्यप राजा को पुत्र है, अर बुध चंद्रमा को पुत्र छै, अर शनीचर सूर्य को पुत्र है, अर हनुमानजी वानरी का कान को बोडो[2] पुत्र हुवो। अर द्रोपदी को कहे है—या महासती छै, परंतु याकै पांच पांडव भर्तार छै। सो ऐसा विचारे नाहीं कि काश्यप राजा के एते मणि का विमाण गर्भ विषें कैसे रहिसो ? अर चंद्रमा-सूर्य विमाण हैं, ताके शनीचर वा बुध पुत्र कैसे होसी ? अर कंवारी स्त्री के कान को बोडो कैसे पुत्र होसी ? अर द्रौपदी के पंच भर्तार हुवा, तो सतीपणो कैसे होसी ? सो ये भी प्रत्यक्ष विरुद्ध है, सो या बात सांच कैसे संभवै ? इत्यादि भरम बुद्धि करि जगत भ्रम रह्या है। ताका वर्णन कहां ताइं करिये ? सो या बात न्याय ही है; संसारी जीव के ही भरम बुद्धि न

---

१ उखाड़ दिया २ मैल

होय, तो और कुणी के होय ? कोई पंडित, ज्ञानी, पुरुषा के तो हो वै नाहीं अर ऐसे ही पंडित ज्ञानी पुरुषा मैं भरम बुद्धि होय, तौ संसारी जीवा मैं अर पंडित ज्ञानी मैं विशेष कांई ? धर्म छै सो लोकोत्तर छै।

भावार्थ—लोक-रीति सौ धर्म-प्रवृत्ति उपटी है। लोक की प्रवृत्ति के अर धर्म की प्रवृत्तिके परस्पर विरोध है, ऐसा जानना। आगै और भी जगत को विडंबना दिखाइये हैं। केई तौ बड, पीपल, आंवला आदि नाना प्रकार का वृक्ष एकेंद्री वनस्पति ताको मनुष्य पंचेंद्री होय पूजै है अर वाको पूजि फल चाहै है। सो घणो फल पावसो, तौ पंचेंद्री सौ पूठा फल एकेंद्री होसो सो यह बात युक्त है। कोई हजार रुपया कौ धनो-है सो कोई याको घणा सेवा करै अर वह घणा तुष्टमान होय, तौ हजार रुपया दे काढै। अथवा देवा नै समर्थ नाहीं, त्यौं ही एकेंद्री पूज्या सौ मरि करि एकेंद्री होय। अर गाय, हाथी, घोडा बलद[1] यानै पूज्या या सारिखो होय, या सूं वाधि[2] मिलिवा को नेम[3] नाहीं। अर केई हाथा सूं लकडी काटि वा कूं वालि देय, पाछै वा को दोल्यो फेरा लेय अर वा ही का वादणा[4] गावै अर वा ही को माता कहै। अर माथा मैं धूलि, राख नाखि विपरीत होय चावर-दारि[5] आदि खाय काप विकार चेष्टा रूप प्रवर्तैं। अर माता-पिता, बहण-भोजाई, आदि तिन की लाज कहिये सरम तजै। आप नाना प्रकार छोटा भाई की स्त्री, इत्यादि पर रमणी विषैं जल-क्रीडा आदि अनेक क्रीडा

---

१ बैल २ बढ़कर, वृद्धि ३ नियम ४ गीत ५ चावल-दाल

करै। अर कुचेष्टा करि आकुल-व्याकुल होय महानकर्लिक का पाप नैं उपार्जे अर आप कूं धन्य मानै अर फेरि पर-लोक विषैं ऐसा महा पाप करि शुभ फल को चाहै ? ऐसा कहै है—म्हे होली माता ने पूजा छा, सो म्हा नै आछ्यो फल देसी। ऐसी विडंबना जगत विषें आंख्या देखिये हैं। सो ऐसा विचार संसारी जीव करैं नाहीं, सो ऐसा म्हा पाप कार्यकारी ताका फल आछ्या कैसे लागसी ? अर वा होली वस्तु कोई छै, सो अबै होली का स्वरूप कहिये है। सो होली एक साहूकार की बेटी थी। सो दासी का निमित्त करि पर पुरुष सौ रत थी। सो वा पुरुष सौ निरंतर भोग भोगवै। पाछै होली मन मैं विचार कियौ, सो वा बात और तौ जाणै छै नहीं अर या दासी जाणै छै। सो या कठै कहि देसी, तौ म्हारो जमारो खराब होसी, तोसीं ई नै मारि नांखिजो। सो ऐसो विचार करि पाछैं ई ने अग्नि मैं जालि दीनी, सो या मरि करि व्यंतरणी हुई। पाछै ई व्यंतरी पाछिलो सारो वृत्तांत जान्यो। तब यह महा कोपायमान होय वा नगर का सगला लोगा रोग करि पीड़ित किया। पाछै वा नगर का लोग या प्रार्थना करता हुवा कि भाई कोई देवांतर हो सो प्रगट होहु अर जोगि माँगि ल्यौ सौ ही म्हानें कबूल छै। सो तब व्यंतरी प्रगट हुई अर सारो पाछिलो होली कौ वृत्तांत कह्यौ। तब सब नगर का लोगा कही—अब तू म्हा नै आज्ञा करि, तू कहै सोई थारी माानिता करां। तब केतायक हठ किया पीछै व्यंतरणी कह्यौ-काठ की होली बनावौ अर याकूं कठोगरा फूस लगाय बालि घौ अर याकी दोल्यू सारा नगर का फेरा ल्यौ अर या वादण गावौ अर मसकूं भांड करौ अर सारा माथा मैं धूलि नाखौ

अर नाखी, अर या की बरखा-बरसी स्थापना करी सो याके भय का मार्या नगर का लोग ऐसे ही करता हुवा। सो जीवा नै ऐसे विषय-वासना की चेष्टा सुहावै छै। पाछै वह निमित्त मिल्या, जैसे भूले चोर कटारी पाडे—ई प्रवृत्ति कौ कोण मेटिवा समर्थ होय ? तासू ये बात सारा जगत विषै फैल गई छै सो अब ताईं चलीं आवै छै; ऐसा जानना। ऐसे ही गणगौर, राखी, दिवाली, मानै आदि नाना प्रकार की प्रवृत्ति जगत विषैं फैली छै। ताका निवारिवा नै कोण समर्थ ? और भी जीवा की आज्ञानता को स्वरूप कहिये है। सो सीतला, बोदरी, फोडा आदि शरीर विषैं लोही[1] को विकार छै, सो इन कूं बहुत आदर सूं पूजै। पाछै के याकूं पूजतां-पूजता ही पुत्रादिक मरि जाय है अर केई नाहीं पूजै है, त्याका जीवता देखिये है। तौ भी वे अज्ञानी जीव वा कूं वैसै ही मानै है और कहै है—छाणां को जाली वा रोडी वापरे को। देहली, पथवारी, गाडा को पैंजनो, दवात, बही, कुलदेवी, चौथ, गाज, अणंत, इत्यादि कोई वस्तु ही नाहीं। पथवारी त्यानै बहुत अनुराग करि पूजै है। अर सती, अहूत पितर आदि पूजै है। सो इत्यादि कुदेवा की कहां ताईं वरनन करिये ? सो सर्व जगत ही कुदेव तिनका सर्व जगत ही याकौ पूजे, ताका वर्णन करिवानै ऐसो बुद्धि-वान पंडित कौन नखै दीनता न भावै ? अर कुण-कुण का पगा नीचै वो मस्तक नैन नवावे ? अवश्य ही नवावै, सो यह मोह का माहात्म्य है। अर मोह करि अनादि कालकौं संसार विषैं भ्रमै हैं अर नर्क-निगोदादिक का दुःख सहै है।

---

[1] रक्त, खून

ता दुःख का वर्णन करिवा समर्थ श्री गणधरदेव भी नाहीं। तीसूं श्री गुरु परमदयाल कहै है–हे वच्छ ! हे पुत्र ! जै तू आपना हित नैं वांछै छै अर महा सुखी हुवो चाहै है, तौं मिथ्यात्व का सेवन तजि। घणा कहिवा करि कांई ? सो विचक्षण पुरुष है, सो तौ थोड़ा ही मैं समझि जाय है अर जे दीठ पुरुष है, त्यानै चाहै जितनो कहो, ते नाहीं मानै सो ये बात न्याय ही है। जैसी जीव की होणहार होय, तैसी ही बुद्धि उपजै। ऐसे संक्षेप मात्र कुदेवा का वर्णन किया।

आगै कुशास्त्र वा कुधर्म का वर्णन करिये है। सो कुशास्त्र काहे कूं कहिये ? जा विषैं हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह की वांछा, त्या विषैं धर्म थाप्या होय अर दुष्ट जीवा कूं अर बैर्‍या कूं सजा करनी अर भक्तां की सहाय करनी अर राग-द्वेष रूप प्रवर्तना अर आपनो बडाई अर पर की निंदा ऐसा जा विषैं वर्णन होय। पांचौं इन्द्रियां का पोषण विषैं धर्म जानै वा तालाब, कुवा, बावडी आदि निवाण का खिणायवा विषैं अर जज्ञ का करावा विषैं धर्म मानै अर ताका करावा का जा विषैं वर्णन होय अर पाकर प्राग आदि तीर्थ का करावा विषैं अर विषय करि आसक्त नाना प्रकार के कुगुरु ताका पूजिवा विषैं धर्म जानै, ताका वर्णन होय। अर दश प्रकार का खोटा दान त्याकी ब्यौरो-स्त्री, दासी-दास को दान, हाथी, घोड़ा, ऊंट, भैंसा, बलद, गाय, भैंसी वा धरती, गांव, हवेली ताका दान करना अर छुरी, कटारी, बरछी, तरवारि, लाठी आदि शस्त्र का अर राहु, केतु, आदि ग्रहा निमित्त लोह, तिल तेल, वस्त्र आदि

देना अर सुवर्ण का देना। अर मूला, सकरकंद का देना अर ब्रह्मा भोजन का करावना अर कुल आदि न्यौत के जिमावणा, काकडी-खरबूजा आदि का दान करना इत्यादि नाना प्रकार का खोटा दान है, ताका जा विषैं वर्णन होय। या जाणै नहीं, जो ये दान तीन प्रकार के पाप का कारण है— हिंसा, कषाय अर विषयां की आसक्तता-तीव्रता या दान विषैं होय छै। तातैं ये दान महा पाप का कारण है, याका फल नर्कादिक है। अर जा विषैं सिंगार, गीत-नृत्यादि, अनेक प्रकार की कला-चतुराई, हाव-भाव-कटाक्ष जा विषैं जाका वर्णन होय। अर खोटा मंत्र, यंत्र, तंत्र, औषधि, वैद्यक, ज्योतिष, ताका वर्णन होय। इत्यादिक जीवनै भव-भव विषैं दुःख के कारण, ताका जा विषैं वर्णन होय। अर परमार्थ का जा विषैं वर्णन नाहीं, ऐसा शास्त्र का नाम कुशास्त्र है। सो या शास्त्र कूं सुण्या अर सरध्या नियम करि जीव का बुरा ही होय; भला अंश मात्र भी नाहीं होय, ऐसे कुशास्त्र का स्वरूप जानना।

आगै कुगुरु का स्वरूप कहिये हैं। सो कैसे हैं कुगुरु? केई तो बहुत परिग्रही हैं, केई महा क्रोध करि संयुक्त हैं, केई मान करि संयुक्त हैं, केई माया कहिये दगाबाजी करि संयुक्त हैं, केई लोभ करि संयुक्त हैं, जाकै पर स्त्री सूं भोग करिवा की संका नाहीं है। बहुरि कैसे हैं कुगुरु? केई सामग्री मांहि जीवां को होम करै हैं, केई अणछाण्या पाणी सूं सापडि[1] ही धर्म मानै हैं, केई शरीर के विभूति लगाया है, केई जटा बधाया है, केई ठाडेश्वरी कहिये एक हाथ, दोय हाथ ऊंचा किया है, केई अग्नि ऊपरि अधोमुख करि

---

[1] स्नान

झूलै हैं, केई ग्रीष्म रितु समै बालू रेत विषैं लोटै हैं, केई झरझर कंथा पहरैं हैं, केई बाघंबर धारै हैं, केई लांबी माला गला विषैं धारै हैं, केई काथ्या कपड़ा पहर्‌या है। केई टाट का कपड़ा पहर्‌या है, केई मृग की खाल पहर्‌या है, ताका कल्याण होय। अर छापा, तिलक सौं ही कल्याण होय, तौ संखरा के दिन बलद आदि का सर्व शरीर छपाय[1] दीजिये हैं, त्याका कल्याण होय। अर ध्यान धर्‌या ही कल्याण होय, तौ बुगला[2] ध्यान धरै है, ताका कल्याण होय। राम-राम कह्या ही कल्याण होय, तौ पींजरा कौ सूबो सासतो राम-राम कहै है, ताका कल्याण होय। घर-बार छोड़ि वन मैं वस्या ही कल्याण होय, तौ बांदरा सासत वन विषैं नग्न रहै है, ताका कल्याण होय। सो इनि सबनि का कदाचि कल्याण नाहीं होय। सिद्ध होवा का कारण और ही है। ऐसे कुगुरु का स्वरूप जानना।

सो हे भव्य ! ऐसे कुदेवादिक ताका सेवन दूरि ही तैं तजि। घणी कहिवा करि कांई ? विचक्षण पुरुष है सो थोड़ा ही मैं समझि लेहै अर अज्ञानी घणा कहिवा करि भी नाहीं समझै है। अर देव, गुरु, धर्म का स्वरूप एक प्रकार हैं; बहुत प्रकार नाहीं। ताका स्वरूप पूर्वे वर्णन करि ही आये हैं सो जानना। सो ही मोक्षमार्गी है; अन्य का सेवन संसार का मार्ग है। सो श्रीगुरु कहै हैं–हे वच्छ ! हे पुत्र ! जो तू नैं आछ्या लागै जानैं सेय, म्हाका कहना ऊपरि मति रहै। परीक्षा करि देव, गुरु, धर्म की प्रतीति करि। अर देव, गुरु, धर्म; की प्रतीति बिना जेता धर्म कीजै है, ते

१ छपा २ बगला

निर्फल होय है, जैसै एका बिना बींदी गिणती मैं आवैं नाहीं। सो केई सिंघ की खाल पहर्या है, केई नग्न होय नाना प्रकार का शस्त्र धारै है, केई वन-फल खाई है, केई कूकरा[1] आदि तिर्यंच ताकूं राखै है, केई मौन धर्या है, केई पवनाभ्यास करै है, केई ज्योतिष, वैधक, मंत्र, यंत्र, तंत्र, करै हैं, केई लोक दिखावने कूं ध्यान धर्या है; केई आप कूं महंत मानै हैं, केई आप कूं सिद्ध मानै हैं; केई आपनै पुजाया चाहै है; केई राजादिक नखै पुजाय बहुत राजी होय है अर कोई न पूजै तौ ता ऊपरि क्रोध करै है, केई कान फडाय[2] रंगवा कपढा पहर्या है अर मठ बांधि अर लाखा रुपया की दौलत राखै है अर गुरु को ठसक धरावै है भोला जीवा नै पगा पाडै हैं; इत्यादि नाना प्रकारआरक कुगुरु ये हैं, ताका कहां ताइं वर्णन करिये ? और युक्ति करि समझाइये है—जे नागा रह्या कल्याण होय, तौ तिर्यंच सासता नागा रहै है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर राख लगाया कल्याण होय, तौ गर्दभ[3] सासता राख विषैं लोटै है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर माथा मुंडाया ही कल्याण होय, तौ गाडर[4] कूं छटे महीने मूंडिये है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर स्नान किया ही कल्याण होय, तौ मैंढक, मच्छी, आदि जलचर जीव सासता पाणी मे रहै है, याका कल्याण क्यों न होय ? अर जटा बधाया[5] ही कल्याण होय तौ; केई बड[6] आदिक ताकौ धरतो पर्यंत जटा वधै हैं; इत्यादि सर्व कुगति का पात्र हैं, ऐसे जानना। और भी श्रीगुरु कहै हैं—हे पुत्र ! तू नै दोय बाप का बेटा

---

१ कुत्ता २ फड़वाकर ३ गधा ४ भेड़ ५ बढाने से ६ बट वृक्ष

कहै तो तू लडै अर दोय गुरु थारै बतावै तो तू अंश मात्र भी खेद मानै नाहीं। सो माता-पिता तौ स्वारथ का सगा अर वा सूं एक पर्याय का संबंध ताकी तौ थारै ऐसो ममत्व बुद्धि छै अर ज्या गुरु का सेवन करि जरा-मरण का दुःख विलय जाय अर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति होय, त्याकी थारे या प्रतीति, सो या थारी परिणति तू नै सुखदायो नाहीं। तीसूं जे तू आपना हेत नैं वांछै छै, तौ एक सर्वज्ञ, वीतराग देव, ताका वचन अंगीकार करि अर उस ही के वचन अनुसार देव, गुरु, धर्म ताका श्रद्धान करि, इति श्री श्रावकाचार ग्रंथ की भाषा बचनिका संपूर्ण।

श्रावक का धर्म

रात्रि भोजन में अहिंसा होती है, इसलिए श्रावक को उसका त्याग होता ही है। इसी प्रकार अनछने पानी में भी त्रस जीव होते हैं। शुद्ध और मोटे कपड़े से छानने के पश्चात् ही श्रावक पानी पीता है। अस्वच्छ कपड़े से छाने तो उस कपड़े के मैल में ही में जीव होते है, इसलिए कहते है कि शुद्ध वस्त्र से छने हुए पानी को काम में लेवें। रात्रि को तो पानी पिये ही नही और दिन में छान कर पिये। रात्री को त्रस जीवों का संचार बहुत होता है, इस रात्री के खानपान में त्रस जीवों की हिंसा होती है। जिसमें त्रस जीवों की हिंसा होती है—ऐसे कार्य के परिणाम व्रति श्रावक को नहीं हो सकते।

पू. श्री कानजी स्वामी

श्रावक धर्म प्रकाश पृष्ठ 53-54 (नया संस्करण

परिशिष्ट १

जीवन-पत्रिका

(ब्र. पं. रायमल्ल)

अथ आगै केताइक समाचार एकादेशी जघन्य संयम के धारक रायमल्ल ता करि कहिए है। इह असमानजाति-परजाय उत्पन्न भए तीन वर्ष नौ मास हुए, हमारै ता समै ज्ञेय का जानपना की प्रवृत्ति निर्मल भई सो आयु पर्यंत धारण शक्ति के बल करि स्मृति रहै। तहां तीन वर्ष नौ मास पहली हम परलोक सम्बन्धी च्यारौ गति मांसू कोई गति विषैं अनन्त पुद्गल की परणुवां[1] अर एक हम दोऊ मिलि एक असमानजातिपर्याय को प्राप्त भया था, ताका व्यय भया। ताही समैं हम वैं पर्याय सम्बन्धी नोकर्म शरीर कूं छोडि कार्माण शरीर सहित इहां मनुष्य भव विषैं वैश्य कुल तहां उत्पन्न भया। सो कैसे उत्पन्न भया? जैसे भिष्टादिक असुचि स्थानक विषैं लट-कमि आदि जीव उपजैं तैसै माता-पिता के रुधिर शुक्र विषैं आय उहां नोकर्म जाति की वर्गणा का ग्रहण करि अंतर्मूहूर्त काल पर्यंत छहूं पर्याप्ति पूर्ण कीए। ता समै लोही[2] सहित नाक के श्लेष्म का पुंज सादृश्य शरीर का आकार भया। पीछे अनुक्रम सूं बधता-बधता केताक दिनां मैं मांस को बूथी[3] सादृश्य आकार भया।

बहुरि केताइक दिन पीछे सूक्ष्म आंखि, नांक, कान,

१ परमाणु २ रुधिर, खून ३ लोथड़ा

मस्तक, मुख; हाथ-पाव इंद्रया गोचर आवै अैसा आकार भया। ऐसै ही बधता-बधता बिलसति[४] प्रमाण आकार भया। असै नौ मास पर्यंत औंधा मस्तक ऊपरि पाव, गोडा विषें मस्तक, चाम की कोथली करि आच्छादित, माता के भिष्टादिक खाय महाकष्ट सहित नाना प्रकार की वेदना कूं भोगवता संता, लघु उदर विषें उदराग्नि मैं भस्मीभूत होता संता, जहां पौन का संचार नाहीं अैसी अवस्था नै धरया नौ मास नर्क सादृश्य दुख करि पूर्ण कीया। पीछं गर्भ बाह्य निकस्या बाल अवस्था के दुख करि फेरि तीन वर्ष पूर्ण कीये। अैसा तोन वर्ष नौ मास का भावार्थ जानना।

अर या अवस्था कै जो पूर्वें अवस्था भई ताका जानपना तो हमारै नाहीं। तहां पीछला जानपना की यादि है सोई कहिए है। तेरा-चौदा वर्ष की अवस्था हुए स्वयमेव विशेष बोध भया। ता करि अैसा विचार होने लागा जीव का स्वभाव तौ अनादिनिधन अविनासी है। धर्म के प्रभाव करि सुखी होय है। पाप के निमत्त करि दुखी होय है। तातें धर्म ही का साधन कर घना पाप का साधन न करना परन्तु सक्तिहीन करि वा जथार्थ ज्ञान का अभाव करि उत्कृष्ट धर्म का उपाय बनै नाहीं। सदैव परणामां की वृत्ति अैसे रहै, धर्म भी प्रिय लागै अर ई पर्याय सम्बन्धी कार्य भी प्रिय लागै।

बहुरि सहज ही दयालसुभाव, उदारचित्त, ज्ञान वैराग्य

---

१ लोथड़ा

को चाहि. सतसंगति का हेरु, गुणीजन का चाहक होता संता इस पर्याय रूप प्रवर्ते । अर मन विषें असा संदेह उपजै ए सासता एता मनुष्य ऊपजै है, एता तिर्यंच ऊपजें है, एतौ वनस्पति ऊपजै हैं, एता नाज सप्त धात, ई, षट्रस, मेवा आदि नाना प्रकार की वस्तु उपजै हैं, सो कहां सूं आवै है अर विनसि कहां जाय हैं । इसका कर्ता परमेश्वर बतावै हैं सो तौ परमेश्वर कर्त्ता दीसै नाहीं । ए तौ आपै उपजै हैं, आपै आप विनसै हैं, ताका स्वरूप कौन कूं बूझिये ।

बहुरि अपरनैं कहा-कहा रचना है ? अधो दिशा नैं कहा–कहा रचना है ,पूर्व आदि च्यारा दिशा नै कहा-कहा रचना है, ताका जानपना कैसे होइ । याका जाबपना कोई कै हैं या नाहीं, ऐसा संदेह कैसे मिटै ?

बहुरि कुटुंबादि बडे पुरुष ताने याका स्वरूप कदे पूछें तब कोई तौ कहै परमेश्वर कर्ता है, कोई कहे कर्म कर्ता है, कई कहैं हम तौ क्यूं[1] जानै नाहीं, बहुरि कोई आनमत[2] के गुर वा ब्राह्मण ताकूं महासिद्ध वा विशेष पंडित जानि वाकूं पूछै तब कोई तौ कहै ब्रह्मा, विष्णु, महेश ए तीन देव इस सृष्टि के कर्ता है, कोई कहै राम कर्ता है, कोई कहै बडा-बडी भवानी कर्ता है, कोई कहै नारायण कर्ता है, बेहमाता लेख घाले है, धर्मराय लेखा ले है, जम का डागो इस प्राणी कूं ले जाय है, वा सिगनाग[2] तीन कूं फण ऊपरै धारै हैं । ऐसा जुदा जुदा वस्तु का स्वरूप कहै । एकजिभ्या कोई बोलै नाहीं । सो ए न्याय है–

---

१ कुछ २ अन्य मत शेष नाग

सांचा होय तौ सर्व एक रूप ही कहै। अर जानै क्यूं भी खबरि नाहीं, अर माहीं मान कषाय का आशय ता करि चाहै ज्यौं वस्तु का स्वरूप बतावै अर उनमान सूं प्रतक्ष विरुद्ध; तातैं हमारे सदैव या बात को आकुलता रहै, संदेह जाभै नाहीं।

बहुरि कोई कालि ऐसा विचार होइ अठै साधन करिए पीछे वाका फल तै राजपद पावै, ताके पाप करि फेरि नर्कि[1] जाय तौ असा धर्म करि भी कहा सिद्धि? असा धर्म करिए जा करि सर्व संसार का दुख सूं निवृत्ति होइ। असे ही विचार होतै होतै बाईस वर्ष की भई।

तां समै साहिपुरा नग्र विषैं नीलापति साहूकार का संजोग भया। सो वाकै सुद्ध दिगंबर धर्म का श्रद्धान, देव गुरू धर्म की प्रतीति, सागम अध्यात्म शास्त्रां का पाठी, षट्, द्रव्य, नव पदार्थ, पंचास्तिकाय, सप्त, गुणस्थान, मार्गणा, बंध-उदय-सत्व आदि चरचा का पारगामी, धर्म की मूर्ति, ज्ञान का सागर, ताकै तीन पुत्र भी विशेष धर्म बुद्धी और पांच सात दस जन धर्मबुद्धी; ता सहित सदैव चर्चन[2] होइ, नाना प्रकारु के सास्त्रां का अवलोकन होइ। सो हम वाके निमित्त करि सर्वज्ञ वीतराग का मय सत्य जान्या अर वाके वचनां के अनुसार सर्व तत्वां का स्वरुप यथार्थ जान्या।

थोरे ही दिनां मैं स्वपर का भेद–विज्ञान भया। जैसे सूता आदमी जागि उठै है तैसें हम अनादि काल के मोह

---

१ नरक   २ चर्चाएँ

निद्रा करि सोय रहे थे सो जिनवाणी के प्रसाद तैं वा नीलापति आदि साधर्मी के निमित्त तैं सम्यज्ञान-दिवस विषैं जागि ऊठे। साक्षात ज्ञानानंद स्वरूप, सिद्ध सादृश्य अपना जान्या और सब चरित्र पुद्‌गल द्रव्य का जान्या। रागादिक भावां को निज स्वरूप सूं भिन्नता वा अभिन्नता नीकी जानी। सो हम विशेष तत्वज्ञान का जानपना सहित आत्मा हुवा प्रवर्ते। विराग परिणामां के बल करि तीन प्रकार के सौमंद-सर्व हरित काय रात्रि का पाणी, विवाह करने का आयुपर्यंत त्याग कीया। ऐसैं होते संत सात वर्ष पर्यंत उहां ही रहे।

पीछे राणा का उदैपुर विषैं दोलतराम तेरापंथी, जैपुर के जयस्यंघ राजा के उकील[1] तासूं धर्म अर्थि मिले। वाकै संस्कृत का ज्ञान नीका, बाल अवस्था सूं ले वृद्ध अवस्था पर्यंत सदैव सौ-पचास शास्त्र का अवलोकन कीया और उहां दौलतराम के निमित्त करि दस-बीस साधर्मी या दस-बीस बायां सहित सैली का बणाव बणि रह्या। ताका अव-लोकन करि साहिपुरै पाछा आए।

पीछे केताइक दिन रहि टोडरमल्ल जैपुर के साहूकार का पुत्र ताकै विशेष ज्ञान वासूं मिलने के अर्थि जैपुर नगरि आए। सो इहां वाकूं नहीं पाया अर एक बंसीधर किंचित संजम का धारक विशेष व्याकरणादि जैन मत के शास्त्रां का पाठी, सौ-पचास लडका पुरुष बायां जा नखै[2] व्याकरण, छंद, अलंकार, काव्य, चरचा पढै, तासूं मिले।

पीछे वानै छोडि आगरै गऐ। उहां स्याहगंज विषैं

[1] वकील [2] जिसके पास

भूधरमल्ल साहूकार व्याकरण का पाठी घणां जैन के शास्त्रो का पारगामी तासूं मिले और सहर विषैं एक धर्मपाल सेठ जैनी अग्रवाल व्याकरण का पाठी मोतीकटला के चैताले शास्त्र का व्याख्यान करै, स्याहगंज कै चैताले भूधरमल्ल शास्त्र का व्याख्यान करै, और सौ-दोय सै साधर्मी भाई ता सहित वासूं मिलि फेरि जैपुर पाछा आए।

पीछै सेखावाटी विषैं सिंघाणा नग्र तहां टोढरमल्लजी एक दिल्ली का बडा साहूकार साधर्मी ताकै समीप कर्म कार्य के अर्थि वहां रहै, तहां हम गई अर टोडरमल्लजी सूं मिले, नाना प्रकार के प्रश्न कीए, ताका उत्तर एक गोमट्टसार नामाग्रंथ की साखि सूं देते भए। ता ग्रंथ की महिमा हम पूर्वं सुणी थी, तासूं विशेष देखी। अर टोडर-मल्लजी का ज्ञान की महिमा अद्भूत देखी।

पीछै उनसूं हम कही—तुम्हारै या ग्रंथ का परचै भया है। तुम करि याकी भाषा टीका होय तौ घणा जीवां का कल्याण होइ अर जिन धर्म का उद्योत होइ। अबैही[१] काल के दोष करि जीवां की बुद्धि तुच्छ रही है, आगै यातैं भी अल्प रहैगी, तातैं असा महान् ग्रंथ पराकृत[२] ताकी मूल गाथा पंद्रह सै १५०० ताकी टीका संस्कृत अठारह हजार १८००० ता विषैं अलौकिक चरचा का समूह संदृष्टि वा गणित शास्त्र की आम्नाय संयुक्त लिख्या है, ताका भाव भासना महा कठिन है। अर याके ज्ञान की प्रवृत्ति पूर्वं दीर्घ काल पर्यंत तैं लगाय अब ताईं नाहीं तौ आगै भी

---

१ वर्तमान में ही २ प्राकृत

याकी प्रवृत्ति कैसे रहैगी । तातैं तुम या ग्रंथ को टीका करने का उपाय शीघ्र करो, आयु का भरोसा है नाहीं ।

पीछै ऐसे हमारे प्रेरकपणा का निमित्त करि इनकै टीका करने का अनुराग भया । पूर्वे भी याकी टीका करने का इनका मनोरथ था ही, पीछैं हमारे कहने करि विशेष मनोरथ भया ! तब शुभ दिह मुहूर्त विषें टीका करने का प्रारम्भ सिघाणा नग्र विषैं भया । सो वै तो टीका बणावते गए, हम बांचते गए । बरस तीन मैं गोमट्टसार ग्रंथ को अठतीस हजार ३८०००, लब्धिसार क्षपणासार ग्रंथ को तेरह हजार १३०००, त्रिलोकसार ग्रंथ को चौदह हजार १४०००, सब मिलि च्यारि ग्रंथों की पैंसठि हजार टीका भई ।

पीछै सवाई जैपुर आए । तहां गोमटसारादि च्यारौं ग्रंथां कूं सोधि याकी बहोत प्रति उतराई । जहां सैलो छी तहां सुधाई-सुधाइ पधराई । ऐसै या ग्रंथा का अवतार भया । अबार के अनिष्ट काल विषैं टोडरमल्लजी कै ज्ञान का क्षयोपसम विशेष भया । ए डोमटसार ग्रंथ का बचनां पांच सै बरस पहलो था । ता पोछै बुधि को मंदता करि भाव सहित बचना रहि गया । बहुरि अबै फेरि याका उद्योत भया ।

बहुरि वर्तमान काल विषैं इहां धर्म का निमित्त है तिसा अन्यत्र नाहीं । बर्तमान काल विषैं जन धर्म को प्रवृत्ति पाइये है ताका विशेष आगै इंद्रध्वज पूजा का विधान लिखैंगे, ता विषैं जानना ।

बहुरि काल दोष करि बीचि मैं एक ऊपद्रव भया सो

---

१ वर्तमान में ही २ प्राकृत

कहिए है। संवत् १८१७ के सालि असाढ के महिने एक स्यामराम ब्राह्मण वाके मत का पक्षी पाप पूर्ति उत्पन्न भया। राजा माधवस्यंह का गुर ठहरया, ता करि राजा नै वसि किया। पीछे जिनधर्म सूं द्रोह करि या नग्र के वा सर्व ढुंढाड देश का जिनमंदिर तिनका विघ्न कीया, सर्व कूं वैसनूं करने का उपाय कीया, ता करि लाखां जीवां नै महा घोरान घोर दुख हुवा अर महा पाप का बंध भया। सो एह उपद्रव बरस ड्योढ पर्यंत रह्या।

पीछै फेरि जिनधर्म का अतिशत करि या पापिष्ट का मान भंग वा जिनधर्म का उद्योत हुवा। सर्व जिन मंदिरा का फेरि निर्मापण हुवा। आगा बीचि दुगुणां तिगुणां चौगुणां जिनधर्म का प्रभाव प्रवर्त्या। ता समै बीस तीस जिनमंदिर या नग्र विषैं अपूर्व बणें। तिन विषें दोय जिन मंदिर तेरापंथ्यां को शैली विषैं अद्‌भूत सोभा नै लीया, बडा विस्तार नै धरया बणे। तहां निरंतर हजारां पुरुष-स्त्री देवलोक की सो नाईं चैत्यालै आय महा पुन्य उपारजं दीर्घ काल का संच्या पाप ताका क्षय करै। सौ पचास भाई पूजा करने वारे पाइये, सौ पचास भाषा शास्त्र बाचन वारे पाइये, ये दश-बीस संस्कृत शास्त्र बाचने वारे पाइये, सौ-पचास जने चरचा करने वारे पाइये और नित्यान[१] का सभा के शास्त्र का व्याख्यान विषें पांच सै-सात सै पुरुष तीन सै-च्यारि सै स्त्रीजन सब मिलि हजारा बारा सै पुरुष स्त्री शास्त्र का श्रवण करै, बीस-तीस बायां शास्त्राभ्यास करै, देश-देश का प्रश्न इहां आवै तिनका समाधान होय उहां पहुंचै, इत्यादि अद्‌भुत महिमा चतुर्थकालवत या नग्र विषैं जिनधर्म की प्रवृति पाइये है।

---

१ नित्य प्रति की

२

इन्द्रध्वजविधान–महोत्सव पत्रिका

(ब्र. पं. रायमल्ल)

आगै माह सुदि १० संवत् १८२१ अठारा सै इकबीस कै सालि इन्द्रध्वज पूजा का स्थापन हूवा। सो देस-देस के साधर्मी बुलावने कौं चीठी लिखी ताकी नकल इहां लिखिये है। दिल्ली १, आगरै १, भिंड १, कोरडा जिहानाबाद १, सिरोंज १, वासोदो १, इंदौर १, औरंगाबाद १, उदैपुर १, नागोर १, बीकानेर १, जैसलमेर १, मुलतान १ पर्यंत चीठी असी लिखी सो लिखिये हैं—

स्वस्ति दिल्ली आगरा आदि नग्र के समस्त जैनी भायां योग्य सवाई जयपुर थी रायमल्ल कैनिश्री शब्द वाचना। इहां आनन्द वर्ते है। थां कै आनन्द की वृद्धि होउ। थे धर्म के बडे रोचक हो।

अपरंच इहां सवाई जयपुर नग्र विषैं इन्द्रध्वज पूजा सहर के बारै अधकोस परै मोतोडूंगरो निकठि ठहरी है। पूजा का रचना का प्रारम्भ तो पास वदि १ सूं ही होने लागा है। चौसठि गज का चौडा इतना हो लांबा एक च्यौंतरा बण्या है। ता उपरि तेरह द्वीप की रचना बणो है। ता विषैं यथार्थं च्यारि सै अठावन चैत्यालय, अढाई द्वीप के पांच मेरु, नंदीश्वर द्वीप के बावन पर्वत ता उपरि जिनमंदिर बणे हैं। और अढाई द्वीप विषैं क्षेत्र, कुलाचल, नदी, पर्वत, वन, समुद्र ताकी रचना बणी है। कठै ही कल्प

वृक्षां का वन ता विषैं कठै ही चैत्य वृक्ष, कठै ही सामान्य वृक्षां का वन, कठैं ही पुष्प-बाडी, कठै ही सरोवरी, कठै ही कुंड, कठै ही द्रह मांहि सूं निकसि समुद्र में प्रवेश करती नदी, ताकी रचना बणी है। कठै ही महलां की पंक्ति, कठै ही ध्वजा के समूह, कठै ही छोटी–छोटी ध्वजा के समूह का निर्मापण हूवा है।

पोस बदि १ सूं लगाय माह सुदि १० ताई सौ ड्योढ सै कारीगर, रचना करने वाले सिलावट, चितेरे, दरजी, खराधी, खाती, सुनार आदि लागे हैं। ताकी महिमा कागद मैं लिखी न जाय, देखे ही जानी जाय। सो ये रचना ती पत्थर–चूना के चौसठि गज का च्यौंतरा ता उपरि बणो है। ताकै च्यार्यौं तरफ़ कपडा का सरायचां के कोट बणेगा। और च्यार्यों तरफ च्यारि वीथी कहिए गली, च्यार्यौ तरफ के लोग दरवाजा मैं प्रवेश करि आवने कौं असी च्यारां तरफां च्यारि वीथी की रचना समोसरण को वीथी सादृश्य बनेगी। अर च्यारां तरफां नै बडे-बडे कपडा के वा भोडल का काम के वा चित्राम का काम के दरवाजे खडे होंयगे। ताकै परें च्यार्यौं तरफ नौबतिखाना सरू होयगे। और च्यौंतरा को आसिपासि सौ दो सै ढेरे तंबु कनात खडे होंयगे। और च्यारि हजार रेजा पाघ राता[1] छीट लौंगी आए हैं। सो निसान, धुजा, चंदवा बिछायत विषे लागेगे।

दोय सै रूपा[2] के छत्र झालरी सहित नवा घडाए हैं। पांच-सात इन्द्र बणैगे, तिनकं मस्तकै धरने कूं पांच-सात

---

१ लाल २ चांदी

मोना का काम के मुकुट बणेगे। बीस-तीस चालीस गङ्की कागदां को बागायति[1] वा पहोपबाडी[2] कै ताई अनेक प्रकार के रंग की रंगी गई हैं। और बीस-तीस मण रद्दी कागद लागे हैं, ताकी अनेक तरह की रचना बाणी है। पांचसै कडी वा सोटि बांस रचना विर्षे लागेंगे।

और चौसठि गज का च्यौंतरा उपरि आगरा सूं आए एक ही बडा घरता सूं बीज गज ऊंचा इकचोभा[3] दोय सै फरास[4] आदम्यां करि खडा होयगा। ताकरि सर्व च्यौंतरा उपरि छाया होयगो। और ता डेरा कै च्यारां तरफां चौईस-चौईस द्वार कपडा के वा भोडल के झालरी सहित अत विर्षे च्यौतरा को कोर उपरि बणै हैं। च्यारां तरफ के छिनवै द्वार भए। और डेरा कै बीचि ऊपर नै सोना के कलश चढे है और ताकै आसि-पासि घणा दरबार का छोटा बडा डेरा खडा होयगा। ताकै परै सर्व दीवान मुतसद्यां का डेरा खडा होइगा। ताकै परै जात्र्यां का डेरा खडा होयगा।

और पोस बदि १ सूं लगाय पचास रुपया को रोजीनो कारीगरां को लागै है। सो माह सुदि १० ताईं लागैगा। पाछे सौ रुपया को रोजीनो फागण बदि ४ ताईं लागैगा। और तेरह द्वीप, तेरा समुद्र कै बीचि-बीचि छब्बीस कोट बणैगा। और दरबार की नाना तरह की जलूसि आई है अथवा आगरै इन्द्रध्वज पूजा पूर्वे हुई थी ताको सारो मसालो वा जलूस इहां आया है।

और इहां सर्व सामग्री का निमित्त अन्यत्र जायगा तैं

---

१ बाग २ पुष्प वाटिका ३ फर्श ४ कनात, टेन्ट

प्रचुर पाईये है तातैं मनोरथ अनुसार कार्य सिद्धि होहिंगे।

एह सारी रचना द्वीप, नदी; कुलाचल, पर्वत आदि की घन रुप जाननी। चावल, रोली का मंडल की नाईं प्रतर रूप नाहीं जाननी। ए रचना त्रिलोकसार ग्रंथ कै अनुसार बणी है। और पूजा का विधान इंद्रध्वज पूजा का पाठ संस्कृत श्लोक हजार तीन ३००० ताकै अनुसारि होयगा। च्यारां तरफा नै च्यारि बडी गंधकुटी ता विषैं बडे बिंब बिराजैंगे। तिनका पूजन च्यारां तरफां युगपत् प्रभाति मुखिया साधर्मी करैंगे।

पीछैं च्यारां तरफां जुदा-जुदा महत्‌बुद्धि का धारक मुखिया साधर्मी सास्त्र का व्याख्यान करैंगे। देस-देस के जात्री आए वा इहां के सर्व मिलि सास्त्र का उपदेश सुणैंगे। पीछैं आहार लेना आदि शरीर का साधन करि दोपहर दिन चढे तैं लगाय दोय घडी दिन रहे पर्यंत सुदर्शन मेरु का चैत्यालय सूं लगाय सर्व चैत्यालयां का पूजन इन्द्रध्वज पूजा अनुसारि होयगा। पीछै च्यौंतरा की तीन प्रदक्षिणा देय च्यारां तरफां आरती होयगी। पीछै सर्वरात्रि विषैं च्यारा तरफां जागरण होयगा।

और सर्वत्र रूपा सोना के जरी का वा तबक[1] का वा चित्राम का वा भोडल के काम का समवसरणवत् जगमगाट नै लिया सोभा बनैगी और लाखां रूपा-सोना के दीप वा फूल पूजन कै ताईं बने हैं। और एक कल का रथ बण्या है सो बिना बलधां बिना आदम्यां कल के फेरने करि गमन करैगा। ता ऊपरि भी श्रीजी बिराजैंगे और भी अनेक

---

१ सोने चांदी के बरक

तरह की असवारी बाणैगी। इत्यादि अद्भुत आश्चर्यकारी सोभा जानोगे।

और सौ-दो सै कोस के जैनी भाई सर्व संग बणाय कबीला सुधां आवैंगे। अर इहां जैनी लोगां का समूह है ही अर माह सुदि दसैं कैं दिनि लाखों आदमी अनेक हाथ, घोरे, पलिकी, निसाण, अनेक नौबति नगारे आखी[1] बाजे सहित बडा उछव सूं इन्द्रां करि करी हुई भक्ति ताकी उपमा नै लीया ता सहित चैत्यालय सूं श्रीजी रथ उपरि बिराजमान होइ वा हाथी के होदै बिराजमान होई सहर कै बारै तेरह द्वीप की रचना विषैं जाय बिराजैंगे।

सो फागुण बदि ४ ताईं तहां ही पूजन होयगा वा नित्य शास्त्र का व्याख्यान, तत्वां का निर्णय, पठन-पाठन, जागरण आदि शुभ कार्य चौथि ताईं उहां ही होयगा। पीछे श्रीजी चैत्यालय आय बिराजैंगे। तहां पीछैं भी देश-देश के जात्री पांच-सात दिन पर्यंत और रहैंगे। ईं भांति उछव की महिमां जानोंगे। तातैं अपने कृतार्थ कै अर्थि सर्व देस वा प्रदेस के जैनी भाया कूं अगाऊ समाचार दे वाकूं साथि ले संग बणाय मुहूर्त पहली पांच-सात दिन सीघ्र आवोगे। ए उछव फेरि इं पर्याय मैं देखणा दुर्लभ है।

ए कार्य दरबार की आज्ञा सूं हूवा है और ए हुकम हुवा है जो थांकै पूजाजी कै अर्थि जो वस्तु चाहिजे सो ही दरबार सूं ले जावो। सो ए बात उचित ही है। ए धर्म राजा का चलाया ही चालै है। राजा का सहाय बिना ऐसा महत परम कल्याणरूप कार्य बणै नांही हैं। अर

---

[1] सब प्रकार के

दोन्यूं दीवान रतनचन्द वा बालचन्द या कार्य विषें अग्रेसरो[१] हैं, तातैं विशेष प्रभावना होयगो।

और इहां बडे-बडे अपूर्व जिनमन्दिर बणें हैं। सभा विषें गोमट्टसारजी का व्याख्यान होय है। सो बरस दोय तो हूवा अर बरस दोय तांई और होइगा। एह व्याख्यान टोडरमल्लजी करैं हैं। और इहां गोमट्टसार ग्रन्थ की हजार अठतीस ३८०००, लब्धिसार क्षपणासार ग्रन्थ की हजार तेरा १३०००, त्रिलोकसार ग्रन्थ की हजार चौदह १४०००, मोक्षमार्ग प्रकाशक ग्रथ की हजार बीस २०००० बड़ा पद्मपुराण ग्रन्थ की हजार बीस २०००० टीका बणी है, ताका दर्शन होयगा और एहां बडे-बडे संयमी पाइये है, ताका मिलाप होयगा।

और दोय-च्यारि भाई धव, महाधवल, जयधवल लेने कूं दक्षिण देश विषैं जैनबद्री नगर वा समुद्र तांई गए थे। उहां जैनबद्री विषैं धवलादि सिद्धांन्त ताडपत्रां विषें लिख्या कर्णाटी लिपि मैं विराजैं हैं, ताकी एक लाख सत्तरि हजार मूल गाथा है। ता विषें सत्तरि हजार धवल की, साठि हजार जयधवल की, चालीस हजार महाधवल की है। ताका कोई अधिकार कै अनुसारि गोमटसार, लब्धिसार, क्षपणासार बणे हैं।

अर उहां के राजा वा रैति[२] सर्व जैनी है अर मुनि धर्म का उहां भी अभाव है। थोरे से बरस पहली यथार्थ लिंग के धारक मुनि थे, अबै काल के दोष करि नाहीं।

---

१ मुखिया २ रैयत, प्रजा

अगल-बगल क्षेत्र घणा ही है, तहां होयगा । और उहां कोड्यां[1] रुपया के काम के सिगोबंध[2] मोंघा[3] मोल के पथरनि के वा ऊपरि सर्वत्र तांबा के पत्रा जडे ताकै तीन कोट ताका पाव कोस का व्यास है, ऐसे सोला बडा-बडा जिन मन्दिर बिराजै हैं। ता विषैं मूंग्या, लसण्यां आदि रतन के छोटे जिनबिंब घणा बिराजै हैं और उहां अष्टाह्निका का दिना विषैं रथयात्रा का बडा उछव होइ है।

और उहां एक अठारा धनुष ऊंचा, एक नौ धनुष, ऊंचा, एक तीन धनुष ऊंचा कायोत्सर्ग जुदा-जुदा तीन देशां विषैं तीन जिनबिंब तिष्ठै हैं। ताकी यात्रा जुरै है। ताका निराभरण पूजन होय है। ताका नाम गोमट्टस्वामी है। ऐसा गोमट्टस्वामी आदि घणा तीर्थ है।

वा उहां सीतकाल विषैं ग्रीष्म रिति[4] की-सी उष्णता पाइये हैं। उहां मुख्यापनै चावलों का भखन[5] विशेष है। उहां की भाषा विषैं इहां के समझैं नाहीं। इहाँ की भाषा विषैं उहां के समझैं नांही। दुभाष्या तैं समझ्या जाय हैं। सो सुरंगपट्टण पर्यंत तौ इहां के देश के थोरे बहुत पाइये है। तातै इहां की भाषा कूं समझाय दे हैं। अर सुरंगपट्टण के मनुष्य भी वैसे ही बोले हैं। तहां परै इहां का देस के लोग नांही। सुरंगपट्टण आदि सूं साथि ले गया जाय हैं। सो ताका अवलोकन करि आए हैं।

इतां सूं हजार-बारासै कोस परै जैनबद्री नग्र है। तहां जिन-मन्दिर विषैं धवलादि सिद्धान्त नैं आदि दे और भी पूर्व वा अपूर्व ताडपत्रां मैं वा बांस के कागदां मैं कर्णाटो

---

[1] करोड़ों [2] शिखरबंध [3] महंगे [4] ऋतु [5] भोजन

लिपि मैं वा मरहठी लिपि मैं वा गुजराती लिपि मैं वा तिलंग देश की लिपि मैं वा इहाँ के देश की लिपि मैं लिख्या बऊगार्डा[1] के भार शास्त्र जैन के सर्व प्रकार के यतियाचार वा श्रावकाचार वा तीन लोक का वर्नन के वा विशेष बारीक चर्चा के वा महंत पुरुषां के कथन का पुराण, वा मंत्र, यंत्र, तंत्र, छंद, अलंकार, काव्य. व्याकरण न्याय, एकार्थकोस, नाममाला आदि जुदे-जुदे शास्त्र के समूह उहाँ पाइये हैं। और भी उहाँ बडा-बडा सहर पाइये है, ता विर्षें भी शास्त्रां का समूह तिष्ठै है। घणा शास्त्र तो ऐसा है सो बुद्धि की मंदता करि कही सूं खुलै नांही। सुगम है ते बचै ही है।

उहाँ के राजा का रैति भी जैनी है। वा सुरंगपट्टण विषैं पचास घर जैनी ब्राह्मणां का है। वका[2] राजा भी थोडा सा बरस पहलो जैनी था। इहां सूं साढा तीन सै कोस परैं नौरंगाबाद है, ताकै परैं पांच सै कोस सुरंगपट्टण है, ताकै परै दोय सै कोस जैनबद्री है, ता उरैं बोचि-बाचि घणा ही बडा-बडा नग्र पाइये है, ता विर्षें बडे-बडे जिन-मन्दिर बिराजै हैं और जैनी लोग के समूह बसै है और जैनबद्री परै च्यार कोस खाडो समुद्र है इत्यादि; ताकी अद्भुत वार्ता जानोगे।

धवलादि सिद्धान्त तो उहां भी बचे नांही हैं। दर्शन करने मात्र ही हैं। उहां बाकी यात्रा जुरै है अर देव वाका रक्षिक है, तातैं इं देश मैं सिद्धांता का आगमन हुवा नांही। रुपया हजार दोय २०००) पांच-सात आदम्यां के जावे-

---

१ कई गाड़ियों २ वहां का

आवै खरचि पड़्या। एक साधर्मी डालूराम की उहां ही पर्याय पूरी हुई। वा सिद्धांतों के रक्षिक देव डालूराम कै स्वप्नै आए थे। तानै ऐसा कह्या है भाई! तू यां सिद्धांतों नै लेनै कूं आया है सो ए सिद्धांत वा देश विषैं नाहीं पधारैंगे। उहां म्लेच्छ पुरषों का राज है। तातैं आने का नांही। बहुरि या बात के उपाय करने मैं बरस च्यारि-पांच लागा। पांच विश्वा औरू भी उपाय वर्तै है।

औरंगाबाद सूं सौ-कोस परै एक मलयखेडा है। तहां भी तीनूं सिद्धांत बिराजै हैं। सो नौरंगाबाद विषें बडे-बडे लखेस्वरी, विशेष पुन्यवान, जाकी जिहाज चालै, अर जाका नवाब सहायक, ऐसा नेमीदास, अविचलराय, अमृतराय, अमीचन्द, मजलसिराय, हुकुमचन्द, कोटपति आदि सौ-पचास पाणीपथ्या अग्रवाले जैनी साधर्मी उहां है। ताकै मलयखेडा सूं सिद्धान्त मंगायबे का उपाय है। सो देखिए ए कार्य बणनै विषैं कठिनता विशेष है, ताको वार्ता जानोंगे।

और हम मेवाड विषैं गए थे। सो उहां चीतोडगढ है। है। ताकै तले तलहटी नग्र बसै है। सो उहां तलहटी विषैं हवेली निर्मापण कैं अर्थि भौमि खणतै एक भैंहरा निकस्या। ता विषैं सोला बिंब फटिकमणि सादृश्य महा मनोज्ञ उपमा रहित पद्म आसण बिराजमान् पंद्रा-सोला बरस का पुरुष के आकार सादृश्य परिमाण नै लीया जिनबिंब नीसरे। ता विषैं एक महाराजि बावन के साल का प्रतिष्ठया हुवा भौंहरा का अतिशय सहित नीसरे। और घणा जिनबिंब वा उपकरण धातु के नीसरे ता विषें सुवर्ण पीतल सादृश्य दीसै ते नीसरे। सो धातु का महाराजि तो गढ उपरि भौंहरा

विषैं बिराजै हैं। उपरि किल्लादार वा जोगी रहै है। ताकै हाथि ता भौंहरा की कूंची है। और पाषाण के त्रिंब तलहटी के मन्दिर विषैं बिराजै हैं। घर सौ उहां महाजन लोगां का है। ता विषैं आधे जैनी हैं। आधे महेश्वरी हैं। सो उहां की यात्रा हम करि आए। ताके दरसण का लाभ की महिमा वचन अगोचर है। सो भी वार्त्ता थे जानोंगे।

और कोई थाकै मनविषैं प्रश्न होय वा संदेह होय ताको विशुद्धता होयगी। और गोमट्टसारादि ग्रथां को अनेक अपूर्व चर्चा जानोंगे। इहां घणां भाय्यां कै गोमट्टसारादि ग्रंथां की का अध्ययन पाइये है। और घणी बाय्यां कै व्याकरण वा गोमट्टसारजी को चर्चा का ज्ञान पाइये है। विशेष धर्म बुद्धि है ताका मिलाप होयगा। सारां ही विषैं भाईजी टोडरमलजी कै ज्ञान का क्षयोपशम आलोकिक है जो गोमट्टसारादि ग्रंथां की संपूर्ण लाख श्लोक टोका वणाई और पाँच-सात ग्रथां का टीका बणायवे का उपाय है। सो आयु को अधिकता हुवा बणैगा। अर धवल, महाधवलादि ग्रथां के खोलबा का उपाय कीया वा उहाँ दक्षिण देस सू पाँच-सात और ग्रन्थ ताडपत्रां विषे कर्णाटो लिपि मैं लिख्या इहां पधारे है, ताकूं मलजी बांच है वाका यथार्थ व्याख्यान करै है वा कर्णाटो लिपि मैं लिखि ले हैं। इत्यादि न्याय, व्याकरण गणित, छंद, अलंकार का याकै ज्ञान पाईए है। ऐसे पुरुष महंत बुद्धि का धारक ईं काल विषैं होना दुर्लभ है। तातैं यांसूं मिले सर्व संदेह दूरि होइ है। घणी लिखबा करि कहा ? आपणा हेय का बांछोक पुरुष सीघ्र आय यासूं मिलाप करो। और भी देश-देश के साधर्मी भाई आवैंगे, तासूं मिलाप होयगा।

और इहाँ दश-बारा लेखक सदैव सासते जिनवाणी लिखते हैं वा सोधते हैं। और एक ब्राह्मण पंडित महैनदार चाकर राख्या है सो बोस–तीस लडके बालकन कूं न्याय, व्याकरण, गणित शास्त्र पढाबै है। और सौ-पचास भाई वा बायां चर्चा, व्याकरण का अध्ययन करे हैं। निरब सौ-पचास जायगां जिन पूजन होइ है। इत्यादि इहाँ जिनधर्म को विशेष महिमा जाननी।

और ईं नग्र विषैं सात विसन का अभाव है। भावार्थ ईं नग्र विषैं कलाल, कसाई, वेश्या न पाईए है। अर जोव-हिंसा की भी मनाई है। राजा का नाम माधवसिंह है। ताके राज विषैं वर्तमान एते कुविसन दरबार की आज्ञातैं न पाइये है। अर जैनी लोग का समूह बसै है। दरबार के मुतसद्दी सर्व जैनी है और साहूकार लोग सर्व जैनी हैं। जद्यपि और भी है परि गौणता रूप है, मुख्यता रूप नांही। छह–सात वा आठ-दस हजार जैनी महाजनां का घर पाइये है। असा जैनी लोगां का समूह और नग्र विषैं नाहीं। और इहाँ के देश विषैं सर्वत्र मुख्यपणै श्रावगी लोग बसै हैं। तातैं एह नग्र वा देश बहोत निर्मल पवित्र है। तातैं धर्मात्मा पुरुष बसने का स्थानक है। अबार तौ ए साक्षात धर्मपुरी है।

बहुरि देखो ए प्राणी कर्म कार्य के अर्थि तो समुद्र पर्यंत जाय है वा विवाहादिक के कार्य विषैं भी सौ-पचास कोस जाय है, अर मनमान्या द्रव्यादिक खरचै है। ताका फल तो नर्क निगोदादि है। ता कार्य विषैं तौ या जीव के असी आसक्तता पाइये है, सो ए तो वासना सर्व जीवनि के

बिना सिखाई हुई स्वयमेव बणि रही है; परंतु धर्म की लगनि कोई सत्पुरुषां कै ही पाईये है।

विषय-कार्य के पोषने वाले तो पैंड-पैंड विर्षे देखिए है, परमार्थ कार्य के उपदेशक वा रोचक महादुर्लभ बिरले ठिकाणै कोई काल विर्षे पाइये है। तातैं याकी प्रापति महाभाग्य कै उदै काललब्धि कै अनुसारि होय है। यह मनुष्य पर्याय जावक खिनभंगर[1] है, ता विर्षे भी अबार के काल मैं जावक अल्प बीजुरी का चमत्कारवत थिति है। ताकै विर्षे नफा-टोटा बहुत है। एक तरफा नै तो विषय-कषाय का फल नरकादिक अनंत संसार का दुख है। एक तरफ नै सुभ सुद्ध धर्म का फल स्वर्ग मोक्ष है। थोडा सा परणामां का विशेष करि कार्य विर्षे एता तफावत[2] परै है। सर्व बात विर्षे एह न्याय है। बीज तौ सर्व का तुछ[3] ही होइ है अर फल वाका अपरंपार लागै है, तातैं ज्ञानी विचक्षण पुरषन कै एक धर्म ही उपादेय है।

अनंतानंत सागर पर्यंत काल एकेन्द्री विर्षे वितीत करै है तब एक पर्याय त्रस का पावै है। अैसा त्रस पर्याय का पायबा दुर्लभ है, तौ मनुष्य पर्याय पायबा की कहा बात? ता विर्षे भी उच्च कुल, पूरी आयु, इन्द्री प्रबल, निरोग शरीर, आजीविका की थिरता, सुभ क्षेत्र, सुभ काल, जिन-धर्म का अनुराग, ज्ञान का विशेष क्षयोपशम, परणामां की विशुद्धता, ए अनुक्रम करि दुर्लभ सूं दुर्लभ ए जीव पावै है। कैसे दुर्लभ पावै है? इ बार अैसा संयोग मिल्या है सो पूर्वैं अनादि काल का नहीं मिल्या होगा। जो अैसा संजोग

---

1 क्षणभंगुर 2 अंतर 3 छोटा

मिल्या होय तो फेरि संसार विषें क्या नै रहै ? जिनधर्म का प्रताप ऐसा नांहीं के सांचो प्रीतीति आया फेरि संसार के दुख कूं पावै। तातें थे बुद्धिमान हो। जामै अपना हित साधै सो करना। धर्म के अर्थी पुरुष नै तो थोडा-सा ही उपदेश घणा होइ परणमै है। घणी कहबा करि कहा ?

और ईं चीठी की नकल देस-बीस और चोठी उतराय उहां के आसि पासि जहां जैनी लाग बसते होइ तहां भेजनी। ए चोठी सर्व जैनी भायां कूं एकठे करि ताके बीचि बांचणी। ताकूं याका रहस्य सर्व कूं समझाय देना। चोठो को पहोंचि सिनाखी[1] पाछो लिखनो। लिख्यां बिनां चोठी पहोंचो वा न पहोंचो को खबरि पडै नांही। आबा न आबा की खबरि पडै नांहो। मिती माह बदि ९ संवत् १८२१ का।

[1] सुरक्षा

शुद्धा शुद्धि पत्रक

पृ. सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृ. सं.	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
1	18	अद्य	अथ	2	7	अरहंत	अरहंत
2	2	हैं	है	2	14	भरया	भर्‌या
2	16	का	की	3	3	धात	धात्
3	26	उप देश	उपदेश	4	16	उच्ति	उचित
4	18	हैं घातिया	है घातिया				
5	4	घनरुप	घबरूप	6	1	हैं	है
6	21	काउयो	काह्‌यो	6	23	अहुलादित	आहलादित
7	25	श्रवै	श्रवै	7	25	जिनवाणी	से
8	1	गयधरदेवा	गणधरदेवां	8	8	उज्वल	उज्ज्वल
8	24	1 से	1 मुख-कमल से				
9	11	हो	ही				
11	3	बहुरि कैसे हैं।	बहुरि कैसे हैं				
12	2	मासै	भासै	12	26	2 जीवों क़ा	2 जीवों का
13	5	वषै	वर्धै	13	11	येता	एता
15	7	कार्य	कार्य	15	8	अर्थ	अर्थ
15	25	मैं	म्है	16	2	पर्यायत्ताकूं	पर्यायताकूं
16	19	वारते	वास्ते	16	24	पूर्णपंक्ति गलत छप गई	
14	3	हैं	है	17	4	क	कै
21	10	विन्ना और	विना	23	11	केतइक	केलाइक
27	9	राग-द्वैष	राग-द्वेष	21	28	मेरा	मेरी
29	8	ज्ञानज्यति	ज्ञानज्योति				
32	15	आखड़ी संजय	आखड़ी संजम				
38	17	अरिकेला	अरकेला				
38	26	6 कुप्पा, चर्म निर्मित पात्र	गलत छपा है				
39	2	यह पंक्ति नहीं है	कुप्पा, चर्म निर्मित पात्र				
40	26	यह पंक्ति नहीं है	1 व्यापार				
40	2	ऐसी	ऐसा	45	7	या	वा
45	17	दिवा	दिशा	48	4	वाअ क्कल	वा अक्कल
50	25	पाइ	पाय	52	20	खासि	खाँसि
54	8	ता सूं भी	तासूं भी	55	14	डबोया	डुबोया
61	15	तदाहृतादान	तदाहृतादान	62	11	वस्तनि	वस्तुनि

66	11	त्रिबलित	त्रिवलित				
68	12	सारी गुह्य गूहन	गुह्य गूहन				
70	3	विषय	विष्टा	73	11	घोवती	धोवती
78	17	गन्धर्व	गर्धव (गधा)	80	8	आवे	आवै है
87	13	पालकी	पाप की	89	20	ताते	तातैं
90	3	तुष्छ	तुच्छ	90	9	अवधि	अबधि
92	9	नाख्या, तोनै	नाख्या तो तोनैं				
93	1	जाव	जीव	94	8	पाणि	पाणी
94	10	सेवी	सेती	94	16	येक	एक
95	12	कां राख सर्व कादि	की राख सर्व कादि				
96	5	तापारि	तापरी	97	1	दवा	दया
97	4	दीधा	दींधा	98	13	जाक	जाके
102	2	अंधर-अधर	अधर अधर	102	11	कहिये	कहिये है
104	10	मर्याद्	मर्यादा	105	17	कुमलौ	कुमल्यौ
105	21	उपजै	ऊपजै	106	6	विष	विषैं
107	13	जाव	जाय	107	18	नीलगार	नीलगर
107	19	च्यारी	च्यारि	108	10	जीवा का	जीवा की
110	8	राजा	राज	111	16	शास्त्रादि	शस्त्रादि
112	9	निरामरण	निराभरण	112	10	चटी	चूंटी
112	14	चभर	चमर	112	24	जो	सो
113	7	तूजा करनी	पूजा न करनी				
114	19	बाकी	ताकी	114	20	बंदी रखाना	बंदीखाना
115	2	आपणां	आपणा	115	13	हुवे	हुते
118	9	काय	काम	121	18	आग	आगै
121	24	कास । तासरा	कोस । तीसरा				
122	4	नाभिराजा	नामिराजा	122	5	राह्य	रह्या
122	13	ज्योंही सो थाने स	ही सो थाने सज्या				
124	4	प्ररुप्या	प्ररूप्या	124	18	विमुख ? होय	विमुख होय
129	1	चौंरासी	चौरासी	129	13	क्षधा	क्षुधा
131	19	लपेठे	लपेटे				
131	22	म्है ल्याया छै-वाक गर्भ	ल्याया छै, वाके गर्भ				
132	10	रह्ययौ	रह्यौ	132	20	निंद्वक	निंधक
133	15	प्रायाश्चित	प्रायश्चित				
135	15	ताहीं	नाहीं	135	22	चराय	बुराय

135	23	सम	समै	135	24	चखादार	चरवादार
138	6	गोम्मप्पसारजी	गोम्मटसारजी				
139	2	मत	मत	139	19	काह्य	कह्या
142	11	पुरुष	पुरुष	143	10	माहात्म्म	माहात्म्य
143	11	निंदूय	निंध	143	15	भान	मान
144	10	है।	है। ता	144	13	ष्हलुवा	टहलुवा
145	14	बालै	बोलै	145	24	नैन	नै न
147	1	कर हूं	करहु	147	13	ये लक्षण	लक्षण
148	1	बात्सल्य	वात्सल्य	151	22	ज्ञानापया	ज्ञानोपयोग
153	17	तप्वार्थसूत्र	तत्त्वार्थसूत्र				
153	23	हा है	ही है	153	25	कहा	कही
155	4	तातै	तातै	155	19	सत्तावन	ये सत्तावन
156	9	हा	ही	159	12	सम्यग्यान	सम्यग्ज्ञान
162	2	बीतराध	वीतराग				
162	21,22	न	नै	166	14	लगि	लांग
169	4	कालाब्धि	काललब्धि	169	12	उलधि	उलधि
169	17	दुबु ंद्धि	दुर्बुद्धि	171	12	रूचि	रुचि
171	25	त्या	त्याग	178	20	स्तुरयादि	स्तुत्यादि
179	7	जीछै	पीछै	179	11	गणानुवाद	गुणानुवाद
179	17	मौक्ष	मोक्ष	180	3	f राकार	निराकार
180	20	पोषन	पोषनै	181	2	मानै	मोनै
181	22	ताका	ताकी	183	14	अर	अर है
184	11	माही	माहि	185	24	कूंवा	कूवा
186	8	आलोकाक्राश	आलोकाकाश				
187	19	अपर्याप्ति	एते अपर्याप्ति				
187	24	अनंत अलब्ध अनंत वर्गणा स्थान गुणे सूक्ष्म निगोदिया अलब्ध					
187	25	घाटि अनंत वर्गणा स्थान घाटि					
187	26	गुणे एक	एक	189	6	है, ऐसे है	हैं, ऐसे हैं
189	21	है	हे	190	11	पीडित्त	पीडित
190	23	दीर्ध	दीर्घ	192	3	सोभी	सो भी
193	7	चरणो	चरणा	194	6	याही	मांहि
197	21	माह-कर्म	मोह कर्म	198	6	विपै	विषैं
198	19	तम्हारी	तुम्हारी	199	1	बंधा	वंधा
199	18	म्हारा	म्हारी	201	11	अंतमुहूर्त	अंतर्मुहूर्त
203	2	गुरू	गुरु	203	23	अरि	करि
204	8	सारिख	सारिखे	207	3,9	सामयिक	सामायिक
207	8	गुरू	गुरु	207	11	नि: कष्पाये	नि: कषाय
207	18	राख	राखै	210	9	माही	नाहीं
210	11	तनक सी	तनक सी	211	14	म्हाखान	म्हरवान

212	9	है,	ह्वै	215	14	रूई	रुई
215	23	सवार्थसिद्धि का देवा	सवार्थसिद्धि का देव वा				
219	4	सोमे	सोम	219	5	घरे	धरे
221	14,17	म्हे	म्है	224	1	बहुरि	बहुरि
224	21	रून्मुख	सन्मुख	224	21	दीय	दोय
226	8	बावडा	बावडी	227	9	जसे	जैसे
229	9	वातराग	वीतराग	230	17	मोगग	मोगरा
230	22	गर	अर	232	16	है	हैं
235	3	नहार	×	235	6	चलाव	चलावनहार
237	25	कभी	5 कमी	238	1	का	की
238	8	धरता	धरती	238	20	बजावे	बजावै
239	9	हाय	होय	239	23	सोमत	सोमित
242	16	संमार	संसार	245	13	मक्ति	मुक्ति
248	11	मौन	मोनै	251	16	चरित	चरित्र
252	15	झर्या	भर्या	256	10	कहे	कहै
256	20	सयमादि	संयमादि	257	19	निष्ठापन	निष्ठापन
258	13	घण	घणे				
258	18	सम्यण्ज्ञाना	सम्यग्ज्ञानी				
259	25	मोन	मोनै	261	16	छ	छै
264	13	कर	अर	264	20	पूछता	पूछता
270	4	गुरू	गुरु	270	16	अखड	अखंड
272	21	हे पुत्र ?	हे पुत्र !	273	16	धर	घर
273	25	द्वारै	द्वारै				
275	6	पुद्गिलनी	पुद्गलनी	275	18	कसी	कैसी
281	7	पड़ता	पडता	283	4	अनुभबन	अनुभवन
285	1	पूर्णपक्ति	×				
285	2	शीतल गुणा नै भी खोवै है	अर				
286	6	ई न	ई नै	289	1	सू	सूं
289	11	गुरू निर्गथ	गुरू निर्ग्रन्थ	290	12	उपायन	उपाय
290	18	जिमवाणी	जिनवाणी	291	3	विषें	विषैं
291	13	सब	सर्व	291	16	झूंठ	झूठ
292	7	क्षधा	क्षुधा	293	3,5	हैं	है
294	2	नैं	नै	294	7	क्यौं	क्यौं
94	22	ताकं	ताकैं	294	23	धर्मं	धर्म
295	22	हा	ही	297	21	कर	अर
297	24	ता	तौ	298	5	क हिये	कहिये
298	8	पृष्वी	पृथ्वी	298	16	पुरुष,	पुरुष
298	17	परिणआवै	परिणमाव	298	24	द्रव्य	द्रव्य
299	9	हाय	होय	300	13	अनानि	अनादि

300	14	नै	नै	302	8	आछाया	आछाद्या
302	18	ऐले	ऐसे	302	21	विभाण	विमाण
302	22	परवेरु	पखेरू	303	2	आकात	आकास
304	11	पद्भत	षट्भत	30।	19	जधन्य	जघन्य
305	2,3	सोमै	सोभै	305	9	पर्वतं	पर्यंत
305	12	भूतिका	भूमिका	305	12	हा	ही
305	25	हा ता विमान हीकू या कह	है। ता विमान ही कूं या कहै				
306	1	म्हाको	म्हाकी	306	8	करिसा	करिसी
306	9	भा	भी	306	10	चोडा	चौडा
306	20	भेरु	भेरू	306	22	हं	है
306	24	घतावै	बतावै				
306	26	अथना वासौ एसो	अथवा वासौ ऐसो				
306	28	है	है	307	2	भीत्ति	भीति
307	7	अनूठा	अपूठा	307	8	थंधै	बंधे
307	14	मिथ्नात्व	मिथ्यात्व	307	18	को	की
308	6	को	की	308	13	उपज	उपजै
308	16	पीछ	पीछै	309	4	बा	वा
309	23	जेठ	जेठै	310	3	पार्वतो	पार्वती
310	7,9	मारचो	मार्यो	310	17	नाहीं	नाही
310	24	ईत्यादि	इत्यादि	311	2	यात	या बात
311	9	ग्म्या	रम्या	311	22	इल्यादि	इत्यादि
312	2	सारिखा	सारिखो	312	18	तीथकर	तीर्थकर
313	18	केसे	कैसं	314	1	घोड़ो	घोडो
314	5	ताइं	ताईं	314	19	गर्म	गर्भ
314	27	614	314	315	3	पंठित	पंडित
315	5	उपटी	उलटी	315	11	होसा	होसी
315	12	घणा	घणी	315	13	रूपया	रुपया
315	20	काप	काम	3।5	21	ब्रह्मण	बह्ण
316	2	उपार्ज	उपार्जै	316	24	घ्रौ	धौ
316	26	भाउ	भाड	317	1	नायौ	नाचौ
317	4	प्रवृति	प्रवृत्ति	317	9	आज्ञानता	अज्ञानता
317	15	बापरे को	बापरेको	317	22	नैन	नै न
318	4	धणा	घणा	318	18	पाकर	पोखर
318	23	भैसा वा धरतो	भैंसी वा धरती				
319	2	ब्रह्मा	ब्रह्म	319	10	आषधि	औषधि
319	19	दगाबाज	दगाबाजी	320	2	बाधंबर	बाघंबर
320	11	बांदता	बांदरा	320	21	सा	सो
320	22	कह्यना	कह्या (कह्यया)				

प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्य कम करने हेतु आर्थिक सहयोग देने वालों की नामावली

1 श्री दि. जैन महिला-मण्डल, तुकोगंज, इन्दौर 3,500)
द्वारा-श्रीमती पुष्पाबाई

2 श्री दि. जैन-मुमुक्षु मण्डल, मलकापुर 2,351)
द्वारा-श्री पं. राजमलजी

3. श्री दि. जैन-मुमुक्षु मण्डल, छिंदवाड़ा 1,000)
द्वारा-श्री पं. राजमलजी

4. स्व. श्रीमती ताराबाई (धर्मपत्नी श्री गुलाबचंदजी) की स्मृति में श्री जवाहरलाल गुलाबचन्द जैन, विदिशा वालों की ओर से 751)

5. श्रीमती सौ. कपूरीबाईजी धर्मपत्नी आनन्दीलालजी जैन, गया 1,001)

6. गुप्तदान, मार्फत श्रीमती गुलाबबाईजी स्व. विलमचन्दजी गंगवाल 1,001)

7. श्रीमती सुदर्शनाबाईजी धर्मपत्नी स्व. कैलाशचन्द्रजी अग्रवाल, इन्दौर 1,001)

8. श्रीमती गेंदीबाईजी जैन, इन्द्रभवन इन्दौर 101)

9. श्रीमती रामेरीबाईजी धर्मपत्नी सुखलालजी, विनोता मातु पं. रतनलालजी (राजस्थान) 501)

10. श्रीमती सुभद्राबाईजी चन्द्रमतीजी; इन्द्रभवन, इन्दौर 501)

11. श्रीमती पुष्पाबाई धर्मपत्नी, अजितकुमारजी जैन, भोपाल 501)

12. श्रीमती शृंगारबाई धर्मपत्नी बागमलजी सर्राफ, भोपाल 501)

13. श्री लखमीचन्द शिखरचन्द, विदिशा 501)

14. श्री दि. जैन महिला-मण्डल, भोपाल 501)

15. श्री फूलचन्द्र विमलचन्द्र झांझरी, उज्जैन 501)

16. श्रीमती आशारानी धर्मपत्नी प्रेमचन्द्रजी बड़जात्या, दिल्ली 501)

17. श्रीमती राजकुमारी धर्मपत्नी कोमलचन्द्रजी गोधा, जयपुर 501)

18. श्रीमती मिश्रीबाई धर्मपत्नी श्रीराजमलजी एस. ई. भोपाल 501)

19. डॉ. भूपेन्द्रकुमारजी, खण्डवा 501)

20. श्रीमती कुसुमलता पाटनी, ध. प. शान्तिलालजी, छिंदवाड़ा 501)

21. श्री मदनलालजी मदन मेडिको, भोपाल 501)

22. श्रीमती मंजुकुमारी पाटनी ध. प. सन्तोषकुमारजी, वाशिम 501)
23. श्रीमती पुष्पाबाई एवं सपरिवार, खण्डवा 460)
24. श्रीमती रतनबाई भण्डारी ध. प. नन्नूमलजी बुधवारा, भोपाल 301)
25. श्रीमती प्यारीबाई जैन, द्वारा-अनिल ट्रेडर्स, मुंगावली 301)
26. श्री दरबारीलाल राजेन्द्रकुमार, भोपाल 251)
27. श्री शीतलप्रसादजी जैन, बेगमगंज 251)
28. श्री नन्नूमलजी, फर्म, चुन्नीलाल दौलतराम, भोपाल 251)
29. जैन युवा फेडरेशन, उज्जैन 251)
30. गुलाबचन्द सुभाषचन्द्र जैन, मंगलवारा, भोपाल 251)
31. दानवीर श्रीमन्त सिताबराय सेठ लखमीचंदजी, विदिशा 251)
32. श्रीमती शकुन्तला ध. प. रतनलालजी सोगानी, भोपाल 251)
33. श्रीमती सुहागबाई ध. प. बदामीलालजी, इब्राहीमपुरा, भोपाल 251)
34. श्रीमती तुलसाबाई ध. प. स्व. श्री मिश्रीलाल, अलंकार लॉज, भोपाल 201)
35. गुप्तदान, द्वारा-पं. राजमलजी, भोपाल 201)
36. श्री कमलचन्दजी, आयकर-सलाहकार, भोपाल 201)
37. श्री हुकमचन्द सुयतप्रकाश, इतवारा, भोपाल 201)
38. श्रीमती स्नेहलता, ध. प. देवेन्द्रकुमारजी, भोपाल 201)
39. श्री लाभमल सागरमल, मंगलवारा, भोपाल 201)
40. महिला युवा फेडरेशन, सागर 201)
41. श्री दि. जैन मुमुक्षु मण्डल, सिवनी 201)
42. श्री सरदारमल प्रदीपकुमार बेरसिया, भोपाल 151)
43. श्री जयकुमारजी बज, कोयाफीजा, भोपाल 151)
44. श्रीमती इन्द्राणी ध. प. वागमलजी पवैया, भोपाल 151)
45. श्री पं. राजमलजी, भोपाल 101)
46. श्री प्रो. जमनालालजी, इन्दौर 101)
47. श्रीमती चम्पाबाई ध. प. रामलालजी सर्राफ, खिमलासा 101)
48. श्रीमती चन्द्राबाई ध. प. अमोलकचन्दजी, गुना 101)
49. श्री ब्र. हेमचन्दजी पिपलानी, भोपाल 101)
50. श्री भानुकुमार इन्दौरीलालजी बड़जात्या, इन्दौर 101)
51. श्रीमती रतनबाई पांड्या, इन्दौर 101)
52. श्री प्रबोधचन्द्रजी एडवोकेट, छिंदवाड़ा 101)
53. श्री देवेन्द्रकुमारजी, करैली 101)

54. श्री केवलचन्दजी कुम्भराज वाले, द्वारा मयंक टेक्सटाइल, उज्जैन 101)

55. श्री अरिदमन जैन, कोटा 101)

56. श्रीमती मक्खनबाई गोमटी, भिण्ड 101)

57. श्री नेमीचन्द कौशल किशोर, भिण्ड 101)

58. श्री लखमीचन्द नाथूराम, बीना 101)

59. श्री माणिकचन्द अजमेरा, खादी भण्डार, भोपाल 101)

60. पं. जुगलकिशोरजी 'युगल' कोटा 101)

61. श्रीमती सुगनबाई ध. प. फूलचन्दजी, एस.के. इण्डस्ट्रीज, भोपाल 101)

62. श्रीमती कमलाबाई ध. प. स्व. श्री सूरजमलजी, भोपाल 101)

63. श्रीमती विमलाबाई, अयर पाटन 101)

64. कु. सन्ध्या जैन, द्वारा–तुलसा होटल, भोपाल 101)

65. श्री प्रेमचन्दजी जैन, भोपाल 101)

66. चौ. रामलाल रतनचन्द, पिपरई 101)

67. श्री ज्ञानचन्द बड़कुल, बरेली 101)

6९. श्री लालकुमारजी सागर 101)

69. श्री ब्र. दीपचन्दजी, पारमार्थिक फंड, उदासीनाश्रम, इन्दौर 101)

70. श्री जयकुमार पुत्र श्री रतनलालजी, भोपाल 101)

71. श्री मगनलाल चुन्नीलाल, बर्तन–व्यापारी 101)

72. श्रीमती सुमित्रा जैन, पिपलानी, भोपाल 101)

73. जौहरी सुबोध सिंघई, सिवनी 101)

74. श्री विनोदचन्द भूपकिशोर, मुरार–ग्वालियर 101)

75 श्री आनन्दीलालजी जैन किरी मोहल्ला, विदिशा 101)

76. श्री चन्दनमल सरदारमल सर्राफ, भोपाल 101)

77. श्री कस्तूरचन्दजी सिलवानी वाले, भोपाल 101)

78. श्रीमती चमेलीबाई ध. प. कस्तूरचंदजी सिलवानी वाले 101)

79. श्री माणिकचंदजी शक्तिनगर, भोपाल 101)

80. श्री महेन्द्रकुमारजी सोमवारा, भोपाल 101)

81. श्रीमती नवलकुमारी सोगानी, भोपाल 101)

82. श्रीमती ऊषाबाई, भोपाल 101)

83. श्रीमती रेशमबाई ध. प. श्री सौभाग्यमलजी, इतवारा, भोपाल 101)

84. श्रीमती कमल श्रीबाई ध. प. स्व. श्री डालचन्दजी सर्राफ, भोपाल 101)

85. श्रीमती आशाबाई धर्मपत्नी पदमचन्दजी, भोपाल 101)
86. श्री कोमलचन्दजी जैन, मॉडर्न ड्रेसेस, भोपाल 101)
87. श्रीमती गिरजाबाई ध. प. शिखरचंदजी दलाल, भोपाल 101)
88. श्री मोहनलालजी ट्रान्सपोर्ट, इतवारा, भोपाल 101)
89. श्री तेजराम फूलचन्दजी, भोपाल 101)
90. श्री बाबूलालजी इन्दौर बैंक वाले, भोपाल 101)
91. श्री पन्नालाल विनोदकुमार, भोपाल 101)
92. श्रीमती धर्मपत्नी मूलचन्दजी, इतवारा, भोपाल 101)
93. श्री सौभाग्यमलजी, इतवारा, भोपाल 101)
94. श्री मानकचन्दजी गुड़वाले, भोपाल 101)
95. श्री सुभाषचन्द चौधरी, फर्म–चौधरी सेल्स कार्पोरेशन, भोपाल 101)
96. श्री कपूरचन्दजी जैन, करेली 101)
97. श्री कबूलचन्दजी जैन, बरेली 101)
98. स्व. श्रीमती मुन्नीबाई विनोद, भोपाल 101)
99. श्री सुरेशचन्द रामकिशोर शाहपुरा वाले 101)
100. श्रीमती कमलाबाई जैन, भोपाल 101)
101. श्री भँवरलाल पवनकुमार कासलीवाल, भोपाल 101)
102. श्री कचरुमल राजेन्द्रकुमार छावड़ा, धार वाले 101)
103. श्रीमती सुखवतीबाई धर्मपत्नी श्री बाबूलालजी पीपल्या वाले, भोपाल 101)
104. श्रीमती मनोरमाबाई ध. प. श्री गुलाबचंदजी, मेल., भोपाल 101)
105. श्रीमती पुन्नोबाई ध. प. स्व. श्री बाबूलालजी नम्बरदार, भोपाल 101)
106. श्रीमती हीराबाईजी सोनगढ़ 102)
107. श्री पन्नालाल निर्मलकुमारजी, भोपाल 101)
108. जैन ट्रेडिंग कं. भोपाल 101)
109. श्रीमती जानकीबाई ध. प. श्रीसुशीलालजी, इतवारा, भोपाल 101)
110. श्री बाबूलालजी हुकमचन्दजी, उज्जैन 101)
111. चौ. बिहारीलाल राजमल, बेरासिया 101)
112. श्री श्यामलालजी जैन, द्वारा–महावीर मंगल भवन, लाला का बाजार, लश्कर 101)
113. श्री नेमीचन्दजी जैन, कपड़ा के दलाल उज्जैन 101)
114. श्री राजमल मगनलालजी, भोपाल 101)
115. श्री धन्नालाल महेन्द्रकुमारजी-भुंगावली 01)
116. श्री सूरजमल शैलेन्द्रकुमार, सोमवारा, भोपाल 101)
117. श्री गोपीलाल विनोदकुमारजी बेरासिया 101)
118. फुटकर प्राप्त 3,693)

33,918